

लोकायतन



लोकायतन

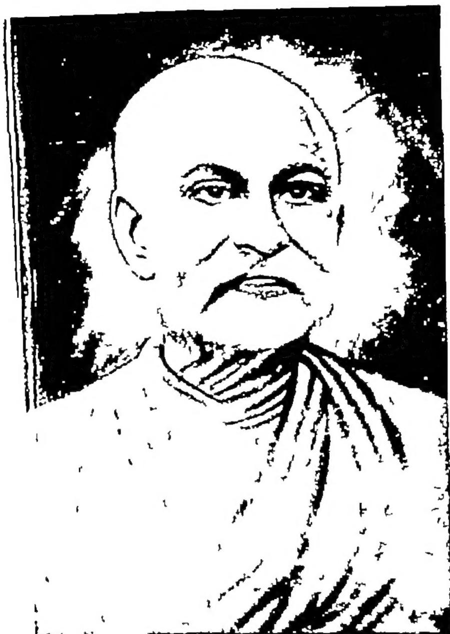


मंगलायतनो हरिः

लेखक

श्री सुमित्रानंदन पंत

लोकभारती प्रकाशन



श्री गंगादत्त पंत

शुभ्र हिमालय से उदार मन
    पुण्य शिखर सम जिन प्रतिष्ठित,
युग प्रेरित भू-स्वर्ग गीत यह
    पद पद्मों पर प्रीति समर्पित।

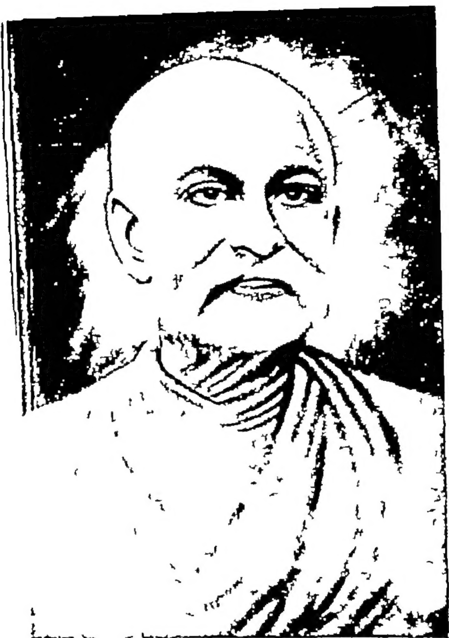
मूल्य २५ रुपये
प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
दिल्ली ६ शाखा पटना ६
मुद्रक
ओमप्रकाश कपूर
ज्ञानमण्डल लिमिटेड कबीर चौरा वाराणसी
५११८-२०

LOKAYATAN
by
Shri Sumitranandan Pant

ज्ञातव्य

'लोकायतन' का श्रीगणेश मैंने ८ अक्तूबर, सन् '५६ को किया था। संयोगवश, यह ८ अक्तूबर, सन् '६३ को ही समाप्त भी हो गया। ग्राम धरा के अंचल में जन भावना के छन्द में बंधी, युग जीवन की इस भावगत कथा को काव्य प्रेमी पाठकों को भेंट करने में मुझे प्रसन्नता है। युग जीवन के सम्बन्ध में लिखना कठिन होता है क्योंकि उसके स्तर वर्तमान पीढ़ियों की चेतना के भीतर होते हैं। इसीलिए मैंने कथावस्तु के चयन एवं संयोजन में यथेष्ट संयम से काम लेकर केवल अनिवार्य तत्वों एवं घटनाओं ही का समावेश किया है। गांधीजी के अतिरिक्त इसके शेष पात्र कल्पित होने पर भी उनके द्वारा मेरे कवि जीवन की अनुभूति एवं सत्य को वाणी मिली है। इसके चरित्र केवल मानव चेतना के पालकी वाहक भर हैं। यदि मेरा कवि प्रयास इस संक्रान्ति काल की युग गाथा के भीतर से विकासकामी मानवता के जीवन सत्य की झाँकी प्रस्तुत कर सका तो मैं अपने सृजन श्रम को सफल समझूँगा। शुभमस्तु।

—सुमित्रानंदन पंत



श्री गगादत्त पत

शुभ्र हिमालय-से अंतर में
पुण्य शिखर तुम चित प्रतिष्ठित,
युग प्रेरित भू-स्वर्ग गीत यह
पद पद्मों पर प्रीति समर्पित।

प्रथम खण्ड

भाव परिवेश

तुम्हें सौंपती लो, यह कनक अमृत घट,
नर नारी के रस संयम से पूरित,
प्रकृति पुरुष की शुभ प्रीति का पावक
सावधान बन जाय न विष जग भू हित।

पूर्व स्मृति

(मान्या)



वाक्पति अमर कवि गिर प्रणाम
प्रणति पार्वती परमेश्वर शिव राम।

वाणी शुभ्र निरंजनमयी वीणा पर
बरसाओ चित्पावन कण स्वर्णिम स्वर,
मुक्त कल्पना हंस मार मानस में
खोले शोभा पंख दिगंत अगोचर!

प्राण सलिल में हृदय कमल पर शोभित
स्वर्ग प्रभ सित भाव रूप, अंतः स्मित
ध्यान मौन तन्मयता में तुम करती
मर्मोन्मुख अव्यक्त मरम स्वर व्यंजित!

जिसकी भूमा-वीणा के ऋतुओं से
प्रणय-युगल नित प्रकृति पुरुष से यांत्रित
स्थूल सूक्ष्म यह चेतन संगान के
धन-भू पथ रचते नव जीवन गुंजित!

परब्रह्म से मां ब्रह्ममयि मनमुख
ध्वनि रव की स्वर गरिमामा में मुखरित
रचो मनमानस मोह कल्याणी
निज समता में असीम से प्रेरित!

जिस गति में बँध बने सूर्य तेजोज्वल
रजत चन्द्र घट हुए अमृत रस पूरित
उस लय में बाँधो कवि उर वंशी को
परम शक्ति जिस गति लय में आत्मस्थित।

भव्य कल्प का आदि काव्य यह अनगढ़
वन्य कला–मृदु फूल शूल संग गुम्फित
सिंह नाद कोकिल स्वर पावक त्र्यंबक
नत भू मानव चरणों पर रस अर्पित।

अन्य रत्न वह कौन ? वर्णमाला का
ज्योति तरल उर में मढ़ा गुण योजित
नाम नींव ध्रुव रूप हर्म्य जिस पर स्थित
नव कल्पों में अमर युगों में विकसित।

मानव उर, युग सागर का मंथन कर
नव रत्नों से करो ज्ञान पथ दीपित
दूर, पूर्व पश्चिम के दिग् छोरों पर
इन्द्रधनुष स्मित प्रीति सेतु कर विरचित।

भारत चेतस् को कर लोक समन्वित
भू जीवन की ओर करो रत न विरत
वह विरक्त जीवन निषेध विष मूर्छित
जाति पाँति मृत रूढ़ि रीति से भी हत।

पर भाषा, पर संस्कृति ओढ़े युग से
अंतर गौरव शून्य सिद्ध शुक पंडित
मनोबंध निष्क्रिय पर-धी संयम प्रिय
बहिरंतर के दैन्यों में शठ वंचित।

स्वर्ग सूत्र में कविते गूँथो जन मन
युग वाणी में नव मानस कर निर्मित
हो इष्टार्थ जन जीवन मन का अनुभव
निज भाषा में भाव कोष पा अनुमित।

जन जीवन के तत्वों को चुन चुन कर
प्रमुख वृत्तियों की पूनी कर निर्मित
कथा सूत्र बँट बुनो लोक जीवन पट
मानव उर पर नव भू गरिमा मंडित।

छंद ग्रथित कर खंड धरा मानस का
जीवन रचना करो तंत्र में नूतन
रूढ़ियों के मृत संस्कारों से मर्दित
पृष्ठ भग्न हो मानव का नव चेतन!

जिसको वेधा ऊर्ध्व-प्राण शर हर ने
स्मर ने सहज सकामा मधु सायक धर
जिसे राम ने उभय छोर अतिक्रम कर
किया प्रीति नत धरा चेतना को वर!

मनुज मेरु को परिवादिनी बनाकर
सप्त तार कर सप्त लोक के संकुल
अभिनव स्वर लिपि रचो विश्व जीवन की
प्राण अनाहत पर यह स्वत प्रतिष्ठित!

रश्मि करों से छू उर के तारों को
पग पग पर कर झंकृत ध्वनि मुखरित
मन्त्र मुग्ध स्पर्शों से अमृत स्फुरण भर
लोक वक्ष में करो स्वर्ग मधु संचित!

कैसे कह दूँ इड़ा मुग्ध युग मनु से
यथा क्षेम वह करे सब जग रोहण
आत्मबोध की निष्क्रिय समरस स्थिति को
जन भू पथ पर करना सक्रिय वितरण!

आज सर्प मुख से मणि छीन — अधोमुख
अवचेतन पथ करता चेतन ज्योतित
चित्रकूट से नीच धरा कुहर में
उतर अचेतन तिमिर जहाँ चिर निद्रित!

उदय शृंग में बीन बहीं घन स्मित
स्वर्ग शिखा सी चढ़ रही पर्वत तम
यह निरचेतन भुवन धरा मानस का
पर्वमित पर्वों सा मण्डित भव मणि क्रम!

यहीं भव सन्ध्या पर धरती सोई
शांतिमय कुंठन से वेष्टित उन्मन —
स्वर्ग पुरी सा मूँद उन्मुख युग के
नभ का भरती घूँट हिमा पर्वतान्त!

कौन मौन यह? अपलक, पूर्व स्मृति सी
सृष्टि स्वप्न सी निमिष पलकों पर अंकित
अमा निर्वापित प्रतिपद् शशि लेखा सी
सत्य मूल नव आस्था अंकुर सी सित!

साक्ष प्रीति में मूर्तित तन्मयता सी
आदि शक्ति सी नित नव स्वयं प्रकाशित
सुरधनु पट में लिपटी शुभ्र किरण सी
कौन ज्योति शाश्वत निशीथ में जागृत!

भू पट की चेतना सुधा धारा सी
तन मन प्राणों के भुवनों में वितरित
नील शून्य में पद रख हरित धरा का
सप्त सिन्धु जल से रखती जो सिंचित!

अप्रमेय तुम! ज्योति शिखा सी बैठी
अंध महत्ताओं को करने दीपित
जड़ से जीवन में जीवन से मन में
विकसित करते निज चैतन्य अपरिमित!

अंधकार के निविड़ मंच पर जैसे
चन्द्रकला रह सकती नहीं तिरस्कृत
शत उपायों शत सुरधनु वृत्तों से
आवृत सी वह करती दृष्टि चमत्कृत!

ध्यान मग्न अनिमेष मौन नत चितवन
नील कमल दल मुँदते जाते प्रतिपल
युग संध्या के घने सुनहले तम त
कंधों पर लहराए कोमल कुंतल!

पूर्ण चन्द्र मुख नत भू जीवन लांछन
भाल मुकुर पर शोभित घन स्मृति कज्जल
युग प्रभात सी अर्ध खुले क्षितिजों पर
ज्योति रेख मानस की स्मिति मुक्तोज्ज्वल!

शुभ्र पयोधर, प्रीति सिन्धु शिखरों से
स्वर्ग मर्त्य के मधु उभार में स्पन्दित
जीवन मूल्यों की अमूल्य मणियों से
बन हार अगाध प्रकाश से मंडित!

रागाम्बर कंचुक चंपक देही में
शरद उषा लिपटी हो हिम शिखरों पर,
पीत क्षौम का मसृण भार अंसों से
झरता स्वर्णिम ज्योत्स्ना का सा निर्झर।

बाहु मृणालों में वह सहज समेटे
भू जीवन की करुणा ममता निःस्वर,
प्रेम गौर हो डोर, छोर युग हों भुज
राग सूत्र मृदु कर युग स्थम मनोहर!

मोड़ सुघर घुटने बैठी वह निर्जन
शुभ्र पाणि जघनों में धन्य कुशासन
कनक कौश पर बाँधे मृग कटि तट पर
धरे चिबुक करतल पर, स्थिर नत आनन।

स्वर्ण हरित मखमली शस्य से आवृत
अधोभाग — भू के प्राणों का जीवन
धरती की हो हरी श्याम में लिपटा
गंध मरंद सना अनंत मधु यौवन।

मर्त्य मूल परतल छू फूलों में हँस
मौन रहे चरणों पर बन कर पावन
धरा स्वर्ग की उपमा सी वह जीवित
भावी मधु शरदों में सुरभित यौवन।

चित्रमगन मुख बाष्प द्रवित शशि मद्धम —
सुलग उठे हों स्मृति में पावक के क्षण
घूम रहा स्थिर नयनों में गंगा तट
गूँज रहा श्रवणों में दारुण रव व्याप।

वह सुमंत्र क्या? हाँ, रोते क्या देकर?
परित्याग? परिणाम मत करो पद मन!
वन वंदन गुरु रथा गिरी का मानस
भूल गए तुम यमुना स्नानित सागर।

मूर्तिमती पृथ्वी की करुणा सी वह
गिरी विमूर्छिता प्रमदा मथित वयान
भाग्य बाध अब जग देव हन्त मुनि
हन्ने स वाल्मीकि स्नेह से स्थान!

जानते तुम निर्दोष ज्ञात रघुवर को
पूतयोनि रटते तव मृग खग गिरि वन
अन्ध अविकसित संशय रत जन भू मन,
अविश्वास ही धरा नरक का कारण!

जनरव भय से राघव ने पत्नी को
छोड़ा था क्या? कथा पुरातन है यह
आई थी वह अग्नि परीक्षा देने
जन भू का दुख भार झेलने दुःसह!

यह इतिहास न हो तथ्यों पर कल्पित
भारत भू मानस का सत्य सनातन
देश काल पुलिनों को रहा डुबाता
यहाँ चेतना के जीवन का प्लावन!

राम राज्य की रानी थी जन सेवा
राजा भी करता जन मत का पालन
क्रौंच शोक के पुण्य श्लोक कवि ऋषि के
तमसा तट आश्रम में अब वह पावन!

सहसा स्फुरित हुआ स्मृति पट पर,—कैसे
धरा गर्भ में वह संतप्त समाई—
लोक कार्य करना था उसको गोपन
अवचेतन में रही तमिस्रा छाई!

मर्त्य दैन्य पीठिका स्वर्ग जीवन की
रह न सकेगी ज्योति तिमिर में गुंठित
संशयशील स्वभाव धरा की रज का
भी स्वर्णिम आस्था में होगा कुसुमित!

स्पर्श चेतना कर का था करुणोच्छ्वस
चिर विकास पथ में जन धरणी का तम
राग द्वेष हिंसा स्पर्धा संघर्षण
भू जीवन मन्वोदय के लघु उपक्रम!

उसे स्मरण था कैसे निर्वासन सुन
विहँसा आत्म प्रबुद्ध मुग्ध उसका मन
जन असारता से जो नित्य अमर्यादित
उन्हें विलग कर सकते कब भंगुर तम?

उदय हृदय में हुए राम पुरुषोत्तम
दीप्त भीष्ममणि पर्वत से दृग मोहन
बोले विस्मित सी सकुची तुम सीते
भूलो बीती को गत वृत्त समापन !

मृत संस्कारों का उन्मूलन भू मन
चिर अनादि जड़ चेतन का संवर्धन
नव प्रकाश में सहना तुम्हें धरा मुख
भावी मानव के सम्मुख भीषण रण !

चेतन ही जड़ जड़ ही चेतन जीवन
बूझ न पाती सूक्ष्म तत्व तार्किक मति
मन ही बाहर स्थिति स्थिति ही भीतर मन
ह्रास विकासमयी युग की गति परिणति !

राज्य तन्त्र का भूप शिखिर में शोभन
राम राज्य था कृषि मन का युग दर्पण
गत युग के जीवन मन के संचय को
जगद्धात्रि मैं करता तुम्हें समर्पण !

देखोगी तुम लोकतंत्र स्वर्णोदय
मानव जीवन मूल्यों का नव वितरण
नए जन्म की प्रसव व्यथा पृथ्वी की
छिड़ा निखिल जग में बाहर भीतर रण !

रहा मनोमय-पुरुष रूप वह मेरा
कृषि युग की मर्यादा से निर्धारित
गेह इकाई था कुटुम्ब का जीवन
जिसकी जड़ सीमा पर था आधारित !

धर्म नीति संस्कृति विचार विधि दर्शन
विविध शास्त्र बहु यज्ञ नियम व्रत साधन
शासन पद्धति चतुर्वर्ण चतुराश्रम
अर्पित तुमको गत युग कर्म विभाजन !

हँसी जानकी—राम, तत्व ज्ञाता तुम
स्वीकृत मुझको यह सर्वस्व समर्पण
नाम रूप गुण से अतीत स्थित मुझमें
बनो पुनः प्रिय सत्य रूप के दर्शन !

अपने गुण निर्दोष भ्रात रघुवर को
पूतयोनि रहते तरु मृग खग गिरि वन,
अन्ध अविकसित संशय रत जन भू मन
अविश्वास ही धरा नरक का कारण!

जनरव भय से राघव ने पत्नी को
छोड़ा था क्या? कथा पुरातन रे यह
आई थी वह अग्नि परीक्षा देने
जन भू का दुख भार झेलने दुःसह!

यह इतिहास न हो तथ्यों पर कल्पित
भारत भू मानस का सत्य सनातन
देख काम पुलिनों को रहा डुबाता
यहाँ चेतना के जीवन का प्लावन!

राम राज्य की रानी थी जन सेवा
राजा भी करता जन मत का पालन
क्रौंच शोक का पुण्य श्लोक कवि ऋषि के
तमसा तट आश्रम में अब वह पावन!

सहसा स्फुरित हुआ स्मृति पट पर,—कैसे
धरा गर्भ में वह संतप्त समाई—
लोक कार्य करता था उसको शोषण
अवचेतन में रही तमिस्रा छाई!

मर्त्य दैन्य पीठिका स्वर्ग जीवन की
रह न सकेगी ज्योति तिमिर में गुंठित
संशयशील स्वभाव धरा की रज का
भी स्वर्णिम आस्था में होगा कुसुमित!

स्पर्श चेतना कर था या करुणोज्ज्वल
चिर विकास पथ में जन धरती का तम
राग द्वेष हिंसा स्पर्धा संघर्षण
भू जीवन अरुणोदय के मधु उपक्रम!

उसे स्मरण था कैसे निर्वासित सुत
विहँसा आश्रम प्रबुद्ध सुख उसका मन
जब वसातीता मैं जो नित्य पर्योषित
उन्हें विनय कर अपने नव अंकुर राम?

उदय हृदय में हुए राम पुरुषोत्तम,
दीप्त नीलमणि पर्वत से युग मोहन
बोले विकसित सी समती तुम, सीते,
भूलो बीती को गत युग समापन!

मृत संस्कारों का उपचेतन भू मन
चिर अनादि जड़ चेतन का संघर्षण
नव प्रकाश में पड़ना तुम्हें धरा युग
भावी मानव के सम्मुख भीषण रण!

चेतन ही जड़ जड़ ही चेतन जीवन
बूझ न पाती सूक्ष्म तत्व तार्किक मति
मन ही बाहर स्थिति स्थिति ही भीतर मन
ह्रास विकासमयी गुण की गति परिणति!

राज्य तन्त्र का सूर्य क्षितिज में ओझल
राम राज्य था कृषि मन का युग दर्पण
गत युग ने जीवन मन के संचय को
जगद्धात्रि जो करता तुम्हें समर्पण!

देखोगी तुम लोकतंत्र स्वर्णोदय
मानव जीवन मूल्यों का नव वितरण
नए कल्प की प्रसव व्यथा पृथ्वी की
छिड़ा निखिल जग में बाहर भीतर रण!

रहा मनोमय-पुरुष रूप वह मेरा
कृषि युग की मर्यादा से निर्धारित
गोत्र इकाई था कुटुम्ब का जीवन
जिसकी जड़ सीमा पर था आधारित!

धर्म नीति संस्कृति विचार विधि दर्शन
विविध शास्त्र बहु पंथ नियम व्रत साधन
शासन पद्धति अनुक्रम अनुशासन
अर्पित तुमको गत युग धर्म विभाजन!

हँसी जानकी—राम तत्व ज्ञाता तुम
स्वीकृत मुझको यह सर्वस्व समर्पण
नाम रूप गुण से अतीत स्थित मुझमें
बनो पुनः, प्रिय नव कल्प के दर्पण!

अपने शुभ निर्दोष भ्रात रघुवर को
पूतयोनि रटते तरु मृग खग गिरि वन
अन्ध अविकल्पित संशय रत जन भू मन,
अविश्वास ही धरा नरक का कारण !

जनरव भय से राघव ने पत्नी को
छोड़ा था क्या ? क्या पुरातन रे वह,
आई थी वह अग्नि परीक्षा देने
जन भू का दुख भार झेलने दुस्सह !

यह इतिहास न हो तथ्यों पर कल्पित
भारत भू मानस का सत्य सनातन
देश काल पुलिनों को रहा डुबाता
यहाँ चेतना के जीवन का प्लावन !

राम राज्य की रानी थी जन सत्ता
राजा भी करता जन मत का पालन
क्रौंच शोक के पुण्य श्लोक कवि ऋषि के
तमसा तट आश्रम में अब वह पावन !

सहसा स्फुरित हुआ स्मृति पट पर,—कैसे
धरा गर्भ में वह संतप्त समाई,—
लोक कार्य करना था उसको गोपन
अवचेतन में रही तमिस्रा छाई !

मर्त्य दैन्य पीठिका स्वर्ग जीवन की
रह न सकेगी ज्योति तिमिर में गुण्ठित
संयमशील स्वभाव धरा की रज का
भी स्वर्णिम आस्था में होगा कुसुमित !

स्पर्श चेतना कर ना पा कर्दमोज्ज्वल
चिर विकास पथ में जन धरती का श्रम
राग द्वेष हिंसा स्पर्धा संघर्षण
भू जीवन परमोदय के लघु उपक्रम !

उसे स्मरण था कैसे निर्वासन युग
विरहीना धारण प्रबुद्ध शुभ उसका मन
जन जनार्दता मे जो नित्य मर्यादित
उन्हें विजय कर सकते कब मधुर राम ?

उदय हृदय में हुए राम पुरुषोत्तम,
दीप्त नीलमणि पर्वत से युग मोहन
बोले विस्मित सी लगती तुम सीते
भूलो बीती को गत वृत्त समापन!

मृत संस्कारों का उपचेतन भू मन
चिर अनादि जड़ चेतन का संघर्षण
नव प्रकाश में गढ़ना तुम्हें धरा मुख,
भावी मानव के सम्मुख भीषण रण!

चेतन ही जड़ जड़ ही चेतन जीवन
बूझ न पाती सूक्ष्म तत्व तार्किक मति
मन ही बाहर स्थिति, स्थिति ही भीतर मन
ह्रास विकासमयी युग की गति परिणति!

राज्य धर्म का सूर्य क्षितिज में ओझल
राम राज्य था कृषि युग का युग दर्पण
गत युग के जीवन मन के संचय को
श्रद्धांजलि सी करता तुम्हें समर्पण!

देखोगी तुम ज्योतित स्वर्णोदय
मानव जीवन मूल्यों का नव वितरण
नए कल्प की प्रसव व्यथा पृथ्वी की
छिड़ा निखिल जग में बाहर भीतर रण!

रहा मनोमय पुरुष रूप वह मेरा
कृषि युग की मर्यादा से निर्धारित
पैत इकाई था कुटुम्ब का जीवन
जिसकी जड़ सीमा पर था आधारित!

धर्म नीति संस्कृति विचार विधि दर्शन
विविध शास्त्र बहु यम नियम व्रत साधन
शासन पद्धति चातुर्वर्ण्य चतुराश्रम
अर्पित तुमको मन युग कर्म विभाजन!

देखो जानकी—राम तत्व ज्ञाता तुम
स्वीकृत मुझको यह सर्वस्व समर्पण
नाम रूप युग से अतीत स्थित मुझमें
बनो पुनः, प्रिय नव सम्यक् दर्शन!

अवचनीय अनुपमता प्रेम तुम्हारी
नहीं समझता भेद बुद्धि रत जन मन
वही जानता जिसे जनाते प्रिय तुम
गुह्य रहस्य परम यह कहते भी जन !

प्रभु आए य जगे कौन कह सकता ?
जगे परम यदि मुझमें जगे धनंजय
दयी मुझमें ही निज महिमा गरिमा,—
भाव रूप लीला भर भेप—न विस्मय !

पुरुषोत्तम सौवर्ण राम नव रवि से
विश्व क्षितिज पर पुन परम श्री शोभित
चित् सरसिजों में फुल्ल सूक्ष्म मधुरस मय
स्वर्णिम भू हृद् कमल मौन दिक् प्रहसित !

तुम अनन्त चैतन्यों के मणि पर्वत
शत शत सुरधनु आभाओं से मण्डित
भगवत् करुणा के कोमल मरकत घन
जन भू दुख स उर मुक्ता जल विगलित !

सौम्य भाव शर हीन खड़े तुम सम्मुख
भीतों को नव विश्व रूप देता सुख
जन समूह में सम प्रिय साधारण स
देख रही तुम में नव मानव का मुख !

राजा वे सब सर्व एक में पूजित
लोक तंत्र पथ सब में सहज प्रजाजन
बँधा चेतना सूक्ष्म एक सूत्र था जो
भाव खिल उठा वह सहस्र दल बहु जन !

विश्व रूप भगवत् आकर तुम जन प्रिय
वृत्त छोर भर विषय व्यक्ति परात्पर
अभिव्यक्ति पाता तुम में जय जीवन
भाव लहरियों में उच्छ्वसित निरन्तर !

सच कहती तुम बोध स्वरूपे सीते
विश्व रूप ही में होता मैं विकसित
लोक धर्म में रत प्रजाजन का मानस
है जीवन शिल्पी मेरे प्रिय जन नित !

मध्य युगों से विरत शून्य में आए
मनुज खोजते मुक्ति कर्म बंधन से,
सर्व मुक्ति ही व्यक्ति मुक्ति, सत्य यह
प्राप्त महत्व था जिस पथ साधन से!

अब विनीत जग जन्म मरण से पीड़ित
मूढ़ मुग्ध मन व्यक्ति-परक जीवन सुख
विमुख बृहत् सामाजिक जीवन के प्रति
कर्म भूमि में रह सकते कब जीवित!

परम तत्व अद्वैत हमारा अविगत
जहाँ दृष्टि मति श्रुति न वाणी जाती,
अपने को मैं प्रिये रचता तुममें
तुम अपने को मुझमें कल्पित पाती!

अविगम का बोध न मन से सम्भव
मति बुद्धि की चाल अनिश्चय अक्षम
पूर्ण समर्पण कर जीवन मम तुमको
जग भू रचना करें लोक गण निर्भय!

तुम्हें करें नित व्यक्त विश्व जीवन में
प्रति युग में भू स्वर्ग बने सुन्दरतर
देवि तुम्हारे ही गत कर-पद सुर-नर
भुवन कर्म जग तुम पर करें निछावर!

अमिट अभीप्सा तुम मम तन भू-मन की
जिसकी स्वर्णिम पूर्ति लोक रूपान्तर
मैं निमित्त भर तुम्हीं सविता विधा
जिसमें सोते जगते निशिदिन चराचर!

नित्य नए साधन तुमने भू जग को
विश्व क्षितिज पर हँसता स्वर्ण युगान्तर,
सफल तुम्हारी महत् साधना मीत
जड़ भू-तम विज्ञान रश्मि से भास्वर!

प्रिये अणुतम में प्रवेश कर तुमने
दी वैज्ञानिक दृष्टि खोल भू-मन को
जड़ जग का विश्लेषण कर दृग में भर
एक शक्ति गरिमा सौंपी त्रिभुवन को!

युग युग से निष्क्रिय जड़ भू जीवन स्थिति
हुई विवश सक्रिय पा नव संजीवन
मुक्त प्रकृति बल से अब भौतिक मानव
नए स्वर्ण युग में कर रहा पदार्पण!

प्यास न हा रे वह मधु स्वादों में रत
मधु बल का कर धरती पर आवाहन
भेद बुद्धि पर जय न पा सका भू मन
विश्व ऐक्य ही सुगम मुक्ति का साधन!

निखर रही मन के सागर से धरती
देशों के खण्डों में राष्ट्र विभाजित
शुभ सुनहले संबंधों पर निर्मित
नव मानवता धरा स्वर्ग पर स्थापित!

अंतश्चेतन वर्तमान जो प्रेयसि
भू स्तर पर वह भावी में संपादित
भगवत् क्षण में महत् कर्म घटते नित
ब्रह्म दिवस होता कल्पों में साधित!

देख रहा मैं भगवत्पद के सम्मुख
नव भविष्य का स्वप्न तुम्हारा उज्ज्वल
झूम रहा नत स्वर्ग मुग्ध भू पद तल
बिहँस रही जड़िमा बन चेतन मधुमय!

नई चेतना सुधा प्रीति स्वप्निल तुम
नई पावनता देनी सब जन मन को
आत्मा इन्द्रिय बीच भेद तम भ्रम हर
स्वीकृति देनी पूर्ण जगत जीवन को!

आदि शक्ति धर्मों से स्वर्णोज्ज्वल सा
बहता काल प्रवाह अकूल तरंगित
धूपछाँह युगों में मानव जग का
नव विकास लीला विलास में पुष्पित!

मूल प्रकृति तुम धरा योनि में प्रेरक
मनन निरत रह मुक्त प्रीति आत्मस्थित
करती स्तरों में जड़ भू मानस के
पंच स्तरों को तुम्हीं रही प्रकाशित!

बदल रही तुम बदल रहा तुम में जग
निर्विकल्प भूमिका तत्वत निश्चित
भाव बोध आचार विचार पुरातन
नव भू जीवन प्रतिमा में नव सज्जित!

खोल रही तुम गत सज्जा रचि मण्डन
मुक्त हो रहे मृत मर्यादा बन्धन
तुम अरूप नव रूप दर्पण में बिम्बित
ज्ञात मर्म द्रष्टा कवि ऋषि को गोपन!

तुम्हें समझना चाहे यदि भू जन मन
तद्गत,—व्यक्त जगत को कर दे विस्मृत—
देखे मुझमें देश काल से पर तुम
नाम रूप युग देश काल में भी स्थित!

ध्यान लीन उर में ज्यों भगवत् करुणा
इष्ट रूप धर होती सहज उपस्थित
उदित हो रही तुम भव्य शिखरों पर
सुमुखि उषा सी नव सुषमा में वेष्टित!

जन आशा की संजीवनी लता में
अग्नि प्ररोह खिला हो नवल तपाग्नस
देख रहा तुम धरा कक्ष के तम में
चन्द्र कला सी उग बरसाती मंगल!

चन्द्र कला क्या कहो? पावन मुग्ध शोभा
अभिनव आभा रेखाओं में अंकित
फूलों का प्रिय धनुष लिखा तनु छवि का
मन भिगोने रस के भार मधु विरचित!

लो मैं अनुज वधू छाया-से पीछे
लक्ष्मण सीता राम—पूर्ण रामायण
बन्धु भरत त्याग मातृ दर्प युग का
मा कैकेयी कर मातृत्व निदर्शन!

दो माताओं का प्रतिनिधि हम आज
हनुमत् श्रद्धा का पावन पौरुष बल
लिखा मर्यादा युग दिव्य मानव निर्माण
विश्वास, जनता मन का युग समाहार!

यहाँ दुरित रावण लंका कुमति गढ़
विषय बद्ध बंदी चिति इन्द्रिय वन में
मुक्त हुई तुम मिटा अविद्या भय तम,
हनुमत् प्रेरित जगी चेतना मन में!

प्रति युग की निर्मम विकास सीमाएँ
असमत् सत्ता होती सदसत् वाँछित
मुझे मारना पड़ा रक्त विष बालमुख
तुम्हें हृदय परिवर्तन जन का स्वीकृत!

सोने का मृग रहा मूक नारी के
मन से पावन रज कण का मूल्यांकन,
लक्ष्मण रेखा सीमा पर यौवन की
लीक लाँघना लोक दृष्टि का लांछन!

धनुष भंग थी विषद सांस्कृतिक घटना
युग युग से बिछुड़े थे दक्षिण उत्तर,
रुद्र विष्णु का शिव में हुआ समन्वय
पसा गीला उर, हुई अहल्या उर्वर!

सीता जन भू हृदय राम जन के बल
भर भरित घर, मानस पाश अनश्वर,
प्रीति प्रणत लक्ष्मण प्रणम्य पौरुष बल
शील मूर्ति ऊर्मिला विरह रस सागर!

यह रूपक संक्षिप्त प्रिये मत युग का
काम वश हो रहा रूप परिवर्तित
मूक ऊर्मिला के सहृदय यौवन में
नव युग स्वप्न धरो तुम शोभा गुम्फित!

त्याग शुभ्र ऊर्मिला स्फटिक रस पावी
स्नेह दुग्ध पय सौम्य सुमित्रानन्दन
सृष्टि मंच की निरुपम नटी प्रिये तुम
रचो भूमिका मानवता की नूतन!

अपने तुम्हीं धरा निशीथ में घूमकर
जड़ को चित् में कर सकती युग दीपित
नई ज्योति में देख रहा अब तुमको
तुममें भावी जन भू मंगल मूर्तित!

प्रिये, वागर्थ सदेही ही क्या हम ?
परब्रह्म में परासक्ति तुम सुविदित
सर्वेश्वर सर्वज्ञ सनातन शाश्वत
बहुरूपा मैं भी हम एक समन्वित !

सहसा उज्ज्वल इन्द्रधनुष सतरंग स्मित
नील मध्य चित् रश्मि व्यूह दिक् स्फुरित
प्रकट हुआ अभिनव श्री मूर्ताकृति में
स्वर्ण शुभ्र हो नई चेतना शोभित !

दिव्य [illegible] से हुए राम सस्मित —
बोले सस्मित पुलकित सपरिकर सीता
मुझे तुम्हीं सर्वत्र दीखतीं खोजी
धन्य आज का सम्मिलन का क्षण !

स्वर्णिम छाया सा भुवनों का जीवन
[illegible] चेतना पट में हो चल चित्रित —
तुम आनन्द रहित अनन्त जगधात्री
बिन्दु बिन्दु में अगणित सिन्धु तरंगित !

चिन्मुक्ता तुम अमृत प्रीति घन — जिसमें
ये असंख्य ब्रह्माण्ड तारे ग्रह प्रसरित
[illegible] काल सीमित सिन्धु जल पावक
हरित धरा रजनी समीरण परिवृत !

ऊपर ज्योति अनन्त मध्य नीचे तम
रश्मि सेतु [illegible] से [illegible] पथ हरि हर स्मित
जड़ से तन कृमि खग पशु नर सुर बन [illegible]
उतरा दीप्त सृजन सोपान सतरंगित !

जहाँ समाकार तुम [illegible] [illegible] स
वहीं दुख सुख, [illegible] पुन्य [illegible] सम —
चिदानन्द रस भी सब में अब मान
तुम में कर सब द्वन्द्व भेद निज अतिक्रम !

मन से [illegible] [illegible] जग से [illegible] का
[illegible] न [illegible] [illegible] मन में सुख दुख
भेद से [illegible] मन का भगवत् [illegible]
[illegible] से [illegible] चिद् [illegible] में से मन !

-

पूर्व स्मृति

तुम्हीं अचेतन जड़ में दमित निर्वासित,
प्राणों में प्रहसित मानस में दीपित
हृदय कमल में स्थित आत्मा में केन्द्रित,
युग-युग में चैतन्य ज्योति में विकसित !

कनक शुभ्र तुम सतरंग प्रभ सीपी में
हँसता हो स्वर्णोज्वल सित मुक्ताफल
हरित स्वर्ग स्मित पारिजात पुष्पों से
शोभित हो अब भी का मरकत करतल !

ज्ञात तुम्हें मन के रहस्य सब भामी
ऊर्मि सहित लक्ष्मण का जीवन अर्पित
सम्मोहन वश जीवन उन्मुख जन मन
मंत्र मात्र तुम प्रीति श्वास से जीवित !

चिन्तित हो उठता रह रह मेरा मन —
कभी स्वर्ग होगा क्या यह भू जीवन ?
जहाँ छोड़ आए थे हम भू मन को
वहीं पड़ा वह — कल्प न बीते हों याम !

वही स्वार्थ कटु राग द्वेष जन मन में
क्षुब्ध दैन्य स्पर्धा हिंसा पर आच्छन्न
काम क्रोध मद लोभ मोह भय संशय
सावधान करते जिनके प्रति बुधजन !

एकांगी भौतिक गति से भव जग को
जुटते भीषण अणु विनाश के साधन
बँटा विपक्षी शिविरों में स्थापित जन —
जीवन शुभ सर्जन बनता संघर्षण !

कभी महत् युग मूल्यांकन में निश्चित
बाह्य नहीं अन्तर्प्रकाश में निर्मित
भू पर स्वर्ग नरक भव में खण्डित जन
भौतिक आध्यात्मिक जग में न समन्वित !

नहीं जानता विधि को क्या कुछ स्वीकृत
एक रोग का तो निदान जन सम्मुख
महा मरण पथ खोले कब मति जन युग
विरम न हो जाए भव व्याधि — मुक्त दुख !

लोकायतन

धीर वीर मेरे प्रिय देवर लक्ष्मण
ज्ञात मुझे वे जीवन गति से परिचित,
उन्हें सालता जन मन का घायल दुख
उनके स्वर में मेरा आशय मुखरित!

कर्म क्षेत्र भू जीवन जिसका गुण मन
सूक्ष्म निरीक्षक वह नहीं संचालक
कर्म चेतना के प्रकाश में जन को
गढ़ने नव आदर्श क्षेम सुख पालक!

मत मर्यादाएँ थीं थीं कृति दर्पण
जिसमें बिम्बित था कृषि जीवन का मुख
जकड़े हुई मनुज आत्मा को पिछली
छायाएँ, मृत भाव बोध स्मृति सुख दुख!

भावों की नावों पर पार न होगी
दिशा शून्य जन भावी भव सागर पर,
प्रथम ज्वार उठ रहा लोक जीवन में
कर्म पूर भू गर्तों को देगा भर!

भाव कर्म में जहाँ सन्तुलन हो ध्रुव
वहाँ दिशा में करती नित संचालित
स्थूल सूक्ष्म जड़ चेतन धर्मों से ही
करती जीवन में समग्रता स्थापित!

काल कराल खड़ा जग के सिरहाने
भूत विपद् में धैर्य धरेगी भव गति
वैर भुलाएँगे सब छल बल के प्रति
प्रति संकट में जग उठती कोई मति!

अन्तरतम की आस्था में भू मन की
युद्ध शांति में शांति चुनेगा जन मन
दनुज ध्वंस से मनुज सृजन होगा प्रिय
मरघट से प्रिय स्त्री शिशु स्मित भर आँगन!

जलन रहा विरह ऊर्मिला बाली
जीती जब से मेरे उर में यौवन
पीता मर सहते भू जीवन का धन
भोर न पाए मूल्य-स्वर्ण मन दर्शन!

पूर्व स्मृति

भगवत् जीवन भू जीवन में कब से
भित्ति खड़ी दुर्बोध भेद की दुर्गम
अध्यात्म भू सींची हमने प्राणों से
बालू में बोए जप तप व्रत संयम!

लोक सत्य परिणाम रहे दिव् भ्रामक
तत्व नित्य उपयोग अलीक असंगत —
मूर्त न कर पाए जीवन में उसको
मन जिसको पा रहा ध्यान में तद्गत!

धुनते आए गत संस्कारों का मन
उसे मान युग युग से सत्य सनातन
बुन न सके बन धरा स्वर्ग जीवन पट
बट न सका सूत्रों में शास्त्रों का श्रम!

व्यक्ति मुक्ति के सर्प पाश में फँसकर
कर्म पंगु, भव भ्रमा भ्रांति गत जीवन
शुष्क प्राण रह गए रिक्त मति पंजर
इन्द्रिय रचना वंचित सामाजिक मन!

जड़ से पर चैतन्य तत्व तब हमको
निर्मित करनी सत्य श्रेणि युग विस्तृत
अर्थ काम सँग धर्म मोक्ष रह सँग पर,
व्यक्ति विश्व सँग ईश्वर कर संयोजित!

ज्योतिर्मय व्यक्तित्व जगत में पूजित
बुझी चिनगियों से निष्प्रभ साधारण
वन फूलों सी हँसमुख विश्व मानवता
उग न सकी — चैतन्य शून्य भू प्रांगण!

ज्योतिर्पिण्डों के सँग भास्वर रवि शशि
शोभा देते क्या अकूल अंबर में?
उनके प्रिय सहचर समूह में हँसते
जो उज्ज्वल नक्षत्र न हों घर घर में!

भारत का आरोहण पथ यह, छोटी
भगवत् जन के योग्य प्रसिद्ध पुरातन
साधारण हित समष्टि भगवत् जीवन
तुम्हें इष्ट — मैं करती पूर्ण समर्थन!

व्यक्त सत्य का अंश मात्र प्रति युग में,
बाह्य बोध में स्वाभाविक किंचित् भ्रम
विश्व सृजन की क्रम विकास श्रेणी में
पूर्ण पूर्ण को करता प्रतिपल प्रतिबिम्ब!

मुखर हो उठी मौन ऊर्मि नव युग में
मंगल सूचक वह गूँगी भू के हित
नारी की चिर मूक व्यथा के वाचक
देखें नव चेतना धरा पर जागृत!

ज्ञात मुझे जग में आने को नव युग
जब कृतार्थ होगा भू पर जन जीवन
स्वर्ण चेतना से परिणीत धरा मन
द्वन्द्व मुक्त कर देगा पूर्ण समर्पण!

एवमस्तु — विहँसे करुणा मधु के घन
प्रकट हुए वाल्मीकि भावना प्रेरित
बोले जग भू की युग गाथा सुन मैं
मन के वन में रह न सका ध्यानस्थित!

आशंकित जन आपद् त्रास भयानक
प्रलय भुवन में छिड़ा विश्व आतुर रण
फिर पाताल प्रवेश नहीं कर जाए
धरा चेतना चिन्तित मन भ्रम कारण!

महा ह्रास छा जाय न विघटित भू पर
उबर न पाए सदियों तक मानव मन —
सावधान करने आया मैं जन को
देख जगत पर घिरे घोर संकट घन!

गाथा हो मैंने अपराधी का
एक बार फिर दूँ जीवन मंगल हित —
धन्य भाग कवि कहा मुग्ध सविनय म
विश्व शांति यह नया कल्प हो मुकुलित!

बोले मुनि तब दया दृष्टि से गद्गद
ध्वनित करुणा मूर्ति करुण ध्वनि कवि-स्वर, —
जन मन में पूर्णेन्दु शुभ्र वाणी में
भर व्यापक उर नव आस्था का दें वर!

पद रज मैं बिछा वैभव पद वंचित
शास्त्र कला अनभिज्ञ भाव रस विरहित
असंतुष्ट मन से धन से जीवन से
कवि पीड़ा करता चरणों पर अर्पित!

भूत भविष्यत् वर्तमान के तम में
देख सकूं मानव का भी नव आनन
स्वप्नों की निधि से भर सकूं धरा मन
अंतर-आभा का जो शोभा दर्पण!

तुम बर मेरे शब्द नीड़ शुभ गायन
लोक प्रास की हृदय डाल पर निर्मित
फूट प्राण पिक के रस स्वर, जग मन को
करें अलौकिक छाप प्रीति से मुखरित!

कहा प्रथित सीता ने मनोगुहा से
देव अभी निकले तप से तेजोमय
अंतर्द्रष्टा नव युग गति से परिचित,
हरें धरा तम मिटे ध्वांत भय संशय!

आज बाह्य पट परिवर्तन के संग ही
अंतर्मन हो रहा ज्योति रस प्रहर्षित
भेद बुद्धि गत द्वन्द्व लांघ भू-पथ के
स्वर्ग मर्त्य हो रहे प्रथम संयोजित!

तन मन के नैतिक तट कर रस मज्जित
चित् प्रकाश का झरता स्वर्णिम निर्झर
नव चैतन्य सरोवर का स्मित शतदल
प्रेम मूर्त आनंद प्रस्फुटित भीतर!

देव मनुज पशु का नव रूपांतर कर
पार व्यास बन पाएँ नव युग का पथ
नव युग के वाल्मीकि निकल बांबी से
गढ़ें छंद में चिन्मूर्त्ता का आशय!

महत् अनुग्रह! गुरु नव जग को मैं
शांति मंत्र दूंगा जन मन कर संचित
मानवात्मा रम भू पर जय धरि का
क्रूर वृत्ति को विगत मर्म कर रंजित!

लोक जुगुप्सा के बन लक्ष्य यथोचित
रक्त तृष्ण नर हिंसक होंगे पद नत,
मद्य घृणा से मूकती जब भू पर
शस्त्रायुध भी तब होंगे लज्जित श्री हत!

शाप से कवि बना क्रौंच करुणा वश
आज मूढ़ता विकृति मुझे जीवन की
अंध स्वार्थ की काम गुह्य गलियों में
ज्योति भटकती पग पग पर भू मन की!

खादी के पट में लपेट मैं जन को
बाँध सतत दूँगा — श्रम सूत्र समन्वित
विषम स्पर्धा रहित यंत्र युग का श्रम
खादी सा ही हो पावन जन आदृत!

संधि नियम होंगे भू पर सह जीवन
रचना श्रम का चरण लोक हित अर्जन
मंगल उर पात्रों में भर दूँगा मैं
धरा दुग्ध का शुभ्र अहिंसा माखन!

बँधे प्रीति के स्वर्ण सूत्र में भू मन
एक बने जग बहु देशों में खंडित
देश जातियों से निखरे मानवता
विविध धर्म संस्कृति हो विश्व समन्वित!

सर्वनाश के अणु उद्जन आयोजन
मनुज सिन्धु अतल में करें निमज्जित
हो रचना संकल्प महत् जन समता
न्याय क्षेम हो दुर्ग विरति पर यम नित!

विश्व ऐक्य की रिक्त धारणा भर वह
जिसमें हो जीवन वैचित्र्य न कुंठित
जन गुण ग्राहक मन निर्मित हो व्यापक
मिलें विमुक्त भू भाव शांति दल गुम्फित!

या हम युग मूल्यों को अतिक्रम कर मन
देख रहा मानव भविष्य ध्यानस्थित —
उतर रहा स्वर्णिम प्रभात नव निर्मल
जिसमें शुभ चिर् किरणों में रेखांकित!

नई चेतना निखर रही उर मधि से
शुभ सुरधनुषों की ज्वाला से मंडित
बरस रहा नव वस्तु भाव विकसित हो,
भाव बोध इंद्रिय मन प्राण प्रहर्षित!
ज्योति प्रीति आनंद मधुरिमा संयम
जन जीवन में मूर्त हो रहे क्रम में
अमृत वाणी से गुंजरित धरा मन
आभाएँ सी चमती बन भू मन में।
भावी दर्शन पर श्रद्धार्पित कर मन
पाएँगे जन सूक्ष्म दृष्टि नव जीवन
रहस कलामयि महाशक्ति जग धात्री
मनु में जो करती अमृत पथ धारण!
देख रहा उठता भू गोलक ऊपर
उर्वर ज्योतिष्पिण्डों से अभिभावित
जड़ के मुख पर शक्ति पात चेतन का
मन शृंग पर हों नव तड़ित् प्रकंपित!

स्वर्ण गजरथ के संग मधक का स्वन
सुना सभी ने मधुर भीम रव मिश्रण
अमृत वृष्टि संग नव लिए पंखों में
घुमड़ रहा हो रजत रेख वारण घन!
देखा सब ने तम का दुर्धर पर्वत
उठा पर प्रभा बाँहों से वेष्टित
उतर रही हिमवत् से शरद उषा सी
स्वप्न मुग्ध सी ज्योति शुभ्र शशि सी स्मित!
शेष नाग के ऊर्ध्व शीश पर शोभित
उदित हुई भू हरित जलधि मंथन धृत
नील व्योम का रत्न छत्र धर सिर पर
पवन डुलाता चँवर पुष्प रज सुरभित!
उमड़ा हो रस श्यामल नव सावन घन
जन जीवन के हर्ष भार में पुलकित
मत्त हुआ रम गया मूँद कवि का मन
मनमिन तड़िता के प्रवेग में स्पंदित!

सूक्ष्म सुरभि सी उतरी उमा हृदय में
रजत रश्मि सी कनक दीप्ति से परिवृत
प्रविश हुआ भू-मर्म मधुरिमा में नव
तिमिर गर्भ भर गया शिखर छवि मज्जित !

थी, शिव सुंदर सत्य सार की मूर्तित
प्रीति कला सी चन्द्र कला थी शिर पर
सप्त वर्ण मुक्ताभ स्वर्ण देही की
शोभा से शोभाएँ पड़ती झर झर !

हँसी दिशाएँ, गूँजे अलि कूजे पिक
पशु न रहे उपचेतन ही में सीमित
ज्योति पथ का पिया निमीलित भू मन
चिद् दर्पण में हुआ स्वतः शिव बिम्बित !

पृथ्वी ने सीता को गोदी में भर
सूँघा हरि प्रिय सिर, पुलका मुक्ता जल
घन माला के उर में तड़ित् लता सी
पुत्री पुण्य प्रभू से थी तेजोज्ज्वल !

मिली उमा वैदेही प्रिय सखियों सी
शुभ्र चंद्रिका स्वर्ण उषा हों शोभित
ऋषि को सम्मुख कर पुलकित दंपति ने
किया प्रणत स्वागत शुभ शकुन प्रबोधित !

माई कंठ से वाणी झरती बेटी
ज्ञात तुम्हें मेरे मन का संघर्षण
युग संध्या पर सभी क्रांति पथ जग में
मथन रहा मेरे भीतर नव जीवन !

नए मनुज का जन्म [अखिल-युग स्वर्णिम
बाहर भीतर घटते सब परिवर्तन
स्वर्ग सृजन से कठिन उन्नत में जग का
चिर विरागमय जीवन करता धारण !

शुद्ध रूप पुष्पारा से निति उदित
भरा मृत्यु भया से मर्दित पंकज
मुझे विरोधी शिविरों का भव भ्रम हर
मजन शांति स्थापित करनी भू तल पर !

भौतिक वैभव के मद से उत्तेजित
शोषक शोषित में विभक्त भू प्रांगण
वायुयान में उड़ते बाहर तन मन
अंतर्मन प्रस्तर युग का जड़ वाहन!

इधर अंध भौतिकता का कर्कश स्वर
उधर रिक्त तप त्याग विरति का रोदन
दो अपूर्ण मिल सर्व पूर्ण क्या होते?
महत् साम्य अनुरूप न संयम साधन!

बृहत् समूहीकरण अपेक्षित जग में
जिसमें जन भू भार छोड़ हों गुम्फित
बीज भूमि से नया व्यक्ति पनपे फिर
स्वर्ग प्ररोह,—नई समता से भूषित!

मुट्ठी भर मन के अनमन भावों में
किया बौद्धिकों ने मेरा मूल्यांकन
तत्वविदों ने मर्त्य धाम बतलाया
जरा रोग भय पाप ताप का प्रांगण!

धर्मधरों ने त्याग विराग सिखा कर
कहा व्यर्थ जग मिथ्या माया बंधन
मुक्ति मार्ग विज्ञापित कर यतियों ने
चाहा बन धरणी बन जाए निर्जन!

स्वप्न नरक जड़ चेतन द्वन्द्वों में रत
ज्ञान दग्ध था सब न मेरा परिचय
तर्क धार में खोए, समझ न पाए,
युग समग्रता में मेरा महदाशय!

मैं हूँ जीवन क्षेत्र यहीं मैं मन से
प्राण परिमित में हूँ मैं नित्य अपरिमित
सत्य प्रकाश में मुझको जन जीवन में
भूमन पूर्णता करनी अपनी निर्मित!

युग मन का अतिक्रम कर मेरा जीवन
बढ़ता उठ गिर अग्र सिद्ध निज पथ पर
नया जन्म से मेरा पंथी बन
क्षणिक नित्य के रूप पुनित देता भर!

स्वर्गों का अक्षय प्रकाश ले मुझको
गढ़ना मन का शोभा भंगुर जीवन
देवों के अमरत्व सार से विरचित
भू की भंगुरता का सत्य चिरंतन!

विविध लोक बहु विधि लीला से उर्वर,
चिन्मय सत् के सूक्ष्म स्थूल नाना स्तर
सब के गुण वैचित्र्य महत्ता लघुता,
सभी पूर्ण अपने में सार्थक सुंदर!

निखिल पूर्णताओं का सार ग्रहण कर
बनी पूर्णता जन धरणी की निश्चित
जन्म मृत्यु, बहु ह्रास वृद्धि द्वारों से
अभिव्यक्ति जो पाती लोकोत्तर नित!

आदिम मैं ज्योतिप्रिय — भूल गए जन
दीप्त प्रज्ञा के संग हँस करती नर्तन
शीश धूम मेरा रवि शशि मुख दर्पण
उषा माँग रोली ज्योत्स्ना तन उबटन!

जीवन शोभा की प्रतीक भुवनों में
नहलाते रस धारा में मुझको घन
षड् ऋतुएँ करतीं परिक्रमा पर मन
मिलती फूल विहग करते अभिनन्दन!

निश्चेतन के गर्भधाम गहन में
मैं हूँ खोई ज्योति काम कुम्हलाई
पैठ गई धरती मन की छाया में
निज प्रकाश गरिमा में जाग न पाई!

मृद् दीपक मेरा तन ' नव भंगुर तन
तुम अमरत्व शिखा जिसकी चिन्मणि स्मित
तुम्हें सँजोए स्नेह प्राण अंतर में
मैं भर विभव अमरता से चिर वन्दित!

प्रीति ज्योति तुम मेरे उर की अक्षय
सत्य शिखा अंतरतम स्वयं प्रकाशित
बाट जोहती धरणी के यौवन से —
सी ममता में हो जग में स्थापित!

पराशक्ति शुभ त्रिविध भुवन में व्यापक
सुर नर भूप मंगल नित जिसके भाषित
शुद्ध सत्य बहु अधिकृत किए धरा मन
दोनों से जगती का जीवन शासित!
इस प्रकार जड़ चेतन को उपकृत कर
मुझे पूर्णता में होना नित विकसित
सीमा में निःसीम क्षणिक में शाश्वत
भू रज में कर भगवत् स्वर्ग प्रतिष्ठित!
गांवों वहीं प्रवास पीठिका भू की
कँपी काँपा मणि चक्र छत्र सिर ऊपर,
धुले केश स्वर्णिम शीतम निर्झर से
खिसका अंचल मरकत छाया सुंदर!

देखा ऋषि ने तप्त कनक भू गोलक
हरित शक्ति के अमित सिन्धु से परिवृत
रजत तिमिर से निखर रहे शत रवि शशि
सुर किन्नर मुनि नर भूत खग कृमि प्रगणित!
देखे कवि ने स्मित ब्रह्मांड प्रकल्पित
दीप्त भुवन देवों ऋषियों के आश्रम
कोटि सभ्यताओं संस्कृतियों के युग
धरा गर्भ में छिपे स्वर्ग स्तर निरुपम!
हुए हरित तम में अंतर्हित भास्वर
ब्रह्म विष्णु शिव रुद्र वरुण यम वासव —
नृत्य कर रहे भुवन शक्तियों के संग
जैसे सृष्टि लय में आनन्द निरत सब!
देखा मुनि ने मोहन वातायन से
प्रेम रश्मि दीपित मन भू का प्रस्तर,
गाथा के सौ स्वर्ग पिंड के भीतर
भाषा के शत एषणों में उर्वर!
बोला उन्मेषित स्वर में ऋषि का कवि
धन्य जननि मैं उठा बहिर्मुख मुक्त
सूक्ष्म दृष्टि का देख रहा अब युग में
स्वर्ण रश्मि छवि स्फुरित तुम्हारा आनन!

नील शांति के चिद् सलिलों में अविगत
महा पद्म सी मूँद ध्यान में लोचन
खिलती नव आभा सहस्रदल सी तुम
मनश्चक्षु के सम्मुख धर शोभा तन!

स्वर्ण मरंदों से विरचित सौरभ वपु
सुधा शुभ्र मधु भाव गंध रस सिंचित
प्राण वृंत पर हरित श्याम वेष्टित तुम —
मर्त्य अमर मधु मुग्ध भ्रमर से गुंजित!

देख रहा नीरव करुणा ममता की
गहराइयाँ भरीं असंख्य उर भीतर,
निरवधि सागर, जो करता चिद् जल में
भाव नाव दूँ छोड़ खोल सुख के पर!

जीव जगत के गहरे दुख वाष्पों से
निखर रहे हो क्षितिज स्वर्ग के निःस्वर,
धूम्र नील भावना मेघ पुंजों से
उभर रहे नत शुभ्रारुण आभा स्तर!

महाव्योम में स्वर्गंगा सी पुलकित
शुभ्र अभ्र छवि कनक रश्मि रेखांकित
अमित मनोभुवनों को चिद् भावों को
अंतस्तम में लिए मौन अंतर्हित!

जग रहा म लिए अभय गुहा में
स्निग्ध तमस ही लिए नील वपु धारण
पौ फटने का सा प्रकाश अंतस स
फूट रहा स्मित मादव स भर पावन!

कृष्ण सलिल भी अतल नील चितवन में
उमड़ रहे जीवन-उर करुणा घन
जो निश्चेतन शक्ति सुहाते तुममें
विपुल गुरुतनु हरीतिमा मय रचन!

मटरार्गा तुम निज मन भुज में लिपट
उठा मत्त कर पग करती भव मर्दन
शुभ्र रसना म ज्ञान चैतन्य छमकना
स्वर्णिम सपनों स मरकत भू जीवन!

पूर्व स्मृति

निखिल विश्व इतिहास रिक्त छाया सा
विगत प्रयोजन पड़ा प्रणत चरणों पर,
युग कर्दम से गढ़ती तुम नव मानव
भावी वैभव से दीपित कर अंतर!

सर्व काम की रचना कर मानवता
विविध युगों के स्वर्ण पात्र कर संचित
विभु विकसित हो रही विश्व संस्कृति में
भू जीवन शोभा मंगल कर अर्जित!

धधक रहा चिद् पावक की लपटों में
जन मानस का निश्चेतन तम सागर,
मर्यादित कृत्रिम जीवन की सीमा में
अमर निखरते भी आकार धरा पर!

फैला रहा मैं राग चेतना भू की
सुलग रही जीवन शोभा में गुंठन
शुभारंभ ज्वालाओं में जल उठता
उपचेतन मन का छाया तम गुंठन!

ग्रह पथ के नर ईश्वर के छोरों पर
स्वर्ण सेतु, शत रत्न ज्योति स्मित निर्मित
लोक मुक्ति ही मुक्ति धर्म नव युग जन
नव मति में विज्ञान ज्ञान संयोजित!

निखर रहा नव स्वर्ग मर्त्य भू रज से
श्री शोभा महिमा मंगल में मूर्तित
उतर रही निःस्वर सूक्ष्म ऊर्जाएँ
धाम का वातायन अवनत मुख दीपित!

कैसे व्यक्त करूँ शब्दों के मन से
जिस प्रकाश से ज्योतित कवि अंतर,
टूट रही भावी विद्युत् पर्वत सी
फूट रहे ध्वनियों में स्वर्गिक निर्झर!

स्वस्ति सत्य द्रष्टा ऋषि गौरी बोली
मुनि की उर तंत्री के कँपा रहे स्वर,
श्री प्रारंभ सुन भावी जीवन मंगल
कवि का स्वप्न सफल हो ईश्वर दे वर!

भू जीवन ईश्वर इच्छा का दर्पण,
जिसे समझने में असमर्थ मनुज मन
उद्गत उर में घुलता प्रभु का आशय
ज्ञात सुकवियों को रहस्य चिर गोपन!

सहज बुद्धि में भी होता वह बिम्बित
नहीं अपेक्षित उसे तर्क विश्लेषण
यदि यथार्थ को भी निरखें सन्तत जन
खोल सकेंगे वे हिरण्मय गुण्ठन!

निर्मम जड़ सीमा—जीवन मधुर तन
शाश्वत उसकी भव गति का अविदित क्रम
जीवों को रहना भिन्न सुख सुगम पर
जन्म मरण ध्रुव सत्य न कल्पित मति भ्रम!

आत्मधाम की दुर्निवार स्थितियों में
जग समाज रचना रहता हित वांछित
अचिर काल लहरों पर नींव उठा कर
अमर भवन आत्मा का करना स्थापित!

देह अनित्य अनंत पीढ़ियों का क्रम
जीव अमरता का विधि शिल्प निरर्गल
मानव में जीवन विकास की परिणति
सीमा में करती असीम को धारण!

राग द्वेष, हिंसा स्पर्द्धा व वैसे
जन भू नीड़ बना सकते सब तम हर,
घृणा क्रोध मद स्वार्थ लोभ तृष्णा भय
निम्न योनि वृत्तियाँ मनुज के भीतर!

देश जाति के ऊपर उठ जन मन का
मानवता करती धरती पर स्थापित
मनुज प्रीति कर स्थापित मुक्ति हित अर्जित
लोक साम्य रच विश्व ऐक्य के वांछित!

मूल सत्य पर — जिसे भूल कर मानव
महानाश लाएगा जन धरती पर
वस्तु दृष्टि से सुख समृद्धि सँजो कर
अमृत स्निग्ध आस्था से तम को हर!

तिमिर विश्व इतिहास रिक्त छाया सा
विगत प्रयोजन पड़ा प्रगत चरणों पर,
युग कर्दम से गढ़ती तुम नव मानव
भावी वैभव से दीपित कर अंतर!

धर्म काम की रचना कर मानवता
विविध युगों के स्वर्ण पाश कर खंडित,
दिग् विकसित हो रही विश्व संस्कृति में
भू जीवन शोभा मंगल कर मंडित!

धधक रहा चिद् पावक की लपटों में
जन मानस का निश्चेतन तम सागर,
मार्जित इंद्रिय जीवन की शोभा में
अमर निखरते श्री साकार धरा पर!

देखा रहा मैं राम चेतना भू की
सुलग रही जीवन शोभा में नूतन
शुभ्रालोक ज्वालाओं में जल उठता
उपचेतन मन का छाया तम गुंठन!

गृह पर के नर ईश्वर के छोरों पर
स्वर्ण सेतु, शत रत्न ज्योति स्मित निर्मित
लोक मुक्ति ही मुक्ति धर्म नव पूजन
नव गति में विज्ञान ज्ञान संयोजित!

निखर रहा नव स्वर्ग मर्त्य-भू रज से
श्री शोभा महिमा मंगल में मूर्तित
उतर रहीं निःस्वर सहस्र प्रभाएँ
क्षण का वातायन शाश्वत मुख दीपित!

कैसे व्यक्त करूँ शब्दों के मन से
दिव्य प्रकाश से भावोभित कवि अंतर,
टूट रही भावी विद्युत् पर्वत सी
फूट रहे शिखरों से स्वर्णिक निर्झर!

स्वस्ति सत्य द्रष्टा महर्षि योगी भोगी
भूमि की उर वंशी के कँपा यह स्वर,
मैं प्रसन्न युग भावी जीवन मंगल
कवि का स्वप्न सफल हो ईश्वर दें वर!

भू जीवन ईश्वर इच्छा का दर्पण
जिसे समझने में अकृतार्थ मनुज मन
तद्गत उर में खुलता प्रभु का आशय
ज्ञात सुकृतियों को रहस्य चिर गोपन!

सहज बुद्धि में भी होता वह बिम्बित
नहीं अपेक्षित उसे तर्क विश्लेषण
यदि यथार्थ का भी निरखें परखें जन
खोल सकेंगे वे हिरण्मय गुंठन!

निर्मम जड़ सीमा—जीवन मधुर क्षण
शाश्वत उसकी भव गति का अविच्छिन्न क्रम
जीवों को रहना भिन्न युग भूतल पर
जन्म मरण ध्रुव सत्य न कल्पित मति भ्रम!

मरणधाम की दुर्निवार स्थितियों में
जन समाज रचना रहा हित वांछित
अचिर काल लहरों पर नींव उठा कर
अमर भवन आत्मा का करना स्थापित!

देह अनित्य अनंत पीढ़ियों का क्रम
जीव अमरता का विधि शिल्प निदर्शन
मानव में जीवन विकास की परिणति
सीमा में करती असीम को धारण!

राग द्वेष हिंसा स्पर्द्धा व कैसे
जन भू नीड़ बना सकते भव तम हर,
घृणा क्रोध मद स्वार्थ लोभ तृष्णा भय
निम्न योनि वृत्तियाँ मनुज के भीतर!

देश जाति से ऊपर उठ जन मन को
मानवता करनी धरती पर स्थापित
मनुज प्रीति कर व्यक्ति मुक्ति हित अर्जित
लोक साम्य रच विश्व ऐक्य के साधित!

भू न माया यह—जिस भू पर मानव
महानाश लाएगा जन धरती पर
वस्तु दृष्टि से पुण्य समृद्धि संचित कर
अमृत निष्ठा आत्मा न तम का हर!

पूर्ण शांति आनन्द मुक्ति उनके हित
जिनकी अंतर आस्था प्रभु को अर्पित
महच्छक्ति चिद् ज्योति भूति दीपित वे
उन्हें न छूते मृत्यु, कलुष तम किंचित् !

जो अपूर्ण अस्थिर अद्भुत जीवन को
विधि विधान के प्रति निज मन में शंकित
धर्म पतित वे लघु सुख स्वार्थों में रत
देख न पाते जग में प्रभु मुख बिम्बित !

समस्त जीवन के दुस्तर संकट क्षण
उनकी कृपा ही करती प्रति पग प्रशमित
ऊर्ध्व रीढ़ की सम्भ सिद्ध समता यह
तमस मृत्यु से निकले ज्योति अमृत हित !

यही सत्य अब आशा-मानव को
स्वर्ग वह्नि लानी भूतल पर निश्चित
जन समाज के सामूहिक जीवन की
नव वेदिका पर कर उसे प्रतिष्ठित !

धर्म हीन अब व्यक्ति पृथक से खोजे
पीढ़ी पीढ़ी अमृत तत्व अपने हित
स्वर्ग ज्योति जब स्वयं रचें भू पर जन—
विधि विधान में यही ध्येय अंतर्हित !

ज्योति तिमिर, सुख दुख गुंफित अब जीवन
पूर्ण रहस्य-कला विधि की निःसंशय
अमरों की शाश्वत समरस सुख की स्थिति
मर्म सुरभि ऐश्वर्य शून्य मुझको अब !

प्रीति प्रतीति अमित हो अब रज भू मन
मर्त्य धाम हो अमर लोक से सुंदर,
दुस्सह करुणा, ममता सहपीड़ा की
गहराई का कहाँ स्वर्ग में उत्तर !

सृष्टि महत् सोपान-पंथ अब अविदित
यह विकास पथ मनु उर में भव-विस्मय !
भावी के स्वर्णिम गुंठन में विधि का
अंतर्हित जीवन का स्वर्गिक आशय !

अहंमान में रहते जो निज में रत
क्लैब नीच लघु स्वार्थों में उठ गिर कर
भू मंगल के द्रोही वे बन वंचक
द्वेष व्यग्र शंकित चित नर मृग भू पर!

मंगलमय की विधि को कर श्रद्धार्पण
भू रचना श्रम में रत अविरत जो जन
भावी स्वर्गों के स्वर्णिम वैभव से
रहस गुंजरित रहता नित उनका मन!

ज्वलत प्रभाता में नव नृत्य निरत हर
हरित हर्ष बरसाते भू पर उर्वर
स्वर्ण गहनताओं में चिर जाग्रत हरि
मर्म वेणु में भरते सुधा सचित स्वर!

जीवन के अंतस्तम शतदल में स्मित
शुभ्र शांति भरती रहती उर के व्रण
ज्योति प्रीति आनंद-अमृत स्पर्शों से
स्वप्न मंजरित रखते जन भू का मन!

कविमनीषी का चिन्मय सनातन
जीवन दर्शन का करना शुभ अर्जन
श्री सुषमा सम महिमा स्वर गरिमा से
कुसुमित कूजित रखना जन भू प्रांगण!

मुग्ध शांति में मज्जित कर भू उर युग
कवि को रचना तत्व सिखाना जन को
मनोगुहा में आया भावी मानव —
उसे जगाना जड़ में स्थित चेतन का!

जाति वर्ग के घृणा द्वेष का तम हर
भेद बुद्धि रत स्वार्थ साथ अतिक्रम कर
कवि मन का दृढ़ आलोक जगत का
शांति प्रीति आनंद ज्योति मंगलकर!

अधिमानस की चाप धनुषा का दृग
उत्स अरुण ज्वाला का भा भू पर
अंतस्तल में भरना नव संजीवन
मानव उर का पावक रम जा आकर!

स्वर्गिक क्षितिजों के अक्षय वैभव से
भव्य सृष्टि कवि रचे मर्मस्पृक् नूतन,
भाव राशि में चिदानंद शोभा भर,
भावी मानवता हित रच उर दर्पण!

प्राणोदधि में उगे स्फटिक शिखरों पर
युग प्रभात फहराता स्वर्णिम केतन —
असत् तमस पर सत्य ज्योति की जय का
कवि को गाना भू विकास पथ गायन!

प्रीति नीड़ होगा न मर्म जग जब तक
भेद मुक्त उर में न खिलेगा चित् वर
कवि मन के भावना ज्वार में उठकर
रस निमग्न होगा न वर्णों का अंतर!

तुम्हें सौंपती मां यह कनक अमृत घट
नर नारी के रस मंगल से पूरित
प्रकृति पुरुष की शुभ्र प्रीति का पावक
सावधान बन जाय न विष जन भू हित!

नया प्रेम चित शोभा बाँहों में भर
रस वैभव मज्जित कर देगा अंतर,
तन्मय कर देगा चिन्मय आलिंगन
शांति ज्योति आनंद बरसेंगे झर झर!

ऐसी उन्मद आह्लादक रस धारा
भू पर लोटी नहीं स्वर्ग से प्रेरित
यह प्रवाह प्लावन — पावक सागर से
निखरेगी मुग्धा भू उर यौवन स्मित!

बोल मुनि भी अमृत दुग्ध तुम उर में
भरती आतीं किस निःस्वर अंबर से
तिमिर ज्योति दुख हर्ष कलुष बनता शुभ
चंद्र पूर्ण भू स्वर्ग — रहस किस वर से!

देवि तुम्हारे सित पवि प्रिय पद छूकर
बनता निष्क्रिय जीवन जग शिव चेतन
मृत्यु शून्य स रचती तुम भव जीवन
सुधा ग्यान सी भर अंतर में गोपन!

परम प्रभा ही शुभ्र चेतना जिसकी
हेम गौर पावनता ही शोभा तन
प्रमित दया स्वर्गिक स्वभाव, श्रेयस् मन
सुजन हर्ष ही अंतर्वृत्ति चिरंतन! —

सहज प्रसन्न जननि वह मन को दें वर,
बरसे भी शोभा मंगल पग पग पर
महत् सत्य से प्रेरित हो मानव उर
धरा स्वर्ग हो सुंदर से सुंदरतर!

कहा तथास्तु! उमा ने मंद स्मित मुग्ध
बोली वह सीता से स्नेह विनय नत —
विश्व चेतना तुम प्रति युग में विकसित
नए रूप का करता भाई स्वागत!

शुभ्र रश्मि सतरंग श्री से एकान्वित
व्यक्ताव्यक्त अभिन्न अभेद परस्पर,
तुम अंत स्थित सत्य व्याप्त भुवनों में
मैं अंत केंद्रित शिव ज्योति परात्पर!

धरा चेतना के शिखरों की ऊषा
नित शृंगों से उतर हरित धरती पर
स्वर्ग मर्त्य की भेद तिमिर की खाई
भर दोगी तुम — स्वर्णिम निर्झर सी झर!

प्राणों की मधु भूमि छोड़ कर भू जन
पंख खोल मन के उड़ चिद् अंबर में
कहाँ खोजते मुक्ति? मुक्त चिन्मय शिव
स्वेच्छा से रहते जड़ मृण्मय घर में!

मुनि सरमन ऊर्मिला धरा में आकर
खोलें जन मन में प्रकाश वातायन
शुभ्र शांति में रचना मंगल में रत
सार्थक हो भू पर सामूहिक जीवन!

धन्य धन्य कह सब उन्मथित मन
हुआ धराम्बर में मग्न अंतर्गगन —
कहाँ ऊर्मि सम्भ्रम — ध्वनि गीता गौरी?
धरा मात! — मन का स्मृति पर उद्घाटन!

स्वर्णिक सिद्धियों के अक्षय वैभव से
शब्द सृष्टि कवि रच मर्मस्पृक् नूतन
भाव राशि में चिदानंद शोभा भर,
भावी मानवता हित रच उर दर्पण!

प्राणोदधि में उगे स्फटिक शिखरों पर
युग प्रभात फहराता स्वर्णिम केतन —
असत् तमस पर सत्य ज्योति की जय का
कवि को माना भू विकास पथ गायन!

प्रीति भीरु होगा न मर्म जन जब तक
भेद मुक्त उर में न खिलेगा चित् स्वर,
कवि मन के भावना ज्वार में उठकर
रस निमग्न होगा न जनों का अंतर!

तुम्हें सौंपती मां यह कनक अमृत घट
भर नारी के रस मंगल से पूरित
प्रकृति पुरुष की शुभ्र प्रीति का पावक
सावधान बन जाय न विष बन भू हित!

नया प्रेम शिव शोभा बाँहों में भर
रस वैभव मज्जित कर दया अंतर
तन्मय कर देगा चिन्मय आलिंगन
शांति ज्योति आनंद पड़ेंगे झर झर!

ऐसी उन्मद आह्लादक रस धारा
भू पर लोटी नहीं स्वर्ग से प्रेरित
यह प्रकाश प्लावन — पावक सागर से
निकलेगी मुग्धा भू उर यौवन स्मित!

ध्यान मुनि का अमृत पुण्य तुम उर में
भरती ध्यान शिखर निःस्वर अंबर से
तिमिर ज्योति सुख हर्ष असुख समता शुभ
पंक पूर्ण भू स्वर्ग — प्रसून खिला कर स!

देव तुम्हारे सित अति प्रिय पद छूकर
समता निष्क्रिय जीवन मन शिव चेतन
मृत्यु शून्य से रचती तुम नव जीवन
सुधा स्रोत भी भर अंतर में गोपन!

परम प्रभा ही शुभ्र चेतना जिसकी
हेम नीर पावनता ही शोभा तन
अमित दया स्वर्गिक स्वभाव, श्रेयस् मन
सृजन रूप ही अंतर्वृत्ति चिरंतन! —

सहज प्रसन्न जननि यह जग को दें वर,
बरसे श्री शोभा मंगल पग पग पर,
महत् सत्य से प्रेरित हो मानव उर,
धरा स्वर्ग हो सुंदर से सुंदरतर!

कहा तथास्तु! उमा ने मंद स्मित मुख
बोली वह सीता से स्नेह विनय नत —
विश्व चेतना तुम प्रति युग में विकसित
नए रूप का करती आई स्वागत!

शुभ्र रश्मि सतरंग थी स एकान्वित
व्यक्ताव्यक्त अभिन्न अभेद परस्पर
तुम अंत स्थित सत्य व्याप्त भुवनों में
मैं अंत केन्द्रित शिव ज्योति परात्पर!

धरा चेतना के शिखरों की ऊषा
शिव शृंगों से उतर हरित धरती पर
स्वर्ग मर्त्य की गत तिमिर की खाई
भर दोगी तुम — स्वर्णिम निर्झर सी भर!

प्राणों की मधु भूमि छोड़ कर भू जन
पंच प्राण मन के उड़ चिद् अंबर में
कहाँ खोजते मुक्ति? मुक्त चिन्मय शिव
स्वेच्छा से रहते जड़ मृण्मय घर में!

मुनि लक्ष्मण ऊर्मिला धरा में आकर
खोलें जन मन में प्रकाश वातायन
शुभ्र शांति में रचना मगन वें रत
धार्मिक हो भू पर सामूहिक जीवन!

धन्य धन्य बोले सब उर्मिल मन
हुआ मनोहर में मन अंतर्मंथन —
कहाँ ऊर्मि सम्भव — भक्ति गीता गौरी?
धरा मात! — वह था स्मृति पट उद्घाटन!

मंगल प्रद हो जन भू के जीवन हित
संवर्धन का यह पावन आरोहण,
भूत भविष्यत् के ज्योतिःस्फुलिंगों पर
बने पुण्य स्मृति स्वर्ण सेतु मन मोहन।

भारत भू का ही यह नहीं अतीत
एक शक्ति से भू स्वर्लोक प्रणीत!
एक हो रहा धन्य आज भव ग्राम
सत्य एक ही – विविध रूप गुण नाम!

जीवन द्वार

१ युग भू
२ ग्राम शिविर
३ मुक्ति पथ

युग-भू

भ्रमित शून्य दिक् पथ पर
रह सृष्टि छवि अविरत
काल शूलि गति जिस पर
धूपछाँह भरती नित !

नव युग जन्म जगत हित शुभ हो
भू की प्रसव व्यथा अब भागी
स्वर्ण शिशु को मानव पलने में
जिला जिला स्तोत्र सुख पाया !
युग जीवन के कथा सूत्र पर
पोथी बाँची की रस बनी
गूँथा जग मन के स्वप्ना में
धरा स्वर्ग संस्कृति मणि श्रेणी !

जाने कौन सुर जिनमें युग,
कितनी घड़ियाँ वर्ष मास दिन,
तुहिन मधु शरद के पतझर
रंग गंध रज के मधु पल-छिन !
ग्रीष्म रज धूप सुरधनु पावस
चन्द्रमुखी रस शरद पथ मन —
देख धूली नव में जन भू बढ़
नव भारत उन्माद पवन रण !

शेष चुकी यह घोर ह्रास युग
दैन्य दासता–दस्यु आक्रमण
संस्कृतियों का बृहत् समन्वय
जाति पाँतियों का सम्मिश्रण।
टूट चुका गढ़ राम राज्य का
स्वप्न–सृष्टि हत कृषि युग दर्शन
नव जग भू जीवन प्रतिमा से
शोभित अब जन मन सिंहासन।

मानव जीवी थे भू पर था
जीवन मूल्यों की नींवों पर
संस्कृतियों के दुर्ग गढ़े बहु
भू खंडों देशों में बँट कर।–
देख विविध युग पट परिवर्तन
कहाँ आज पहुँचा परमेश नर?
क्या होगा अब भारत भू पर,
आगामी आओ शत संवत्सर!

जग समृद्ध कल्पित भारत भू
जिसके तट पर लोक जागरण
उतर रहा स्वर्णिम प्रभात सा–
भरती उर को आत्मा पीयम।
युग संध्या में खोज सकोगी
कहाँ ऊर्मिमा कृषि कवि सम्भव?
जन्म गया गत जब मानस पट
बदल गया गत जग भू जीवन।

परम शांति के शुभ्र मुकुर में
परा प्रकृति थी ही प्रतिबिम्बित
नील पंक में हरित धरित्री
मौन मधुरिमा में ही मज्जित!
प्रकृति रहस्यमयी लेटी हो—
चिति विराट्–दिक्पट पर चित्रित
तिमिर मुक्त भू मुक्त यौवना
अर्ध अवगुंठित हरती मन चित!

पीत वर्ण रेशमी हिमातप
अंगों की आभा सा कोमल
साँसों में रज गंध समीरण
छिपता चंचल बन छायांचल!
मरते पांडुर तरुदल मर्मर
धूलि धूसरित रिक्त दिगंतर
ताम्र वसन सा रश्मि हीन रवि
वन गंधों से आकुल अंतर!

रजत कुहास पट में सोया
आम्र लोध्र किंशुक शिरीष वन
स्वप्न देखता स्वर्णिम मधु के
मूँदे तंद्रिल विस्मय लोचन!
जगा तट–कूप उठता बक धर
ठिठुरा सा स्तूप बौधि पंख घन
उड़ने को छटपटा चोंच सा
सटा मूक नेत्रों पर पावन!

सार चेतना सी ही गई
भांग वसंत टिटहरी जस धारा–
मृन्मुख के ग्राम राज्य का
जीवन माझी सा पथ हारा!
परम्परागत मध्य युगों की
वैभिन्न संचित धाग आदि पथ
रुग्ण नगरों में बह बर्तों
मृग तृष्णा मिथ्या माया जप!

जीव

घोर असुंदर था सुंदरपुर
दैन्य अविद्या का जड़ पंजर,
रूढ़ि रीतियों का निष्क्रिय गढ़
विगत सभ्यता का ध्रुव खँडहर!
झाड़ फूँस के नम्र घरौंदे
भग्न रीढ़ रेंगते भीत जन
राग द्वेष भय तृषा कलह में
घबराए दुख से भारी मन!

अजगर सा कुंडलक मार कर
घेरे हो नैराश्य अमंगल
भाग्य भरोसे बैठा जीवन –
सृष्टि प्रयोजन लगता निष्फल!
सुंदरपुर क्या था युग भू की
महा ह्रास का छाया दिग् भ्रम
मूक प्रतीक्षा रत जन मन में
पौ फटने से पहिले का तम!

निश्चेतन उर कक्ष धरा का
जहाँ न पैठ हो प्रकाश कर,
नव जीवन स्पंदन से वंचित
जड़ निष्प्राण निर्जीव अनुर्वर!
तट के भीटे पर, तरुवन में
निभृत कुंज था धूपछाँह स्मित
स्वप्न नीड़ युग द्रष्टा पिक का
प्रेम नाम वंशी जन प्रचलित!

तरुण मदन साधना निरत हो
युग का विषम कलुष विष पीकर,
अमृत कला धर मन भाल पर
भस्म हीन हो नव युग शंकर!
जन शिल्पी वह, जड़ता भू मन
रहे बनाने नव युग दर्पण –
मन क्या था गत संस्कारों के
अवचेतन तम का जड़ पाहन!

धरा गर्भ का नरक कुंड था
सुरपुर जनपद विपन्न मन
भू दारिद्र्य का दुर्गम गढ़ —
विश्व दुर्गति के प्रति विरक्त जन!
आम्र मंजरी की छाया में
पिकी कूक देती आमंत्रण
प्रकृति गंध संदेश भेजकर
मधु गोपन करती संभाषण!

जनमन मन का मूक व्यथा भर
कवि उर में करता कर्षण घन
मधु स्वेद रज पट में लिपटा
मानव भावी का था भाजन!
उस दृष्ट का अंध गर्त से
खींच धूम जन मन के ऊपर
प्राण पंक से भाव वृंत पर
मानस कमल खिलाना भू पर!

मन के पुंटे से जीवन की
बँधी धेनु था ग्राम प्राणधन
मुक्त चेतना के प्रांगण में
उसका नव विधि करना पोषण!
शोधन करता कौन चेतना
नील व्योम में छाई भास्वर
कौन चलाता अग्नि पवन घन,
कौन धरा धन देती निर्भर?

किसकी हँसी? अमृत घट सा शशि
स्वप्न डोर में लटका ऊपर
धूमिल नील मणि भर — नव शिशु रवि
गिरता स्मित-मुख स्वर्ण हास्य भर!
गिरि शिखरों पर उषा उतरती
पहन पावक चेतन सुंदर,
जुगनू दीप लिए घाटी में
गुनगुन बातें करते निर्झर!

भार असुंदर था सुंदरपुर
दैन्य अविद्या का जड़ पंजर,
रूढ़ि रीतियों का निर्मम गढ़
विगत सभ्यता का हत खँडहर!
झाड़ फूँस के भग्न घरौंदे
भग्न नीड़ रेंगते भीत जन
राग द्वेष भय घृणा कलह में
घबराए दुख से भारी मन!

अजगर सा गुंजलक मार कर
घेरे हो नैराश्य अमंगल
भाग्य भरोसे बैठा जीवन –
सृष्टि प्रयोजन लगता निष्फल!
सुंदरपुर क्या था युग भू की
महा ह्रास का छाया दिङ् भ्रम
मूक प्रतीक्षा रत जन मन में
पौ फटने से पहिले का तम!

निश्चेतन उर कक्ष धरा का
जहाँ न पैठ हो प्रकाश कर,
नव जीवन स्पंदन से वंचित
जड़ निश्चल निर्जीव अनुर्वर!
तट के भीटे पर, तरुवन में
निभृत कुंज था धूपछाँह स्मित
स्वप्न नीड़ युग द्रष्टा पिक का
प्रेम गान वंशी जग प्रचलित!

तरुण मदन साधना निरत हो
युग का विषम कलुष विष पीकर,
अमृत कला भर नव भाल पर
भस्म हीन हो नव युग शंकर!
जन जिसमें वह गढ़ता भू मन
उसे बनाने नव युग दर्पण –
मन क्या था गत संस्कारों के
अवचेतन तम का जड़ पाहन!

धरा गर्भ का मरम बूँद था
सुदूरपुर जनपद विपण्ण मन
भू दारिद्र्यों का दुर्गम गढ़ —
निज दुर्मति के प्रति विरक्त मन !
आम्र मंजरी की छाया में
पिकी कूक देती मर्मतम
प्रकृति गंध संदेश मेघवर
मधु गायन करती संभाषण !

उन्मन मन का मूक व्यथा भर
कवि उर में करता कर्कश व्रण
मधु स्वेद रज पग में लिपटा
मानव भावी का था मानस !
उगे इष्ट या अंध गर्त में
दीप भूम जन मन के ऊपर
प्राण पंक में भाव वृंत पर
मानस कमल खिलाता भू पर !

मन के खूँटे से जीवन की
बँधी धनु का क्षोभ प्राणपण
मुक्त चेतना के प्रांगण में
उसका नव विधि करता पालन !
सोचा करता कौन चलता
नील व्योम में छाई भास्वर
कौन बनाता धूमिल पवन जब
कौन धरा जल लेटी निस्स्वर ?

खिसकी कला ? प्रसून पट सा रंगि
स्वप्न डोर में लटका ऊपर
धूमिल नील मणि सर,—नव शिशु रवि
निरखा स्मित मुख स्वर्ण हास्य भर !
फिर शिखरों पर उषा उतरती
पहन पावन वसन सुंदर
जुगनू दीप लिया घाटी में
गुरगुर बातें करते निस्स्वर !

अंधकार किसका अवगुण्ठन ?
क्या प्रकाश किसका मुख दर्पण ?
गूढ़ भाव में बँधे दीखते
उसको ज्योति तमस जड़ चेतन !
टीले से छट बहती टलमल
नील वसन बन धारा निर्मल
पूस माघ के सूर्य बिम्ब पर
डाल स्नेह छाया का आँचल !

वह भीटे से उतर, ध्यान रत
आता सलिल पुलिन पर पावन
बहते जल से सूक्ष्म प्रेरणा
पाता उसका भाव प्रवण मन !
तट पर रहते सोन मीनचर,
कंपी करते बक कर्मंपी पर,
कौड़िल्ला शर सा गिर जल में
उड़ता लिए चोंच में भमभर !

फिरते वहाँ पपीहा फर फर
कलरव करते कोक सीचपर,
उसको छुटपन ही से भाते
मीन फूल भाते खग सस्वर !
पाह सूँड़ पव पूँछ मार कर
वारि फुहार उड़ाते ऊपर,
शुभ्र पुलक से भर आता मन
स्वप्न सृष्टि में डूब मनोहर !

बहते जग जल की उज्ज्वलता
उसके उर को करती चंचल
खोया करता वह प्रकाशमय
सक्रिय जीवन के चेतन पल !
वह उसका भीतर का मन था
जग में रत रहता वह बाहर
ताम्र पीत बन तरुओं के दल
हिम विनीत जब पड़ते मरमर !

देखा पंजर ऋतु विटपा पर
टँगे नीड़ हिम लगत सुंदर,
जाड़े स कँप मुआ कौवा
खोसा करता बैठ ठूँठ पर।
तब कोटर स कूद गिलहरी
फिरती बन छाया मे डर डर
उस चील की पकड़ म गई
जान बची की पूँछ गुआ कर।

सहसा सम्मुख बहुत जग में
कांपी लम्बी चलती छाया
बगी म पीछे मुड़ देखा
उसका स्नेह सुआ पा आया!
कौन हरित ? यह-संगी म रव
देखा उसका चिन्तातुर मुग्ध –
जग में संध्या की छाया सा
गिरता पा मुग्ध पर नीरव हुए!

पत्तागण दिनमणि की किरणें
ध्वनि स्तम्भ सी जग में धँस कर
हरि के उर के तल्प घूम था
वाणी सी दमी की मि रवर!
इमर भूरे भयों क पर
छितरे प धानी रंग नभ पर
बिखरें कँपुम - स जग पर
रंग ढे थे अंतिम रवि कर!

हिम सध्या घन नारवता में
हँसनी की महुरी हो प्रतिगान
कवि के उर में उतर गयी थी
युग संध्या गुन रुपमुक का स्पन्दन!
मानव ज्ञान समय ना सब
मत अंग हो सहना संभव?
माया बंदी म नित मन में
भाव बिना विना " जा रब!

पूछा क्यों कैसा जी है, हरि,
मुख पर कैसे घिर मौन घन?
तुम पर दुख कातर छटपन से
हृत हो उठा कौन छिपा व्रण?
तुम सब पार गए थे कोई
घटना वहाँ घटी क्या नूतन?
कहा सुनी या हुई किसी से
क्या इस मूक व्यथा का कारण?

कैसी बीत रही लोगों पर
कैसा नाच नचाता जीवन?
भाग्य भरोसे बैठे सब या
कुछ करने की सोच रहे जन?
बोला हरि, सूरज के नीचे
नया कहाँ क्या होता भाई,
भू की दुख दारिद्र्य निशा ही
मेरे मृत मुख पर भी छाई!

वही नया बस बिना श्रम धन
जीवित सदियों के शव जनगण
बिना वस्त्र लज्जा में लिपटे
ढँके नग्न मा बहिनों के तन!
स्नेही हो तुम सुहृद सहायक
तुमसे कुछ भी भेद न गोपन
वृद्ध पिता माता के दुख का
मैं चिर बनता जाता कारण!

यह सच है उनका इकलौता
मैं ही कुल का मात्र वंशधर
छोटी मेरी छाया सी है
विमल न रहती मुझसे क्षण भर!
पितृ साम्य करते जब मुझको
मैं पाँवों में बेड़ी डालूँ
कहते मा तुम बेल बढ़ाओ
पितृ ऋण दो — मा मैं विष खा लूँ!

कहते पढ़ा लिखा कर तुमने
फिरा दिया छोटी का भी सिर,
बखारी रखे सयानी बप्पा
कुल मर्यादा कहाँ रही फिर!
कहते खून पसीना करके
तुम्हें उच्च शिक्षा दिलवाई,
कुसांगार जमने तुम बिधा
गाड़ भिन कुछ काम न आई!

मा रानी बस इतना कर दे
जिसम मेरे प्राण सिराएँ,
सिरी ब्याह की हामी भर ले
तुरत हाथ पीले हो जाएँ!
ठाकुर ने धन्न मासी बक दी
उठा नहीं पाते बप्पा सिर
भेष पड़ा पिछला मगान कर
खास खेत में पड़ता फिर फिर!

छोटी को छेड़ा मुन्दर ने
उसे परदेसी पा पनघट पर
मा कहती मैं डूब मरूँगी
सोच लाज की जिसे नहीं डर!
मुम जानते यंगी तुम भी
शिष्य तुम्हारा छोटा भाई
धन समाज सेवा कैम हो
घर ही में जब छिड़ी लड़ाई!

पीड़ा न जिमन हों पग पग
जब धन निर्धन दुग क मीच
तब आँसू के धारे जम ग
बंग बस भाई क्या सीख!
नाम रूप मय पूना मा रत
मु मु में बैठ मद मन
परणागगार निवार क गुण
नहीं रीतिमा क चुपो बम!

पले अंध विश्वासों में मत
बने कूप मण्डूक सनातन
भिन्न सामाजिक जीवन के प्रति
विरत, — अँधेरे घर के आँगन!
सुलभ नहीं भरपेट अन्न कन
फटे देह पर चिथड़े लत्ते
जाड़े में हिम हड्डी बजती
कँपते तन ज्यों पीले पत्ते!

पर निन्दा ही रुचि का भोजन
कलह स्वभाव कुटिल मति भूषण
अजिर पंक दुर्गंध कृमि भरे,
व्यर्थ भयावह स्वप्न सा जीवन!
भाग्य दोष बतलाते बुध जन
पूर्व जन्म के कर्मों का फल
कैसे मुक्ति मिले भव दुख से
कहाँ राम जो निर्बल के बल!

मूक निरक्षरता के पत्थर,
बंजर भू पर कहाँ चले हम?
रूढ़ियों का पर्वत सिर पर,
भला समस्या का हो क्या हल!
ऐरावत सा देश हमारा
दैव कोप वश हत बल होकर
पराधीनता के दलदल में
फँसा हुआ निज गरिमा खोकर!

अन्य देश भी इस पृथ्वी पर,
पढ़ता जिनकी गौरव गाथा
दुख दैन्य के घृणित बोझ से
झुक जाता लज्जावश माथा!
क्या विधान इसमें दुर्विधि का
थाह नहीं पाता उन्मन मन
महा पुरुष जनमे जिस भू पर
वहीं नरक सम बिखरे प्रतिक्षण!

कोटि चरण कर, — सब निरस्त्र जन,
पशु बाधा से पीड़ित हों जन,
युद्ध मही का रण क्षेत्र उर,
क्या इस महा प्रगति का कारण?
दास सनातनता के मन में
दास रूढ़ियों के हम घर में
दास युगों से स्वर्ग धरा यह
सर्व काम जीवन संगर में!

प्रथम सभ्यता का प्रभात जो
आई जन भू के जीवन में
महा रात्रि का अंधकार अब
वास किए उसके आँगन में!
परिभव का इतिहास हमारा
जन जीवन का हो क्या उत्तर?
जिस ईश्वर के पूजक हम सब
वह निःस्वर निर्मम जड़ पत्थर!

आत्मा से लघु यत्न करें क्या
पर्वत सा सदियों का संकट
घोर पार तम-मिश्र गरजता
नहीं सूझता आशा का तट!
बंधी न मम स्पंदित दृष्टि में
दया हरि की दुख से कातर
उसे सान्त्वना दे वचनों में
बोला एक हर भाव मुखर स्वर!

जब स्वदेश में प्राण मर्मी हों
धू-धू कर जलते हों सब पर
तब किसको निज दुखड़ा गाना
भाता? हरि तुम पर मेरा पर!
मानव की दुख क्या पुरातन
बर्बर स्थिति से हो पा बाहर
बना नहीं पाया अब तक निज
मन का जीवन स्वप्न धरा पर!

जाति पाँतियों में देशों में
वर्ग भेदियों में विभक्त जन
बाधक उनके योग क्षेम का
गत संस्कारों का बीता मग!
हँसते जहाँ प्रसूनों के पल
पत्रों के रंग बरसाते घन
पवन नाचता सरिता गाती
वहीं साम्य युत हो मानव जग!

भिन्न अन्य जीवों से मानव
उसके सुख दुख उस पर निर्भर,
हमें खोजने निज दुर्गति के
भौतिक नैतिक कारण दुस्तर!
प्रगतिशील मानव — विकास का
उसके भीतर गुप्त संचरण
सामूहिक जीवन रचना कर
तर सकते दुख सागर जनगण!

पर दुर्दम दासता पर्त में
गिरा देश हत चेत अधोमुख
पराधीन को सपने में भी
ठीक कहा हरि, सुलभ कहाँ सुख!
क्या व्यथा से विचलित चित नर
महत् कर्म करने में अक्षम
एक ध्येय पथ निज जिनका मन
उनको नहीं सताता दिग् भ्रम!

प्रथम देश स्वाधीन बन सके
यही परम हो लक्ष्य हमारा
फूँकें घूम जागरण शंख हम
जग स्वतन्त्रता का दे नारा!
मुक्त देश के संग ही होंगे
गाँव मुक्त गाँवों के संग जन
साथ कटेंगे सब के बंधन
होंगे संग ही कष्ट निवारण!

इस जातियों के जीवन में
आते ऐसे महत् क्रान्ति क्षण
जीर्ण सभ्यता के मग में जब
बहते जगता शापित चेतन !
पतझर यह नव बीज बो रहा
शिशिर प्रभंजन उड़ा जीर्ण दल
नग्न दैन्य पंजर में बन के
सोच रहा सोया मधु मगन !

आया तुम गंगा जल छूकर
जन मन का में पवित्र व्रत
हम स्वदेश हित जिएँ मरेंगे
जब तक हो स्वाधीन न भारत !
सुनते ही आह्वान देश का
प्रकट हुए जन नायक गांधी
भारत ऐंधी हुआ पछुआ भी
बहने का मन पागल आँधी !

लिए महिमा पूर्ण कवच वह
चढ़ सत्य का शीष निर्भय
स्फटिक शुभ्र स्वर में पुकारते
जगता धरती पर भगवान्य !
जाग उठी माई जन धरणी
लोट रही धूलि - पथ चरणों पर,
मौन भंग कर गूँज उठे गिरि,
गरज उठे भूप भू मंदर !

बरबस सजा मन्द सिन्धु जब
निकल पड़ विपदा में अनन्त
बढ़ते धर्मान्ध बर्बर सागर पर,
प्रतिध्वनित पुर पथ गृह प्राङ्गण !
दौड़ उठा भूकम्प धरा पर
उमड़ उठी भावना के घन
झनकार स्वरों में गाता
झंकार भरता जग दर्शन !

की

टूट रहा अन्याय वज्र सा
अग्नि मुष्टि हो रक्त लौह घन
मृषा सत्य में, दम्भ विनय में,
घृणित न्याय में छिपा मृत्यु रण!
सुनो महात्मा गांधी की जय
गुंजाते भूमि भू रव कण
भारत का ही यह न मुक्ति रण
विश्व मुक्ति का आया शुभ क्षण!

आत्म त्याग की यज्ञ भूमि यह
अन्ध स्वार्थ रत भू संघर्षण
यज्ञों से पर दमित धरा अब
सत्य पंथ नव करती धारण!
स्वर्ण पूत युग संत नीतिविद्
भारत के देदीप्य तपोधन
ऋषियों की साधना सिद्धि वह
आत्मा के प्रतिनिधि तेजोज्ज्वल!

संस्कृति के नवनीत त्याग की
मूर्ति अहिंसा ज्योति सत्य व्रत
लोक पुरुष स्थितप्रज्ञ स्नेह घन
युग नायक निष्काम कर्म रत!
वज्र अस्थि तप दृढ़ तन पंजर
अग्नि वर्ण त्वच मंडित भास्वर,
शील शुभ्र देवोपम विग्रह,
मेरु शिखर से चलते भू पर!

उन्नत मन वन देवदारु-से
स्वर्ग छत्र शिर पर तारक नभ
सौम्य आस्य उन्मुक्त हास्यमय
प्रातः रवि-सा स्निग्ध स्वर्ण प्रभ!
सत्याग्रह धृत-अस्त्र छोड़ते
यह सशक्त साम्राज्यवाद पर,
भस्मासुर पृथ्वी को जिसने
चूस लिया धन-गो को दुह कर!

रक्तहीन व्रण करता उर में
दिव्य अस्त्र कर अन्तर मथन
मनस्ताप के अश्रु बहाता
विषम स्वार्थ कुंठित कर पाहन!
संस्कृति का वह सूक्ष्म अचेतन
आत्मा में शुभ करता चेतन
तप रश्मि भर मनोगुहा को
दीपित करता घोर तिमिर घन!

अस्त्र शस्त्र सज्जित मृत भू हित
मानव करुणा धर आई तन
अग्नि स्पर्श पा मन के भीतर
सुलग उठे सोया प्रकाश कण!
मुक्ति युद्ध यह मुक्ति चाहिए
भू को युग के अनाचार से
दैन्य अविद्या घृणा द्वेष से,
भय संशय मिथ्या प्रचार से!

मुक्ति शक्ति के अहंकार से
पशु नृशंस के पर प्रहार से
मुक्ति पर्व यह मुक्ति चाहिए
भौतिकता के अंधकार से!
गूंज रहा रण शंख गरजती
भेरी उड़ता सुरधनु केतन
ऊर्ध्व अमंद पगों से धरती
चलती यह मानवता का रथ!

विजय नाद से ध्वनित दिशाएँ,
सत्य सैन्य जन करते स्वागत
भरती अमृत गरिमा चिर पग
देवपुत्र भू पर अभ्यागत!
तुमने देखा हाँ नगरों में
बढ़ता नित जाता आंदोलन
आत्मदमन के लिए मचलता
जाग उठा भारत का यौवन!

सौमनहार

फहराता दिक् कीर्ति तिरंगा
इन्द्र धनुष सा नभ में शोभित
ध्वजा वंदना मातृ अर्चना
गाता नव भारत का शोणित !
स्वाभिमान जिसमें स्वदेश का
स्वत्व प्राप्ति बलि हित वह तत्पर,
दमन कुचलता वात चक्र सा
उफन गरजता उठ जन सागर !

सभी सभ्य सम्भ्रान्त नागरिक
मुक्ति मूल्य देने को उद्यत
बना वक्ष प्राचीर देश अब
खड़ा मृत्यु सम्मुख अप्रतिहत !
मानव की संकल्प शक्ति में
बाहु शक्ति में छिड़ा तुमुल रण
प्रथम बार सामूहिक आत्मा
जूझ रही नर पशु से भीषण !

इधर खड़े स्थिर सौम्य देवता
उधर अड़ा उन्मत्त दैत्य दल
शक्तियों में सक्रिय हो पाया
भू पर शुभ्र अहिंसा का बल !
अंध अहं गतिरोध कर रहा
छू प्रकाश पथ करता विस्तृत
घृणा द्वेष की आहुति देती
बरसाती हँस प्रीति क्षमामृत !

मृत्यु भीत रण प्रकृति कांपती
पुरुष समरता करता घोषित
मौत मिचौनी खेल रहा युग
विजय असत् पर सत् की निश्चित !
मुट्ठी भर हड्डियाँ बुलाती —
छात्र निकल पड़ते सब बाहर,
लोग छोड़ घर द्वार, भाग पथ
हँस हँस बंदी गृह रहे भर !

मौक धाम में तम के कपड़
मिरव पथ पर पागल स्त्री मर,
भव कभी इतिहास कहेगा
कौन पुरुष चलता युग भू पर !
देख रहा मैं निखर रही भू
भूषा कुहासे से मुक्त बाहर
नव ऊषा अंचल में लिपटा
हँसता शिशु युग रवि बिम्ब भास्वर !

चहक रहे मूनी डालों पर
रंग मधुर पल्लव पड़का पर
नव मन वन में मंजरित चतमा
फूट रही बन नव कुसुमाकर !
आत्मा का स्वर्णिम पावक कण
सोया निष्प्रभ जन उर भीतर
तुम को आँधी बनना होगा
जग बुझी भी दौड़ न पर !

छाया माया प्रमाद मोम म—
द्रोह मोह नैराश्य क्षोभ डर
त्याग कम मरण तिमिर में
स्वर्ण ज्योति की छिपी धरोहर !
निज मुख दुख परित कर मा का
नीड़ संगठित करो लोक बस
जन स्वतंत्रता के आँगन में
बँधा निखिल धरती का मगम !

मुक्त स्रोत जब तक न मिलेगा
स्वच्छ न होगा मलिन रुद्ध मन
संघ शक्ति की बहि शुद्धि ही
अन्त शुद्धि — न अन्यथा वचन !
एक दशक न पूरा रहे मन
नगर नूतन भू माता का भाग
चुप न रहेंगे हम बलि पथ न
पड़े प्रश्न ... में हार न— !

[illegible]

असहयोग आंदोलन में अब
आया यह अनिवार्य महत् क्षण
फैले गाँवों में भू ज्वाला
धधक उठें वासियाग खेत वन!
जागो बंजर जन धरती को
जोत बसाओ पौरुष का हल
लोहे को सोना कर देगी
छिपी स्पर्श मणि उर में उज्ज्वल!

अस्थि बीज बोओ स्वराज्य की
फसल उगे जन जीवन उर्वर,—
यही अटल आदेश देश का
तुम शुभ संकल्पों के निर्झर!
बोला हरि, मैं कर्म मंत्र भर
लोक प्रेरणा के तुम भास्वर,
प्रश्न चिह्न मेरा आतुर उर,
तुम जिज्ञासाओं के उत्तर!

कवि यद्यपि तुम रवि से भी उज्ज्वल
हृदय तिमिर हरते जिसके स्वर,—
मुझे दीखते विश्व व्याधि के
मूल और भी गहरे दुस्तर!
जब तक देश स्वतंत्र न होगा
तब तक प्रगति न सम्भव निश्चय
सिंधु पार का द्वीप करे धिक्
तीस कोटि भाग्यों का निर्णय!

नैतिक आर्थिक शोषण से जन
बनते जाते निर्मम निर्धन
सबसे पहले हमें काटने
दीर्घ दासता युग के बंधन!
किन्तु दासता से भी दुःसह
भय से पीड़ित आज मनुज मन
भारत ही क्यों निखिल जगत ही
अंध शक्तियों का रण प्रांगण!

राष्ट्र मुक्ति भारत की कैसे
विश्व मुक्ति का होगी कारण ?
मनुष्यत्व के लिए मनुज को
अपने से करना रण भीषण !
व्यर्थ पूर्व पश्चिम दिक् भ्रम में
भू जीवन का ऐक्य विभाजित
पूर्व हृदय मन होता जग का
पश्चिम से जीवन संचालित !

हम देते अध्यात्म जगत् को
मानव होता अन्त संस्कृत
पश्चिम जड़ विज्ञान शक्ति से
जन सुख साधन करता अर्जित !
मुझको लगता यह सुंदरपुर
मेरे ही मानस का खँडहर,
सुखी धूप तम में डूबे जन
मेरा ही उर करुणा कातर !

समझ न पाता भाव मूढ़ मन
सत्य बहिर्गम या अंतर्गम
अंत शुद्धि करें पहिले जन
बाहर और बढ़ाएँ या पग !
तुम विचक्ष हो तुमने इस पर
सोचा होगा कर उर मंथन
मुझको इसमें ही सुख मिलता
करूँ तुम्हारी आज्ञा पालन !

गाँव गाँव में सत्याग्रह का
मैं सन्देश करूँगा वितरण
राष्ट्र यज्ञ में बापू के संग
जन तन मन धन करें समर्पण !
मुझे यही आशा थी तुमसे
मुक्ति मंत्र फूँको तुम घर घर
भारत विजय का जन भीतर
फिर निकली धर्मी का बाहर !

जीवन द्वार

इससे ऊँची यह संत स्थिति
जो आस्था रख कर ईश्वर पर
बाहर भीतर में समत्व भर
रहती तुम में स्थित निरंतर!
कवि की भी कल्पना भटक कर
भाव मुक्त बनती पागलपन
सर्वमुखी प्रतिभा शोषित कर
जिसे पूजते बुद्धि भ्रान्त जन!

तुम उस स्थिति से दूर रहो नित —
कार्यार्थी तुम जनगण बरबस
अहं वृत्ति यदि को नत फल कर
रहो विनय का सात्विक संयम!
प्रहसन भर होगा यह दर्शन
कर्म प्रेरणा फल से वंचित
मध्य युगों के संतों की सी
त्रुटि, तुम भूल न करना किंचित्!

भौतिक आध्यात्मिक अभिन्न नित
संग संग होते विकसित वर्धित
पूर्ण काम हों राष्ट्र प्रथमत:
विश्व ऐक्य तब होगा निर्मित!
धरा हृदय भारत भू — यशा
संयम त्याग विनय से विरचित
बहता जिसके शिरा जाल में
ऋषि मुनियों के तप का शोणित!

इसे जाग्रत जननी समझो तुम
दया क्षमा भक्ति में अन्त: स्थित
भारत के जीवन मंगल में
निखिल भुवन सब जीवों का हित!
महा ह्रास के युग चलने में
तुम्हें दीखते पथ तम दिग् भ्रम
जन्म ले रही नव मानवता
इंगित करता नव विकास क्रम!

बाह्य कुहास में संशय के
था न आय कुंठित तार्किक मन
साफ क्षम रत रहो प्राप्य पण
शिशव कर्म ही भू पथ साधन !
संगी ने निज प्राण सखा को
सहज स्नेह म द मातृमासन
सपन ही प्रिय मन स्वप्न को
दिया सीम दृढ़ सम स्निग्ध तन !

हरि मड़ुदय था पर हित रत नित
जन सेवा ही था उसका धन
हाड़ मांस क तृण पंजर में
वह था जीवित पावन का कण !
महराती आती हिम संध्या
तट जम सब नीरव तम सागर
छोर शशि सा शुक्र दीखता
साथ मृत्‌ - जन भू तम दुस्तर !

धनु रेखा म महरे जम पर
ज्योति रेख कँप प्रतिपल पर पर,
सता की सि स्वर पद गति का
चित्रित करता भूपृष्ठ हि मर !
जम म बाँध मुख कर सुरती
चढ़ती खोले पानों म पर,
दूर कहीं टेरती टिटिहरी
स्निग्ध साम सरना न ट कर !

संध्या सम्भ्र का साधो दूर
कुहकी सेने बा सम हर
बाद बाद कर मँडराते मिल
बाक सोन बा दे दूसरे स्वर !
चित्रित बात मंहि भी रती पर
मार रही दी उगा धूमिल पत्र
तट पर तरकुरों क सिर पर
सपा का मगरत के छायन !

इससे ऊँची यह अंतः स्थिति
जो आस्था रख कर ईश्वर पर
बाहर भीतर में समत्व भर
रहती शुभ में निरत निरंतर!
कवि की भी कल्पना भटक कर
प्राप्त मुक्त बनती पागलपन,
सर्वमुखी प्रतिमा घोषित कर
जिसे पूजते बुद्धि भ्रान्त जन!

तुम उस स्थिति से दूर रहो मित्र –
कार्यार्थी तुम जनमन वत्सल
अहं वृत्ति बहि को मत फल कर
मही विजय का सात्विक अंचल!
प्रहसन भर होगा वह दर्शन
कर्म प्रेरणा फल से वंचित
मग्न युगों के संतों की थी
हरि, तुम भूल न करना किंचित!

भौतिक आध्यात्मिक अभिन्न मित
संग संग होते विकसित वर्धित
पूर्ण काम हों राष्ट्र प्रणमत
विश्व ऐक्य तब होगा निर्मित!
धरा हृदय भारत भू – सदा
संयम त्याग विनय से विरचित
बहता जिसके शिरा जाल में
ऋषि मुनियों के तप का शोणित!

इसे जगत जननी समझो तुम
दया क्षमा धृति में अन्तः स्थित
भारत के जीवन संयम में
निखिल भुवन सब जीवों का हित!
महा ह्रास के युग पलने में
तुम्हें खींचते अब तम रिपु भ्रम
काम से रही मद मानवता
दमित करता मद विकास क्रम!

बाह्य कुहास में संशय के
खो न जाय कुंठित शंकित मन
साधक लोक रत रहो प्राण पण,
विश्व कर्म ही भू पथ साधन !
वंशी से भिन्न प्राण सखा को
सहज स्नेह से दे आश्वासन
अपने ही प्रिय मन स्वप्न को
दिया शीस दृढ़ धर्म निष्ठ तन !

हरि सहृदय था पर हित रत नित
जन सेवा ही था उसका धन
हाड़ मांस के तृण पंजर में
वह था जीवित पावक का कण !
गहराती आती हिम संध्या
तट वन अब नीरव सम सागर
छोर शशि सा शुभ्र दीखता
भाव मूक-घन भू तम दुस्तर !

धनु स्वर्णा से लहर गगन पर
ज्योति रेख कँप प्रतिपल थर थर
गंगा की सित स्वर पथ गति को
चित्रित करती धूपछाँह भर !
जल में चोंच सटा कर कुररी
उड़ती खोले पांखों-से पर
दूर कहीं टेरती टिटिहरी
क्लिष्ट नाम अपना रट रट कर !

संध्या स्वप्न को साधो गुरु
गुजरी सते बह गंगे हर
काम बाद कर मँडराते मिल
काक सीन का दे सुंदर स्वर !
निर्झर बान बाँह सी नभी पर
साट रही सी उठा धूनि पन
तट पर तरुओं के सिर पर
रँगा नव मन्मन का छावन !

बटी धूम रेखा रस्सी सी
टेढ़ी क्षितिज पर सिमटी सुंदर,
पार्श्व चंद्र झाँकता पार से
सित कपोत सा बैठा तट पर!
हुआ हुआ करते स्यार आर्त रव
बंध घण्ट बजते मंदिर में
बिदा मित्र से हो पथ पंथी
लौटा निज एकांत अजिर में!

गूढ़ मशाल पर लटका
हिम शीतल सित शशि मुख
प्रथम प्रथम की स्मृति सा
आज उपेक्ष्य मधुर सुख!
सन्नाटे में दंतुर
मँडराते ममता भय
पार देखना मन को
अंधकार पर पा जय!

ग्राम शिशिर

नारी मूढ़ समस्या जग की
नर नारी उर का हो परिणय
राग चेतना का विकास हो
शिथिल प्रगति का भार न संशय !
भले ग्राम विज्ञान बनायें
मानवता का सौध नव - स्मित
शोभा - देही राग शिखा ही
स्वर्ग ज्योति कर भरती विकसित।

नवल वधू बैठी खेतों में
या हिम ऋतु पद छाई घर - घर !
किसन हुमरी मसरी उसके
मर्थ खिले कोमल अंगों पर !
लहराती पीली सरसों स
स्नेह गंध उड़ती रस भीनी
फहराती उर हुमकी साड़ी
सूरे की चूनर चंप झीनी !

ग्राम वधू बन्द विस्मय स्फारित
जग में डूब नभ की चितवन
या वह तीखी छिमी छपटी
घास नीले निरसम सावन !
हिमकण के मुक्ताभरणों स
शोभित बंधता फूलों का तन
स्वप्न मौन स्मृति मन को बाते
माघ मास के हेम भोर राग !

हरी मखमली हरियाली का
झूम रहा मँहगा भू छू कर,
अठखेली खेलता पवन शठ
सकुचीले तन में उभार भर।
रोमांचित हँस उठते भू अंग
जौ गेहूँ में आई बाली
छोटी सी अंबिया मटर की
आँखों में छाई मद लाली!

मद भरमाए वन तरुओं पर
गंध मत्त मँडराते अलि दल
सूँघ आम्र मंजरियों का सुख
जगा रहे गा गा कर कोयल!
टेसू निज रक्तिम मुख भाषा
अभी छिपाए छद पुट भीतर,
पीपल के चिकनी से कोंपल
कभी फूट कढ़ आएँ बाहर!

क्षितिज शीश नमता गाँवों को
हरी भरी भू हरती जन मन
हँसती रज हँसती हरीतिमा
हँसती दिशि हँसते अनिमिष जन!
मूर्तिमती ऋतु की शोभा सी
तुहिनों की तनिमा में न्हाई
सुघर खिली सी खड़ी द्वार पर
शुभ्र उषा सी सहज सजाई!

वह यौवन का रहस द्वार था
नव स्वप्नों भावों का प्लावन
जिसमें वह नव शोभा सुख में
मज्जित कर देता तन्मय मन!
बाहर से उठकर मन के पथ
अंतर जग में उड़ते निःस्वर,
जहाँ मूक संगीत लोक था
थी सुख सुषमा आशा के स्वर!

मर्घ घुसे उर के कपाट से
स्वर्ग स्वप्न अस्फुट देही धर,
झाँक रहा हो मूर्छित होले
भाव बोध के रूप में सुंदर !
उसे देख कर सोचा करता
रूप-पारखी बंदी मन में
रूप रूप को प्रतिक्रम करता
प्रतिपल खिलते शोभा तन में !

संध्या के स्वर्णिम झुटपुट से
कोमल कुंतल तम में खोकर
प्रणय भावना नीड़ खोजती
मूँद पारगामी मन के पर !
उर का स्वर्ण मुकुर सा स्मित मुख
सूक्ष्म भाव छवि से जाता भर
उदय हुआ हो नव शोभा ग्रह—
निष्कलंक सौंदर्य सुधाधर !

समा गया था मद नयनों में
मौन मीन दो झीलों में बस
छू लेता उड़ सहज मर्म को
चितवन खग पलकों में निश्चल !
कहता नारी का कवि मन में
सत्य मधुर अधरों की लाली
शुभ्र हर्ष व प्रीति अमृत हित
खाली माणिक शोभा प्याली !

गाना के स्वर्णोपम जग में
लहराता माधुर्य हृदय का
उठती सिहरीं लाज-वीचियाँ
कँपता धूपछाँह विस्मय का !
गूँजे श्रवण छवि के गीतों से
पढ़े सुभाषित के गुण माती
घूम विहीनता भानु भू धनु युग
दृष्टि मन्दिर पर क्षेम हामी !

मृदु ग्रीवा में सहज भंगिमा,
मुख सरोज प्रिय कंबु वृंत नत,
सौकुमार्य के प्रतनु भार से
झुके अंस शोभा नत निश्वास!
स्वर्ण मांस का सर बस स्पर्श
स्वर्ग हंस सित उतरे जिस पर,
मुग्ध प्रीति तिरती उपकृत हो
कनक गौर मानव कलश भर!

स्वर में हँसमुख वीणा के स्वर
वचनों में उर की आभा स्मित
प्राणों में बहता था निश्छल
लोक हीन संगीत पर्वतित!
घनीभूत आनंद पुष्प के
स्तबक उरोजों में था मुकुलित
अंगों की लावण्य लता में
प्रेम स्वत: रोमांच पल्लवित!

गढ़ी शील ने दृग प्रिय देही
शोभा में भर सौम्य संतुलन
स्वप्न पाश फूलों की बाँहें
मन में भरती पुलकालिंगन!
स्निग्ध चाँदनी सा स्वभाव नित
छिटका करता तन से उज्ज्वल
नव छंदों के स्रोत फूटते
छू उसके गति चंचल पद तल!

ग्राम वीथियों पर, नगरों पर
फिरती हो प्रात: मधु छाया
जनपद भू की आभा हो या
उतरी हो नव युग की माया!
धरती के रज कण से उसके
नत दृग पद चापों से परिचित
वरगुण सात्विक उर संयम था
मन करुणा ममता से विस्तृत!

नव प्रभात आतप में घुल मिल
निखर उठी थी अब दिशि लाली,
झूम रही थी मद पवन में
धँसी की मरकत सद डाली !
तुहिन मुकुट स्वर्णिम प्रकाश की
मौन मूर्ति गढ़ तन्मय मन में
सिरी अनमनी सी ममती थी
खोई मन के नीरव क्षण में !

सोच रही थी वह — क्या स्त्री के
आँखों में नित धारा पानी
दुख न मूर्ति गढ़ी हो उसकी
आँसू ने हो लिखी कहानी !
घुलती सखियाँ स उनपर आ
सतत टूटते दुख के पवत
पास पाप देखा कटती आ
उमस मन हो उठता आहत !

जब चंचल चितवन सा मृगन
लहराता मोचर स सुंदर,
रक मुक पूँछ कँपाता पर पर
उड़ - फिर रँगता ऋतु ऋतु में पर !
कोई उमम बहता चुपक
यह जीवन का सीमा - प्रिय मम
उमें मार पाता सखियाँ का
पिंजर बद्ध विहग का जीवन !

घर आँगन ही क्या स्त्री का जग ?
सौष्ठव ही उसका सिर भूषण ?
दृष्टि स्पर्श इंगित वचनों में
मानो उसके तन का दूषण !
सिहर मौन उठता स्मृति का मन
सुन सीता का वन निर्वासन
पर संस्कृति में सती सबना
सब से ईर्ष्या कुत्सा पाहन !

५

मंजूषि भर रख तन में सीमित
वह घर के कोने में स्थापित
ज्योति पीत भयभीत शिखा सी
उसकी स्नेह रहित विधि शापित!
पद छाया सी मोटी भू पर
निज पर की चितवन से सज्जित,
युग युग से गुण्ठित कुल का मुख,
राहु ग्रसित शशि वह भी विरहित!

कुहुक विजन में सहसा पी जग
जब उँडेलता सुख के मधु घट
किसी गुह्य माधुर्य लोक में
खुल से पड़ते तब अंतर पट!
प्राणों में यह अमृत कहाँ से
झरता? कह उठता पुलकित मन
स्वर्ग विहग हित भव धरा ने
स्वर्ण गढ़े कटु पिंजर बंधन!

क्या इसमें भौतिक आध्यात्मिक
समझ न पाता उसका अंतर,
भाव विकृति तम मोह, प्रकृति या?
क्षुब्ध असंयम स्त्री द्वेषी नर!
मधु ने कल पत्नी को पीटा
उसे रात भर घर कर बाहर,
मेले में हँस बोल रही थी
रामभला को कह वह देवर!

पारसाल ही तो वर आया
रंजन गई वधू कर सुंदर,
दुखिया का सिंदूर लुट गया
उसे देख आँखें आतीं भर!
मरते की मटरी सी मुड़की
रहती सूने गृह कोन पर,
ठूँठी पतझर की टहनी सी
फिर न भेंटेगा कुसुमाकर!

नहीं जानती वह क्यों स्त्री के
सिर पर कालिख सा विज्ञापन
बद्ध देह अर्पित समाज को,
मुक्त हृदय मन प्रभु का भाजन।
क्यों न देह से ऊपर उर का
स्नेह संवरण हो जन विस्तृत
बँधा मांस में पुष्प धरा में
करता निज उर सौरभ वितरित।

सोच रही थी वह समाज का
वह क्यों बेधे बलि पशु सा तन
भैया का वह कार्य करेगी
जन जन का होगा उसका मन!
हरि भैया का मधुर स्मरण कर
उसका उर हो उठता पुलकित
वह आदर्श प्रतीक युवक था
बचपन से स्मृति मन पर अंकित।

मौसी की गूँजा से धीम
बाबूमामा के मीठे स्वर
पड़े गिरी के कानों में जब
सूरज चढ़ आया था ऊपर।
गाती थीं युवती वियोगिनी
छप्पर के नीचे मन मुग्ध कर
जहाँ स्त्रियों का नया शिविर था—
हरि का छोटा सा प्रयोग भर।

गिरा गौर मूर्तिमा थी उस दिन
पहला सुघर सा पर यौवन
दलितजन का सम्मान बड़ा था
जिस पर डाल मूँग का छाजन
हरि ने तपसी बाना, बल्प
उठा गिरी का मन मर्यादित
नाना मुँह न्याग निर्वार था
स्त्री जन के जीवन विकास हित।

बजती हों घंटियाँ सुनहली,
उठती थी कल कंठों से ध्वनि—
पूस मास कुहरे का घेरा
भीग गयी रैन की चूनर, धनि!
चकई चकवा यमुना तट पर
बिछुड़े मिला सुनहले प्रिय पर,
पहर न कटते पूस निशा के
श्याम बिना बसता सूना घर।

माघ मास बरछी सी चलती
हिम बयार, कँपता उर थर थर,
पत्र नहीं आए प्रियतम के
बाहर भीतर छाया पतझर।
कठिन तुषार, कुई कुम्हलाई,
कहाँ राम लछमन दो भाई,
बन बन फिरती होगी सीता
बिलख रहीं कौशल्या माई!

फागुन में फूले बन के अंग
डाल पात में छाए नव रँग
मन की चूनर रँग से सजनी
हुलसी बेसेमी साजन सँग।
मधु का गंध संदेसा पाकर
लौटे बिछुड़े भ्रमर छाक कर,
अलि निर्मोही श्याम न आए,
किसको भेंटूँ फूल बाँह भर।

फूलों के झरने मटके से
घर के पास चढ़ी बेल पर,
नारंगी रँग के गुच्छों की
बगल बेमिसा लगती सुंदर।
एक ओर चौपाल बना था
आर पार के गाँवों के जन
जहाँ सीस को सत्याग्रह पर
चर्चा करते उत्कंठित मन।

मास पास ये खेत सुहावी
लदी मँगूठे के बस भरपूर,
भरमाता चाँदनी रात में
अलसी के फूलों का सागर।
गोरी मटरों पर परियों सी
सुरँग तितलियाँ फिरतीं चंचल
कृत्रिम नगरों मे शोभा में
ग्राम प्रकृति की के रंग स्वप्न!

गिरी शिविर में घुमी दृष्टि ग
सहज हास स करती स्वागत
भर लिया उसको स्त्री जन ने
मर्द पीछ थी उसकी मनुगत!
राष्ट्र वंदना गाई मगन–
कर्म भूमि जय जनपद भारत!
बसकंठा से मित निनाद उठ
गूँजा गगन में स्वप्न छन्दवत्!

कर्म भूमि जय जनपद भारत
जन मन हो भू रचना में रत!
भू ही जन मन पमगण जीवन
सुख में हो सब भोग एक मत!
सिर पर स्वर्णिम शस्य मुकुट स्मित
उर पर श्रम मुक्ता स्व शोभित
रवग बाँह हँसिया कटि पर स्थित
श्रम कुसुम मति प्रिय कर पग तन!
सावन बन गुलाबी बासी
हेमंती मान की हरियाली
ग्राम मौर की माली डाला
षट् ऋतुएँ बरसाती अभिमन!
जीवन शोभा शिल्पी हो मन
भू रचना से धरामक सोचन
सुमन हों जन प्राणा का धम
मंजरी में बस मर्यादित!

दृष्टि सत्य के प्रति हो जाग्रत्
लोक कर्म हित भुज नित उद्यत
अन्तर में हो आस्था अक्षत
सदा प्रीति हो जीवन का व्रत !

हम सब भारत की बालाएँ,
मुक्ति चेतना की ज्वालाएँ,
शील स्नेह सेवा मालाएँ,—
राष्ट्र शक्ति में हों जन परिणत !

लोक बोलियों में बंधी के
देश भक्ति के वे सद्भावन
हिन्दी ही में सिरी केन्द्र का
भरसक नित करती संचालन !
हरि कुंजी कहता भाषा को
खुलता जिससे सामूहिक मन
क्षेत्र वृत्ति से उठकर ही हम
कर सकते जन राष्ट्र संगठन !

कलाबाज कहता हरि उनको
उड़ा कल्पना के कनकौवे
बोली का रँग दे सकते जो
मर्महीन चित्रों के हौवे !
जन धरती की प्रसव व्यथा का
जिसमें नहीं महत् उद्वेलन
वंध्या वह कवि कला भई प्रिय
अणु निजत्व की पोषी दर्पण !

तकली चरखे लेकर स्त्रीजन
सूत कातती या मृदु कर्षण
नव जीवन पट बुनतीं बुनतीं
नए विचारों से निखरा मन !
गुनतीं गांधी गौरव कीर्तन
राष्ट्र जागरण के बन गायक
रामकृष्ण की पुण्य भूमि में
प्रकट हुए जन भाग्य विधायक !

नम्र अवज्ञा असहयोग का
सिखी बताती गुरु प्रयोजन
शस्त्र संगठित मत दैन्य को
यह मानव का प्रेम निमंत्रण!
रण प्रांगण बनता जाता जग
बलि होते अगणित निरीह जन
सत्य अहिंसा ही कर सकते
विश्व ध्वंस से जन संरक्षण!

सत्य धरा शशि सूर्य—मनुज का
हृदय सत्य दर्पण आस्था स्थित
जग का मिथ्या मान स्वयं भी
कैसे रह सकते जन जीवित!
सत्य मनुज के सुख दुख जिन पर
भू जीवन करते जन निर्मित
जग का माया वह हम जग में
रहे उपेक्षित पीड़ित शोषित!

मानव आत्मा की पुकार यह
वह स्वाधीन रहे जग में नित
पराधीन नर कठपुतला सा
पर कर परिचालित जीवन मृत!
महत् राष्ट्र के स्वाभिमान हित
लोक अभ्युदय सतत अपरिमित
वह स्वतन्त्र रह विश्व ऐक्य का
स्तम्भ बने नव विश्व समन्वित!

यंत्र अर्जित जग में जन का
अपनाना कर पर का उद्यम
विश्व भाव से लोक स्वास्थ्य हित
क्षेमंकर वैभव पर संयम!
पर श्रम का उपभोग कर नर
इससे सुखकर स्वर्ग बने श्रम
जीवन विमुख रहे मन—मति भ्रम
इंद्रिय सुख रत रहे—आत्म नम!

कतन बटने बिनने के ढँग,
उन्हें सिखाती वह सहजीवन
घर आँगन को सुथरा रखना
स्वच्छ स्वस्थ सुघर रखना तन !
रुई के मलयज गाले से
तूम बीन जन मन में पूषण
वह सँवारती उन्हें सुरुचि से
नव भावों से कर उर पोषण !

शोभा करती थी कैसे हो
जन मन का संस्कार निरन्तर,
कैसी हो शिक्षा जिससे हम
विकसित संस्कृत कर जग अंतर
निर्मित करें धरा जीवन नव
विश्व ऐक्य में बँधे परस्पर, —
उसको लगता मनुज प्रेम ही
भावी भू मंगल का ईश्वर !

रखना श्रम को लोक क्षेम हित
प्रथम स्थान देता उसका मन
द्वेष बुद्धि जिससे छोड़ें जन
विकृति प्रमाद कलह पर लांछन !
मूल्य समय का समझें भू जन
जगे श्रमस का पड़ खँडहर तन
जीवन रुचि का परिष्कार हो
शोभा का घर हो भू आँगन !

मातृ द्वार बहु लोग गाँव में
नवागता का करने स्वागत
मा बच्चे की देख रेख को
युवती सखियाँ रहतीं उद्यत !
शिशु का जन्म वधू समाज को
रहा सदा ही से आकर्षण
शिशु पालन पोषण की शिक्षा
पातीं सब मन बनीं हृष्ट मन !

कहती थी, सारल्य, खुला मन
मुग्धापन ही स्त्री के भूषण,
पर सेवा ममता प्रिय हो उर,
शील दृगों में हँसमुख आनन !
भद्दे पीतल गिलट के कड़े
महन कुरुचि गढ़े कुत्स्य व्रण —
भार अविद्या नरक दैन्य मय
परवश भारत भू के दूषण !

पाठ पढ़ाम घरा में घुमकर
मिलती जुलती सखियाँ मन से
रानी बूआ का भैभामती
भय अवसाद मिटाती मन से !
सीप पात पर चौक लिखा का
जागृति का संदेश सुनाती
बच्चा के चपड़ सी धोकर,
महना तम हँस खेल सिखाती !

पाठ सिखाती कमल काटती
जोत बसाती मा गा घर घर,
मधुर कला श्रम का गठबंधन
रही सोच की प्रथा निरंतर !
रंग गहुँमा सूनी चोंगिया
धानी सारी प्याजी चूनर,
पाँवों की थी चलती रंग पर
थी न सम्मुख आई सोन स्वर !

उस हसरत भाता वदन का
पलँग नीला गीतों में सुंदर
परदेशी की बाट जोहती
सैंया दाम बधू दुख कातर !
सिरी सोचती इस धरती को
राह देखनी जान तब तक
बढ़ जन जीवन स्वप्न बन भर —
बिछ प्रतीक्षा में दुख पल भर !

अकर्मण्यता न मिटने से
उसको ममता जन के मन में
सुप्त शक्ति सब जाग रही नव
बिजली सी हँस श्यामल घन में !
वर्ष-छटा सी उसके उर में
जन भू वैभव म दिक मुकुलित
सामूहिक जीवन की शोभा
गरिमा हो उठती सब जागृत !

सामाजिक जीवन की आभा
बहिर्जगत में हो श्रम स्थापित
मानव आत्मा की गरिमा से
भीतर जन मन हो आलोकित —
बहिरंतर के संयोजन स
धरा स्वर्ग हो ऐक्य प्रतिष्ठित
तभी सत्य शिव सुंदर जग में
जिन सब रूपों में हों विकसित ! —

रह रह उसे स्मरण हो आते
मैया बरो क संभाषण
मन की आँखों में घुल पड़ता
मधुर बरसता भुवन मुग्ध घन !
हरि ने सब भावों में था
डाला उसका पुनघाटी मन
आदर करती वह बंगी का
हरि को उर का स्नेह समर्पण !

सदा प्रीति मनीषा ममता
उसकी थी विश्वस्त सहेली
साथ जिन्होंने सेवा पथ की
कुंठाएँ बाधाएँ झेलीं !

यह घुसी हिम दोपहरी सी
लगती अब वह सात्विक निश्छल
हलके में साँवले रंग का
तिल का खेत खिला हो निर्मल!
मिटे कुटिल गति वाम चिह्न अब
गंगा रेती सी वह उज्वल
निर्विकार जीवन रस धारा
बहती रीते उर में कल कल!

चूल्हा चौका कर हरि के घर
सदा करती जीवन यापन
देख रेख उद्योग शिविर की
रखती वह हरती सब का मन!
घर की ही संयम छाया में
हुआ प्रीति का लालन पालन
बढ़ी पान परवर सी सँग सँग
खेला सखियों — बीता बचपन!

सम गुण रूप गुलाब सेवती —
जन के गुण दोषों से परिचित
स्नेह शील सेवा ममता प्रिय
मृदु स्वभाव से रखती मोहित!
सिरी ज्योति की प्रीति सुसहमी
छाया — संस्कारों में पोषित
एक प्राण की धन्य कल्पनी
काया — स्नेह द्वार में पुष्पित!

गुनगी चौरा पूज गाय दुह
काम काज घर का सँभाल कर
हरि सोते था नहीं देखने
जगदम्बा के नाता बाहर, —
गुरु स्वामी के सँग माया गृह
बैठे नीम तर आँगन में
शकर से भी की सैंगनी की
वर्षा बनने व नाम में!

अकर्मण्यता के मिटने से
उसको लगता जन के मन में
सुप्त शक्ति अब जाग रही नव
बिजली सी हँस श्यामल घन में!
वह छटा सी उसके उर में
जन भू वैभव से खिल मुकुलित
सामूहिक जीवन की शोभा
गरिमा हो उठती नव जागृत!

सामाजिक जीवन की शोभा
बहिर्जगत में हो अब स्थापित
मानव आत्मा की गरिमा से
भीतर जन मन हो आलोकित —
बहिरंतर के संयोजन से
धरा स्वर्ग हो बने प्रतिष्ठित
तभी सत्य शिव सुंदर जग में
मिल नव रूपों में हों विकसित!—

रह रह उसे स्मरण हो आते
मैया बंशी के संभाषण
मन की आँखों में खुल पड़ता
मधुर कल्पना भुवन मुग्ध क्षण!
हरि ने नव भावों में आ
ढाला उसका मृदुनारी मन
पाकर करती वह बंशी का
हरि को उर का स्नेह समर्पण!

भद्रा प्रीति ससीमा यमुना
उसकी थी विश्वस्त सहेली
साथ जिन्होंने सेवा पथ की
कुंठाएँ बाधाएँ झेलीं!
भद्रा कभी अबाला सी ही
विधवा युवती रही अकेली
प्रीति कोख में आई बरबस
क्लांति ग्लानि दुनिया से झेली!

स्नेह घुली हिम दोपहरी सी
लगती अब वह सात्विक निश्छल
हलके मे यौवन रग का
तिल का खेत खिला हो निर्मल!
मिटे कृत्रिम मति भाग चिह्न सब
गंगा रेती सी वह उज्ज्वल
निर्विकार जीवन रस धारा
बहती रीते उर में कल कल!

चूल्हा चौका कर हरि के घर
पद्मा करती जीवन यापन
देख रेख उद्योग शिविर की
रखती वह धरती सब का मन!
घर की ही पावन छाया में
हुआ प्रीति का सावन पावन
बढ़ीं पान पत्तर सी संग संग
दोनों सखियाँ — वीणा बचपन!

सचमुच रूप गुलाब लेखनी —
मन के गुण दोनों मे वर्णित
स्नेह शील सेवा ममता प्रिय
मृदु स्वभाव म रखती मोहित!
मिली ज्योति की प्रीति सुनहली
छाया — संस्कारों में पोषित
एक प्राण की सख्य सुरभी
माया — स्नेह डोर में गुम्फित!

तुलसी चौरा पूज गाय दुह
काम काज घर का संभाल कर
हरि सौंप था नहीं देखते
जयदेवा ने नाका बाहर, —
गृह स्वामी के संग माया गृह
बैठे शीघ्र मन आँगन में
लेकर म थी की मंगली थी
चर्चा करते थे आँगन में!

साथ मुहूर्त निकल शुभ क्षण में
अनुनय भर निज स्नेह स्वर में
कहते वे गुरु सौम्य सिरी के
वर के सब सद्गुण शंकर में!
खेत बाग घर द्वार, उच्च कुल
मान प्रतिष्ठा भय सब जग में
तुम्हें ज्ञात ही रघु, ऐसा वर
नहीं दूसरा सौ योजन में!

पिता महेश ध्यान के पक्के
रहे मानते बूढ़े ठाकुर,
लेन देन था राजा के घर,
दानशील वे गाता सब पुर!
मेरे सब शिष्यों में शंकर
बुद्धिमान सच्चा जन सेवक
कौन नहीं जानता सिरी को —
रूप शील मन का वह चातक!

लोग नित्य पैगाम आगत
पर मन में हठ ठाने शंकर,
तुम्हीं न जब तक हाँ ना भरतो
वह न किसी को देगा उत्तर!
बुरा न मानो कुल मर्यादा
शास्त्रों का भी वचन सनातन
रूई में लिपटे पावक सा
दाहक तरुणी का क्वाँरापन!

चिन्तातुर थे रघु मन ही मन
गुरु का करते थे अनुमोदन
सोते जगते उनके उर में
काँटा सा गड़ता नित गोपन!
शंकर सा पति जगदंबा भी
घर घर का करती अभिनंदन
गौरी की मानती मनौती
गणपति का करती पद पूजन!

किंतु ब्याह की स्वीकृति भरना –
शांत उन्हें था संतति का मन
मधु बाढ़ में डूब चुका था
कई बार घर में छिड़ कटु रण !
हरि पर झुँझला कहते थे रघु, –
तुमसे कुछ भी छिपा न भाई,
बड़ी बेटे की स्वदेश से
स्वतंत्रता से हुई सगाई !

बहा दिया मैंने गंगा में
उन दासों को पढ़ा लिखा कर
पार लगें, मँझधार बीच या
डूब जायें जाने जगदीश्वर !
कौन प्रखर युग की धारा से
लड़ सकता ? जन मत की आँधी,
सत्याग्रह की नाव अहिंसा
डाँड़, सिद्ध जन केवट गाँधी !

मुँह बिचका गुरु व्यंग्य हँसी हँस
बोले, तीखा कर कड़ुआ स्वर,
राजनीति का फेर न यह रघु
साढ़े साती आई सिर पर !
स्वार्थों का बन रावण घुसकर
सिंह छोड़ देंगे क्या जंगल ?
अंग्रेजी साम्राज्य भला क्या
कला समर का – जो जाए गल !

महल देखता भूप जहाँ नित
वहाँ पटक सकता धौंपियासा
गाँधी न बाजीगर का भा
गोरखधंधा गूढ़ निकाला !
सिर धुन चरखा सूत कात कर
देश सकल बन जाय जुलाहा
कूद न मरेंगे पर स्वराज पर
तन मन धन सब होगा स्वाहा !

चुहिया खोदेगी पहाड़ क्या
या टिटिहा पाटेगा सागर ?
तोपों से भड़ रामराज्य या
लेंगे बुरुक निहत्थे बंदर !
ले भी लें क्या अच्छा होगा
गोरों से कालों का शोषण ?
शहर शहर सब घर घर में तब
क्या दो जून जुटेगा भोजन ?

स्वार्थ कूप धन दारा सुख रत
सामंती प्रभुओं से परिवृत
सींचेंगे क्या दीनों का मुख
रामराज्य नार्थ्य जनहित ?
खादी मढ़े मद पापों के
देशी नेता नाम न परिचित
घट न सकेगा महलों में भी
उनका पद मद मानो निश्चित !

सोच रहे थे गुरु मन में कुछ
यह सब वंशी कवि की माया
पड़ी मलीचर छाया रघु पर
जब से कवि सुंदरपुर आया !
उलटा सीधा समझा हरि को
अपना सबका किया पराया
नहीं जानता माधो गुरु को —
देखूंगा किस मां का जाया !

प्रतिस्पर्धा रखते थे स
मुए माधव ब्रज बोली के कवि
गढ़ते छन्द कवित्त सवैये
मिश्र राग कवि अस्तंगत रवि !
फूट रहे थे जन मानस में
नयी चेतना के ऋतु पल्लव
बरसाता पावक मरंद मधु
नयी कला मादक वंशी रव !

तंत्र मंत्र विधि में ज्ञाता गुरु,
बड़ी मान्यता थी सब जन में
बीस कोस के छुटे कट्टे
मार पार सब डरते मन में।
हँसे ठहाका मार, सोच कुछ,
चैनी मार फटक मुँह में भर,
बोले रघु, तुम समझ बूझ लो
अच्छा जय काली! — जय शंकर!

गुरु जाने ही को उद्यत थे
गाँव गाँव में घूम सभा कर,
खेतों की मेड़ों से होकर
लौट रहा था हरि प्रसन्न घर!
माते उफनाते सागर से
खेत ईख के फूले सुंदर,
हलकी फालसई चादर सी
लिपटी थी रेशमी दोपहर!

बौरों की भीनी छनी गंध
भरती उसके दे हिम मोचर
ज्वार बाजरे की अरहर के
ढेर घूम घम पसरा के पर!
पत्तों के घर म मुँह ढपि
कुछ हीन लगने उदास सर,
टँगे तापसों से ऊसर में
गाएग औंधिम एक पैर पर!

बीच बीच में गड़ मेंढोल
रोमिल हरे बबूल सुहाते
धूप महक उठती थी भीनी
नयन निरख छवि नहीं समाते!
मामा गुरु का देख शवालय
झुका लिया हरि ने निज मस्तक
गहर बाहर गाढ़ी टाँगी —
ग ताकत भर बाँधे टप!

जीवन हार

कौन ? अरे हरि ? कहाँ आ गए,
भैया, नेताओं का बाना
बोले गुरु हँस, गिरगिट का सा
रंग बदलता नया ज़माना !
मामा जी की पोथी मेरी
हाँ ही — यह तुमने क्या ठाना ?
बंसी स्वर में तुम्हें नचा कर
किधर छिपे मधुबन में कान्हा ?

पी कटु घूँट सहज हरि ने हँस
कहा न बोली मारें बाबा,
नेता क्या, मैं जन सेवक भी
नहीं अभागा विजन गाथा !
बात बदल कुछ सोच नरम पड़
बोले गुरु अच्छा हरि, माना
मेरे मठ के चेलों को भी
सत्याग्रह का गुर दे आना ।

यह कह उठ चल दिए तुरत गुरु —
जगदंबा ने बाहर आकर
कहा यहाँ जो पहले बेटा
खा पी लो — थक कर आए घर ।
जाने के दिन में लौटे हो
दुबला तन ले मुरझाया मुख
बाँटोगे तुम औरों के हित नित
कब समझोगे अपना सुख दुख ।

भैया आए आज उमँगती
छिरी भीति आई द्रुत बाहर,
शिविर प्रगति सुन बोला हरि, मैं
होकर आया बस्ती के घर !
पास दूर के सब गाँवों में
हुए यहाँ भी मेरे भाषण
असहयोग आंदोलन में है
गांधी जी के साथ सभी जन !

पुर में सभा बुलाने का अब
हमें यहाँ करना आयोजन,
जहाँ सुनाएँगे सब साथी
पद यात्रा का विस्तृत वर्णन!
नमक बनाने कर बन्दी की
विधि का कर बहु मत से निर्णय
सत्याग्रह की बलि वेदी पर
हम सब आहुति देंगे निर्भय!

ताली बजा कहा सखियों ने
बोल महात्मा गांधी की जय—
मुक्ति यज्ञ में हम भी साथी
होंगी होम स्त्रियों का दुख भय!
इस प्रकार सुंदरपुर का था
केन्द्र बना हरि का घर आँगन
घट घट में हँसता था युग शिशु
उमड़ा था नव जीवन प्लावन!

दृढ़ संकल्प बनाता निर्भय निज पथ
सामूहिक जन बल ही युग जीवन रथ!
जन समुद्र का दुर्गम ज्वार न थमता,
दुर्बल व्यक्ति सोचता रहता हानि भय!

मुक्ति यज्ञ

अभिलिखित ही रह जाएगी तब
नव युग की गाथा नि:संशय
जो भारत की मुक्ति कथा तुम
गाओ नहीं गिरे, रस तन्मय!
कथा नहीं यह, कृच्छ्र साधना
भू जीवन मंगल की निश्चय
सत्य अहिंसा का पथ नर्तित
नव भू मानवता की शुभ जय!

कौन चल रहा वह नर भूधर
जन धरणी पर ऊर्ध्व चरण धर?
ऋषि अगस्त्य सा लवण सिन्धु को
पी हँस हँस अंजलि पुट में भर!
तुम प्राणों के लवण धरणि के
शुभ्र आत्म बल करा संगठित —
तेजोमय सात्विक वाणी में
कौन सत्य करता उद्घोषित!

भू जीवन लावण्य सिन्धु यह
लोक लवण रण में संपोषित
लवण प्रतीक स्वराज्य मुक्ति का
लवण सिन्धु मंथन में संचित!
शक्ति शून्य दर्पित लवणासुर
पूत अहिंसा द्वारा पराजित
सुरत अवश्य रावण कर न हो
सपन राष्ट्र का करा प्रमाणित!

लवण म वज्र कठोर मुष्टि में –
दृढ़ संकल्प मग्य अपराजित
जन्म मरण दास – भाग्य बहि कम
जो चाहे बन मरता जीवित !
कौन छीन सकता मुट्ठी से
सत्याग्रह का लवण – मुक्ति पग
प्राण छूट जाते छूटेगी
मान न पग भू पथ का मापन !

वह प्रसिद्ध दांडी यात्रा थी
जन के राम गए थे फिर वन
सिन्धु तीर पर मग्न विश्व का
दांडी ग्राम बना बलि प्रांगण !
लवण द्वीप में थी सागर के
मोर मुक्ति बन्दिनी विमूर्च्छित
अत्याचार अभय नापन के
रक्त प्रदर्श देखा म परिभूत !

नमक बनाना ध्येय नहीं था –
तीस कोटि भारत जनगण का
वह प्रतीक विद्रोह पर्व था
दृश्य एशियागिरि युग क्षय का !
गिर पुन मादक सैंग सहार
वह प्रगल्भ चरण दो पग धन
था प्रथम स्वर्णिम मुहूर्त था
जब भू गिरा धनी नर पतन !

उमन सस्ता पर नर पर र
रक्त दिनार शारी का शामिल
भारतीय स्वातंत्र्य युग मा
पूर्व ग्राम पर भाषा दीपित !
[illegible] चौरीम दिना का दम प्रा
दा गो मीर दिन द पावन
[illegible]
[illegible]

[illegible]

देख घूम वह घूम कर गए
शासन के देवता कुपित,
बढ़ता अभय समग्र राष्ट्र था
एक व्यक्ति बन पर्वत उन्नत।
शुभ्र मौन अभियान सत्य का —
पथ प्रयाण करता बन भू बन
चकित दृष्टि देखता विश्व था
मूर्तिमान हो मानव मंगल।

प्राण त्याग दूँगा पथ पर ही
उठा सका मैं यदि न नमक कर,
लौट न आश्रम में आऊँगा
जो स्वराज्य ला सका नहीं घर।
वीरोचित वर भावों से
सुलग रहा था बापू का मन
पदयात्रा को निकले जब वह
व्याकुल थे जन पुलकित सुरगण।

वह प्रकाश गति से द्रुतगामी
अहिंसकों का था पैदल दल
फैल रही थी जन बाधा सी
जन जागृति पग पग पर प्रतिपल।
भार मुक्त लगती जन धरती
जन मन उठ उड़ता हो ऊपर
पशु बल के जड़ तमस क्षेत्र में
आत्म तेज जगता हो भू पर।

कितने ही सोए युग सहसा
जाग उठे वह था अपूर्व क्षण
कोटि जनों का कोटि युगों का
वह अद्भुत नव पुनरुज्जीवन।
लोक प्रगति का देव दूत वह
तीस कोटि का रहा हठी मन
विश्व चमत्कृत सोच रहा था
क्या भारत की सिद्धि साम्य धन ?

दया द्रवित था हुआ स्वर्ग उर
दक्षिण अफ्रीका की भू पर
जहाँ प्रवासी भारत सहता
गोरों के उत्पात निरन्तर !
वहीं प्रथम सत्याग्रह असि का
युग साधक ने धरा सान पर
नम्र अवज्ञा से जय पायी
अन्यायी का क्रूर मान हर !

मन बसता विद्रोह वह्नि में
हृदय क्षमा सागर सा शीतल
घृणा पाप से करता युग नर
पापी दुर्बल का था संबल !
राजनीति के कृमि कर्दम में
संस्कृति का शतदल कर स्थापित
खोले आया वह भू विस्मित
सत्य अहिंसा पावक से सित !

हिंस्र जगत में उगा महत् वह
मनुज दया का मानस पर्वत
देखा सम्मुख काल ग्राह से
कवलित स्वर्णग्राह गज भारत !
शुभ्र तिमिर के प्रात गगन में
गिरा युगों से वह सिर के बल
कर्म प्रेरणा शुभ्र विरागी
धर्म अहिंसा का अद् संगम !

जन समाज में विमुख, स्वार्थपर
जाति पाँति पथ मत में खंडित
निज विरत वह भाग्य मुक्ति रत
दुख दारिद्र्य मग्न जीवित मृत !
देख रहा था जब विस्मय हत
पुण्य भूमि का मन्द जागरण
युग युग के आर्तों से मर्मान्तिक
मान दीन का पतन दर्शन !

काल जीर्ण धूसर खँडहर से
आभा रेखाओं में अंकित
जीवन का प्रासाद अलौकिक
जाग रहा था पूर्ण अखंडित!
मन कक्ष था प्रशस्त विस्तृत
हृदय कोष्ठ प्रेमामृत सिंचित
सिर पर स्वर्णिम सत्य कलश था
अक्षय आत्म ज्योति से दीपित!

नया चेतना पृष्ठ खुला हो!
मिटा भेद भव मन का संशय,
हिम शिखर से मत्त अमृत को
मिला प्रेम बल का नव परिचय!
देश राष्ट्र में भक्त धरा पर
हँसने को था नव स्वर्मौन्य —
देख रहे थे शोषक शोषित
मनुज सत्य का महत् समन्वय!

अंतरैक्य में बँध मानवता
धरती पर रह सकती जीवित
बाह्य विविधता बहु की समता
जिसके बल पर ही अवलंबित!
नग्न अहिंसा की क्षमता स
दैन्य अनय भव पर जय पाकर
मनुष्यत्व था जन्म ले रहा
पाशवता की क्रूर कोख भर!

विश्व शिखर पर नए कल्प का
उदय हो रहा था नव पूषण
मनुज अहं की हिंस्र वृत्ति पर
प्रहरी चित् स्वर्णिम जय केतन!
आत्म शक्ति के सौम्य तेज स
दैत्यता अरि का अंतर भर भर
कहाँ छिपाए निज कुरूप मुख
पशु बल शोक लाज से मर मर!

सोच रहे थे जग के बौद्धिक
कैसा अद्भुत रक्त हीन रण
अस्त्र हीन जन हँस हँस करते
प्रतिपक्षी को आत्म समर्पण !
क्या भू की उपलब्धि युगों की
कैसा रहस्य वह गोपन ?
आत्मा की अनुभूति अलौकिक
अथवा आत्मा का भू जीवन !

योग त्याग कैसा तप संयम ?
स्पर्श परात्पर का उर पावन
सब द्वन्द्वों से परे मन स्थिति
शाश्वत मुक्त भगवत् मुख दर्शन !
यम नियमों में शुभ संगठित
कैसे वे चलता प्राण मन ?
अंतर रचना में रत अविरत
सब भूत हित प्रेरित प्रतिक्षण !

द्रष्टा ऋषि मुनियों की भू का
क्या विशिष्ट गुण जप तप अर्जित ?
उच्च प्राण हो समाधिस्थ मन
कैसे रहता ज्ञान आत्मस्थित ?
अंतर जग का वे वैज्ञानिक
मग्न गाय रत भारत तन्मय
धर भूमा में उसे दिशा था
मानव का भिन्न युग ज्योतिर्मय !

मनुष्यत्व का तत्व मिला था
हृदय गुहा में अपरूप अमय
प्रीति धाम नित जो ईश्वर का
जन के भीतर नित्य क्षमामय !
चिदानन्द सागर में डूबा
बाहर जब निकला गद्गद मन
देखा उसने निखिल विश्व था
स्थिर जीवन का सीमा प्रांगण !

सी

इंद्रिय द्वारों में था गुंजित
चिदानंद विषयों में कुसुमित
बहिर्दृष्टि के कलुष भेद तम
सत्य ज्योति में हुए निमज्जित !
बाहर के तम से अंतर तम
महानाश का वाहक निश्चित
जग के हित आदर्श वही स्थिति
बहिरंतर जब युगपत् ज्योतित !

भू जीवन पथ अभी अविकसित
बहिर्लक्ष्य कर उसने स्वीकृत
निज अन्त साधना निरंतर
धरी विविध विघ्नों में पीड़ित !
मानवीय जीवन यथार्थ रे
भारतीय मन का तप संस्कृत
निखिल विश्व जीवन मंगल हित
सचराचर भ प्रभु को अर्पित !

मध्य युगों से योग त्याग तप
अपर मोक्ष सुख कामी बन कर
स्थिर कि बन चलते जो ऊपर
चढ़ा उन्हें होना था भू पर !
जीवन विमुख विरक्त शून्य रत
जाति पाँति में शीर्ण जीर्ण नर,—
उनको बसना था यथार्थ की
दृढ़ भू पर सामूहिक पग धर !

भाग्य मुक्ति के रिक्त गगन में
भटक जन मन को दिखला पथ
रूढ़ि रीति कर्दम से निष्क्रिय
था उबारना भू जीवन रथ !
प्रेम निखिल जीवों का ईश्वर
प्रेम मूर्त हो मनुज धरा पर,
प्रेम शक्ति पशु बल से अपरिमित
प्रेम सूत्र में बँधे चराचर !

घृणा घृणा से नहीं मरेगी
बल प्रयोग पशु साधन निर्दय,
हिंसा पर निर्मित भू संस्कृति
मानवीय होगी न मुझे भय!
जीवन मूल्य विकृत हो भय से
मानव सुख नित करते कुंठित
काम क्रोध मद राग द्वेष का
नरक धरा पर असह प्रतिष्ठित!

बहिर्विजित भौतिक युग मन में
बहु वैभव उसने प्रज्ञा स्मित —
बाह्य परिस्थिति के वैभव से
प्रेयस्कर संघर्षमय नित!
भूत प्रकृति पर विजयी नर का
अपने पर जय पायी निश्चय
मनुज मनुज मन राग-द्वेषी में
पशु की भी संतुष्टि न भाय!

ध्यान मौन सत्कर्म सुन्दर व
साफ ध्येय हित जीवन अर्पित
नीति पुण्य वर, न्याय वधुर घर,
शील शुभ्र ग्यारी में मंडित!
प्रजामाता पावन मूर्ति निज
जन गौरव भर नरपति वंदित
देवदूत ग हँस हँस करते
स्वर्ग ज्योति जग भू पर निर्मित!

भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध था
मनुष्यत्व का भू पर युग रथ
पंथ रिक्त यदि समृद्ध जग
हिंसा स्पर्धा का था प्रांगण!
मन उमग में ज्ञान जन को
आत्मा में होता था वैभिन्न
[illegible] प्राण मन [illegible] रिक्त का
[illegible] स्वर्ग ना पुनर्जीवित!

सत्य अहिंसा से वे सविनय
युग मन का करते संचालन
हिंसक मानवता के पूजक
चीन्हें मानवता का आनन!
किंतु, हिंस्र पशु था भूचर नर,
अंध क्रूर उसका विमूढ़ मन
मनुज रक्त का प्यासा कटु उर
दृष्टि हीन पुट अंतर लोचन!

दमन चक्र चल पड़ा निरंकुश
कुत्सित था नर पशु का नर्तन
अमानुषी पाशव नृशंसता
रोमांचक आसुरी प्रदर्शन!
अस्त्रहीन निर्दोष जनों पर
अंध हिंस्र बल का प्रहार खर
सौम्य सजग अनुशिष्ट जनों पर
वह था अत्याचार भयंकर!

घृत की स्निग्ध पूर्णाहुति पा ज्यों
हो उठती मख वह्नि प्रज्वलित
विनत अहिंसा की नर बलि पा
पशु का दर्प हुआ उत्तेजित!
नमक छिड़कता कुमति कटे पर
क्रूर हृदय को बना क्रूरतर
देह दंड के संग प्रचंड अति
स्वर्ग यश को अपमानित कर!

भारत नायक को कारा में
ठूँस दस्यु ने सोचा — दुर्धर
ज्वार कुपित जैसा समुद्र का
वह वन अग्नि को पिंजर में धर।
ज्ञात न उसको भारत आत्मा
जनमी कारागृह के भीतर, —
बाहर भी बंदी ही थे जन
उन्हें न था कृष्णायन का डर!

जनगण के मनोबल को पुन
बाँध दिया क्या — जड़ मति शासन
भारत की बंदी आत्मा को
मुक्त कर दिया निर्भय अब मन!
लहरों पर लहरें उदग्र ज्यों
टकरातीं तट से झंझा हत
अहिंसकों की भीड़ टूटती
लवण राशि पर — नत क्षत विक्षत!

लवण उदधि में लवण अवनि में
लवण गया था अंबर में भर,
लवण वायु पंखों पर उड़ता
लवण छा गया था जन मन पर!
स्वाभिमान सर्वस्व देश का
लवण प्रेरणा का बन पर्वत
जड़ में चेतन शक्ति बन गया
राष्ट्र मुक्ति का दाहक शासन!

सन् सत्तावन का विप्लव था
लोक हृदय में प्रतिध्वनित
वन छाया सा फैल गया जो
जन भू बल था तब से संचित!
सामन्ती उच्छ्वास रहा वह
राष्ट्रीय भावों से विरहित
आत्मा की चेतना यत्र तत्र
कुंठित [illegible] उर में पीड़ित!

टोपे सा वीरों की टोली
रानी सी मुकुट शौर्य-स्मित
[illegible] ही पुत्रा की [illegible]
भारत मा [illegible] [illegible]!
[illegible] का [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] दे [illegible]!

सामंती विद्रोह रहा यह
अभिनव वैज्ञानिक युग के प्रति
रीढ़ भग्न भू परंपरा की
मोड़ स्वीकृत दी जिसने गति!
लोक चेतना सभी खोजने
नव युग संयोजन स्वर संगति
छूटा मोह मृतक अतीत का
देख विश्व मुख चेती जन मति!

शांत शिष्ट सब रहे देश जन
बापू के कारा बंधन पर,
उनका था आदेश पतीयन
रचना कार्य करें रह तत्पर!
राष्ट्र संगठन का अनुशासन
ग्राम – कार्य समता का दर्पण
सत्याग्रह का भाव पक्ष ध्रुव
कर्म शक्ति का सात्विक दर्शन!

शुद्ध अहिंसा की प्रतीक शुचि
खादी – कातें सूत सूत जन
तकली चरखे करघे झपें
नंगे भूखे भारत का तन!
धरना दें नारियाँ करें सब
मदिरा अस्पृश्यता निवारण
त्याग विदेशी वस्त्र क्रय बिन
हों सम्पन्न अखिलग्रामगण!

सक्रिय मुखर अहिंसा हो अब
सत्याग्रह का कर आवाहन
मूक अहिंसा का युग बीता
वह थी जन शिक्षा की साधन!
शस्त्र अस्त्र से सज्जित नर पशु
शृंगी दंष्ट्रा पशु से भीषण
मनुष्यत्व की ज्योति जगाने
निर्भय शीश करें जन अर्पण!

घृणा पंक में सना धरा मुख
प्रेम रक्त से कर प्रक्षालन
मंच अहं-कुंठित भू मन के
स्वर्ग दया से मर्त्य नरक भव।
घुस स्वार्थ तम रुद्ध हृदय में
आगम त्याग का सित वातायन
देश जाति वंचित भू दय
राम राज्य का ज्योति जागरण।

राजद्रोह अब धर्म हमारा,
भू अभिशाप विदेशी शासन
बहु भौतिक नैतिक आध्यात्मिक
महा नाश का दारुण कारण।
महा पाप दास्य काम कूट विष
जन जिसके बस अर्ध मूर्छित मृत
सामाजिक सांस्कृतिक रक्त के
शोषण के बल, कृमिवत् जीवित।

हँसते जन भरि बाहर भीतर
वह उसका समचीन मुक्ति रण,
यह स्वराज्य भी बड़ा समाना
होगा बहुत स्वामि भक्त जन।
क्या था तब भारत? शक्तियों का
दैन्य दासता दुःख का खंडहर,
पर मिला संस्कृति में पालित
धन जन मन में शोषित जर्जर।

त्याग वस्तु, अनगढ़ द्रव्यों का
वह अनंत भूख रात निरंतर
जादूगरा पर रच हीरा का
वीर दास प्रभु भक्तों का घर।
प्राण दान करन प्रभु के हित
जिनके भू भुग गहन तत्पर,
बेच राष्ट्र सम्मान उन्हें पा
म स्वतन्त्रता स्वर्ग प्राप्त हर।

मध्य युगों से जाति पाँतियों
मुंड मठों में बैठे युग मन
रूढ़ि रीतियों के घेरों में
बद्ध अपरिवर्तन कामी मन
कुल वंशों के गोत्र श्रेणि के
पीठ दर्प के खोसे विष फन
सम्प्रदाय के कुंडल मारे
निष्क्रिय अजगर, — अमा गहन तम!

स्वर्ण भूमि भारत जिसके पद
धोता नत मस्तक रत्नाकर,
निर्निमेष रहता नग जिसकी
मनुज स्वर्ग संपदा निरख कर!
जिसके उर में खुला स्वर्ग का
द्वार, — दीप्त चैतन्य दिगंबर,
आज पराजित आत्म मूक वह
दिग् गज सा भहराया भू पर!

ह्रास तिमिर से ग्रस्त अविद्या
ग्रस्त — मर्म पर मर छिन कातर,
जन समाज से विरत व्यक्ति रत
राग द्वेष में मग्न परस्पर,
शासक न रक्षक जन वंचक
भग्न रीढ़ जिसके विषम नर —
ऐसा भारत बन सकता था
प्रभु सिंहासन की सीढ़ी भर!

भारत ही के भीत दास सुत
मा का उर करते पद मर्दित
नत सिर पर प्रभु पद त्राण के
चिरस्थायी से विनत शोभित!
छिप्त मुक्ति के प्रश्नी महिमक
विगलित पत्रविहग गौरव
सम्यापद के स्वर्ग दूत हैं ग
ढोते मणियों का भू सम्पद!

उधत जाग्रत् भारत सारा
कारागृह में था तब जीवित
बना श्मशान महान देश का
साँस मार डाले बाहर मृत !
दृश्यमान सब घायल थे तब
हृदयहीन परस्पर जन कातर
भग्नि वृष्टि सहते मर्माहत
मुक्ति स्वाति के याचक चातक !

लगा मात्र तम के सागर में
डूब न जाय मानिक प्रकाश कण
पर, वह बाड़व बन कर भभका
आत्मा का स्फुलिंग भव पतन !
भारत के भाव कोन में
फैल गया संदेश मुक्ति का
उमगा ही फल हुआ जगत में
पम्पायी की स्मन मुक्ति का !

धगमाना फिर सूटा बदला –
पुष्प सूक्ष्म दग भक्त जन
दृष्टि शून्य धरि ! सीप दाब का
पता लिया शान्ति रन प्रांगण !
न्धर बनी हर माठे नारी
पट स्फोटक भर लिए मर्दन
हल्कानें प्रतिशाप ममातें
उधार रग में बना प्रतिशान !

स्वर घोर मानगी बनी भू
जनगाय में रहा स्नान कर
हन दीनपालिया निराग्र जम
मर्मिरा मन लिए धाम दल कर !
माट् स्वाग की रचा दीप में
स्वर्ण तन हा रा ज्ञान मन
भावभीन धीरज नर व
पाप मन रप जातम नायक !

काल ध्वस्त जर्जर जन खँडहर
जाग उठा बन जीवन मंदिर,
स्वर्ण कलश धर नया भाल पर
खड़ी हो गई गिरी भित्ति फिर!
शतियों के हत पतझर वन में
फूट पड़ा मधु यौवन शोणित
नग्न रक्त शोषित तन पंजर
हुए नव्य जीवन उन्मेषित!

जगे खेत खलिहान बाग फड़
जगे बैल हँसिया हल विस्मित
हाट बाट गोचर घर आँगन
वापी पनघट जगे चमत्कृत!
मोट नकारी नार जगत जग
लगे माँजने मुक्ति हास्य स्मित
अँगड़ाई ले जगा पुरातन
युग युग से जड़ निष्क्रिय निद्रित!

कोई नृप हो हमें हानि क्या? —
अब न सोचता कुंठित जन मन
राम राज्य स्वप्नों में डूबे
जन यथार्थ दर्शी जन लोचन!
हाथ पैर धरती के समर्पित
सहसा शाप मुक्त नव चेतन
जाग उठे पावक प्ररोह से
मुक्ति स्पृहा हो मत्त समीरण!

पृथ्वी पुत्रों ने स्वराज्य को
धारण धाम निज दिया प्राण पण
बिक धन पुर हार, बस घर,
लुटे बहू मा बहिना के तन!
युद्ध शिविर बन गया देश सब
मित्र राष्ट्रों पर सैनिक शासन —
पशु बल के शठ कुंठन बीच
काम सरे माथे लें शासन!

क्षीराब्धि सम सफल जलधि में
सोते जब हरि बलि भय कारण
उन्हें जगाने गए महात्मा
सिन्धु तीर, करने स्तव पूजन!
लौटे पाकर प्रभु वर वे
पहुँचे छोड़े पुण्य के धन
भौतिक शासन से पीड़ित भू
उनके साथ गई मिल भी बन!

पीड़ित लोगों की जाती स
प्राण हीन कंकुम से निःस्वर,
त्रस्त दीन्य अत्याचारों से
ऊँचे पेड़ों पर लादे पर
भीरु जीव रेंगते डगर पर
भग भूखे प्यास मृत नर, —
गाँव उजड़ बसन निर्जन वन
सर्वनाश का हा घर पतझर!

मुंदरपुर का सत्याग्रह भी
प्रतिबिंबित पूर्ण रहा युग रण का
आत्म त्याग का पर्व अलौकिक
उत्सर्गों का उत्सव जन का!
सामूहिक - वर मग दक्षिणा
धर्मी दिगंबर रह अपराजित
स्वतन्त्रता हित मर मिट अपना
हुई सफल यति है महिमान्वित!

हाड़ मांस ठठरी में इतना
शौर्य वीर्य रह सकता पुंजित
अमितता की जय होड़ पर
मन निर्मलिमा उठता विस्मित!
धैर्य त्याग मन शौर्य अति उग
दर्प छिद्रित की करनी कीर्तित
अमर लिखा थी अभिन नमना —
जन समझा न हार दर्शित!

अकस्मात् घर झंझा से हों
भूमिसात् पुर मठ घर छप्पर
छितर मेंडकियों से बिखरे थे
घास फूस बाँसों के टप्पर!
बायस भंगों का अगम था
सुंदरपुर, जन जीवन दूभर,
मृत मानव आत्मा के शव पर
नर्तन करता पशु बल बर्बर!

माधो गुरु के कुचक्रों से
शंकित रहते सरस ग्राम जन,
घर के भेदी बन सिखलाते
वे अरि को नित घातें नूतन!
हरि का घर अब भग्न हुआ था
कारा में बंदी उसका तन
सत्याग्रह का नेता था वह
ग्रामीणों का सच्चा हृदय धन!

बंसी को पिटवा कर गुरु ने
किया कूट बस नेता घोषित
लाठी की खा चोट फटा सिर
रहा रक्त लथपथ वह मूर्छित!
मन की टीस मिटा माधो ने
छल बल चक्र चलाया कुत्सित
मधुर सिरी की रक्षा के हित
किया मुग्ध शंकर को प्रेरित!

कारावास मिला बंसी सँग
हरि को — जनगण से अभिनंदित
गए कृष्ण गृह के जय ध्वनि से
हुआ गाँव का गगन निनादित!
स्नेह डोर में बँधे सहज जन
तन से अधिक मर्म से आहत
हरि से बिछुड़ बिलखते मन में
दृग पथ में थिर करते स्वागत!

बनी हरि संगी को भी न
विहँस विश्व की वाष्प विमोचन
पौरुष हीन विभीत साध्य सुख
बहा पुरा यह ग्राह मधु कण।
सत्याग्रह का धनि पथ नूतन
मानव गौरव का कर रक्षण
लाक यश की शुभ्र प्रगति को
हँस हँस जन करते नत प्रणत।

सुगिया संग मधर्नी गिरी में
प्रश्न उगा लिया सत्याग्रह
स्नेह डाल मन उसे बचाया
गदर न बहर उसे सह।
प्रेम बाण न विद्ध प्राण मृग
गिरा स्वतु स्वयं तन से विश्राम
याम्य त्याग न छुआ गिरी का
मन्य हृदय उगने धूप घन रन।

प्रीति नीति न उस संभाला
पिया मिरी न स्नेह प्रवाहन
स्वरूप देह मन पहर न उर
पुना स्वर्ग कारागृह जीवन।
मुग मुन कर हँस निज-मनुमर्षा
य पे पन्ना की गागरण
पैर जीप ही पम्प प्रय न —
याम्य विजय पर ये प्रमत्त मन।

काया गुण न गायन न प्रति
गिरी सदृश मन न पारंगित
गहन्य स्नेह निरव दा—संगत
गन्ध सौरभ नान्य निर्भर पिता।
बनी के गन्ध पवन में संग
मगन प्राण हरि मिली प्रवंचित
मान्दानी मा का आ बाग
मन्ना दनप दर्शन मग जिन।

बाँधो ऐंठी द्वेष रज्जु में
महम्मन्य गगन-स्पर्धी उद्धत,
सोचा करते ढोल उन्हीं का
पीटें जय चरणों पर शिर नत!
पाँव न धरने दूँगा पुर में
मैं बंशी को — कर दृढ़ निश्चय
उठा प्रेत से लगे घूमने
मरघट से पुर में वे निर्मम!

एक दशक बीता युग संकट
भय संशय तम में विषाद में
मनु पैंतरे रहा बदलते
निज नृशंसता के प्रमाद में!
नेता बने निरंकुश परि मन
गयी विफलता रक्त स्वाद में
भारत हित में था युग जग मत
शुद्ध ध्येय शिव मुक्ति नाद में!

डिगा नहीं भारत शुभ पथ से
पा झूठे रीते आश्वासन
लिखे रह गए, काल पृष्ठ पर
रिक्त संधियों के आयोजन!
राजनीति के कुटिल चक्र में
विश्व न्याय का कर आवाहन
खड़ा रहा वह सत्य शिखर सा —
जय भू मन का हो आरोहण!

युग जीवन का हाहाकोला
था विहार भूकंप चिह्न भर,
धूम धुंध से अंध क्षुब्ध मन
जीवन आवेगों से जर्जर!
क्षोभ शाप अवसाद निराशा
मंथित करते हत जन अंतर,
स्तंभित सा हो गया काल था
रुद्ध नियति गति छिन्न प्रगति पर!

भाग्यहीन इस पराधीन भू
काम पड़ा बंगाल दग में
युग जीवन की मन्न चुनौती
लाई मृत्यु कराल बश में !
नदियों के पिचके पर्गों म
दिया सुधा ने करुण बन रोन्न
था दुष्काल निर्मम प्रतीक भर
सब म भूख मु क जनगण !

क्या कर मेंगे मन्य मिहन्य
स्वप्न मोचने गर्वित मन जम
आग उगल बम बरसा गम परि
जो मगरों का घर के निधन !
ज्ञात म उनको प्रतिहिंसा की
तप्त गर्भ म' उमड़ अग्नि घन
मन्त्र मड़ साम्राज्यवाद का
नष्ट भस्म कर देंगे तत्क्षण !

अन्यायी के क्रूर हृदय मे
अब विद्रोह मन्त्रणा भीषण
उस भनभन के विप्लव का
राक नहीं पाते गत रावण !
युद्ध नीति की मर्यादा भी
हाती चिर मनम के साधित
कुटिल बंग का निधन ध्रुव निश्चय
फिर फिर करता काल प्रमाणित !

देव दग्ध एम ही हाल में
पश्चिम के नभ में बन दर्शित
धूमकेतु उदय उगा कर
राष्ट्रों को करके प्रमाणित !
पूर्वगामी मग के बिम का
उदय पर दाग मर्प विरण
साम्राज्या का मग निश्चल
दानवेन्द्र पर पाती झोर !

हिंसा प्रतिहिंसा से मोहित
भेदी युग मन का कर मंथन
शक्ति शांति की नम्र रौशनी
यह था जग हित आत्म बोध क्षण !
गमक फूट कर लगा निकलने
चेता विजित मदांध मत्त मन —
स्वर्ग पाप सी शुभ्र अहिंसा
निखर उठी संकट में पावन !

समझ मित्र वह लगा ग्राम जन
भिन्न राष्ट्र का गाते परिभव
अपचलन में युद्ध समाते
विजय धुरी राष्ट्रों की नित नव !
सुन जानते मनुज बड़ा पर
छिड़ा अशुभ शुभ में फिर युग रण
संकट क्षण में नहीं सुहाता
अरि का घाव दुखाना गोपन !

आत्म देश के प्रति वह कथन
अब आवेश रहा जन मन में
प्रगति पुरस्सर राष्ट्र रहा वह
पूँजीवादी युग जीवन में !
बुद्धिमान् थे आत्म भ्रम ही
हमें छेड़ना पड़ा न्याय रण —
मुक्ति माँगती रक्त दान नित
मुक्ति माँगती पूर्ण समर्पण !

पर, साम्राज्य स्पृहा से पावन
अरि न अशुभ के प्रति था जाग्रत्
वह धार्मिक नैतिक आध्यात्मिक
गोपन था भारत भू का हृत !
भू क्या थी जर्जर धन पंजर,
दुख दारिद्र्य अशिक्षा पीड़ित
मानवता का मत न था वह
आत्म धन धन हित से प्रेरित !

यमन् भस हा भू मंगल हित
पर, अनिवार्य प्रयाजन शासन
सम्भाषन क्या ? माह मय हित
भाह शक्ति का लौह समटन।
दैव विदर्शी शासन म वव
संभव जनगण का हित साधन
धारम पराजित पीडित शापित —
पराधीन शापित शासित जन।

पौराणिक युग क उपक्रम में
स्थूल पदार्थों हित मापित
पश्चिम न छप बल उद्यम स
किया विविध दशा का अर्जित।
जाति धीण सामंती पीडक
रहा मध्ययुग का तब भारत
शास्त्रों का वैज्ञानिक युग क
स्वर्गों म हाना था आगत्।

विश्व युद्ध की छाया में घन
बरस स्थित थी युग का चिन्तन —
क्या हा भारत नीति ? युद्ध का
मित्र साथ छूट न मुक्ति पथ।
महा प्रतिभा ग्न पथ बाधक
भारत भाग में अप युद्ध मन
भारत जन जूझें अति हित तत्र
भारे जब लिय दुस्तर बंधन।

क स्वराज्य न समभागी हा
भरे गमन हित जन धन अर्पित
स्वाभिमान का नहीं गन्द पथ
मण प्रबद्ध भर का था स्वीकृत।
सर्वेन्द्रिय दम पर ईं था
नहीं धर्म पथ था मय हित
गाँधीजी अनिसार वाम न
सम्पूर्ण म ठीन्त विराम लिए।

मित्रों का जय कामी भारत
उनके प्रति सद्भाव विज्ञापित
जन धन मन से विश्व युद्ध में
मित्र राष्ट्र के संग था निश्चित !
पीत दास रह शोषक के हित
बरबस जन का देना शोणित
घोर अनैतिक अहित स्थिति थी —
प्रथम मुक्ति थी उसे अपेक्षित !

अरि का अरि, कृमि उग का कृमि अब
दास ठोकता बड़ा द्वार पर,
बरसा मलया निगल फेरता
गृध्र दृष्टि भारत पर दुर्धर !
हिंस्र क्रूर साम्राज्यवाद था
पर नात्सी फासिस्त क्रूरतर,
इन मांत्रिक दैत्यों के आगे
सैनिकवादी निप्प भयंकर !

निज प्रबुद्ध मत के विरुद्ध जन
युद्ध कर्म को होते बाधित
अंध स्वार्थ के अग्नि कुंड में
घास फूस खर तृण से अर्पित !
भारत के सम्मान योग्य था
यह विक्षोभ मूक जन मन में
प्रकट हुआ था पुन व्यक्तिगत
सत्याग्रह के प्रतिवर्तन में !

जन को आज स्वातंत्र्य चाहिए, —
दिया लोक नायक ने नारा
विश्व युद्ध का अंतरंग रण —
मन बन गया भारत सारा !
विश्व क्षितिज में अग्नि शिखा से
प्रज्वलित भारत का नैतिक पण
जग के मनीषियों के मन का
बना आत्म चिन्तन का कारण !

विफल हुए सब संधि यत्न जब
विनय त्याग प्रत्ययन प्रबोधन
रानी के बदले तोपक से
भूखा ने जब पाए पाहुन –
क्षमा मनु छोड़ा नर वर ने
भारत छोड़ो का अद्भुत रण
ग्रास दिया क्षण में जन सम्मुख
ज्यों स्वराज्य का स्वर्णिम तोरण !

भिन्न भिन्न किया उन्होंने निर्मित
बाहर पग मत भीतर जन मन
स्वर्ग उतर आया ज्यों भू पर
भारत छोड़ो का आन्दोलन !
भारत छोड़ो ? सहसा अरि का
नहीं हुआ विश्वास एक क्षण
वह उद्घोष न था कौतुक भर
तीस कोटि जन प्रतिनिधि का पण !

छोड़ो भारत का ईश्वर पर
तुम्हें नहीं यदि आस्था प्रभु पर
तो छोड़ो विप्लव के हाथों –
स्वनगान का उठे बर्बर !
श्रेष्ठ भरामरता बबरता –
अधम दासता न छूटे नर,
तब मनेंगे अरि न हटेंगे
भारत भू जन श्रेष्ठ भूम कर !

सर्गा मांग मने का अवसर
अरि ने अब क दिया प्राण पण
बापू के संग उसी रात को
पकड़ लिए घर सब नेतागण !
पथ दर्शक के बिना भाव में
क्षुब्ध हुए सब जन गेने जन
चौरि [illegible] [illegible] का युग नायक
बनते हो जन भू अरि से रण !

विष पावक श्रम से समुद्र का
वह था जन युग जीवन मंथन
क्रुद्ध दमन पग धर आया था
करता निर्मम ताण्डव नर्तन।
दानव डग भर वह जन मन की
हिल्लोलों का करता मर्दन
भारत क्या था — मूर्त दमन अहि
फूत्कारें भरता सहस्र फन!

चलता स्वेच्छाचार शीर्ष पर
विजयी होता दंभ न्याय पर
पीट पेट के बल रेंगाते
नग्न निरीहों को प्रभु के दर!
लाठी बरसे कुन्दे मारे
निःशस्त्रों का करते स्वागत
प्रदर्शनों पर गोली चलती
अश्रु वाष्प बम फटते शत शत!

रेल पेल धक्कम धक्के में
कुट पिस जाते मुखर नारी नर
भारत छोड़ो — नारा देते
क्षुभित भेड़ियों से न तनिक डर!
अंधड़ झंझा पद से मथित
आहत झंडा के जन मन में
हाथ पैर धड़ कटे फटे सिर
टूटे पंजर बिछते क्षण में!

गलियों में जम का जबड़ा कर
घर घर घुस पड़ते अरि बर्बर
अत्याचार बलात्कारों की
अकथनीय वह कथा भयंकर!
आग लगा ग्राम हाथ सेंकते
फूस मुहल्ले, टोले पुर पर
दानव का मुखड़ा घुस पड़ता
दस्यु सभ्यता के दुर्मुख मर!

पानी पस मुर्ते म पानी
सींच ढाइते बदी पत्थर
पिसते गात अभिघात दम में
कृषक दमन पाटों में दुर्धर!
अहिंसा का व्रत अनुशासन —
हँसते पिट भी मौन वही सर,
शूद्र कूर पशु बनता जितना
जगती पौरुष सिखा उज्ज्वलतर!

हाट बाट की मुठभेड़ा में
सभा समाजों में सविनय जन
भूषित नृत्यों की बातें भर
मनुज हृदय छू अविचल पण!
वह नव युग की प्रथम कल्पना
नव मानव संस्कृति का युग रथ
आत्मदान का अभिसारी था
उस युग हो जिसका भू मग!

जिधर नर निश्चल हाट पथ —
सैनिकों ने हथियार डाल कर
किया प्रकट विरोध दमन का
पौरुष में पर त्याग निरंतर!
जागी पुलिस चौकियाँ द्वार पर,
तार पोल व तार गए कट
उखड़ी हाट पटरियाँ रेल की
शासन की नाड़ियाँ गईं फट!

आत्म शुद्धि हित अनशन व्रत में
बापू की आस्था थी अविचल
सत्य स्वप्न-स निश्चय अग्नि में
स भू जीवन का हवन मल!
प्राण ना व मृत्यु मार्ग में
सब भू मन का बन्धन आकुल
प्रायश्चित किया मग मर म
पग हृदय का किया अर्पित!

जीवन द्वार

आंग्ल भास बन गया — कालिमा
घटी न प्रति पातक की प्रथम
छूट गए शूली से ईसा
हरने जन भू का पातक भय!
नहीं चाहते थे युग द्रष्टा
नहीं चाहते थे भारत जन
सांप छछूंदर के इस रण में
मनुष्यत्व के उर में हो व्रण!

निखिल विश्व के पाप नाश हित
आत्मोत्सर्ग बना आवाहन —
पश्चिम के देशों का गौरव
हिंस्र अस्त्र शस्त्रों का बस रण!
प्रतिध्वनित होता जगती में
भारत आत्मा का नैतिक प्रण
नयी चेतना दिशा जगाता
आत्म शक्ति से लोक उन्नयन!

प्रकटे थे युग पुरुष उस समय
निकट आ रहे थे जब भू जन
वैज्ञानिक अनुसंधानों से
दिशा काल के रहे न बंधन!
जातियाँ वर्ग वर्ण मत्सर बन
घनीभूत होने थे प्रतिक्षण
स्तंभित था मानव विकास क्रम
भू पर जगता पशु संघर्षण!

जीवन रचना में योजित हो
भूत शक्तियों का अन्वेषण —
आवश्यक था मनन शांति हित
नव आध्यात्मिक ज्योति जागरण!
मन के मूल्यों ही के बल पर
मनुज विकास नहीं संभावित
भारत भू के हित विशिष्ट चिर
कर्म जगत् पथ में निर्धारित!

भौतिक युग के काम पुरुष को
अन्तर्मुख हाला आलोकित
प्रथम हित विज्ञान ज्ञान को
बहिरंतर जीवन संयोजित !
ऊर्ध्व दृष्टि लेकर आए थे
सर्वदिक् जीवन के उन्नायक
सत्य सिद्धि हित धर युग धर में
सत्य अहिंसा का अणु मापक !

महादेव सेव साध्वी का भी
शासित बलि कर मर कर अर्पित
जीवन उन्मुख हुए जगत हित
जीवन संगिनि न हो वंचित !
बरना अहिंसा संघर्ष पट में
रहा बहुत कुछ गोपन अकथित,
कुत्सित क्रूर दमन की काष्ठा
कभी भविष्य कहेगा निश्चित !

मुक्त हुए कारा से बापू
मुक्त वीर बंदी मनामय
सफल हुआ युग-स्वप्न पुरुष का
भारत न पाया स्वागत धन !
विजय अहिंसा की कहिए या
विश्व युद्ध न घटित विस्मय
विवर्त या जड़ यथार्थ का
पावन करिए युग का निर्णय !

द्वन्द्व जगत की मार्ग क्रांतियाँ
मंगलमय विधि न अनुगामिनि
अधिमानस का गूढ़ नियम यह
धर्म दुरात्मा का अब निश्चित !
जब थी मिली सुहृद राष्ट्रों का
साम्य वश बल न था मन्वित
आत्मघात ही मन्त्र सुगम था
गांधी एक अधिमानस के हित !

हिरोशिमा नागासाकी पर
भीषण अणु बम का विस्फोटन —
मानवता के मर्मस्थल का
कभी भरेगा क्या दुःसह व्रण !
शीत फिर छिड़ा उठा शक्ति मद
भरता नभ दिग् दारुण गर्जन
उपजा भौतिक युग अणु दानव —
जड़ भौतिकता के अंतिम क्षण !

मानव आत्मा की विमुक्ति की
भारत मुक्ति प्रतीक असंशय
कटे विश्व मन के जड़ बंधन
हुआ चेतना का अभ्युदय !
भावी नव इतिहास कहेगा
कवि वचनों का आशय गोपन
निश्चेतन के अंध तमस से
निकल रहा भू जीवन प्रांगण !

फूट डाल अरि करता शासन
बढ़े साम्प्रदायिक संघर्षण
मध्य युगों के नरक प्रेत अब
लड़ते गत छवियों का मृत रण !
अंतिम लौह मात्र वैरी की —
भारत का कर क्रूर विभाजन
क्यों फिर भावी विश्व युद्ध हित
रचा शिविरों में रण आयोजन !

भारत में उद्वेलित सागर
कर्णधार युग नायक का दृढ़ मन
जनगण बल अहि रज्जु कोटि पग
मंदर गिरि स्थिर त्याग संगठन —
आत्म शक्ति पशुबल जुट मथते
नव युग देवासुर संघर्षण —
जब स्वराज्य लक्ष्मी प्रकटी तब
जन भू मंडल हित था शुभ क्षण !

अगणित सागा के त्यागों से
हुआ मुक्ति प्रासाद प्रतिष्ठित
प्राणों की पावन आहुति से
उठा रश्मि-सोपान स्वर्ग स्मित!
धन्य अहिंसक भारत के रण
सत्य मित्र जय जन रण मानव
तुम पशु बल को प्रीति प्रणत कर
मानवता के बने विधायक!

बहि संगठित पश्चिम जग के
प्राण स्पर्श से हो युग जाग्रत्
निज से धरि म सब गत बन्धन,
पराधीन अब रहा न भारत!
उस मुक्ति-रचना करनी अब
अपने हित जग जीवन के हित
युग युग का भू कल्मष धोकर
पशु को बना मनुज अब सम्भृत!

उतर रहीं उषाएँ भू पर
जन मन तम का कर आप्लावित
स्वर्ण रश्मि स्वातन्त्र्य सूर्य जब
जन भू द्वार करे दिग् प्लावित!
भारत की अध्यात्म ज्योति में
भूजन शांति हो विश्व संगठित
अमृत महिमा बने धन्य सब
सत्य करे जन-भू पथ दीपित!

भारतीय स्वातंत्र्य शांति का
अमर दान जन भू जीवन हित
निज महिमा-शिखर धरा पर
होना जन मंगल हित निर्मित!
युग युग का पशु-बल अपदस्थ
रूप स्वर्ग पा निखरा मनुज
महत् हो उठ जग गरिमा
भारतीय महिमा से मंडित!

स्वर्ग खंडवत् भारत भू को
छोड़ा क्यों पापों में परवश ?
कुटिल काल गति युग भू स्थिति या
जग का मत माने या अपयश ?
सदे सूर्य साम्राज्यों के दिन
घटते नित अघटित परिवर्तन
दीर्घ दृष्टि कूटस्थ प्राज्ञ बन
काल चक्र के प्रति नित चेतन !

उल्कापों से मुकुट टूटते
उलट पुलट धँसते सिंहासन
महत् क्रांति का युग अब जग में
दिग् भू व्यापी लोक जागरण !
अंध धरा के ओर छोर सब
दीपित करता नव युग पूषण
निम्न गर्त भर समतल बनते
मिलता रज में जीर्ण पुरातन !

मंगलमय की मूर्त पीठ भू
मंगल हो जन जीवन मंगल
भारत भू की स्वर्ग मुक्ति हो
जग भू हित आध्यात्मिक संबल !
शांति ! शांति कामी हों भू जन
रजत शांति छाया में निर्भय
प्रगति करे रचना प्रिय जन मन
हृदय स्वर्ग सर्जन में तन्मय !

मुक्ति पथ जन गया रहे वे
जन नायक के लिए मौन व्रत
वह उपवास करुण प्रतीक था
रक्त पंक था रंक नवागत !
अंतिम आहुति का क्षण आया —
लोक रहे वे तब मृत्युंजय
मर्म रुधिर पीकर ही बर्बर
भू की प्यास बुझेगी निश्चय !

भीष्म ग्रीष्म बीता तप ओंट कर
मंद धूप से मूँद दिगंबर,
वन्य व्याघ्र व मरुत बवंडर
मूक रश्मि रण तूर्य प्रखर स्वर!
सुलगा धुनी कोई तापस वर
माटक माथ जटा धर धूसर,
हा प्रचंड पंचाग्नि सिकता
भस्म रमाए उग्र देह पर!

मृदु रवि कर स दीप सिंधु जल
श्याम वाष्प घन गहरा क्षितिज पर
नहलाता नभ छिप पथ भू को
बरसा गगनमुग्ध सौंध शीकर!
भाग्य लक्ष्मी को अभिषेकित
करते हों दिग् गज अम्बुद कर
रोमांचित की गन्ध हरित भू
मुग्ध वायु सी पा स्वराग्य वर!

जन मन भावनों की विद्युत्
मत्त भावुकी हर्ष घोष कर
नभ गुह-भर मिलता सागर में
सागर उड़ नभ उर दमा भर!
इन्द्रधनुष सुर वंदन करता
मुक्त दिशों का अभिवादन
उड़ उड़ सित बक पंक्ति शांति ध्वज
शुभ्र कांति न दुग्धी लाघव!

राष्ट्र मुक्ति ने प्रथम प्रथम बार भर
विश्व स्वतंत्र धरती भू पर निर्मित
मनुज शांति के अमर सूत्र में ग्रथित
स्वर्ग पीठ करती जन-मन पर स्थापित!

धन्य पात्र मर्यादित न सकल जग न
जीवित रावण सम अज्ञान मन में
मानव बनना हुए, दीर्घ दुष्कर अब
धन्य मूर्ते! साहित्य श्रम व आगम में!

संस्कृति द्वार

१ आत्म दान
२ संक्रमण (ह्रास विघटन विन्यास)
३ मधु स्पर्श

आत्म दान

आँसू मे माहोमी
भू उर का शोणित व्रण ?
श्रद्धा मौन करोगी
मन प्रसून समर्पण ?
अमरों की गाथाएँ
गाई [illegible] वाणी
निधन न यह जीवन बलि
जन भू हित कल्याणी !

गत निर्गति ! मुक्ति उपक्रम में
भारत का [illegible] विभाजन
साया संग दुर्गति प्रति
कटु रक्त पात [illegible] गृह रण !
भू मन की दमित विकृतियाँ
हत बम रिपु [illegible] म पोषित
भड़की भीषण [illegible] में
हिंसा जिह्वाओं मोहित !

स्त्री शिशुया बूढ़ा का वध
नर हत्याएँ, क्रूर पाने
व्यभिचार लूट लंपटता
कामी [illegible] बातें !
दुर्गत राम [illegible] नि
[illegible] आवेश [illegible]
गत [illegible] [illegible] [illegible]
करते जन भू नर [illegible] !

[illegible]

निश्चेतन अंध गगन था
जग का आक्रोश भयानक
धधका विषाक्त धूमों में
कर्दम पर्वत का पावक!
जनचर दहाड़ता मन में
आदिम हिंसा को उन्मुख
नर पशु रक्ताक्त नखों को
खोंपता ओप मानव मुख!

बादल से जल के बदले
बरसें बाष्प पावक कण
शुचि स्वाति त्याग मोती को
अब करे ग्राह तिमि धारण!
मानव उर का प्रेमामृत
बन गया घृणा विष भीषण
मधु पुष्प हार पन्नग बन
डँसता फुफ्कार प्रसित फन!

यह नारकीय प्रतिहिंसा
बीभत्स घृणा का उत्सव
हत्या का पैशाचिक सुख
शोणित की ज्वाला का मद!
निर्ममता बर्बरता का
ईर्ष्या स्पर्धा का तांडव
कटु कलह क्रोध कृत्या के
कंकालों का भैरव रव!

मन रूढ़ि रीतियों के शव
लघु स्वार्थों में पथराए
अंधे मृत विश्वासों के
प्रेतों से भू पर छाए!
सभ्यता क्षीण संस्कृति के
उच्छेदित सूखे पंजर
दुःस्वप्नों की दुःस्मृति से
यम काल दंश के पैंदहर!

उन्मूलित वन
हत पत्तों का वृक्षों - से
मचता उठ गिर - पड़ विस्थापन
हाहाकोला हो घन बन जीवन !
पशु बलात्कार, वन घर्षण
छीना झपटी आयुध धप
मत मृत मत हों छूटे
मय कंपित कर भू प्रांगण !

टूटा निरुद्ध प्राणों का
विक्षेप मूढ़ संघर्ष बन
भू कंप सांप्रदायिक
था धर्म भ्रष्ट वह
उद्दंड पागलपन !
उन्मत्त कल्पना के संग
फिर वासना मर्दन
भर नगर नगर दृश्य का
वन में प्रत्यावर्तन !

कण मसक मग्न धर्मों को
स्नान काट उठा हँसते धम
बच्चों को चीर पटक झट
द्वेषाग्नि बुझाने पावक !
भगदौड़ भाग कोलाहल
बनते पुर नर पथ निर्जन
मंदिर मसजिद के ईश्वर
घण्टा गंजन स्पंदित मन !

गिरि तट में शब्द करते
टकरा हाथी ज्यों [illegible]
उन्मत्त [illegible] भड़ भिड़ ज्यों
गिरते भू पर [illegible] !
उभरा मूढ़ मन [illegible]
[illegible] [illegible] पर [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] में [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] !

[illegible]

स्तब्ध मूक भय स्तंभित
देखते स्तब्ध हत प्रभ जन
दुर्दांत आत्म ध्वंसक वह
धर्मांध सांप्रदायिक रण !
जैसा शोणित सागर का
हो प्रलयंकर उद्वेलन
या उमड़ रहा हो भू-उर
विष अंधकार पावक घन !

अनभिज्ञ काल गत मति से
सामंती युग के पंजर,
मृत रूढ़ि रीतियों के शव
अनपढ़ अनपढ़ कुण्ठित नर,
इस रक्त काण्ड के पीछे
वे मध्य युगों के खँडहर,
उच्छिष्ट जीर्ण संस्कृति के
स्वार्थों के कट्टर पत्थर !

अब उत्तेजन से पागल
हत मनुज दनुज बन बैठा
आदिम बर्बर पशु बन कर
फिर अंतर में हो पैठा !
मत्सर रोष पावक को
भड़काते घृत आहुति सम
वह सर्वग्रास था मति का
चेतना दीप्ति हत तम सम !

दुष्कृत कल्मष का प्लावन
लोटता मत्त जन भू पर,
मन स्फीत मृत्यु फन फैला
फुफकार छोड़ता विषधर !
गृह दाह मार धाड़ों की
कुछ भाषा प्रकरण भीषण
प्रकम्पित ही रहे गिरे वह
चीत्कार, त्रास बन रोदन !

उस प्रमय माह में करता
पथ उन्न दूब नव शासन
धव किया सोक भर ने उठ
फिर छिमुनी पर गिरि धारण ।
नैतिक समर्प मे उसका
विमलित प्रखर था पर्वंर,
उस तड़ित् स्वाभिमय घन सा
जो मग न हो मृदु प्रमथर ।

आंधी में प्रतिग शिखर सा
दुर्गम वन वन में घूम कर
विचरण करता एकाकी
वह मोद तेजय हित शासर ।
था राष्ट्र मुक्ति – चिन्तातुर
करता वह अंतर मंथन
कैसे हो एका भ पर
भाई सब धर्मों क जन !

यह धरती स्नेहमयी मा
प्रभु पिता दामाम्मृत मागर,
वसुधैव कुटुंब बना युग
क्यों यह मकल न परस्पर !
आत्माहुति देकर भी मैं
जोड़ूंगा यह मर हृया
सब मनुज एक – ।। सकता
यह मत्य कभी का मिथ्या ?

मानव का धर्म नम म बड़
सत्ता मद यम्प धरा पर,
जनगण जिसके बहु कर प-
गिर मुग तन मन बहिगर !
सब धर्मो का निश्चित मन –
धर्म मत्य एक ही ईश्वर
जो प्रेम न्याय करुणामय
जिसको समान चराचर !

शान्ति हार

सब धर्म सत्य ही के पथ,
मेरा दृढ़ अनुभव निश्चय
आस्था श्रद्धा मन करुणा
सब का ही सार, समन्वय !
प्रभु एक जगत् कर्ता को
अल्ला कहिए या ईश्वर,
वह सर्व भूत रत व्यापक
सब संप्रदाय से ऊपर !

घन घृणा द्वेष हिंसा से
कैसे रह सकते जग में ?
भय काम क्रोध मद तृष्णा
बाधाएँ जीवन मग में !
श्रद्धा करुणा भव संबल
कहता मैं वचन सनातन
तप त्याग विनय नय संयम
पाथेय धैर्य पथ साधन !

वह धर्म लोक मूल्यों को
करता जनमन में वितरित,
नव संस्कृति के पावक कण
अब भस्मावृत जीवन मृत !
वह व्यक्ति साधना पथ था
अति कृच्छ्र, ऊर्ध्व आरोहण
अब स्वर्ग प्रतीक्षा रत था
समवित सामूहिक जीवन !

धर्मों के दिन अब बीते
आस्था आलोकित हो कर
नव संस्कृति में विकसित हो
मन मंदिर में करती घर !
आध्यात्मिक भौतिक अविरल
सामर्थ्य तुल्य संयोजित
ईश्वर भू जीवन मानक
अब भित्ति हो रही पीठित !

अस्तमित मित्र की अंतिम
नत किरण ! महत् तम पर्वत
उसको दिव्य दीपित करते
वह झूम रही अप्रतिहत !
युग संध्या की छाया में
बढ़ता जाता सागर तम
नव यम प्रभात को टहरा
मतिया का था दिव्य गत भ्रम !

उस अमृत पुत्र की आशा
जानती न बाधा बंधन
धर्मार्थों का । वह दृढ़ता
नव आत्म ख्याति का मोचन !
उच्छ्वसित हृदय बहता वह
उनसे सद्धर्म वचन नित
जन जन में सुभगी हिमा
श्यामा को करते प्रशमित !

मीमा पैदम बस पर पर
जाता सीधा के भीतर
पीड़ित शोषित शासित को
आश्वासन दे दुख भय हर !
भू - स्वर्ग दूत सा संग संग
वह नव प्रकाश से जाता
जन मन का तम हर उर में
सुख शांति किरण बरसाता !

हिन्दू हो पार्थ मुसलमा
वह जाता तन मन का धन
वैराग्य विचार घटा तम
हरता बन प्रेम प्रमपन !
दोनों नित धार्मिकता का
करते [illegible] अभिवान्द
वह राष्ट्र पिता निज का
दर्शन भग का निर्धन का धन !

[illegible]

नर मन सत्य द्रष्टा हो
स्थित धी हो, सित प्रज्ञा स्मित
भावी के ज्योति विभव से
उसका मानस हो दीपित ! —
क्या कर सकता वह ? निश्चय
जन मन की स्थिति थी कुत्सित
जिस स्तर पर युग भू जीवन
वह नारकीय जीवन मृत !

नोआखाली में धधकी
जो निर्मम हिंसा ज्वाला
उसका बिहार ने बदला
घर फूँक तुरंत निकाला !
पंजाब रक्त से लथपथ
मृत बना क्रूर वध शाला
दिल्ली में लपटें फैलीं —
मुख हुआ देश का काला !

जग जिन्हें अहिंसक कहता
निर्दय पशु निकले वे जन
आदर्शों की लीला मं
सब रक्त पंक बन प्रांगण !
जग के सम्मुख भारत का
आत्माभिमान हो लांछित —
हाय गृह कलहों से था
युग भर का अंतर पीड़ित !

सेना बल पर दिल्ली में
खोखली शांति थी स्थापित
भीतर विक्षोभ गरजता
आतुर थे जन हिंसा हित !
दु:सह विद्वेष घनों से
अंतर धूम्र से आच्छादित
सत् पर थी विजय असत् की
सित ज्योति रेख तमसावृत !

वह था न शुभ्र सत्याग्रह
जन होते स्वत समर्पित
जो रक्त दैन्य कष्ट सहते —
हिंसा कम्पित हों मूर्छित !
वह बर्बर सभ्यता के प्रति
विद्रोह प्रबुद्ध जनों का
यह ग्राह ह्रास विघटन में
पथराए पंथ मनों का !

प्रार्थना सभा में प्रतिदिन
वह करता सविनय प्रवचन
भू रक्त - पात क्षोभ को
उर प्रेमामृत कर वर्षण !
उमड़ अंतर संयम से
विगलित होते जड़ पाहन —
घुलते न घना तम के घन
अघ छय रत था जन मन !

उस न्या प्रेम सागर को
करते नम जन अस्वीकृत
अपनीत विनय पर्वत का
आहत था दृढ़ अपराजित !
दुर्नीति दुःसीम कुचक्री
करते शत दोषारोपण
बरसाते उर का कम्पन
आक्रोश रोष कर लांछन !

प्रार्थना समय बर्बर कर
आघात हानने दुर्जन
वह सभा शिशु मन सहता
उसम न छिना था जन मन !
जब दारुण एक गोली उर में
फट ज्वालामुखी भयंकर
जब हँसे मौन सुनेंगे
कोलाहल में छन स्वर !

तारकनि हार

मन के ढंढ ग्रस्त से
रह सकते भू जन जीवित
शोणित की प्यास बुझे जब
तब हो सम्मति भी जागृत !
प्रार्थना रोक कहते
मैं करता सभा समापन
मुझको न इष्ट बरबस
उद्विग्न करूँ जनगण मन !

यदि शांत रह सकें सब जन
तो शांति स्वयं प्रभु पूजन
शुभ शांति स्वर्ग - संजीवन –
हों शांत प्रशांत हृदय मन !
गीता कुरान दोनों ही
जो हम न सुन सकें सविनय
तो व्यर्थ प्रार्थना करना –
मेरा सीधा सा आशय ! –

भारत सब धर्मों की भू
सब का हो यहाँ समन्वय
प्रिय राम रहीम उभय हैं
ईश्वर के नाम न संशय !
मैं देख रहा – वह कहते –
घन अंधकार युग सम्मुख
हिंसा विनाश के पग में
जीने में अब न मुझे सुख !

यदि करें न द्वेष घृणा पर
प्रभु प्रेम विमुख जन संयम
तो मुझे मृत्यु अब स्वीकृत –
मैं यदि सेवा के अक्षम !
नित शांत स्वस्थ भावों में
रहता आया जन भारत
जीवन जाने आने में

यह रक्तपात पाशवता
क्षण भावों के कारण
प्रति विस्तृत श्रम हृदय, — वह
करता समस्त जग धारण !
यह धर्म नहीं है निश्चय
जो पीता मानव शोणित
नर कंकालों के ऊपर
जिसका सिंहासन शोभित !

हो [illegible] [illegible] बँट जाए —
यह हो भाषा का [illegible]
हो एक हृदय पर जाए, —
पापी [illegible] दिन पातक !
गृह युद्ध — मुक्ति छाया में —
मिटता जाता मन का भ्रम
जन मन में ढूँढ़न मार
बैठा [illegible] — [illegible] का राम !

यदि भाग्य की भी आत्मा
[illegible] जाए — हाँ तमसावृत
जग के दृग से आशा की
होगी [illegible] दिव्य निर्वासित !
भौतिक स्पर्शों से जर्जर
में [illegible] शुष्क उद्वेलित —
[illegible] मोम [illegible] [illegible]
[illegible] उदासीन में मंदिर !

[illegible] भ्रम परिवाम
[illegible] [illegible] मन पीड़न
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का
नर [illegible] [illegible] दीपन —
निर्वाण [illegible] [illegible]
[illegible] मंदिर में [illegible] [illegible] मन
[illegible] [illegible] में [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] मन [illegible] !

१

संग्र

मैं आत्म शुद्धि से प्रेरित
कल से आध्यात्मिक अनशन
आरंभ करूँगा, — इच्छा
मेरे न हृदय का रोदन!
यम भी यह मेरे हित
ईश्वर आज्ञा का पालन —
युग लोक यज्ञ प्रभु होता
मुझको बनना आहुति बस!

बिजली सा उर में कौंधा
आत्मा का अंतिम निर्णय —
पर दुख में कैसे निष्क्रिय
रह सकता कोई सहृदय!
भारत में बिचर सकें फिर
सब धर्मों के जन निर्भय —
सत् पाए विजय असत् पर,
तम पर प्रकाश की हो जय!

ईश्वर इच्छा पर निर्भर
अब मेरा अर्पित जीवन
बन सकें प्राण मन मेरे
प्रभु इच्छा के हित दर्पण!
यदि रहे स्नेह छाया में
कटु द्वेष भला फिर जनगण
तो सार्थक न पर मेरा
उसके हित जीवन धारण!

मेरी चिन्ता न करे जग
मत करें हृदय मन मंथन
मुझको न भीरुता किंचित्
संपूर्ण शुद्ध हो जग मन!
यदि दिल्ली शांत रहेगी
तो शांत रहेगा भारत
बनता आदर्श निदर्शन
देशीय नगर भी ले बन!

मैं परम शांति में हूँ अब
मुझ पर मत दया करें जन,
अपना उर मुकुर सँवारें
हसते उसमें प्रभु आनन !
गौं विहग विस्मय जीवन म
प्रिय मुझ मृत्यु आवाहन —
मानव का उच्च उत्थान
कर मर प्राण मन अर्पण !

उस पग धाम म तप कर
निग्रग भू मन का कापन
वह आत्म शक्ति अभिषिक्त
जग मन रुचि का धा दाग !
ताव प्राण छाग म भू क
भस्को न दिया प्रत्य पग
हुम म" माव भूमँग —
मैंठ भानु उम में कुनम !

विन्यास प्राप्त कर जन का
नर पर म तारा पगमग
कुहरों म बढ़े छ फर
भय घृणा प मम क घन !
पग मन क कुष्ठ दागा में
उमन कर तन मन परम
जन कू का पुन उदाग
संकर कम्प म म दान !

पर, दूर अभी का शुभ दिन
जन प्रेम बनें मानव जन
उसम सुन्दर स्वर्णिम धा
जन निखरें प मानव मन !
जन धर्मों मर्यादिनों में
दुर्गम विराट जर विचरण —
भू मन का मान परिणित
दब मजन भावना पावन !

इस भारतीय हिंसा के
मानव का करुण समापन
प्रिय बापू की बलि में हो! —
ओ अकथनीय मर्मान्तक क्षण!!
प्रार्थना सभा को जाते
साकार प्रार्थना-से नत
वे हुए निछावर भू पर
नर पशु प्रहार से आहत!

विश्वास न होता अभी
हतवाक् रहा सुनता मन
उमड़ा अँधियाली का घन
स्थिर श्वास चक्र था उस क्षण!
कुछ मूर्छित मर्माहत जन
सँग चले प्राण अर्पण कर
मर सकी न अमर अहिंसा
था कायर हिंसा का शर!

धन भू मन का कल्मष धो
अब पूर्ण शांति में हरि बन
शाश्वत विराम लेता वह
कर निज सर्वस्व समर्पण!
उसके शोणित से रंजित
भू उर का लोहित प्रांगण —
स्वर्गिक स्मृति सुरभि सँजो कर
नव महिमान्वित स्वर्णिम दस!

मृत्युंजय की इच्छा वह
या विधि अभिशाप भयंकर?
कुंठित भू आहि उस दंशन
था क्षुब्ध भर का अंतिम वर!
वह प्रथम विश्व मानव का
था शुभ्र समर्पण भू पर,
अब निखिल धरा उर मंदिर
था मृत्यु स्पर्श लिए निःस्वर!

यह नियम प्रथम अम्माम्य
सब विश्व ऐक्य का निश्चय
मिट मनुज प्रजाग विरय म
भू गुहा हुई ज्योतिर्मय!
जग के प्राण कोन में
छाया महिमा मधवन् तम
मधु देन गाए मीमातें
जिसन की पावन अनियम!

उस महत्तुण की गरिमा म
भू मन क्षितिज हो विस्तृत
युग मानव के प्रति अभिनव
आस्था म श्रमा समर्पित!
यह ज्योति जग रही अब भी
उर के असंख्य दीपों में
मुक्ताभा मौन चितुरवन
जग मन के रूपि सीपों में!

जागरण प्रभव बन खिलती
यह जग जीवन पतझर में
नमय मध शिप बन गाती
युग कवि के प्रणि स्वर म!
उमरी भस्मार प्रकृति म
तीर्थों के मित्र जग पावन
हँस उगा पुष्प भू रज पर
उर सौरभ स भर आगन!

आ मग-मग की गत रज
गरल-धनि धना मित
दह राग स्पन्द सब मगला
चिर रुचिर प्राणा शक्ति –
आस्था का धनपुज उर
मन्तर हो प्राण समर्पित
तब वही वर मन सत्य
सर्वधर स्वरूप का निर्मित!

संस्कृति द्वार

यह राजपाट में छ
मानो कविते हम नि
श्रद्धा भक्ति करें समर्पि
नत मस्तक परिक्रमा कर
तुम स्फटिक शुभ्र शब्दों
कर स्मृति समाधि गृह विरचित
उस अक्षय युग आत्मा की
गरिमा में रहो सुरक्षित !

आत्मा से बिछड़ अविच्छिन्न
मन पंच तत्व जीवन मृत —
निज मौलिक रूपों में मय
अविरत सेवा में अर्पित !
मन पवन सुगम व्यजन सम
हरता अगम जीवन श्रम
भू — तपस्तेज से गर्भित—
तजती निज निश्चेतन तम !

नत नभ सहस्र दृग प्रहरी
जगता निशा में उपासक
निष्काम शांति बरसाता
भावों में शीतल पावक !
शुचि तुहिन मोतियों में हँस
जग धोता चरणों को नित
श्यामल ममता गाती शुभ
स्मृति पीर स्वरों में मुखरित !

यह ऋतुएँ मधु प्रांगण में
करतीं शोभा नत वंदन
सौरभ छायातप सुरधनु
शशि स्मित हिम सद् कर अर्पण !
उन्मुक्त नील के नीचे
भू आत्मा सोई बाहर
यह जाग रही अंतर की
नि सीम ज्योति में निर्भर !

लो, हिम की म्लान छिपा था
शाश्वत प्रकाश का पर्वत !
जागी अब उसकी मन की
आँखों में दृश्य अद्भुत !
रज तन पर तृणवत् अर्पित
उठता वह प्रभा घन मिश्र
आलोक छत्र सा छाया
भू पर - शिव उर पर विगलित !

स्मृति मज्जन हृदय में उभरे
भ्रम स्वप्न मनु - सुरधनु स्मित
वह मानसवत् जग भूधर
उड़ता नभ पथ पर दीपित !
उठ धूम ज्योति अम्बर को
करता जाती अभिसर्जित -
भू स्वप्न मुकुर हो सुन्दर
मंथित हो शून्य महत् स्फुट !

चिद् बीज प्राण मन भू का
रज रश्मि कान्ति कर उर्वर
बहु में स्थित एक पुरुष का
सब स्थिति में गूढ़ परात्पर !
वह शून्य पुरी अपार था
चित्र था जग में अगणित का
वह रूप में बहु रूपों में
विकसित होता वह भू पर !

जिसमें जिसका दर्शित उर
स्रष्टा - सम्भूति में मूर्तित
कर भरे प्रकृति न स्वाधिका
कर स्वयम् मन में जिसमें स्थित !
कर पावन उसके पग पर
उर धारा नीर कर अर्पित
था रहा त्याग न माया
सब करी मैं भव मानस !

नित जन्म मरण के तट पर
चलता ज्वार से प्लावित
संसृति क्रम में वह रखता
नव यौवन स्रोत प्रवाहित!
पीढ़ी पीढ़ी भू जीवन
होता विकसित संवर्धित
बसता यथार्थ मिचौनी
नव क्रम में हँस छिप छिप मिल!

बौद्धिक सोपानों पर वह
मत गिरे ऊर्ध्व में हो सम
नव उतर, — प्रणत पग रख भू
से युग चरणों का आश्रय!
भू नव युग चरण धरण कर,
मन में मत ला भय संशय
ला व्यक्त जगत् धन्य स मय
सांस्कृतिक बल का आश्रय!

जय राष्ट्र पिता जन मानव
जय शुभ्र पुरुष युग संभव
जय आत्म शक्ति के पर्वत
भू स्वर्ग दूत युग नर नव!
तुम छू जन जीवन के बहु
जर्जर पक्षाहत अवयव
भू संस्कृति को युग मन को
दे गए ऊर्ध्व नव गौरव!

नव ज्योति लप तुम — शिखा
जन मग लाँघ में बिम्बित
गौतम ईसा म उज्वल
नर चरित — स्वर्ण भू विस्तृत!
पथ भ्रष्ट मनुज युग को तुम
दे गए साम्य संघ साग्रह
सत्कर्म चेतना का कर
भू मंगल हित आवाहन!

कृषि युग की नैतिकता की
तुम अंतिम दीप शिखा बन
मानवी संस्कृति के छिन्न
नवनीत-क्षमा मृत आकर!
तप त्याग शील सहृदयता
करुणा तुममें सब तन धर
निर्मम यथार्थ के युग का
विस्मृत कर गईं निरंतर!

प्राचीन सत्य का तुमने
फिर किया आधुनिक गौरव
पा रह स्पर्श सब जीवित
हो उठा सत्य का जड़ शव!
सामूहिक बनी महिमा
सक्रिय-तत्व किया का भव
आत्मा जीवन में खेली
रच दुर्गमता पर पा जय!

अब गांधीवाद हृदय में
प्रस्फुटित हो रहा निःस्वर
मनुज आकार कमल सा
जो जरा मृत्यु भय से पर!
वह प्रेम त्याग करुणा का
अणु युग में जीवन हित कर
अंतर्मन ज्ञान धरा पर
रचना उर्वर अनश्वर!

तुम [illegible] [illegible] व [illegible]
भू मन को कर आकर्षित
जन [illegible] में [illegible]
नित [illegible] [illegible] [illegible]!
[illegible] [illegible] में [illegible] की
चिर [illegible] [illegible] कर स्थापित
[illegible] [illegible] [illegible] गये तुम
[illegible] मूर्ति [illegible] [illegible] [illegible]!

सुर मृत्यु गर्त अति दुस्तर
भर सकते मुक्त न भू जन
अपवाद यहाँ आ जाते
सिद्ध स्वर्ग च्युत युग भर जन!
भोगों की जन धरणी पर
जीते मरते साधारण
अमरत्व यहाँ दुर्लभ जो
जन महा का हो भाजन!

तुम स्फटिक सत्य के दर्पण
बहिरंतर सित संयोजित
मन वचन कर्म से अविरत
एकाग्र लक्ष्य को अर्पित!
अंत स्थित बाह्य जगत में
करते प्रशम तुम विचरण
मरते जीवित महा से
वह भू के भय संयम बंध!

सामूहिक यत्न अहिंसा
स्वातंत्र्य युद्ध को निश्चय
सर्वोत्तम देन जगत को—
अणु मर्दित भू हो निर्भय!
नैतिक पुनरुज्जीवन का
जग समझ न पाया आशय
भौतिक भू का आध्यात्मिक
बनना युगपत् नि संशय!

इतिहास पीठिका पर तुम
गर्वोन्नत खड़े भर भूधर
सम्मुख सत जो बिखरा
जगमग संघ जर्जर भू पर!
तुम सृजन चिन्तना के संग
तपस्य भक्ति के निस्तर
सर्वस्व त्याग की प्रतिमा
जन भू सेवा हित तत्पर!

निरुपम सर्वांग समन्वित
जीवन के युग निदर्शन
भगवन् पावित्र्य सरसता
श्रद्धा तप म कर मर्शन –
प्रति मानवीय मानव तुम
पुन आत्म शक्ति का साधन
जन कल्मष धाने आए
करुण तू मार्ग प्रदर्शन !

प्राचीन आर्य संस्कृति के
नव युग क्षिति में सम्मिश्रण
नैतिक शिखरा में मा तुम
जन भू पर करते विचरण !
आदर्श व्यावहारिक तुम
युग मनु कर गए निर्मित
भौतिक आध्यात्मिक जग के
शिखरों पर सत्य समन्वित !

नि शस्त्र निर्दया का कर
दृढ़ आत्म शक्ति में दीक्षित
तुम अस्त्र शस्त्र के आसुर
बल को कर गए पराजित !
दया सत्या करुणा के
उर में परस्य उर्जित
गौरव समुद्र ! – सम्भू – सब
दुस्तर दुर्गम सब मर्दित !

मनीषा में था सुमन
बाला किरणों पावन
धेना भू श्यामा पल्लव
पर धारा गन पर मनपर !
मर्दिता नरिता – लिख
भू भाग आगत उन्नत
मत्ता के हैं नरता
मानो र्शिन सब स्वर !

पशु बल केवल सामूहिक
संहार शक्ति से परिचित
जीवन की शक्ति अहिंसा
रचना मंगल में रत नित !
यह मृत्यु हीन आत्मिक बल
रखती मन उद्यत जागृत
पशु बल प्रमानुगी जिससे
मानव सद् वृत्ति पराजित !

तुम युद्ध मत्त जग के हित
रच आत्म शक्ति का दर्शन
अन्याय घृणा से लड़ने
दे गए सांस्कृतिक साधन !
कटु राजनीति कौशल को
नव पिला सत्य संजीवन
नैतिक गरिमा से मंडित
कर गए मनुज का आनन !

जड़वाद ग्रस्त जग में से
अध्यात्म शांति का केतन
व्यापक गभीर आस्था में
संगठित कर गए जन मन !
भौतिक मूल्यों से पीड़ित
संदिग्ध दग्ध थे भू जन
तुम सत्य शिखा से आए,
धर सौम्य अहिंसक का तन !

नवयुग के प्रथम पुरुष तुम
गत युग के अंतिम मानव
जीवन विराम क्षण तुम न
नर वर स भू पर संभव !
इस वैभव शांति के युग में
प्रत्यक्ष सत् का कर अनुभव
तुम उठे मान अंत स्थित
आगमन न न अंकुर नव !

मित आत्म त्याग म जग में
जा शक्ति हुई निज स्फूर्जित
अविनश्वर वह, मानव मन
करती मतमुंख केंद्रित !
दीक्षित कर गए धरा सम
आत्मा कर जन में जागृत
चैतन्य मूर्त बन आए
तुम जड़ भू क मगन हित !

सकम्प शिखर तुम-सा वह
अविचल रहते पग में नित
शत कोटि कठ म वह पग
बनता ध्वनि पर्वत निर्मन्त्रि !
तृणवत् तन तुमसा - भू जन
आत्मा ईश्वर सदा हित
नैतिक समगन पर करते
तुम निमम युग मन विमथित !

दया न अणिम धरा म
तुम मा समय सयोजित
तुम आत्म एकत्व का अनुभव
कर मन विरत भोग जीवित !
निर्मम निग्रह व प्रतिनिधि
पर हित जीवन मन अर्पित
पा मद विजय तुम जग पर
रा आत्म बनी चिर अपराजित !

युग राजनीति दी तुमका
प्रव गम्य प्राप्ति की साधन
निष्काम लोक सदा की
मतिमय ईश्वर आराधन !
स्यानत्य स्वर्ण - सा निज भंग
गाण प्रथम स्पर्शी रण
गम्भीरता की निगण हा
प्रतिभव उज्ज्वल प्रतिनाण !

आध्यात्मिक आकृति के प्रति
उन्मुख न अभी जन भू मन
एकांगी भौतिकता से
संभव न क्षेम संवर्धन!
उठ ज्योति स्तंभ सा जग में
बापू का आत्मिक दर्शन
भव नौका पार लगाए —
टल जाय ध्वंस दुर्धर श्रम!

तप आत्म शुद्धि पर सेवा
वास्तविक मुक्ति के साधन
वह मुक्ति नहीं जो आत्मिक
भौतिक उन्नति हित बंधन!
भौतिक आध्यात्मिक बँट कर
रह सकते खंड न जीवित
जन मंगल हित जीवन को
होना जग में संयोजित!

अंतर्राष्ट्रीयता का जो
भौतिक आर्थिक रण प्रांगण —
उसका अतिक्रम कर तुमने
फहरा आध्यात्मिक केतन
नव क्षितिज खोल भू मन में
कर दिए ऊर्ध्व मुख लोचन
चेतना सुधा का बरसा
बौद्धिक युग मरु में प्लावन!

पशु बल की आत्मिक बल में
कर सामूहिक नव परिणति
सत्याग्रह शुद्ध साधन में
स्थापित कर अंत संगति
फिर मनुज प्रेम को तुमने
सक्रिय कर, दी जीवन गति
नैतिक एकता निखिल की
घोषित कर, विस्तृत की मति!

में ही
गत युग के उच्छा
कर प्रसन्न मन्य का प्रतिमत
द गाए साथ तिष्ठा पुन
तुम श्रद्धा करणा पर मत्र !
भू पातक पा धर्मो के
बनाता का समपण
भारत जन साठन दान
कर गए प्राण तुम उत्संग !

वह
बापू युग ! अमर रहूँ उपासन
नैतिक जग के आध्यात्मिक
मित्र रक्त रहित अभिशापन !
जीवन रण के प्रतिमा भू पर
बन मत गाति परिच्छेदन
युग विरत मानवता के
जग में सब विधायक !
युग आत्मा बनें

सा
भू के समुद्र देखा उत्तारक
भारत स रहित के
दिग्वाल्य महिमा – ठग पावन !
बन्धुता का बन्धी वी
भौतिक वैभव मन्दिरा हित पावन
मत बना प्रथम भू निधि
नैतिक समृद्धि हो धनधान्य !
गाता निरन्द

भू पा
तुम शान्ति की उग दर्शन
तत स्याम दृढ़ि म में
कर दारा – जर नियमा दिव्य !
बंध आत्मा बन्धी म बर्बर
मर और युद्ध का दामता –
नित शान्ति मुग्ध लेगा
बना उन्नयन बनो मन !
नित के सपन

धन्य चिर हुतात्म! सदियों की
दासी भू के उद्धारक,
तुम आत्म शक्ति के बल से
मनु मृत जन भू के तारक!
प्रिय रहो सदा तुम — निश्छल
श्रद्धा हो चिर चरणों पर,
युग तंत्री साध सके मम
भर सत्य अहिंसा के स्वर!

मैं बढ़ा तुम्हारी कल्याण
पल्लव छाया में युग भर,
जन भू स्पंदन से कंपित
लिख रहा व्यथित कवि अंतर!
भू कंप रहे तुम दुर्जय
सोई भू को कर चेतन
उच्छिन्न न कर उसके पँख
विच्छिन्न कर गए बंधन!

मुक्तात्मा घट में भी जो
रस शुभ्र चेतना संचित
उसको पावन अंजलि भर
कर सकूँ जगत में वितरित!
तुम संयम व मित — जिसको
खोना था जन भू कल्मष
कवि भाव मुक्ति उन्मथित
अर्पित करता पद पर यश!

सौ जीवन का जीया
एक महत् जीवन में
सौ युग जिसके संग नित
बसते थे प्रतिक्षण में!
एक वस्त्र उसके संग
सार्थक भाव समापन
पद चिह्नों पर नत युग
करता मौन समर्पण!

संक्रमण

(ह्रास)

प्नि नियमा की जगती में
संक्रमण निरतर चलता
प्रलयंकर दास मृजन का
जिसमें विराम क्रम चलता ।
चलन मन की पुन गीता
चरमी ह्रासी परिवर्तित
नि भ्रष्ट जम भ्रम में प
हा आप म मन्य प्रताड़ित !

जब ग मुर्दित के मेंग ही
वातावृत मे फूले जन
मगी रंग मी का मीते
हर्षोल्लसित मन पुन मन ।
गागर क गजर नर म
पागा मुमुना म मदिर
मुग्धाई दा में थे
व मराम्याम गुम्फित ।

म न्यपुर क मी भर मे
मर किया मुर्दित परिवर्तन
जप मुनर पान मदुग नर
यी उन मत जन आदन ।
पावन हु गत पुर जन
हरि हरी क वन दर्शन
है । मर वान्द प्रदीप क
दा वप दर्शन दग पावन ।

हरि उर से लिपट गई थी
मृदु स्नेह भाव सी पुलकित
पद रज सगर्व सिर पर धर,
दृग मूँद मधु मुक्ता स्मित!
जगदंबा ने सिर सूँघा
आँचल से पोंछ नयन घन
रघु ने मस्तक उन्नत कर
मत मूक का किया समर्थन!

उत्कंठित हँसा शिविर ने
गाया कुसुमित अभिनंदन
सज वंदनवार पुलक के
रच अपलक चितवन तोरण!
वह प्रथम मुक्ति उत्सव था
बहु क्रीड़ा रंग प्रदर्शन
प्रिय लोक नृत्य गीतों का
युग पर्व मनाते थे जन!

मुक्ता फुहार बरसा घन
फहरा स्मित सुरधनु केतन
रच तड़ित् दीप दिग् तोरण
करते भू का अभिनंदन!
गा जस बलाक कंठी से
हिलि भरती मंथर मर्मर
लगता अनंत करतल वत्
झुक शीश छत्र सा अंबर!

बापू एकांत अजिर में
बैठा था युग चिन्तन रत
चिर वांछित मुक्ति दिवस पर
हँसता सम्मुख जन अभिमत!
स्वातंत्र्य न सिद्धि स्वयं में
कहता उसका मर्मज्ञ मन
वह रचना स्रोत अभिप्रेरित
भू जीवन रचना साधन!

दायित्व स्वर्ग यह दुष्कर,
मन वचन कर्म कर अर्पण
उन्नत आग्रह रह उसका
करना पड़ता संयम !
भौतिक विमुक्ति हो तांत्रिक
वे बाह्य उपकरण निश्चित
जीवन मर्मज्ञ सुविधा ही
आत्मा विमुक्ति भी जीवित !

स्वर्णिम जीवन मंडन हो
भू पर समग्र संयोजित
इंद्रिय मन उर, आत्मा हो
बहिरंतर विभव समन्वित !
जीवनात्माग जन संगम
जग भू के अंग बनें नित
हो प्रेम प्रकाश जगत का,
शुभ रचना शांति प्रतिष्ठित !

अभिलाषें कामनाएँ हों
प्राणों के सुख से संयुत
शोभा का स्मित सदा रयम
रस सुख प्रीति से मुदित !
नव जीवन मूल्यांकन हो
जग स्वर्ग धरा पर स्थापित
बहु देश जातियाँ में बढ़
मानवता हो महिमान्वित !

उपनिषदों की ज्योतिर्मय
चेतना कहाँ अब खोई ?
उर में प्रकाश उतरा जब
तब धरती भी क्या सोई ?
जग जीवन में वह आभा
क्यों नहीं हुई दिग् मूर्तित ?
जन-भू स्वर्णिम प्रकाश से
क्यों रही गगन से वंचित !

यह कथा पुरातन कविते,
बीते सहस्र युग वत्सर,
भारत का आध्यात्मिक युग
चढ़ रहा विकास शिखर पर।
जीवन प्रभात में भू के
पलने में डोले शोभन
वाणिज्य कला संस्कृति का
बह रहा स्वर्ण सुख वर्षण।

आलोक आवरण युग वह
जग हित था दिव्य निदर्शन
विचरण करते भारत में
सुर वंदित द्रष्टा ऋषिगण।
तुम भव्य बिन्दु बन करना
अध्यात्म वृत्त के दर्शन
भू मन भूम पर उतरा
जब ऊर्ध्व ज्योति का प्लावन।

जग प्रांगण में थी विहँसी
सभ्यता प्रथम दिक कुसुमित
श्री राम कृष्ण में भर तप
छवि विभव मुकुट से मंडित।
भगवद् गीता भू की गुण
गरिमा गाने में अक्षम
तुम करो नमन प्राक्तन को
पद युगल, शिरे, धर संयम।

भारत नंदन वन में अब
दिग् धूसर पतझार का क्रम
बिखरा पात स्वर्ण जहाँ पथ
पसरा है रहा नरक तम !! —
बंदी ने सजल नयन से
आहत तन मन से देखा
गृह कलह राष्ट्र मस्तक पर
थी घनिट कालिमा रेखा !

भारत का कदम विभाजन
था युग में पाया जन मन
भगरा का कटु कोलाहल
भरता उर में उद्गमन!
जिस भाग्य महिमा तप से
भू में पशु बल पर था जय
साम्राज्यवाद रवि का म"
निस्तेज किया हर जन भय! —

लोहित कदम में लथपथ
मिट आत्म शक्ति बह भी हत
कटु भारतीय हृदयों मे
भू का गौरव मस्तक नत!
बहता मन जातियों से मैग
मोए आगे जा प्रतिगण
वे एक नहीं हो पाए,
क्या इसका दारुण कारण!

बँट दो विपरीत शिविरों में
रह सके युगों तक दो जन
मिल सके न वे भीतर से —
कैसा उनका गोपन व्रण?
क्यों मानव करुणा ममता
था बैठी निज आत्मोप?
कटु घृणा द्वेष बर्बर में
मन गए धर्म दीक्षित मन!

भू खंड एक महादेश सम
जीवन स्थितियों से प्रेरित
बाहर के बाल - मुकुट य
भाग्या मे रहे मर्यादित!
मन भिन्न क्या मानों म
जो हुए बाह्य कसौटी
भारत प्रयत्न मे समर्पित
के नवन प्राप्त के बल!

कुछ हिंस्र नृशंस नरों ने
युग पहले धर्म का भीषण
आक्रमण किया हत भू पर
क्या इससे विमुख हुआ मन?
गजनी गोरी नादिर से
भेड़िए निरीह जनों पर
टूटे लूटे स्त्री सुत घर
जन नगर किए वन खँडहर!

कर भग्न क्षमा प्रतिमाएँ
खंडित मंदिर पुर प्रांगण
ले गए लाद ऊँटों पर
वे स्वर्ण प्रजा का मणि धन!
दुर्भाग्य हुआ क्यों संभव?
क्या विकल पंगु थे जनगण?
इस सिंह वाहिनी भू पर
स्वार्थों का तांडव नर्तन?

युग सम्मुख मध्य युगों का
खड़खड़ा उठा भू पंजर
चेतना शून्य बहुमत रत
गत रूढ़ि रीति कृमि जर्जर!
निर्धन असंख्य ग्रामों में
खंडित भू, हतधन जन मन
कटु राग द्वेष कुत्सा के
भू उर में धूम भरे व्रण!

आपस में लड़ बौने नृप
करते अरि का आवाहन
बाहरी दस्युओं से घिर
भू बनी हिंस्र रण प्रांगण!
मुट्ठी भर सैनिक लेकर
टूटते बर्बरों के दल
जीतते छूटते भू को
लूटते क्षमा वैभव बल!

कृषि मूल श्रम विकसित हो
जब क्रमशः हुआ समापन
छाया इस साम्य धरा पर
जड़ ह्रास विकृति तम विघटन।
कवि सोच रहा था कैसे
जन मन में पैठा दर्शन
क्यों त्याग निषेध विरति का
मरु में भटका मानव मन।

क्यों सिद्धि बन गए रीते
साधन – सार्थकता खो कर
सांस्कृतिक सामाजिक रचना
क्या रही अपूर्ण धरा पर।
कब आत्म मुक्ति जीवन का
बन गई सत्य अभिशापित
आकाश कुसुम की लौ में
उर ज्योति हुई निर्वापित।

क्या जीवन विमुख मनुज ने
सन्यास लिया प्रांगण से,
छल स्वर्ग नरक के भय से
जन त्याग दिया जीवन ने?
अति वैयक्तिक सूक्ष्मों में
सब सिमट गया विधि प्रेरित
सामूहिक जन जीवन का
विस्तृत यथार्थ धन संचित।

विच्छिन्न जगत जीवन से
मन आत्मा में भी वंचित
आत्मा के स्तर पर जगत्
अनुभव आत्मिक था निश्चित।
मिथ्या बन गया जगत पर,
माया यह जीवन का घर
इह पर की सीमा खाई
बढ़ती ही गई निरंतर।

दुखमय, भंगुर जग जीवन,
प्रिय सृष्टि अविद्या भ्रामित
पर लोक शून्य कामी मन
जन भू से हुआ प्रवासित!
विधि यज्ञ कर्म कांडों के
दृढ़ ढाँचे में जकड़े जन
अंधे विश्वासों थोथी
आस्थाओं में खोए मन!—

बहु पाप पुण्य संतापित
अपवर्ग स्वर्ग सुख कातर,
गत जन्म कर्म फल बंधन
शृंखला त्रस्त कायर नर!
मत जाति पाँति वर्गों में
भेड़ों भीड़ों से पुंजित
नत शीश भग्न रीढ़ों पर
लघु राग द्वेष भय धावित!

स्मृति जीर्ण व्यवस्थाओं की
कारा में बंदी स्तंभित
सामूहिक जीवन के प्रति
जर्जर विरक्ति से कुंठित!
लघु मुंड मतों गुट धर्मों
भागों में क्रूर विभाजित,
संस्कृति के कठपुतलों से
मृत अभ्यासों में चालित!

आत्मा शक्ति से वंचित
जन रहे न आविष्कारक
मन वस्तु दृष्टि से विरहित
भावात्मक ज्ञान प्रचारक!
अंतर्मन स्तर पर सीमित
बन गया योग जप चिन्तन
सब धर्म दृष्टि से वर्जित
रह गया न बहु कृति जीवन!

सतयुग के से नर नारी
गत रीति काव्य में मूर्तित
उन्मन कुंजों में करते
मिथ काम प्रणयी मुदित।
वह देह मोम यौवन का
मित व्यक्ति प्रणय के पाषित
सामूहिक मानस स्पंदन
तब था म ग्रम में जागृत।

बाहर से अब परिवर्तन
जीवन को रहा प्रपेषित
पौधे सी अपने में स्थित
जन मत्ता रही तिरोहित।
युग युग में महा पुरुष बहु
बिखरे, अनुपम था वह भ्रम
छाई थी ह्रास तमिस्रा
मिट सका न जन भू का तम।

ज्ञानोपचार का युग तब
ममता का मूढ़ धरा पर,
भय वैमनस्य संशय से
जन भू जीवन था जर्जर।
सामंती युग की पद्धति
संस्कृति विचार विधि दर्शन
निःसार हो चुके थे सब
जीवन विराम के साधन।

आध्यात्मिक दुर्बलता से
संकीर्ण वर्गों में गर्हित
मनु स्वार्थों में रत थे जन
सब भिन्न दृष्टि से वंचित।
निष्प्राण निर्जीव घिनौना
रूढ़ि निष्ठुर उभर कर
सभ्यता निश्चित भू पर
बीते चर युग दृढ़ पर।

भू मानस का मन्मथ था
वह मग्न युगों का भारत,
श्लथ, पराधीन सदियों तक
मृत, आत्म पराजित आहत!
निज संरक्षण हित पैठा
वह छिप अपने ही भीतर,
जग के हित आँखें मूँदे
मन में चर्वित चर्वण कर!

शंकर चैतन्य अलौकिक
दे ज्ञान भक्ति रस निर्झर,
तुलसी कबीर युग मानस
रच गए, सिन्धु तम मथ कर!
बिखरे बहु संत मनस्वी
भास्कर वल्लभ रामानुज
जड़ दैन्य पंक के ऊपर
उठ सका न भू उर अंबुज!

गुरुओं ने रक्षित धरा का
करना चाहा संरक्षण
स्वामी जी ने प्राणों का
फहराया वैदिक केतन!
श्री रामकृष्ण लाए संग
युग का पहला अरुणोदय
आध्यात्मिक ज्योति जगत् में
फैली कर धर्म समन्वय!

कवि देख रहा था — भू का
मध्यम चैतन्य सिमट कर
था पकड़ चुका — निरर्थक
जन मन का शब्दाडंबर!
जिस भू की संस्कृति में खप
पच गईं जातियाँ अगणित
परिपाक न वह कर पाई
इस्लाम धर्म का किंचित्!

मुक्त ग्रहण शीलता उसकी
निर्गोप हो गई या मृत
बद्ध रूढ़ि रीति सैकत में
चिर स्रोत खो गया जीवित!
वह सर्व भूत गत आत्मा
वसुधैव कुटुम्बक का रव
डूबा पराभव रोदन बन
रह गया जातियों का शव!

प्रार्थना स्नान तीर्थाटन
उपवास नियम व्रत साधन
दोनों ही धर्मों में था
नैतिक जीवन मूल्यांकन!
दोनों एकेश्वर वादी
सदा आस्था से दीपित —
प्रतिमा पूजक भंजक थे
दोनों ही धार्मिक अर्पित!

भिन्न नहीं थे उनके मनोगति
धर्मादिक प्रान्तिक जीवन में
धनि वैयक्तिक उदात्त रुचि
जन धर्म तंत्र इस मन में!
जन बहिर्मुखी जन
अंतर्मुख कुंठा में पीड़ित
युग्म मन के मनन समाधि में
धूम निर्मम स्वार्थी – परार्थी!

विकट घृणा बिन मूर्छित
जातीय अहं में सीमित
वे रहे हिन्दू विमुख नित
इन आचारों में वर्तित!
दानों बोते कुटुम्ब भूमि
ऐंठे युग भू पर
धर्मी कुछ तमस में
नित्य रहा फिर बिर उन्मत्त!

भू मानस का स्वप्न था
वह सभ्य युगों का भारत
अब पराधीन सदियों तक
मृत आत्म पराजित आहत !
निज संरक्षण हित पैठा
वह छिप अपने ही भीतर,
जग के हित आँखें मूँदे
मन में वर्जित सर्वत्र कर !

शंकर चैतन्य अलौकिक
थे ज्ञान भक्ति रस निर्भर,
तुलसी कबीर युग - मानस
रच गए, सिन्धु तम मथ कर !
बिखरे बहु संत मनस्वी
भास्कर, वल्लभ रामानुज
जड़ दैन्य पंक के ऊपर
उठ सका न भू उर अंबुज !

गुरुओं ने रक्षित धरा का
करना चाहा सम्बल
स्वामी जी ने आर्यों का
फहराया वैदिक केतन !
श्री रामकृष्ण आए संग
युग का पहला अरुणोदय
आध्यात्मिक ज्योति जगत् में
फैली कर धर्म समन्वय !

कवि देख रहा था — भू का
मथित चैतन्य सिमट कर
था उभरा चुका — निरर्थक
जग मन का शब्दाडंबर !
जिस भू की संस्कृति में जब
पच गईं जातियाँ अगणित
परिपाक न वह कर पाई
इस्लाम धर्म का किंचित् !

गुण ग्रहण शीलता उसकी
निःशेष हो गई या मृत
जड़ रूढ़ि रीति सैकत में
चित् स्रोत खो गया जीवित !
वह मर्म मूल गत आत्मा
वसुधैव कुटुम्बक का रव
डूबा अरण्य रोदन बन
रह गया जातियों का शव !

प्रार्थना दान तीर्थाटन
उपवास नियम व्रत साधन
दोनों ही धर्मों में था
नैतिक जीवन मूल्यांकन !
दोनों एकत्र थाती
श्रद्धा आस्था न दीपित —
प्रतिमा पूजक भंजक थे
दोनों ही धार्मिक पंडित !

मिल सकी न ऊष्म मनोगति
मर्यादित प्राणिक यौवन से
रति कैशोर उपरत रुचि
मन धर्म तंत्र रत मन से !
अंतर्मुख बहिर्मुखी जन
युगपत् कुंठा से पीड़ित
धुन सर न भवन समाधि से
निर्मम स्वार्थी — पराजित !

विकृत पूजा विष पूरित
जातीय अहं में सीमित
वे रहे विरुद्ध विमुख नित
निज आचारों में पतित !
दोना बोझ दुर्वह हवि
रेंगते रहे युग भू पर
सामंती कूप तमस में
नित रचा निज चिर कारा !

मति मांसल, मति वैयक्तिक
परलोक दृष्टि हित निश्चित
दैवी प्रतिबोध रहा वह —
(जीवन हो पूर्ण समन्वित!)
इस्लाम धरा पर उतरा —
प्रभु जीव तुल्य हो विकसित
ईश्वर आस्था हो भू पर
जन धर्म तंत्र संरक्षित!

प्रिय कवि को नबी मुहम्मद
एकेश्वर पर श्रद्धा रत
मानव समता के पोषक
आस्था के पथ से उद्गत!
वह देख रहा ज्योतिर्भू,
मस्तक प्रभु चरणों पर नत
सित चिद् किरणों में लिपटा
स्वर्गिक गंधों का पर्वत!

दुर्भाग्य समेट न पाई
निज विस्तृत बाँहों में भर
यह भूमि मुसलमानों को
तमसावृत था जन अंतर!
चैतन्य वृंत से च्युत हो
विधि नियमों में रत जड़ मन
तब विश्व योनि का प्रतिनिधि
रह गया न था! धिक लांछन!

अब बीते धर्मों के दिन
चेतना उन्हें दे नव वर,
धर्मों के खंडहर से उठ
निखरे आध्यात्मिक भूम नर!
वैज्ञानिक युग के विद्युत्
संस्पर्शों से अनुप्राणित
निष्क्रिय सामंती स्थितियाँ
हों रहीं जागरित विकसित!

गत जाति धर्म कर्दम से
बाहर निकले युग मानव,
नव मानवता का स्वर्णिम
भू स्वर्ग रचे वह अभिनव!
सापेक्ष्य की रचना हो
बहिरंतर सत्य समन्वित,
भू जन की शिव समता पर
जग में हो ऐक्य प्रतिष्ठित!

(विघटन)

देखा आँखों ने हत युग
दारिद्र्य मासितिक पैना
नगरों की या ग्राम्या का
आँगन कर्दम के मैला!
दारिद्र्य मनों के भीतर,
दारिद्र्य जनों में बाहर,
रक्त रक्त माम मज्जा में
दारिद्र्य घुसा अति दुस्तर!

दारिद्र्य सर्पिणी मणि धर
ज्यों शत सहस्र फन विषधर,
पत्रों में पकड़ भू का
हो निगल रहा क्रम क्रम कर!
पर्वताकार उस तम से
निज अंतर में मार्गान्वित
गायन लग यागन की
नव किरण प्राण हों शांति!

देखा जीवन आँगन में
दूर गिरी पड़ ये निरन्तर,—
हा साथ रहे—विस्मृत में
छाया दी हमने पाकर!
कागजी रंग की गाढ़ी
फूटी चोंगिया जिस तन पर—
फटा रक्त मर मधु थी जो
सत्ती की निरी मनोहर!

वंशी ने स्मित स्वागत कर
युत उन्हें बुलाया भीतर,
मतवाला सखा से की फिर
जन भावी को सम्मुख धर!
बोला हरि, स्वतन्त्रता को
अब होते चौदह वत्सर
इतने में वानर भव हर
लौटे घर विजयी रघुवर!

हम कुंभकर्ण से अब भी
सोए प्रमाद में खोए,
युग जीवन की गंगा में
भू ने निज पाप न धोए!
सामाजिकता के प्रति जन
हो सके न अब भी जाग्रत्
मिथ्यात्व रिक्त केंचुल से
प्रेरणा शून्य तामस रत!

मन रूढ़ि रीतियों का वन
कटु जाति पाँति तम गुम्फित
शत पाप पुण्य के जन पशु
रखते जन उर आतंकित!
जन कुत्साकृत का गह्वर,
क्षत विक्षत जिससे उन मन
जन झाड़ फूस विवरों में
कृमि जीवन करते यापन!

दारिद्र्य अविद्या युग के
दानव जग पर मुँह बाए,
जिनके उदरों में सद्गुण
युग ध्येय समस्त समाए!
अब निज निर्वाचित शासन
निज वित्त न्याय मंत्रीगण
बढ़ता ही जाता प्रति दिन
भू पर चारित्रिक विघटन!

अब शुद्ध दूध भी मक्खन
दुष्प्राप्य तेल घृत मिश्रित,
मँहगी ही मात्र प्रगति पर
हाँ, भ्रष्टाचार भी निश्चित !
कर्तव्य मूढ़ मे जनगण
निज भावी के प्रति शंकित
प्रिय राम राज्य के सपन
मन से हा रहे तिरोहित !

दुर्लभ नव जीवन साधन, —
गृह अन्न वस्त्र धन - गो - धन
मंत्रियों पदों तक सीमित, —
वंचित सुख सुविधा से जन !
कर्दम कलुष में पलते
अगणित नर जन साधारण,
परतंत्र देश से दुष्कर
स्वाधीन धरा का जीवन !

यह गांधी का गौरव युग
गण लोक तंत्र का पोषक
हत वित्तों पदों में घुस
रेंगता मात्र कृमि जीवन !
बसते ऊँचे महलों में
स्वार्थी नर लोक प्रतारक
जन रक्षक से भक्षक बन
सेवक से प्रभु भू शासक !

चिर दमित सभ्य युग का मन
गत क्षेम रहा था बाहर,
हा जाति धर्म प्रांतों में
बँट रहा मनुज भू खँडहर !
जन मन का बोध न पाता
पश्चिमता का आडंबर
ऐसा कुछ कहीं नहीं जो
भर दे जन में नव जीवन !

वरदान मिला था हम को
स्वातंत्र्य, — न पौरुष अर्जित
हम लोक राष्ट्र रचना हित
जीवन न कर सके अर्पित !
दायित्व रख गए पावन
प्रिय राष्ट्र पिता जो हम पर
वह पूर्ण न कर पाए हम
बन आत्म लिप्त पद पाकर !

जन सेवक अब शासक बन
रहते नगरों में सुख से
सौधों में सधे सुरक्षित
नाता न जनों के दुख से !
पकड़े दोनों पंजों से
भारत मा का तन जर्जर, —
जन हित कारा क्या भोगी
करते वसूल उसका कर !

हमने भी लाठी खाई
कारा की सांसत झेली
कंकड़ कूटे, चक्की नित
पीसी घानी भी पेली !
हमने न कभी जतलाया
श्रम तप का मूल्य — अधेला
निष्काम लोक सेवा वह,
युग जीवन का था मेला !

बस राजा बने रहें हम —
मन इस चिन्ता से कातर,
हम देश प्रगति के बाधक
समझौतों के हित तत्पर !
सात्विक मानव थे बापू
जो लोष्ट समझते जन धन
हम बना ठठरियाँ भू की
साधें चढ़ शव पर आसन !

म

मम मूक मनी जन धरणी
दग्धा निरुपाय कम्पती,
हिम में अवसन्न तन कँपती
मन के निदाघ में तपती।
सामंती दर्प भर भर
अब करता उस पर शासन
मर्दित विजित पद मद से
हत भाग्य धरा का यौवन!

महुयाम धाम पद्मासन
लगन सारे युग मद्मन
समुचित मेनूरव बिना क्या
पा सकता उसमें जीवन?
सांस्कृतिक पतन न ऐसा
देखा हा भू न भीषण
मुट्ठी भर भी सुविधा हित
जिसने निरीह मर्माहत जन!

भारी उत्पात यह कर
कर्तव्य न पूरा होगा
क्या देश धनधान्यमय हो!
जब मन भीतर से रोता!
भू भाग और भी जग में
मर्यादित जहाँ जन जीवन
थी सुंदर वहाँ धरा सुख
प्रिय मूल्यवान जीवन क्षण!

भू यहाँ शुष्क उपेक्षित
दुर्गंध भरे जन शोषण
दूषित वातावरण मरज मन
नैराश्य विरस सूना मन।
मानुषी उन्नता विरहित
सहृदयता शून्य विमुख जन
जीवन पदार्थ पूरे ना
विगत थी गरिमा निर्धन!

आया तृतीय निर्वाचन
पुर पथ में फहरा केतन,
नवों नारों से करते
नर भोंपू निज विज्ञापन!
अपने प्रभुत्व पद के हित
जन से कर भिक्षा याचन
चाहते शक्ति मद कामी
भेड़ों पर करना शासन!

सिद्धांत छोड़ पशु बल पर
उतरे अब प्रतिपक्षी दल
झंडे उखाड़ भूमि पर
सोंटों से भिड़ उच्छृंखल!
भैंसों की जोड़ी भड़की
आपकी जली धू धू कर,
नर फूंक दीप से बचना—
हँसते गुंडे हुल्लड़ भर!

ताकते एकटक पशु से
मंत्राभिभूत हो जनगण,
हो भोट वोट दें पत्थर
कहते कुछ हँस मन ही मन!
त्योहार! फबतियाँ कस लो
आई चुनाव की होली
कीचड़ उछाल गाली बक,
भर दो वोटों से झोली!

गाँवों में प्रथम हमें था
निर्मित करना नव जीवन
जो दैन्य अविद्या दुख के
गड्ढे में गिरे चिरंतन!
भू पर कुरूपता के जो
कुत्सित भारती निदर्शन
तन मन की दरिद्रता के
पाटों में मर्दित प्रतिक्षण!

सब ग्रामस्थान हो घन में
भू जीवन का दिग् उर्वर,
गांवों की भी सपद् दे
नगरों का सब संस्कृति बर!
परिश्रम की कच्ची प्रतिकृति
नगरों का कृत्रिम जीवन
प्रेरणा न उमग पाता
भू प्रतिनिधि जनगण का मन!

हम आज दूसरों का मुख
अनुकरण कर रहे पतित
जन भू की मौलिक प्रतिभा
हो रही न विकसित किंचित्!
पश्चिम के रँग में रँग कर
हम भूल गए अपनापन —
मरणोन्मुख अब वह संस्कृति
घटता जिसमें नित विघटन!

पाश्चिम उद्योग परोन्नत
भारत का किन्तु गमाग्र
कृषि धंधों की उन्नति में
सब रत हों ग्राम नारी नर!
हम कृषि उर्वर भू का हो
औद्योगीकरण विकेन्द्रित
ग्रामीण सुन्दर जन जीवन
सब हों संयुत केन्द्रित!

मानसिक दासता कुत्सित
हम स्वाभिमान से विरहित
पर भाषा जीती अब जन
अंग्रेजी शिक्षा पर गर्वित!
पर-भाव विषय में जिनके
हारे स्वत्व को पतित
पर कैसा आज रहें हम
निज वाहर से संवृत!

राष्ट्रिय एकता न संभव
सांस्कृतिक ऐक्य भी दुष्कर,
पर संस्कृति में पोषित मन
भू मन से विरत — भयंकर !
कैसे हम राष्ट्र बनें तब
देशाभिमान से वंचित
जन छिन्न मूल पादप से
गाँवों से पुर न समन्वित !

अंतर भीतर मन की भू,
हम पर मानस बीती जन
चिर दास न उपजा सकते —
कब से परान्न सेवी मन !
हम पोष्य पुत्र निज मा से
फिर विमुख विमाता शासित
जन अंधकार अंतर में
बाह्याभासों में पालित !

इस नैतिक दरिद्रता का
कवि पंत कहीं क्या दुस्तर ?
दृढ़ राष्ट्रिय स्तंभों पर ही
अंतर्राष्ट्रियता निर्भर !
मधु चक्र तुल्य जन जीवन
बहु भू भागों से संचित
मानुषी एकता का पट
बहुमुख सूत्रों से गुंफित !

भाषा न शब्द संग्रह भर
राष्ट्रिय आत्मा का दर्पण
सामूहिक जीवन से उग
बनते विचार, विधि दर्शन !
औरों के जीवन मन को
मानें अपना जीवन मन
हम सदा दूसरों का मुख
जोहते पीते जीवन धन !

पर पतंग का स्पंदन कर
निज हृद् तंत्री में संकृत
जन भू आत्मा के वाहक
हम रहते कृत्रिम जीवित।
उत्कृष्ट बिजली पट तज
इसने खादी अपनाई
तब वस्त्र बना भारत में
सम्यक विराम कर पाई।

यदि छोड़ गये परकीया
माया की हम शठ ममता
जन भू गृहिणी स्वामी की
बढ़ सके सत्य पा क्षमता।
वैज्ञानिक दृष्टि नहीं पर
हम हो पर माया पोषित
तांत्रिक स्वतंत्रता पा हम
अब मानव स्तर पर शोषित।

भारत प्रतिमा निभर में
अब नहीं विरत मन व्यापित
निज शिखरों से विरहित हम
छाया जन मौन प्रवाहित।
वैराग्य रज्जु भार की
का भरती मुरा हृन्य मन
प्रांतों में बंटे जनों का
फिर बीच गर्त में मूर्छन।

भारा एका न पथ में
साधक पार्थिव गपरंग
विदेश मोह प्रतिरक्षा
प्रथम दयनार चिर शासन।
पूर्व का मध्य युग के
भासक बौद्धिक मूल्यांकन
मूल विदा संस्कृत जग का
रहे तीन काल पीड़ित मन।

आकाश बेल अंग्रेजी
छाई जन मन पादप पर,
जीवन विकास क्रम जिससे
कुंठित हो रहा निरंतर!
इस पीढ़ी के मस्तक से
कब छूटेगा यह लांछन?
इतिहास पुकार कहेगा
जन घातक थे नेतागण!

बहु प्रांतों की वाणी का
जन मानस हो रस संगम
सांस्कृतिक दैन्य की खाई
फिर पटे युगों की दुर्गम!
उत्तर दक्षिण छोरों पर
नव सेतु बंध हो निर्मित
इस जन विशाल भू में हो
राष्ट्रीय एकता प्रतिष्ठित!

निज भ्रष्ट प्रकृति के भ्रम में
रख कई पीढ़ियाँ रेहन
निर्माण न हम कर पाए,
निरुपाय भग्न का जीवन!
भू देशों को छू कर भी
हम हुए समृद्ध न किंचित्
जन लौह शक्ति मोर्चा सा
क्या है निर्जीव उपेक्षित!

माँगे पैसे बो बो कर
संभव क्या धन वैभव बस?
भू रचना हित आवश्यक
श्रम कुशल करों का कौशल!
जागृति का डोला आता
उद्यत सशक्त कंधों पर,
प्रेरणा मूर्त हो श्रम में
संपद् जन श्रम की अनुचर!

ऋण पवन कंधों पर धर
काँप उठता जीवन ज्वार
तीसरी भावना बसती —
जन भू हृदयों का पंजर!
संचित समस्त युग संपद्
धनराशियों में मुट्ठी भर
सब मध्य निम्न वर्गों के
जन निर्धन से निर्धनतर!

गत नार ताम मुहरें
बदली युग पंथ पुरातन
बदली न दृष्टि चेतना
बदले न मूल्य मन चिन्तन!
बदला न मनुष्य — अशिक्षा
दारिद्र्य पीर पर भीरग
यह प्रगति प्रगति या दुर्गति?
कुछ समझ नहीं पाता मन!

जन श्रम ही सच्ची संपद्
वैज्ञानिक युग का पोषण
प्रेरणा शून्य यदि भू मन
निष्क्रिय विराम पापायतन!
कैसी उन्नति यह जिसमें
हो मानव हृदय न विकसित
रचना पद वीरक न
[illegible] मौलिक मधुर वर्धित!

जन श्रम से होगा वर्धित
[illegible] सब राष्ट्र का जीवन
बँधता नहीं मन में जन मन
जाग्रत् युग नहीं होता जन!
युग निर्माण में साथ उठा हम
सब तब [illegible] करें [illegible]?
परमस्वामी न का [illegible]
हम सब [illegible] न [illegible]!

सामयिक समस्याओं का
हित पंचशील शुभ साधन
जो हुआ न सक्षम धरा पर
निर्मम कृतित्व के कारण!
यदि राष्ट्र रिक्त भीतर से
कैसे हो पूर्ण प्रयोजन?
लघु का सब गौरव संभव
पा महत् कृपा के कुछ कण!

नव मानवता के पथ पर
बाधाएँ बनीं हिमालय
विस्तृत हो जो मानव मन
बाहर जड़ बंधन हों क्षय!
दीनता महत् हिमगिरि से
मानुष्य शिखर स्वर्णोन्नत
बरसाता हँस प्रेमामृत
चोटी पर, स्वर भर भारत!

संस्कृति पर्व आते मिल
गंगा नहान को जनगण
आबाल वृद्ध चल कोसों
पैदल श्रद्धा भीगे पग!
जन मन प्रेरक शिव आस्था
यह मात्र अस्थिमय पंजर,
विस्मृत जीवन रस धारा
जिससे जन धरती उर्वर!

जन मन में हमको भरना
अब नई प्रेरणा का बल
भू जीवन प्रति दे आस्था
जिससे हो मानव मंगल!
जीवनी शक्ति प्राणों में
जो स्फुरित हो रही प्रतिक्षण
हरि पद से निकली गंगा
वह अपने में फिर पावन!

हरि बंशी युग गति विधि से
संतुष्ट न थे चिर स्पन्दित
अंतर जीवन के प्रतिनिधि
उर रहता नित आंदोलित!
बहिरंग मात्र मानव का
विश्राम स्पर्श से विरचित
अंतर मानव विकसित हो —
दोनों को मनन अपेक्षित!

जन मुक्ति भूमिका केवल
बंशी का मन था निश्चित
युग प्राण मुक्त — मानवता
किस तरह से हो निर्मित?
हरि था नैतिक दृग मंडित
भी युग जीवन प्रति जागृत
युग कवि उर उद्वेलित था
रम गूढ़ चेतना अर्पित!

(विराम)

बंशी ने हरि के आहत
वचनों का किया समर्थन
उनकी आत्मयी बानी
युग तृष्णा की भी दान!
आशा युग कवि — प्रतिभा न
भू के प्राणों का स्पन्दन
निश्चय रस धीरे ही
सींचेगा उनमें जीवन!

यह सब जन निमित्त पहला
जन भू की जय था बाहर
सेनानी युग दाय गान
निज पथ गावर!
भू नहीं परिसर्जित का मन
संयुक्त चरण गीतिका वर्जित
मन गाढ़ धारा मधु में
प्राण सहज मर्यादित!

जन तांत्रिक ढाँचे में बँध
भारत की आत्मा अक्षय
बहुरूप एकता अपनी
चरितार्थ करेगी निश्चय!
बहुमुखी मूल जीवन के
फिर गूँथ राष्ट्र पट में नव
वह सहज सँजो पाएगी
निज अनेकांत उर अनुभव!

नव युग जीवन गंगा को
मत दान अर्घ्य कर अर्पित
युग कर्मठ लोक पुरोधा
जन करें सुकृत फल संचित!
नव मन संगठन का श्रम
जन हित हो कर्म प्रवाहित
नव लोक तंत्र शपथ पर
आस्था हो जन की अक्षित!

नव सेतु बंध रचना कर
तरना जन को तम सागर,
पाटें निज मत के श्रम से
वारिधि अभिधा दुस्तर!
प्रति पाँच वर्ष में जन भू
करती युग मानस मंथन
नव रत्नों से भूषित कर
फिर धरा मुकुट — जन शासन!

हम क्रूर हिम भू पथ में
मनुजोचित दृष्टि न खोएँ,
सुख संपद् सँग जन मन में
मानुषी मूल्य भी बोएँ!
दुःसाध्य समस्या जन की
योजना अनेक क्रियान्वित
पाटना पथ क्षतिया का
हो उठती बुद्धि चमत्कृत!

पव महर बाँध, बहु जल कल
नव कूप ताल मिलन हित
जन गृह आवागम साधन
परिवहन मनु पथ विस्तृत
उद्योग मंत्र विद्युत गृह
इस्पात सिमेंट यथोचित
हो बड़ा भोग जीवन संग
उत्पादन शोधन विकसित!

उपादान परम आवश्यक
जन हित सन्देह न किंचित्
पर, शिल्प कला संस्कृति से
वंचित नर पशुवत् जीवित!
पार्थिव उन्नति के हित
ज्यों [illegible] तन का साधन
सामाजिक जीवन पट में
सौंदर्य बोध [illegible] कारण!

गत जाति पाँति वर्गों के
विष से विमुक्त कर जन मन
जड़ रूढ़ि रीति का तम हर,
युग दीपित कर भू प्रांगण —
स्वतन्त्र निर्मित करना सब
राष्ट्रिय मानस दिक् विस्तृत
[illegible] पथ जीवन का
मन का कर पूर्ण समन्वित!

धीरे मनुष्य वश में
[illegible] — न इसमें संशय
[illegible] [illegible] [illegible] मनुज का
इस [illegible] में [illegible] का मन!
[illegible] [illegible]
हो जन [illegible] रचना [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] के संग
हो [illegible] [illegible] न [illegible]!

यह सत्य नग्न निर्ममता
भारत मस्तक की पातक
जन मन नैराश्य प्रक्षिप्ता
जीवन विकास हित घातक !
भू की कुरूपता पहिले
धोनी हमको निःसंशय
बाहर हो नरक तिमिर से
जन सांस ले सकें निर्मम !

तुम वस्तु दृष्टि उन्मेषित
करते युग का विश्लेषण
यह ठीक लोक जीवन तम
दीपित कर सका न शासन !
निर्मम युग सीमाएँ ये —
कैसे हो त्रुटि संशोधन
शासक शासित में भरता
हमको सक्रिय संयोजन !

यह भी अनिवार्य हमें अब
ऊँचा करना अपना स्वर,
तब लोक क्रांति की भेरी
जन मन में पैठ करे घर !
यदि स्वस्थ सबल प्रतिपक्षी
न धरेगा रश्मि नियंत्रण
स्वच्छ प्रजा तंत्र युग का रथ
होगा पथ भ्रष्ट प्रतिक्षण !

सामाजिक क्रांति अपेक्षित
भारत जन के मंगल हित
हो जाति वर्ग में बिखरी
चेतना राष्ट्र में केन्द्रित !
मत पंथ रूढ़ि पिंजर में
बंदी निर्बल निष्क्रिय मन
उड़ मुक्त प्राण चिद् नभ में
फिर चुगें स्वर्ग पावक कण !

ठहरी थी
विज्ञान अविरत हित कातर,
वह मूर्त हो सत भू पर
था समदिग् जीवन का वर!
वह समाधिस्थ हो निःस्वर
स्थित ऊर्ध्व गगन में थी स्थित
अब सप भूत रत भू पर
जन स्वग करे वह निर्मित!

भौतिक मद के मरता का
करता मर का अनुशासित
यांत्रिक न बने अब जीवन
हों मत मनुज के यांत्रिक!
विज्ञान श्रम के अन्त
युग रचना में हो आवित
हो मानवीय निष्ठुर भू
अब प्रकृति विभव अपार्थित!

वैज्ञानिक युग में विरमित
वह उत्पादन के साधन
अब पात्र सदिग् प्रभु श्रम से
उर्वरित जन भू जावन!
आत्मिक बोने मानव को
करता निज से अपवर्ग
वह बने न बाधक – भू के
वैभव का हो सम वितरण!

अवधान दुर्गमा न
शान्ति प्रच्छन्न मनुज मन
हो दारुण विरत एगा में
घर वरा दारुण भू प्रांगण!
अब रवा मूर्ति आत्मिक-भर
निज सपना निज अन्तर,–
निर्वासन का उद्भव
मर नूतन इतना बाहर!

बाहर का युद्ध समापन —
अंतर मानव हो विकसित,
सब ओर छोर जग भू के
हों शोभा संपद् मंडित।
जीवन शिल्पी मानव के
जग बाग बनें चिर कुसुमित
नित सात्विक बहिर्विभव हो
अंतर ऐश्वर्य अपरिमित।

वैज्ञानिक यंत्रों से हो
भारत में कृषि फल अर्जन
सामूहिक कृषि से युगपत्
वर्धित हो सस्य हरित धन।
संगीत बने जन भू श्रम
हों कृषक श्रमिक अनुप्राणित
बहिरंतर जीवन शोभा
संयम पर हो आधारित।

घर द्वार बेच कर भी जन
आतुर, बनने को साक्षर,
नगरों की मौन चुनौती
स्वीकृत करता भू अंतर।
औद्योगिकता के सित तम में
खोया अब सभ्य धरा मन
संस्कृत बनना ही शिक्षित
सात्विक विनम्र हों भू जन।

कृमियों सी बढ़ जन संतति
भू भार बढ़ाती प्रतिक्षण
संयम धरा संभव तब
जब हो परिवार नियोजन।
सुंदर हो धरणी का मुख
शिक्षित संस्कृत जनगण मन
सौन्दर्य सृजन सुख में रत
जन कला शिल्प हों नूतन।

हरि सह-अस्तित्व धरा पर
ऋण समाधान भर निश्चित,
वैयक्तिक सामूहिक गुण
जन भू पर सभी अविकसित!
दो प्रतिस्पर्धी शिविरों में
जन मन जीवन बन खंडित
उन्नीत चेतना ही में
हो सकते उभय समन्वित!

था सुना बजी रण भेरी
हिम शृंगों का नादित कर,
दिग् ध्वनित हुआ जगती में
आक्रमण चीन का बर्बर!
उत्तर प्राचीर हिमालय
यदि चाहा न अब रक्षित
भारत का अविजित प्रहरी
होगा न कभी पद मर्दित!

इतिहास रहेगा साक्षी
प्राचीन पड़ोसी सहचर,
सांस्कृतिक शिष्य भारत का
बन रहा पात्र का ठाकर!
हर गिरि का शृंग हिलाता
युग रावण उन्मद दुर्धर,
यह गर्वित दंभ मद हारी
अभिमान न बने उसे वर!

क्या नहीं दिया भारत ने
उत्तर हित इन वर्षों में
अब भी तटस्थ शांति प्रिय
परिवर्तन निज भावों में।
फिर जाग उठी फिर भाई
जन शक्ति बन मन चेतन
यह पद मद [illegible]
दो [illegible] दो [illegible] पथ!

उपचेतन मन के दारुण
भूतों का कर उन्मूलन
चित् शिखरों की किरणों से
आलोकित करना भू मन !
तब तक प्रबल संघर्षण
करना जन भू को न विरत
समदिक कुंठित मन जब तक
हो सके न ऊर्ध्व समुन्नत !

जन रक्त पात बर्बर रण
होंगे तब तक न समापन
जब तक विकास शिखरों पर
भू मन न करेगा रोहण !
इसलिए सत्य की जय हित
जन युद्ध करें विगत ज्वर,
मानवता आत्मजयी हो
रण विमुख न हो हर अंतर !

जन मरें — एक जग भू हित
पा विजय भेद द्वन्द्वों पर,
धो शोणित से भू तम मुख
नव युग प्रभात का सुंदर !
मर कर ही मर्त्य अमर को
अमरत्व दिव्य देता वर, —
यदि मरे लोक मंगल हित
अर्पित हो मृत्युंजय नर !

अपनी कुरूपता पर ही
अति मुग्ध दीखता मानव
अज्ञान अहंता ही को
समझे नर जीवन गौरव !
भू के अतीत से अविरत
संघर्षण कर ही अभिनव
स्थापित कर सकता भू के
मन में भावी जग वैभव !

भू लोक अस्मिता निश्चय
मत स्थितियों में थी सीमित
शत राग द्वेष भय मद से
मद रिपुओं से उत्पीड़ित !
नव [illegible] गुणों में उसका
होगा अब विकसित वर्धित
यह वैभव [illegible] — जिसकी
सामूहिक परिणति निश्चित !

अध्यात्म सत्य [illegible] नव
विज्ञान तथ्य मर्यादित
[illegible] सत्ता का [illegible]
जन [illegible] हित अभिमंत्रित !
पश्चिम के [illegible] से [illegible] —
भौतिक मद से सम्मोहित
हम फिर [illegible] नमन में
विश्वास [illegible] निर्मित !

मानव [illegible] मन
[illegible] युग में मर्यादित
यह [illegible] हीन [illegible]
जन भू विकास हित प्रेरित !
[illegible] तार्किक आस्था विरहित
[illegible] का [illegible]
प्रेरणा शून्य [illegible]
आस्था से [illegible] !

[illegible] हो मानव आस्था
[illegible]
[illegible]
नर मनुष्यत्व [illegible] !
[illegible] भू [illegible] मानव
[illegible]
[illegible]
जन भू [illegible] !

भू जीवन मूल्यांकन हित
सांस्कृतिक पीठिका नूतन
चाहिए, — सृजन मूल्यों की
जो हो अंतर्मुख दर्पण !
जन भू पर आत्मिक सुख की
वाहक हो स्वयं प्रकाशित
प्राणों की भू पर उतरे
आनंद प्रकाश अपरिमित !

गत स्वर्ग मर्त्य की खाई
पाटनी मनुज को अनुक्षण
लौकिक आध्यात्मिक में हो
क्यों खंडित जग भू जीवन !
जड़ भू से चिन्मय विभु तक
शिव सत्य श्रेणि रस पावन
संशय न मुझे — कैसे हो
जन भू जीवन प्रभु दर्पण !

वैयक्तिक मुक्ति निरर्थक
वह आंशिक आत्मिक स्तर पर,
सामूहिक गरिमा में ही
मूर्तित जग जीवन ईश्वर !
आनंद मधुरिमा मंगल
भू मानस अंतर में भर
आलोक प्रीति शोभा का
भू स्वर्ग रचें जन सुखकर !

कवि स्वप्नों से सुख पुलकित
नव कक्षा सिरी में सादर,
रची कला शिविर ही का तब
क्यों न हो स्वर्ग रूपांतर ?
सांस्कृतिक प्रयोगों की वह
मणि पीठ बन सके निर्मम
जन समझ सकें युग कवि के
जीवन स्वप्नों का आशय !

हम सभ्य शिविर छायाएँ
तन मन जीवन कर अर्पित
नव मनुज भावना में रत
होंगी मन ही मन उत्सुक!
जड़ मिट्टी में स्वप्नों का
गढ़ कर नव युग मूर्तित
भावना हमें इस में
होगी रज प्रकृति पराजित!

सुरपुर — महा नगर का
उत्संग — निमग्न मनोहर
यह रचना शांति कवि मन की
भावना भूमि हो उर्वर!
सांस्कृतिक पीठ हो जन हित
नव युग ईश्वर की मिल कर
जनगण जीवन सपनों का
दे स्नेह निमज्जन निर्झर!

वाणी ने लिया गिरा की
इस भव्य भूमि का स्वागत
यह स्वप्न साध्य धात्री को
जन जीवन मङ्गल में रत!
हैं तथास्तु! बोला कवि
यह स्वप्न सांस्कृतिक उन्नत
भू पर नव युग स्थापन हो
शांति हो प्राणों का पथ!

जनगण विहीन भावन पर
भू लाभ प्राप्त कर निर्मित
शोभित मंदिर न निर्मित
मध-दिन ज्ञान निर्मित!
कैसा ही न प्रथम में
सांस्कृतिक जहाँ हरि गान
जीवन-भर भू भागों में
पावन बैठ!

भू जीवन मूल्यांकन हित
सांस्कृतिक पीठिका नूतन
चाहिए, — सृजन मूल्यों की
श्री हो अंतर्मुख दर्पण !
जन भू पर आत्मिक सुख की
वाहक हो स्वयं प्रकाशित
भावों की भू पर उतरे
आनंद प्रकाश अपरिमित !

गत स्वर्ग मर्त्य की खाई
पाटनी मनुज का अनुक्षण
लौकिक आध्यात्मिक में हो
क्यों खंडित जन भू जीवन !
जड़ भू से चिन्मय विभु तक
सित सत्य बोधि रस पावन
संचय न मुक्त — कैसे हो
जन भू जीवन प्रभु दर्शन !

वैयक्तिक मुक्ति निरर्थक
वह मानसिक आत्मिक स्तर पर,
सामूहिक गरिमा में ही
मूर्तित जग जीवन ईश्वर !
आनंद मधुरिमा संभव
भू मानस शतदल में भर
आलोक प्रीति शोभा का
भू स्वर्ग रचें जन सुखकर !

कवि स्वप्नों से सुख पुलकित
मत कहा सिरी न सादर
स्त्री कला शिविर ही का तब
क्यों न हो स्वर्ग रूपांतर ?
सांस्कृतिक प्रयोगों की यह
मणि पीठ बन सके निर्भय
जन समझ सकें युग कवि के
जीवन - स्वप्नों का आशय !

हम रचना शिविर छायाते
तन मन जीवन कर अर्पित
नव मग्न भावना में रत
होगी मन ही मन उन्मन !
जड़ मिट्टी में स्वप्नों का
गढ़ करें प्यार युग मूर्तित
भावना हमें इन में
होगी रत प्रवृत्ति परिमित !

सुन्दरपुर – महा नगर का
उपकंठ – निकट मनोहर
मधु रजत शांति छवि मन की
साधना भूमि हो उर्वर !
सांस्कृतिक पीठ हो जन हित
नव युग ईश्वर की मित का
अमृत जीवन भव्यों का
दे स्नेह निमंत्रण निरंतर !

धरती ने दिया मिट्टी को
इस मानव भूम का स्वागत
वह स्वप्न साम्य पाती की
जन जीवन मगन में रत !
हैम एवमस्तु ! बोला कवि
यह स्वप्न सार्वभौमिक उत्तम
भू पर नव युग वासक हो
सीमित हो प्राण का मय !

अमर विहीन बाधक पर
भू लख ऊपर का निश्चय
शांति वंदित न निर्णय
का फिर प्यार निश्चय !
ऐसा ही न रचना में
सांस्कृतिक सर्व हरि गढ़कर
जीवन मधु भू भव्यों में
[illegible] मानस ईश्वर !

इस समारंभ में संभव
दे नरक स्वर्ग आलिंगन
कर सकें अचेतन से उठ
नव चेतन में आरोहण !
जीवों के बाह्य नरक में
अव्यक्त स्वर्ग अंतर्हित
अमरों के स्वर्गिक सुख में
भर रक्षित नरक अवगुंठित !

कैसे हो सार्थक जग में
भू स्वर्ग स्वप्न जीवित बन
अंतर अनुभव से प्रेरित
करता हमको युग चिन्तन !
सांस्कृतिक चेतना का नव
भू पर करता आवाहन
जो रचे शुभ्र जीवन पथ
अतिक्रम कर युग मानव मन !

आर्थिक तांत्रिक आंदोलन
पीछे आएँ सब, — सम्मुख
सांस्कृतिक संचरण आए
तब उज्ज्वल हो जीवन मुख !
गृह धन वस्त्र दुर्लभता
हो सभी श्रेय पथ बाधक
पर व्यक्ति मानसा समधिक
संस्कृत जीवन हित घातक !

जन देह प्राण मन को कर
भू प्रीति सूत्र में गुम्फित
वैयक्तिक रुचियों को कर
सामूहिक रुचि में विकसित
नव विश्व चेतना पट में
हमको करना संयोजित —
संगम मधुमय जीवन का
भू पर हो स्वर्ग प्रतिष्ठित !

प्राचीन युग में आध्यात्मिक
धारणा पर था जग आश्रित
भौतिक मूल्यों में संप्रति
भू का जीवन मर्यादित!
जग मध्य युगों में नैतिक
शास्त्रों से थे अनुप्राणित —
तीनों का अतिक्रम कर नव
सांस्कृतिक युग हो विकसित!

प्राची पौरुष की प्रतिनिधि
तप योग ज्ञान में दृढ़ मन
पश्चिमा प्रकृति अन्वेषण
विज्ञान साधना में रत —
हो दोनों पक्ष समन्वित
नव युग रचना आमंत्रित
पिंड मन की शुभ्र विभा हो
भू भुवन स्वर्ग में मूर्तित!

हृदय! मनुष्य पावक से
रहती भू प्रतिमा जीवित
जड़ धरा शक्ति हो स्पर्शित
अध्यात्म रश्मि से दीपित!
जड़? — युग बीज जिसमें हो
स्वर्णांकुर नित्य प्रकाशित
जड़? — शुभ्र बीज जिसमें हो
नव संस्कृति शस्य निरत जागृत!

बीहड़ युग मन की भू पर
रचना भू स्वर्ग सनातन
में प्रहरी उतरता मौलिक
अन्तर्जन मिलन समा भर!
शासन मन ऐसे विनत न
पथ के रोड़ा पर पग धर
सुख स्वप्न मूर्त करता नर —
अंतर स्थित गत ईश्वर!

चिद् बीज हमें बोने सित
प्रस्तुत न मनोभू उर्वर,
आच्छादित उसे किए बहु
गत संस्कारों के तृण खर!
रज योनि स्वर्ण अंकुरों से
करती पावक हास्य स्मित
हँस उठे तमस प्राणों का
चेतना रश्मि से गर्भित!

मानव आत्मा के तम में
फिर खुले स्वर्ग वातायन
प्रमुदित हों हृदय पंकज
पाए चैतन्य किरण छन!
सामूहिक भू जीवन हित
आध्यात्मिक निधि हो अर्पण —
मानव ! जीवन गरिमा से
दिग् प्रहसित हो भू प्रांगण!

निश्चेतन दैन्य निशा से
बाहर निकले सुरपुर,
संस्कृत हो मानव पशु मुख
विकसित हों भू पर नव सुर!
स्वर्गीय प्रेरणाओं से
आंदोलित युग कवि अंतर,
संभाव्य ध्वंस हो जग हित
नव रचना मंगल का वर!

मैं नहीं — महत्ता मेरी
हो धूली कण की मज्जित
नव कल्प उतरता भू पर
निज कवि को लेकर निश्चित!
हरि, महापुरुष प्रभु प्रतिनिधि
द्रष्टा से लोग न परिचित
कवि रहे सत्य जीवन का
कर आता शोभा मूर्तित!

तारवत रव भू प्रांगण
मुदर का पुर नि मंशय
मानव ही मत्य छिपा मय
वह छाद बन संसमनय !
इद्रिय जीवन स्तर पर ही
प्रात्मा का स्वर्ग प्रतिष्ठित
मामूहिक भू मय ग हो
उन्नयन मनुज का निश्चित !

सपु सुधा काम व रग घर
हरि घूम बूस में फिर फिर
भू जीवन स्पिा निगा म
कुछ बड़ा घटा कुछ उठ गिर !
मानं प्रम पगा पर
मब मोप प्रवाग स्गिनर
हाना ममय विरमित वह
सुन्दर मे बन मदरसर !

हम रहे माम ही रान
उमा माम मात्र हो ईश्वर,
प्रभु रन दमना हमको
मय रब मन भू स्कि मन्दर !
हम माम रन व गावत
गान बान में पगार
पर बे ही पगर पगर में
रन्गा रर माग निगमर !

पार कर स्थिर मनग को प्रा
बना पागोन्न ऊपर पीर
स्वस्न पार्थिवना में दैर
स्ने गोको गग बू बिन्दु स्पेर !
जीर्ण युग पसार बन मे स्तर
गूंजा रजर स्वले मन्दि घोर
मांग बी दी गोरव मंग
सबसे मग स्नि मधुर वन छोर !

मधु स्पर्श

आओ श्रद्धा संग बैठें
युग मनु प्रसाद पथ सहचर,
यह प्रेम ज्योत्स्ना जो नव
बरसती शिखरों से भू पर!
समरस जड़ चेतन के तट
प्लावित करती जीवन गति
लौटा लाया मानव को
यह सर्व त्रिपुर की परिणति!

तुम मन स्वर्ग के शिल्पी
नव कविता वनिता के वर,
फिर श्रद्धा कर से नूतन
जग लोक रचा चिर सुंदर!
नव युग छवि आँख मिचौनी
जो खेल रहा जन मन में
मधु ऋतु का शोभा पावक
अब दौड़ रहा वन वन में!

मृदु फूल देह मलयज का
रेशमी परिच्छद कोमल
सौरभ साँसें स्मित मुख पर
प्रिय कमल मरंद छलक चल!
यह चिर नवीन जन भू की
आकांक्षा का गोपन धन
प्राणों की ऊष्मा का रवि
भू के जीवन का यौवन!

स्वप्नों का मणि माला की
रुपहरी डरी पर शोभित –
बन नव वसंत कवि का उर
गाता रस व्यथा मथित नित !
अनुराग – अग्नि भूमो में
भू अंबर उर पर अंकित
कलियाँ नव मपटा के दम
सीमातीं दृष्टा मोहित !

मन मम अभिनव नयन नव
दिन – सी मागम मामिनम
गाजा प्रिय मुग्धा मी मृ
मीरादत गंध समीरण !
उजाला की अंगड़ाई से
जीवन दृष्टा न विद्रुम
कूम बटरीमे टमू
रंगों का भर कामाहम !

अधिकाई नव मधुमारी
महके बरम मृदु कदम
बन पूमा की गया , मे
मुंबिन ऋतु मागन पवन !
बाग पाम मंजरी का मुग
मग पीने गीत मधुप दम
गाता रग , पावन में जग
गाते पागन कवि कामन !

बचनार बनी रंग मीनी
उमगी निर्मम डाना पर
बहना बनी विस्मित उर
मर बोल कर्णित मधु गागर !
बीता निमर्म पवन में
उमगा शामा प्रिय बचपन
बन मदरा में लिना मन
विरमा कवि मधुर मोहन !

बर्बर भू से मानव ने
किस भाँति किया संवर्धन
किस भाँति सभ्यता संस्कृति
स्थापित की — समझ सका मन।
किस भाँति बंध्य भू जीवन
हो मनुज स्वर्ग में परिणत —
युग स्थितियों से मर्माहत
रहता यह मन चिन्तन रत।

जिस भारत भू के शिर पर
चिद् शुभ्र ज्ञान मणि शोभित
जन जीवन वहाँ युगों से
भव दुःख गर्त में मज्जित।
भू को हरि कर प्रभु पर
आस्था भर दी ऋषिगण ने
वैसे हो उस आस्था का
उपभोग — सोचता मन में।

गाँवों की दैन्य निशा में
मन रहता वह संतापित
अधरों की रस प्रिय मुरली
हँसती नहिं थी अभिशापित।
पतझर के उर पंजर से
नव फूट रहा मधु पावक
निज स्वप्न नीड़ में गाता
कवि का मन — वन पिक शावक!

गाते मरकत आँगन में
उड़ साथ सहस्रों, खग दल
समता कवि को लहराता
विधि सृष्टि कला का वैभव!
जिस पाती नीम तले चैत
स्वर्णिम मर्मर की चादर,
जब तरु रेखा छवि बनती
छन स्वर्ण चाँदनी, भू पर!

कहता वंशी का कवि मम
जग नहीं मनुज नर कोमल
बरसाता मधु रस ज्वाला
बिजली का भावुक बादल!
स्वर्णिम अंगार – जिसके स्वर
फैला रज सपनों के पर
प्यासे शोभा पावक से
मुसकाते कुसुम दिगंतर!

कहता वह अग्नि नयन यह
मधुऋतु शोभा का उपक्रम
भव मर्म वेदना रचना
भू प्रथम चेतना प्रांगण!
ओ ज्वार पावक के गिरि
स्वर्णिम प्रकाश से आवृत
तुम मानव के अंतर में
जलते रहते निःस्वर नित!

थी शक्ति प्रीति रस सुख के
नव स्वर्ग दूत तुम निश्चित,
भू स्वप्न नीड़ को करते
नव स्वर्ग रश्मि से दीपित!
ऋतु वैभव करता उसका
अंतर यौवन को जागृत
सपने समस्त जड़ चेतन
अब एक सत्य संचालित!

आनंद प्रीति आभामय
मधु आत्मा में उन्मथित
नव भू जीवन स्वप्नों में
हो उठता उर उद्वेलित!
तब उस स्मरण हो आता
निज जन्म भूमि का मधुप
नित जहाँ निगम विभव का
बरसा करता मधु संगम!

समर

बर्बर भू से मानव ने
किस भाँति किया संवर्धन
किस भाँति सभ्यता संस्कृति
स्थापित की — समझ सका मन !
किस भाँति बने भू जीवन
हो मनुज स्वर्ग में परिणत —
युग स्थितियों से मर्माहत
रहता वह मन चिन्तन रत !

जिस भारत भू के सिर पर
चित् शुभ्र ज्ञान मणि शोभित
जन जीवन वहाँ युगों से
भव दुख गर्त में मज्जित !
भू को दरिद्र कर, प्रभु पर
आस्था भर दी ऋषिगण ने
कैसे हो उस आस्था का
उपयोग — सोचता मन में !

पौधों की दैन्य दिशा में
अब रहता वह संतापित
अधरों की रस प्रिय मुरली
हँसती चाह सी अभिशापित !
पतझर के उर पंजर से
नव फूट पड़ा मधु पावक
निज स्वप्न नीड़ में गाता
कवि का मन — बन पिक शावक !

हरते मरकत आँगन में
जड़ खाद सहस्रों उग तम
लगता कवि को लहराता
विधि सृष्टि कला का अंचल !
बिछ जाती नीम तले कँप
स्वर्णिम मर्मर की चादर,
घन तरु रेखा छवि बनती
छन स्पर्श चाँदनी भू पर !

कहता बंगी का कवि मन
धन्य नहीं मनुज नर कायम
बरसाता मधु रस ज्वाला
बिजली का भावुक बादल!
स्वर्णिम झंकार – विभव स्वर
फैला रस लपटों के पर
प्यासे आभा पावक से
मुसकाते हृदय निरंतर!

कहता यह अग्नि गगन यह
मधुऋतु आभा का उपवन
अब मम करता रचना
भू प्रथम चेतना प्रांगण!
था अपार पावक का गिरि
स्वर्णिम ज्वाला में आवृत
तुम मानव के अंतर में
जगते रहते निःस्वर नित!

थी शक्ति प्रीति रस युत वे
नव स्वर्ग हुए तुम निश्चित
भू स्वप्न नीड़ का करता
नव स्वर्ग रश्मि से दीपित!
ऋतु वैभव करता उन्मद
अंतर यौवन का जागृत
सपने समस्त जड़ चेतन
सब एक सत्य संचालित!

आनंद प्रीति आभामय
मधु आत्मा से उन्मथित
नव भू यौवन स्वप्नों में
हो उठता उर उच्छ्वसित!
तब उस स्मरण हो आता
निज जन्म भूमि का अंचल
चिर जन्मे विस्मय विभव का
बरसा करता मधु मंगल!

वह स्वर्ग खण्ड हिमवत् का
था हरित शुभ्र चित्र प्रांगण
शोभा की अप्सरियों संग
बीता कवि का प्रिय बचपन !
जब स्वप्न ज्वलित हो उठता
मधु आगम से वन प्रांतर,
शत रंगों की छायाएँ
भर देती अंब दिगंतर !

बहता उसके प्राणों में
संगीत स्वर्ग भू पावन
लावण्य लोक झुक पड़ता
अंतर में अपलक लोचन !
चित्रित रोमिल पंखों पर
उड़ता कलरव अंबर में
गाते शतमुख गिरि वन पथ
विहगों के बहु रँग स्वर में !

चिर कोमल वन भृंगों संग
गा उठता उर का स्पंदन
तन्मय रखता अंतर को
नीरव निसर्ग सम्मोहन !
खिलती उठती चट्टानें
सौन्दर्य स्पर्श पा निःस्वर,
कँपता रहता क्षितिजों पर
रँग रँग का किसलय मर्मर !

झूमते कांत कुसुमों के मुख
शत रंग छटाओं से भर
हिम पवन झुलाता अंबर,
रवि किरण झुकाती अंतर !
विस्मय विमूढ़ रहता वह
जब पलक खोलती सोपम
पुलकों में नह जाता मन
वे रूप सृजन के हों क्षण !

स्वप्नावस्थित सा सुनता
वह रस धारा की कल कल,
जो पुष्प शिराओं में बह
रँगती पंखड़ियों के दल!
मुकुलों के खिलने की ध्वनि
सुनता उसका तन्मय मन,
बज उठती स्वर्णिम पायल
उड़ती जब सौरभ निःस्वन!

भौंरों की गुंजारें सुन
रँग उठते कलियों के मुख
रस भुवनों से पकते फल
गातीं अप्सरियाँ उन्मुख!
झरनों के फेनों में हँस
हिम लड़ियों से माँगें भर,
फिरतीं शिखरों की परियाँ
सुरधनु छाया लिपटा कर!

मधुऋतु शिखि वन पर्वत का
चेतना श्वास से छू कर
रंगों गंधों गूँजों का
रस पर्व मनाती सुन्दर!
फहरा उठते शृंगों पर
सौरभ पराग के केतन
मुकुलों के मुग्ध परिमल का
बहता हिम प्रथित समीरण!

विद्रुम इंगुर हिममय वे
खोलते क्षितिज नव लोचन
नीले पीले हीरों में
जल उठते जगमग तरु वन!
बहती मरकत घाटी में
मानो श्री फनिम कल कल
झरते सुरचित शिखरों से
हीरक जल निर्झर उज्वल!

निर्जन नीलम ढालों पर
सतरंग छायाओं में हँस
संध्या फहरा स्वर्णांचल
होती क्षितिजों में ओझल !
कँपते रहते मर्मर भर
गहरी छायाओं के वन
हरियाली के सागर से
तरु शिखरों को मथ प्रतिक्षण !

उस हिम प्रदेश में रहती
मधुऋतु शाश्वत श्री शोभित
शत गंध वर्ण रस गुंजित
मुकुलित मृदु अंग उर पुलकित !
सौन्दर्य स्वर्ग वह उसके
शिशु मानस में था अंकित
आनंद स्पर्श जो उसकी
आत्मा को करता प्रेरित !

निःसीम नील पक्षी सा
बैठा सपता चोटी पर,
सतरंग छाया–वाष्पों के
उभरे रहते रोमिल पर !
वन राशि भर गिरि रहते
चिर् हरित हुए रोमांचित
सामग पगुओं से आते
चीड़ों के तरु वन पुष्पित !

सिन्दूरी रवि पावक के
ऊषा मणि घट भर लाती
पाटल प्रकाश के निर्झर
गिरि शृंगों पर बरसाती !
उस नीलारुण किरणों के
श्री स्वर्ण हरित प्रांतर में
मन स्वप्न तरी पर बैठा
तिरता सोया सागर में !

उसके अंतर दर्पण सा
भासित सम्मुख हिम पर्वत
स्वर्गोन्मुख रखता उसकी
उर आकांक्षा को अविरत !
अपलक रहतीं आँखें नित
उर में अवाक भर विस्मय
उस शुभ्र शांति सत्ता में
डूबा रहता मन तन्मय !

जग में न सत्य था वैसा
शाश्वत असीम ध्रुव अक्षय
बाँधे हो जो भू नभ को
आलिंगन में मंगलमय !
इंद्रिय मन को अतिक्रम कर
वह हो भू का आरोहण
उन स्वर्गिक शृंगों में जग
जड़ तम हो उठता चेतन !

दुर्गम असीम असि पथ सी
उठती गिरि श्रेणी भाती
धरती निश्चल हिल्लोलित
नभ को छूने को जाती !
उस दिग् विशद् गरिमा में
संस्पर्शित उसका अंतर
कब लीन हो गया जाने
शाश्वत शोभा में निःस्वर !

निज में अगम्य था उसका
जीवन-छवि का था अंतर,
रख शुभ्र सूर्य उर भीतर
बरसाता स्वर्णिम निर्झर !
गिरि की अप्सरियों के संग
बीते किशोर वय के क्षण
मधु स्वप्नों की छाया में
शोभा-कर पकड़ा था मन !

यौवनोन्मेष अनजाने
अनिमिष खो गए लोचन
कब मधुर प्रकृति शोभा ने
धर लिया मुग्ध नारी तन!
कब चाँद बन गया प्रिय मुख
गिरि शिखर उरोज मनोहर,
पृथु शैल मांस बंधाएँ
थी हरित तटी कटि सुंदर!

उड़ते हिम खग चंचल दृग
अधखुले मुकुल मधुराधर,
मुख श्वास भरी वन सौरभ
नव प्रणय वचन पिक के स्वर!
रथ पीत अनिल चंचल उड़
करता प्राणों को पुलकित
गिरि स्रोत रुपहले चलते
स्वर्णिम नूपुर कर झंकृत!

ऊषा नवोदित लज्जा में
लिपटी अब गिरि पर आती
संध्या उमड़े मृदु तम की
श्यामल वेणी लहराती!
देखा कवि ने शोभा का
भावाकुल नीर सरोवर
मुग्धा वय के मधु मारुत
स्पर्शों से कंपित थर थर!

चंपक अंगों की चंचल
लेटी हो सरित समावृत
यौवन प्रवेश में बहती
मधु स्वप्न पुलिन पर प्लावित!
स्वच्छ धूपछाँह सा कोमल –
लीला लावण्य तरल जल
पृथु धूम कूल जघनों से
मरकत सा फेनिल चंचल!

उठती गिरती लहरों का
हो शुभ्र हंस कल-स्वन
कोमल मृणाल की बाँहें
उत्फुल्ल कमल मुख मदन !
नव रक्त पद्म पँखुरी-से
मृदु अधर तुहिन मुक्ता स्मित
अब माला मुकुलित कटि तट
स्वर्णिम झाँकी स संहत !

प्रति मुग्ध अंग सा जल में
नव भँवर लालसा विह्वल
श्यामल निश्चेतन तम के
नील लोहित पावक दल !
यह फूट पड़ा हत चेतन
रस यौवन रूप सागर में
हाला लहरों पर उठ गिर
मधु ज्वाला भर अंतर में !

रति की फूलों की शय्या
कर सकी न मन को मोहित
यह स्नेह शून्य रज तन की
नव दीप शिखा थी कंपित !
जब रूप प्रेम हित तुमको
होगा सम्पूर्ण समर्पित
तुम प्राणहीन छाया-से
कब नर पशु सकल जीवित !

अंगी शोभा प्रभी का
शोभा जो माया कल्पित
जिसके पट में प्राणों का
तम पावक गिरि अवगुंठित !
मुग्धा भाव उसका मन
रस प्लावन में कर मज्जित
कब विभव गई छाया की
स्पर्शों की वीथी में निमग्न !

फूलों की कुंकुम सी स्मृति
वह उर में छोड़ भयानक
नागिन सी सरक गई द्रुत
मुझ को डँस उलट अचानक !
वह नहीं जानता था तब
क्या प्राणों का आकर्षण
क्यों प्रणयामृत हलाहल,
मृदु रूप स्पर्श अहि दंशन !

यौवन की चल जल सरिता
वह हुई मोड़ पर ओझल
स्थिर प्रेम सँभाल न पाया
शोणित इच्छा को चंचल !
उर में उस प्रथम प्रणय का
चुभता स्मृति - शल कर धारण
बीते नव विरही कवि के
जाने कितने युग से क्षण !

देखी भावी युग कवि ने
भू राग चेतना की स्थिति
देखा शोभा का विष फल,
स्वर्गीय प्रणय की क्षय इति !
जग में एकाकी जीवन
समझा उसने श्रेयस्कर,
जब तक न प्रेम का पंकज
उबरे कर्दम से ऊपर !

नर नारी दो ध्रुवों में
हों बँटे युग जिस क्षण में
प्राणों के स्वप्न पथिक को
रुकना पड़ता पग पग में !
वह साथ न पाता कैसे
मानव का शोभा प्रिय मन
चरितार्थ करेगा भू पर
विस्मय का प्रगाढ़ पौरुष !

यह प्रेम सचरण मन तन
बन सका न जन-भू जीवन
रख तन की दुर्बलता पर
आश्रित उसका मूल्यांकन!
वह लगता आकुल उन्मन
पग पग पर आत्म प्रताड़ित
नैतिक निषेध विष पीड़ित
सौन्दर्य प्रेम हित लांछित!

लगता उसका तन वंचित
संकीर्ण धरा उर प्रांगण
भू जीवन वर्जन से मृत
जन करते आत्म पलायन!
इंद्रिय कुंठित वंचित मन
पर जीवन द्वेषी निश्चित
मिथ्या आदर्शों में रत
गत रूढ़ि रीति पर मर्दित!

युग युग की मृत छायाएँ
प्रेतों सी जग में पूजित
पर निन्दक मर्ह निरत मति
पौधे मूल्यों में पोषित!
आवेश नया उठ मन में
भरता नव विद्युत् स्पंदन
घुमड़ा करता अंबर में
नव मानवता का यौवन!

लगता यदि निज अंतर पर
वह पटक बधिर धरा पर
प्रेम जाएगी धरती कँप
नभ के भीतर में दुस्तर!
या वह हठ बन सकर म
टकराए सिर ऊँचा कर,
फट जाएगा नभ का उर
स्वर्णिम प्रकाश भू में भर!

जग से विरक्त उसका मन
अपने ही में रहता मग्न
नित दिवा स्वप्न दर्शन में
भावुक कवि रहता तन्मय !
देखा उसने यह जागृत
अब किसी अतीन्द्रिय जग में
चाँदनी जहाँ बरसाती
सौरभ मरंद पग पग में !

शाश्वत वसंत का यह गृह
स्वर्गिक मधु श्रम से सिंचित
शोभा चरणों पर लेटा
आनंद जहाँ रस मोहित !
स्वप्निल छायाओं के वन
नव भाव वर्णों में मुखरित
संध्या ऊषाएँ फिरतीं
आभा अंगों में मूर्छित !

संगीत लहरिया में उठ
जीवन धारा कल बहती
मैं मांस प्रीति के मुख की —
सौरभ समीर से कहती !
छायाएँ निज अपथ में
रवि शशि किरणें कर गुम्फित
परिमल पराग फूलों के
पट बुनती जग भू के हित !

पंखा के पर फैला कर
पूर्णा के रंग अँगड़ाते
मुग्ध झूम झूम मधु पी अलि
प्रिय का संदेश सुनाते !
जीवन सरिता के तट पर
यौवन मधु वन बसाता
चाँदनी सजा हर पाती
मादन सुख नहीं अघाता !

हृदय अंग का अतिक्रम कर
देखता सूक्ष्म जग लोचन
किरणों के रँग से चित्रित
पतला पृष्ठ पर मोहन !
वह अभिव्यक्ति पाने को
हो रहा धरा पर मूर्तन
जड़ रूपों में सुंदरतर
नव ज्योति रूप वह चेतन !

खग पर खग सुमन सुमन पर
विस्मित छायाभा चित्रित
किसी मंगला जग बाहर
भीतर की सुषमा मंडित !
वह प्रीति रूप आभा के
मधु स्वप्न लोक में जीवित —
नर नारी आकृतियों की
सुंदरता से था परिवृत !

गहरा प्रकाश भर उसने
रति रचना रच तन्मय मन
रोमांचित हो उठते अंग
मुग्ध तड़ित् स्पर्श से प्रतिक्षण !
अगम पावन मधु निर्झर
बरसा तन पुष्प सा झर झर,
आनंद स्वर मुखरित हो
भर रहा प्राण सिहरकर !

सहसा उमड़ें क्या देखा —
युग भू की दारुण छाया
घन नील स्वन वर्गों की
फैलाती मांसल माया !
इन पदम रुचि मरों में
मृगछाया के शोभा गज
नाचे भू विजयावर
गाने वन विहग पावन घन !

सिसकारें ऊष्मा आँधी —
कँपता तपता हत तम मन
हों भय भ्रंश से लिपटी
अब अग्नि रज्जुएँ भीषण !
क्षत रीढ़ भग्न इच्छाएँ
थीं रेंग रहीं कीचड़ में
चेतना दंश मूर्छित थी
विष फन की फेनिल झड़ में !

वे सर्प रस्सियों से बट
बन गए भयानक अजगर,
जो जग को अब मादक सा
पकड़े थे भुज भव में भर !
सूँघे अहि ने कवि के अंग
खींचा बाहर इन्द्रिय मन
जिस उन्मद पावक फन से
प्राणों में भर विष दंशन !

उस मदिर दग्ध उच्छ्वासा से
रति विह्वल उसका अंतर
लोटा करता शोभा की
बाँहों में पुलकित निरंतर !
उसको न ज्ञात था कैसे
सुख की प्रवृत्ति पर पा जय
भावुक प्रशांत भक्तियों में
खोजे वह मन का मार्दव !

दुर्गम था जग भू का मन
रस पात्र न वह सह पाता
अब अग्नि पात्र था दुर्वह
भू स्वर्ग उतर था आया !
रस ज्योति प्राण तम में घुस
सहती स्रष्टा में मांसल
अवचेतन ज्वाला गिरि का
बनता था ज्वलन भीषण !

स्वर्गीय प्रीति का सुख सा
भू पंक सना भी विरहित
शोभा बंदी कोने में
छाया सी पड़ी उपेक्षित!
उपहास द्वेष लांछन भय
वासना रूप का परिचय
अवलोक उसे हो माया
जग जीवन के प्रति संशय!

रज गंध पंक में तन के
मन गया शुभ्र उसका मन
इंद्रिय आकांक्षा भू पर
बन सकी न थी रस पावन!
चूमा उसकी आँखों में
गत पूत प्रेम का भीषण
गीतों में चुने गए जब
बहु निरपराध प्रणयीजन!

अब प्रेम प्रथम रुक लेगा
भू पर,—बहुधा उसका मन
स्वर्गिक भी शोभा दीपित
अब होगा जन भू प्रांगन!
सुंदर होगा सुंदरतर
अब प्रीति पूर्णतर, निर्भय
भू मानस आरोहण कर
आलोकित होगा निश्चय!

यह पूर्ण प्रेम शोभा का
प्रेमी होगा रह तन्मय
रज तन से नहीं बँधेगा
जन भू का हृदय प्रभामय!
रस भूमि छोड़ अपना कवि
मन के ऊपर औ भीतर,
चिद् मणिमय धूली रेती न
मणि के स्व गुल्म जहाँ स्तर!

वह बैठा मंथर जग में
पढ़ योरप ढंग पढ़ दर्शन
मानस नृतत्व शास्त्रों का
पाया गंभीर विश्लेषण !
विज्ञान बहिर्जग का तम
दीपित करने में था रत
जग भू समाज रचना का
समझा था महत्व भविष्यत् !

युग स्थितियों का कवि उर को
आघात लगा था निर्मम
दीखते मनुज पर चलते
दारिद्र्य दुःख भय तम भ्रम !
घबराए सब भू मन का
करना था नव रूपांतर,
कैसे हो शोभा मंडित
युग युग का जीवन बंजर !

गंभीर प्रश्न था सम्मुख —
जड़ सम्पदाओं में रत जग
बहु धर्म कर्म में खंडित
गत जग का करते पूजन !
जैसे चलते जग भू पर
मन हो प्रस्तर युग पाहन
विज्ञान सृजन दे सबको
था बना ध्वंस का वाहन !

दीखे कवि को यति तापस
गैरिक वस्त्रों में भूषित
संयम तप के स्तंभों - से
मुख विरस शांति से मंडित !
बहु स्वर्ग दूत उतरे फिर
करुणा प्रेरित जग भू पर
हों महा पुरुष प्रभा स्मित
केसरी श्वेत नीलांबर !

घन स्पन्द समीर भ्रम में था
स्वर्गिक संगीत प्रवाहित
स्वर्णारुण पीत हरित सित
आभाओं मे विविध मंडित !
पावक कपोत से कवि को
उन स्वर्दूतों ने छू कर
द्रुत उड़ा दिया चिद् नभ मे
आलोक जहाँ स्तर पर स्तर !

वह शुभ्र शांति के पट सा
सात्विक प्रकाश का प्रवर
चिन्मय जीवों मे कुसुमित
समता का मौन मनोहर !
दम्भ रहित पूर्ण व सुंदर
सत्कर्मों के वह सुरभित —
जीवन की इच्छा पावक
पीयूष स्वाद से विरहित !

पूजा के पुष्पों से थे
अर्पित जन के जीवन मन
वैराग्य ज्ञान निधि प्रेरक
तप त्याग पुण्य पैतृक धन !
भासा कवि को प्रज्ञा का
वह दीप्त लोक अंत स्थित
था जहाँ अगम आत्मा का
व्यापक चिर रूप मर्यादित !

निर्मम विराग-भू पर वह
बिखरा अमंद अंत स्मित
दृग मूँद ध्यान मन भीतर, —
इंद्रिय शूलों पर कुसुमित !
साधना निरत रहता नित
अध्ययन मनन का जीवन
अंत शिखरों पर करता
उर ऊर्ध्व प्राण आरोहण !

मधु ध्यान भूमियाँ मन की
कर पार, ज्ञान नभ में नव
देखता, मुक्त आत्मा का
वह शुभ्र रजत नभ चिन्मय!
स्थिर, राजहंस सा उड़ता
सित स्फटिक शांति अंबर में
दीखा उसको हिमवत् सा
चैतन्य लोक अंतर में।

वह चिद् गिरि भी भव उर की
भावों से हो अंतर्हित
अविगत अरूप आभा में
लय होने का था किंचित्!
उठने को थे भू से पग
होने को प्राण समाधित
पाया कवि ने अपने को
अप्सरियों से अभिनंदित!

कब सिद्धि स्वर्ग हंसी सी
आ पास हुई तुम ओझल
स्मित रूपसियाँ सुर प्रेरित
उतरीं चिद् नभ से उज्ज्वल!
श्री शोभा लज्जा सज्जा
मृदु हाव भाव कर सुखकर
साकार हुईं तुम सम्मुख
मानस विभूतियाँ तन धर!

रस प्रीति रीति स्थिति माया
लीला रति धृति स्मृति क्रीड़ा
तनिमा भंगिमा मधुरिमा
भरती सदेह मन व्रीड़ा!
नयनों में घन लहराता
शोभा का कंपित उर सर,
नासा-पुट में भर पाती
सौरभ अनाम स्मृति को हर।

बहता संगीत पवन में
रसना में मौन अमृतमय
रोमांचित मृदु स्पर्शों का
भरता अंतर में विस्मय।
देखी कवि ने विषयेंद्रिय
स्वर्णिम प्रकाश से भूषित
आनंद भुवन थी वे सब
स्वर्गों की वेणी मोहित।

मधु छंद रसों की मादक
प्राणों की शतदल विकसित
मणि हार भाव लोकों की
चिन्मय पावक से विरचित।
कोमल मुकुलित अंगों का
खिल उठा उषा में मधुवन
सांसों के संग तनु सुषमा
उड़ सौरभ सी भरती मन।

मादक मधुमय शोभा पी
मद मोहित हो जाता मन
मृदु स्वप्न चंपक छवि वन में
खो जाते चल हैं लोचन।
ज्योत्स्ना सा पट स्वर्णांचल
लिपटा मृदु देह लता पर, —
फूलों के शिखरों से हो
झरता मरंद रस निर्झर।

अपलक चितवन चिरछाती
नव नील कमल मानस में
स्मित अधर लिपे लाली से —
जो घुली अमृत मधु रस में।
भाती थी तरल लड़ी सी
बिखरी कल हँसी क्षितिज में
रस हाव भाव अभिलाषित
फूटे अंकुर मनसिज में।

मुग्धा शोभा का पग वह
हिम पावक का सावर,—
निस्तल मांसल विस्मृति में
तन्मय रहता कवि अंतर!
जो कुसुमित अंगों के वन
कहता उसका मन प्रतिक्षण
तुम विद्युत् संज्ञा के घन,
निपतित जिसमें भू जन मन!

देखा कवि ने मृद् तम से
छवि रश्मि फूटती भास्वर,
सांपों की केंचुलियों में
मँमड़ाती नारी सुंदर!
वासना पीत नेत्रों में
स्वर्णिक सुरधनु दिक सज्जित
प्राणों के अग्नि कमल में
चैतन्य भंग मधु संचित!

देखा कवि ने विस्मय हत
थी इंद्र वह युग सम्मुख
रोहित पावक में लिपटे
नेत्रों में स्मित शशि सा मुख!
भावों के आलोकों का
झिलमिल किरीट था सिर पर,
मंदार कुसुम रज रंजित
तन उत्तरीय शुभ सुंदर!

करुणा रश्मि की कर में
अधिपानम का स्वर्णिम रथ
जो भूम मोह शिखरों को
विस्मृत करता घन मन पथ!
स्वर्गिक कुसुमों की वेदी
ले पुष्पोत्सवा था स्मृति वन
बांध निज बांए भुज में
दाएं में विद्युत् पंकज!

बोला कवि उत्तेजित हो
तो यह सुरेन्द्र की माया?
रच छाया सृष्टि मनोहर
जिसने मन को भरमाया!
यो धरा स्वर्ग के द्वेषी
संवरण करो निज विभ्रम
मैं रस प्रकाश का प्रेमी,
मैं क्षीण करूँ मति रज तम!

मधु काम तुम्हारा सहचर
जो बरसा फूलों के शर,
बेधा करते यतियों के
चित् सूक्ष्म भाव रत मधुर!
तम के दुःसह पर्वत का
मानव नित निज सिर पर धर
तपता ऊपर उठने को
तुम उसे पटकते भू पर!

पद्मासन बाँधे शिव सा
कर ध्यान मूल-साधे स्वर,
यह दुरारोह चिद् गिरि पर
चढ़ता तज प्राण मन स्तर!
धिक् यो भू जन के द्रोही
उसकी विमुक्त आत्मा पर
इन्द्रिय सम्मोहन बरसा
तुम शुद्ध बुद्धि लेते हर!

बोले वासव मुसका कर,—
यह सत्य नहीं यो साधक
मैं नहीं मनुज विद्वेषी
था धरा-स्वर्ग हित बाधक!
मुनियों की दंभ कथा तुम
चिर गुह-में दुहराते
भू-जन मति में जगत् को
तज क्यों नहीं बसाते!

मुझको बुध, तुम कवि होकर
जीवन वर्जन से पीड़ित
तुम व्यक्ति मुक्ति के प्रेमी
तम भ्रम रत शून्य समाश्रित!
यह सब मैं मुनियों का मत
हर शून्य ब्रह्म से बाहर
भू स्वर्ग बसाने के हित
गाता प्राणों के स्वर पर!

मैं दिव्य मनस — इंद्रिय मन
प्राणों का शाश्वत ईश्वर,
मैं नव स्वर्ग का प्रतिनिधि
विक्षेप घृणा से ऊपर!
सात्विक विभूति में लिपटा
बन मुझे उपेन्द्र बनाकर
कवि भजते मध्य युगों से —
जीवन वर्जन से जर्जर!

मैं त्रिगुणातीत — धरा पर
नव श्री शोभा में मूर्तित
जन जीवन स्वर्ग बसाने
करता प्रबुद्ध को प्रेरित!
काल्पनिक मुक्ति कामी बन
तुम आत्म शून्य में हो सम
गत युग के ऋषि मुनियों से
सोचते प्रकृति पर यह भ्रम?

जीवन का ध्येय नहीं यह
मन ब्रह्म रंध्र से उड़ कर
खो जाए रिक्त गगन में
पथ भ्रम मूर्छा मति के पर!
मैं जन धरती का प्रेमी
तुमसे कहने आया कवि
निज प्रतिभा पग पर खोना
तुम धरा स्वर्ग की नव छवि!

यदि ऊपर उठ जाए तो
नीचे भू पर मत जाओ —
शिखरों के स्वर्णोदय में
नव मानव लोक बसाओ।
सूक्ष्म स्वर्णिम इंद्रिय पावक
रस अंतर में संचित कर,
मार्जित संस्कृत जीवन का
भू स्वर्ग रचो लोकोत्तर!

पीढ़ी पीढ़ी भू यौवन
कुसुमित हो नारी नर में —
विकसित हो नव मानवता
शिव सत्य रूप सुंदर में!
गत मूल्यों में गत कुंठित
मन समग्र हो जीवन
चेतना शिखा वाहक बन
भू प्रीति ग्रथित हो जन मन!

ऊपर के सूर्योदय से
नव भू जीवन कर निर्मित
बहिरंतर संयोजन भर
तुम गढ़ो मुक्ति जन गण हित!
युग अध्यात्म पावक हो
इंद्रिय द्वारों में वितरित
रचि संस्कृत जीवन गाथा
रज धरा में मधु सुस्मित!

जन भू विकास पथ में थिर —
अनगढ़ अतीत छाया भर
भावी अंबर में रंजित
जीवन का स्वर्ग मनोहर!
तुम चाहो गत द्रष्टा से
हो मग्न चिद् नभ में लय
सब मानो मानवता का
यह भू पर धाम पगमय!

भू जीवन के प्रश्नों का
यदि समाधान बहु-मति भ्रम
वह रिक्त ऋणात्मक उत्तर
चिद् ज्योति नहीं — उसका तम !
सोचो — मत शुभ्र तिमिर में
खोयी साधक मन निष्क्रिय
इसको प्रकाश मत समझो —
वह शाश्वत गति रचना प्रिय !

जो मैं तुमको देता नव
रस पावक स्वर्णिम शतदल
नव भू मानस इंद्रिय स्मित
चित् किरणों का अंतस्तल !
यह मूढ़ प्रेम ही जग का
चिर सर्व शक्तिमय ईश्वर
वह शून्य नहीं सर्वाभय
रस रिक्त न पूर्ण परात्पर !

नव नव क्षितिज बन भासन
माया में हुए तिरोहित
बोले कवि मैं अंतर्दृग —
नव सत्य लोक में जागृत !
अपनी कुटीर में बैठा
वह था एकाकी उन्मन
गत यौवन की स्मृतियों से
उद्वेलित था मधु में मन !

उसके नासा पुट में उड़
पैठी सुगंध भू मादन
फूली थी मधुर करौंदी
महक थे मद भीने वन !
सहिजन शिरीष आंगन में
नव दुग्ध फेन से कुसुमित —
कवि की शिरीष कोमलता
रस वय मद मन घुम रिम !

नयन खोलते कवि के
भावी देही को नित
भावी लहरी में हो
प्रीति समुद्र तरंगित!
राग चेतना भू की
हो विकसित रस संस्कृत
नर नारी जीवन हो
मधु प्रांगण दिक् मुकुलित!

।

मध्य बिन्दु

(ध्यान)

परम व्योम से बरस रहे अमृत स्वर
मानस रस धारा में गाथा रा धा
सुमन तद्गत अंतर मुग्ध बराबर
हृदय गुहा की गिरा अगम्य अगाधा!

आराधना निरत जन भू मगन हिम
दिव्य चेतना से जीवन क्रम साधा
गगन नील में बज उठी बंशी ध्वनि—
विश्व शांति! जन प्रिय हरा भव बाधा!

यह हर्षित स्वप्न रव गूंज रहा कण कण में
रूपांतर कर जन भू मन का शासन में!
मन्त्रणा आतुर ताप-ऊर्मि रस सागर
स्वर्णारुण किरणें छूतीं प्राणों के स्तर!

स्वप्नों की पलभर बरस रही शोभा भर
आनंद तड़ित् हो गुंजन उठा मन का घर!
अप्सरियों-सी फहरा रश्मि किरणों के पर
म रही प्रेरणाएँ थरथर उर भीतर!

भावना स्वप्न भृंगा सी भर मति-गुंजन
मधुर बरसा अमर-वैभव के मधु घन
चेतना पंखिया नीर पद्म सा पावन
स्पंदित हुआ का शोभा का कण-कण!

खोलती पलक प्रभा पंखड़ियाँ प्रतिपल
फैला मधुमय स्पर्शों के मौन पुलक दल!
जीवनोल्लास से कँप कँप उठती थर थर
रस सृष्टि प्रेम का पा उन्मुक्त अभय घर!

अब खोल स्वप्न के द्वार सत्य धरता पग
नत भूपछाँह सुरधनुषों में लिपटा जग!
मुख से स्वर्णिम पट उठा रही दिव आभा
प्राणों की सरसी में धँस न्हाती आभा!

अनिमेष दृष्टि के सम्मुख झरते निःस्वर
किरणों के फासफर्स प्रकाश के निर्झर!
आती स्वर्दूती क्षितिज पार से उड़ कर
उर में आनंद मधुरिमा की शोभा भर!

ऊषाएँ नवांगिनि शुभ्र लाज से लोहित—
निश्छल सुंदरता आती मित अनसंकुल!
आते अरुणोदय के पथ जीवन मंगल
आभा मंडल के भीतर आभा मंडल!

कल्पना सत्य हो रही धरा मानव की
संयममय हो अध्यात्म पीठिका भव की!
भू पर करते साकार स्वर्ग क्षण विचरण
सुख बढ़े भार पुलकित सामूहिक जीवन!

अंतर्नभों पर प्रतिध्वनित हीरक स्वन
नव धरा स्वर्ग स्वप्न कवि सुनता तन्मय मन!
वह प्रथम लोक कारण भू जीवन का कवि
दिग् हरित तिमिर प्रांतर का स्वर्ण मुकुट रवि!

वह कोमल उर जल के पावक का रग पवि
रचना भावी का स्वप्न सद्य सुरधनु छवि!
वह गुह्य नील ध्वनि का गायक मित कोमल
मन चित् के स्पर्शों में संपुल पंकतल!

ऐंद्रियता की बाधाओं को अतिक्रम कर
निःसीम शांति में अनुशासित हो अंतर
पा रहा स्पर्श शाश्वत सत्ता के निःस्वर,—
चुनता प्रकाश जिसको उसको देता वर!

वंशी का बजन मर्म प्रतीक मधुरस्वर
साधना निरत रहते कवि प्राण निरंतर !
रस सर्जन स्वर संगति में बँधने निःस्वर
धारण करता वह शाश्वत ज्योति दिगंतर !

तपता वह विश्व व्यथा में सहने का भ्रम
धो राग द्वेष कल्मष का जीवन प्रांगण ! —
भू पर बरसाने रस प्रकाश वह प्रतिक्षण
अंतर्यामी को करता तन मन अर्पण !

भू मन की ईर्ष्या स्पर्धा से हो आहत
पोषण रखता आत्मा का अंतर्मुख शांत !
युक्तियाँ संतों सद्‌ग्रन्थों से चुन चिरकण
संयम करता अगम देवों का भोजन !

नव उन्मेषों में रहता कवि भावाश्रित
स्वर्णिम भावना पर राज्य करता नित !
मथित कर गत भू ज्ञान सिन्धु पावक घन
नव शशि सूर्यों का करता वह प्रस्थापन !

दिव पथ से करते पुष्प वृष्टि स्मित सुरगण
भरते प्रकाश पंखड़ियों के मकरंद दान !
ये सूक्ष्म भावनाएँ, धरती आ नव तन
किरणों का रुधिर शिराओं में पाता छन !

जिन स्वप्न मांस देही में जागो मानव
गत देश जाति बंधन विमुक्त युग संभव !
बढ़ मनः पंथियों कुंठाओं से विरहित
राष्ट्रों के भय संशय स्पर्धा से वंचित !

विकसित हो रहा युग युग का निर्मम मन
भू जीवन भव भव्य आस्था का प्रांगण !
आ रहे विराट मन दश दिशाओं के जन
स्त्री पुरुष निरंतर मुक्त काम बहिरंगन !

मधु गृह पुर भोजन भोग पूर्ण नारी नर
सामाजिक संतुलन के ये समन्वय सुन्दर
सांस्कृतिक भित्तिका पर नव युग की शासित
यम भव्य जीवन रचना मंदिर में योजित !

रस पावक से धो कनक काम का मानस
कर दिया प्रेम ने अमृत करों से पावन।
साधना क्षौम गैरिक तप व्रत के मंडन
पा गई साम्य अतिक्रम कर सुख दुख का मन।

शुचि राज हंस सी श्रेयस् के डैना पर
निःस्वर गति शांति उतरती भू मानस पर।
निःस्पन्द हिमाद्रि शिखर सी यह अंत स्थित
क्षीरोदधि सी सित निस्तरंग दिग् विस्तृत।

नत स्वर्णिम सुर वीणा कर उर में झंकृत
आनंद तड़ित् करती प्राणों को पुलकित।
किरणों के निर्झर सी शाश्वत से झर-झर
तन्मय करती यह रस अर्पित कवि अंतर।

आत्माओं के मुख का सौन्दर्य अनामय
भू स्वर्ग सृजन पावक सा सित ज्योतिर्मय
अवतरित हो रहा पलकों पर, हर भव भय
चेतना शिखर का सा अंत सूर्योदय।

आनंद शांति की शोभा में संयोजित
पीयूष सिन्धु सा अपने ही में मज्जित
स्वर्गीय प्रेम करता अंतर उन्मेषित
रस तप्त स्वर्ण यह, चित् मरन्द से सुरभित।

चित् दीप्त प्रसारों में फिरता कवि का मन
माणिक प्रकाश के झरते निर्झर प्रतिक्षण।
कुसुमों के स्फुरित मुखों पर मधु रँग खिलते
कोकिल स्वर में अमृत अंतःस्वर मिलते।

भावों के भीतर खुलते भाषा के स्तर
किरणों के हों सतरँग छवि भुवन अगोचर।
संबोधि दुग्ध धाराओं सी पड़ती झर
विद्युत् लहरी सी निःस्वर झंकारें भर।

स्वर्णिम रेखाओं में भी अस्फुट अंकित
चेतना हो रही नव रूपों में विकसित।
रच रहा रूप अमरित् जीवन में विस्तरित
छायाभा के ताने बानों में गुम्फित।

देखा कवि ने घुस प्राण गुहा के भीतर
पतझर बन झरता रह रह निर्मम मर्मर!
नैराश्य ग्लानि विक्षेप प्रमादों का घर
बहु भेद विभेदों से था भू उर जर्जर!

उद्दाम गंध से हो उठती मोहित मति
पग पग पर विस्मृति रुक जाती जीवन गति!
हा तिमिर बाहरी छिलका भू जीवन का
ममता प्रकाश भी छिलका अंतर मन का!

रस तत्व खोजती कवि की दृष्टि महत्तर
जो हो प्रकाश के भीतर, तम के बाहर!
सर्वत्र रास रचते तम अंतर में स्थित —
थी पूर्ण क्षमा भी नई चेतना जागृत!

निश्चेतन तम में जगता जीवन ईश्वर
घन कृष्ण नील तम अविदारण अभ्यंतर!
वह तम का गह्वर स्फुरित तड़ित् रवि मंडित
अंधियारी के स्वर्णिम प्रकाश सा चित्रित!

सब शक्ति पात वह भू के मन शिखर पर
आंदोलित सब सुर असुर सशंक चराचर!
मैं शक्ति देव वह कहता युग अधिनायक
मेरे कर में सर्वस्व नाश प्रभु सायक!

मैं पीता जीवन ज्वाला पौरुष हाला
मैं मृत्यु गरल फेनिल मिट्टी का प्याला!
भावी मनुष्य के सम्मुख दिग् दारुण रण
टूटते मुकुट गण लुटते नृप सिंहासन!

भू कंप मनो भू पर आने का भीषण
मूर्च्छा में पड़ने को मौलिक परिवर्तन!
जग रूढ़ि रीति की कारा में बंध जन मन
नव युग भू पर करने को मुक्त पदार्पण!

मैं काल नाश युग का जीवन का क्षति पथ
उड़ने को नभ पथ में भू मानव का रथ!
सुनता कवि-मन भू-अंतर का सुर अमर
सत असत चेतना मंथित था श्रम गह्वर!

कवि युग प्रबुद्ध था, विश्व नियति का ज्ञाता
द्रष्टा भू जीवन का प्रज्ञात विधाता!
था ज्ञात विश्व सभ्यता कहाँ पर अब स्थित
कैसे होंगी गत संस्कृतियाँ संयोजित!

परिचित वह, आज कहाँ पर रुका मनुज मन
कैसा उसका संकट उर का गोपन व्रण?
वह अवगत था, यह भू विकास युग का क्षण
नव शिखरों में करता मन को आरोहण!

स्वर्णिम पतंग गरुड़ सा झपट युगांतर
दुर्वह अब आ बैठा उसके कंधों पर!
अंतर्दीपित वह बहिर्तिमिर परिवेष्टित
जागृत था भीतर, मौन प्रणत जग के हित!

धन धन स्त्री सुत के लिए न गाता युग कवि
गाता वह मन में भरने प्रभु की नव छवि!
देखने प्रेम की आँखों से भू आनन
निज मत सौरभ से भरने जन प्रांगण!

कहता उसका मन प्रेम सृष्टि का ईश्वर
सौन्दर्य शांति आनंद क्षेम का निर्झर!
वह देख रहा था साथ रुद्ध घन भू मन
अवतरित हो रहा चित् प्रकाश का नूतन!

आलोक स्वर्ग उतरे हित था आशिस भर
संघर्ष निरंतर था भू तम से दुस्तर!
आवाहन उसने किया चेतना का नव
भू मन के स्तर पर था नव जीवन संभव!

जागो हे जागो धरा सपने जागो
युग युग की ईर्ष्या कुंठा स्पर्धा त्यागो!
अब दिशा काल उड़ कर आ रहे निकटतर
यह देश जाति में बँटने का क्या अवसर?

आ रहे निकट बहु भू भागों के जनगण
अब धर्मों संस्कृतियों का हो सम्मिश्रण!
भू मिटाके राष्ट्रों की सीमा अतिक्रम कर
मानवता माँग रही स्वर जीवन वर!

विश्राम बन जन भू रचना का साधन
अब मिटें राजनीतिक आर्थिक संघर्षण।
युग वैभव का हो जीवन में सम वितरण
विस्मृत हो बर्बर, आदिम सामंती मन।

जो प्रतिस्पर्धी शिविरों में विभक्त धरा जन
निज सर्वनाश के गढ़ते नित आयोजन।
यह वैयक्तिक सामूहिक मूल्यों का रण
नव स्वर्ण चेतना में समग्र संयोजन।

जन भू कुरूप दारिद्र्य तमिस्रा आवृत
अभी आत्मा अस्मिता अविद्या शासित।
मन राम रूप तन रोम रोम से मंडित —
हो सृजन प्राण नर सर्व श्रेय हित अर्पित।

विहँसें चिर मुकुलों से मनुजों के आनन
सुंदर से सुंदरतर हो जन जीवन क्षण।
जागो हे भू की राग चेतना जागो
निज काम द्वेष वैषम्य भेद अब त्यागो।

छाया कुंजों में मध्य युगों से सोई
तुमने आँसू की लड़ियाँ तप्त पिरोई।
तन विरह दाह में देह लता कुम्हलाई
तम गुंठित मन तुम रही मात्र परछाईं।

ज्योत्स्ना में शोभा राका सी स्मित सज्जित
मंडित रूपसी का कर अभिसार गर्वांकित
प्रिय को न देख कर होती रहीं विमूर्छित
तुम रूप गर्विता मानवती बन वंचित।

फिर पिंजर बद्ध शुकी सी प्रिय प्रिय रटती
तुम लौह स्वर्ण शृंखल बंधन में घुटती
स्वर्णिम उड़ान अब भूल गए गति प्रिय पर, —
मन क्षितिज पार गाता सुनील में स्वर भर।

मधु हार रहीं तुम गानों में केवल
भू बनी न स्वर्ग रही जड़ नाम मनोहर।
युगों की निर्मम सीमाओं के भीतर
बढ़ सकी न सुर मधुर वैभव धरोहर।

तन-तृप्ति स्वर्ग हो पशु का, — मानव का मन
सौन्दर्य तृप्ति के स्वर्ग खोजता नूतन!
वह प्रीति स्वर्ग आनंद स्वर्ग अभिलाषी
जग की भू पर अंतर्चैतन्य विलासी।

लघु व्यक्ति प्रणय या सित सामाजिक तोरण
नव शिखरों पर कर सके मुक्त आरोहण —
उर में शोभा के खुलें स्वप्न वातायन
जिनसे प्रकाश अनुराग किरण आएँ छन।

शत अग्नि परीक्षाएँ दे सह निर्वासन
अपहरण लोक अपवाद मृत्यु भय लांछन
तुम जीवन करती रहीं पंक में यापन
विकसित न अभी तक भू का अंतश्चेतन।

वंशी ध्वनि सुन तुम हो उठती थीं विस्मृत
वन हरिणी सी स्वर मोहित तन्मय, मूर्छित।
अब प्रकृति पुरुष को होना नव संयोजित
जन की जागृति में करनी तुम भू निर्मित।

तुम चिर वियोगिनी नहीं — नित्य संयोगिनि
शाश्वत अनंत रस की अनन्य संभोगिनि।
विरहानल में तप होता प्रेम न शोभित
वह स्वर्ण मिलन की तन्मयता में पोषित।

शिव काम मुक्ति वैराग्य न वह तन पीड़न
यतियों की कृच्छ्र तपस्या जीवन वर्जन —
वह राग भावना का सामाजिक वितरण
संतुलन शुद्ध हो प्राणेच्छा का प्रांगण!

सौन्दर्य भोग कर सकें मुक्त मन भू जन
हो प्रीति अग्नि रस पावन मानव जीवन।
स्त्री रज तन से लिपटा छाया सा नर मन —
वह प्रेम नहीं — तृष्णा भुजंग का बंधन।

पुष्पों व लता पर मँडराता मधुकर
यौवन के स्वप्न करें शोभा उर में घर!
सौन्दर्य वह्नि में निखर — सके भू जीवन
प्रकृतिस्थ किशोर किशोरी मुक्त हृदय मन।

अनिवार्य स्वतंत्र बनें अनुगामी नारी नर,
कटु काम दर्प से दग्ध न हो जन अंतर!
भू स्वर्ग सदृश बन बिचरे जीवन मुखरित
प्रिय स्नेह मुक्त स्त्री पुरुष शील से मर्यादित!

मधु दीप जिसे, कर रोम हर्ष उद्दीपित
आओ हँसी आनंद कला से संस्कृत
उर करो मधुरिमा में रस पुलक निमज्जित
आभा का वैभव हो प्राणों में वितरित!

आओ विद्युत् पावस मुहूर्त कर आओ
आओ भी चंपक ज्वाला में लिपटाओ!
पावक घन सी रस में भर उर नहलाओ
मन सुरधनुओं का सम्मोहन बरसाओ!

कामना मुक्ति से धन्य न भू जीवन पथ
रज द्वेष मुक्त हो राग प्रीति में परिणत!
जागो हे भू की प्राण चेतने जागो
जीवन के मधु में मन का पंक न पागो!

गत स्थितियों की कटु सीमाओं से पीड़ित
बन सका न भू जीवन सुखमय उर इच्छित!
जड़ भू तम से जन्मा था मानव जो रत
जाग्रत् था मन पर निद्रित अंतश्चेतन!

अपने ही सुख दुख में रत जिनका अंतर
वे देख नहीं पाते यह जग प्रभु का घर!
जीवन विकास क्रम को निज कर में सकर
मानव को निर्मित करती भावी शुभतर!

गत युग व्यक्ति इन्द्रिय विकास था भू पर
हो सका न भूत धरा पर जीवन ईश्वर!
कहते आए सब दर्शन धर्म निरंतर
यह विश्व बस का नीड़ ममता का घर!

कहते आए युग अनत काम का तम हर
जग रहे मोह ममता तृष्णा से ऊपर!
मन स्वार्थ विरत हो सब भूत हित में रत
यम नियम त्याग पर टेका हो जीवन व्रत!

निश्चय न व्यक्ति कृत्रिम जीवन में संभव
सर्व भूतों में आत्मा का करना अनुभव!
सामूहिक स्तर पर हो न सका तब स्थापित
अंतर्वैभव के व्यक्ति मूल्य आराधित!

अब भू मंगल हित मानव विधि को स्वीकृत
जग में हो नूतन जीवन वृत्त प्रतिष्ठित!
वैज्ञानिक युग को मिला आत्म संजीवन
अंतश्चेतन मानव कर रहा पदार्पण!

आर्थिक तात्विक सामूहिकता की भू पर
नव मनुष्यत्व अवतरित हो रहा भास्वर!
गत युग की वैयक्तिक सीमाएँ कर विस्तृत
आता सामाजिक मानव अंतर्विकसित!

सामूहिकता का भौतिक जड़ युग दर्शन
गढ़ रहा लौह पीठिका — शांत हो युग रण!
छू अंतरैक्य की पारस मणि से पावन
जड़ मोह को अब करना सुरभित कांचन!

फूलों को देखा व तन्मय जीवन क्षण
रोको न अशुभ को शुभ को भरने दो मन!
व अन्य नम जो सहज प्रकृति के सहचर
जग भू प्रिय प्रभु इच्छा से युक्त निरंतर!

भू मन को बनना अंतश्चेतन दर्पण
बिम्बित हो जिसमें नव ईश्वर का आनन!
जागो जागो जन मनश्चेतने जागो
देखो मूढ़ अंतर्मुख यह विधि मत त्यागो!

तुम बौद्धिकता के शुभ्र तमस में फँस कर
मत गिरो सुनहले ध्वंस गर्त में दुस्तर!
जड़ बहिर्मुखी विज्ञान सत्य आंशिक भर,
संपूर्ण सत्य का स्वगत गुह्य अभ्यंतर!

कहते समस्त द्रष्टा कवि था भी अनुभव
मन वाणी से पर नित्य तत्व चिर अभिनव!
छू पाता उसको नहीं तर्क विश्लेषण
तद्गत जीवन-मन की स्थिति उसका दर्शन!

इंद्रिय-मन करता बाह्य उपकरण संचित
बस छाया-पट सा जो प्रतिपल परिवर्तित —
मति करती मानस-ऊर्ध्व व्यवस्थित, गुंफित
बहु अंतर्मुख युग हो उठती विदीपित !

आनंद सूर्य रे भीतर स्वयं प्रकाशित
मंगलमय शाश्वत एकाकी, आत्मस्थित !
अनुपम अनंत, शोभा-समुद्र अतरंगित
अयाचित स्वर्गों में सर्जित एक अवांछित !

छाई हिरण्मय ज्योति, रत्न रज भास्वर,
नित स्वर्ण पंख छायाएँ बरसा भू पर !
जन भू की अक्षय संपद् चित में पुंजित
जिसको जीवन में होना विकसित मूर्तित !

चिद् स्वर्ग प्रतीक्षा रत वह भू पर बिखरे,
मानव अपने अंतःप्रकाश में निखरे !
जागो, भू की अध्यात्म चेतन जागो
मत संस्कारों धर्मों के गुंठन त्यागो !

तुमको दुर्बोध रहस्यों में लिपटा कर
दुर्गम कर दिया युगों ने जन हित दुस्तर !
उतरो अब धीरे विस्तृत भू पर पग धर
बिखरो दीपित कर जन मन प्राणों के स्तर !

इस मरकत भू से विशद कौन सा मंदिर
शत रश्मि स्फुरित स्वर्णाभ शीश जिसका सिर !
जिसका प्रांगण सौन्दर्य प्रेम से पावन
प्रभु जहाँ जन्म लते उर्वर रज में सन !

जिस पर चैतन्य विचरता नतमुख कर पग
सुर-नर कृतार्थ होते पा मानव का पद !
जिसके पावन स धो गत युग क लांछन
जन मन को बनना स्वच्छ सुघर प्रभु दर्पण !

नर नारी से बढ़ और कौन स्वर्गिक धन
जगमग जीवन नित जिसका अंतश्चेतन !
जनगण मंगल हित श्रम पूजन कर अर्पण
श्रद्धा में प्राण प्रतिष्ठा करनी भूतन !

तप त्याग तपस्या भक्ति कर जन भू हित
मानव जीवन करना तुमको नव निर्मित!
देवोपम तुम साकार ब्रह्म दिव मुकुलित,
ईश्वर की सत्ता एकमेव सब में स्थित!

आत्मिक स्तर पर कर एकांगी प्रभु दर्शन
तुम बना न पाई भू को भगवद् प्रांगण!
प्रस्तर में कर चिन्मय को प्राण प्रतिष्ठित
मति देख न पाई मानव ईश्वर जीवित!

ईश्वर की प्रतिमा अन्य कहीं क्या संभव ?
जन धरणी के अतिरिक्त मूर्त चिद् वैभव!
सचित ईश्वर जन, युग युग में हो विकसित
प्रभु को करता अभिव्यक्त — हृदय में जो स्थित!

भू रचना श्रम से श्रेष्ठ कौन स्तव पूजन ?
सचराचर का जिसमें श्रेयस् संवर्धन!
भू जन का उन्नत भावों से हो पोषण
वे आप्तकाम प्रभु के प्रतिनिधि हों प्रतिक्षण!

जन भू को छोड़ न स्वर्ग कहीं है ऊपर
आनंद मधुरिमा मंगल का जग हो घर!
बहिरंतर सामूहिक जीवन कर निर्मित
भू पर हो सबकी मुक्ति सर्व हित अर्पित!

गत रिक्त मुक्ति आदर्श मृत्यु था जन हित
परलोक मुखी जीवन निषेध चिर पीड़ित!
वास्तविक मुक्ति यह जब जन भू का प्रांगण
हो शुभ्र शांति सुख स्वर्ग सृजन श्रम रत मन!

हम नवी पीढ़ियों के वाहक जन भू पर,
उनके हित जीवन स्वर्ग रचें श्री सुखकर!
हों दान त्याग अनिवार्य तृप्त हों सुर नर,
जो मानव मंगल धाम बने भू सुंदर!

जीवन की ही है पूर्ण चेतना ईश्वर
जो व्याप्त विविध जीवों में — शाश्वत निर्झर, —
अमरत्व मृत्यु अपने में मूल निरंतर
लेता नव जन्म अपाप चिर स्मित अमर!

मन वाणी से जो परे, परात्पर, अविदित,
वह रहा सदा जीवन में होने मूर्तित !
जीवन इंद्रिय से ही वह सुलभ न संशय
जो अगाध मनस गोचर, अव्यक्त अनामय !
स्मृतियों में स्वर मुखरित श्रुति बनती दर्शन
तुमको नव युग जीवन का बनना दर्पण !
उपनिषदों में तुम ज्योति सरोजों में जग
दीपित कर पाईं गुहा — न भू जीवन मग !

श्रुति ऊर्ध्व अगोचर वैभव से आलोकित
आत्मा की गौरव गाथा से चिर मुखरित !
अज्ञेय सत्य का कर प्रत्यक्ष निरूपण
वे दीपित करतीं अंतःसत्ता गोपन !
शाश्वत प्रकाश की भी प्रकाश नि संशय
भावी संस्कृति की नींव बनें वे अक्षय !
वे मानव की जिज्ञासा शुभ्र सनातन —
जिन पर आस्था रख परम शांति पाता मन !
उनमें अपार आत्मा के शिखरों का स्मित
अंतर्दर्शन ऐश्वर्य, रहस्य अनावृत !
शाश्वत युग का सौन्दर्य, अपूर्व चिरंतन
जिसको बनना भावी में जन-भू जीवन !
मैं देख रहा हूँ शुभ्र ज्योति दिग् तोरण —
अंतर के स्वर्ण कपाट खुल रहे अनुक्षण !
जो बरस रहा मानिक प्रकाश का प्लावन
आनंद मधुरिमा शोभा मज्जित भू-मन !
जब मत मानस का करता सिंहावलोकन
मैं पाता सीमित जड़ पतन का विवरण !
जिस महत् सत्य का मुकुर रहा अधिदर्शन
स्थापित उसे न कर पाया भू जीवन !
धर्मों ने विधि नियमों में कर अवगुंठित
प्रभु को दुरूह कर दिया अगम्य तिरोहित !
बहु मंत्र तंत्र वादों - पंथों में खंडित
मानव मानव के निकट न आया किंचित् !

पोथी शास्त्रों विश्वासों से कुंठित
जन जीवन ईषत् हुआ न विकसित, संस्कृत,
बिखरे बहु द्रष्टा, साधक संत धरा पर
दो छोर विभक्त रहे जग के — नर, ईश्वर!

उद्देश्य न भू जीवन का था संवर्धन
परलोक पुनर्जीवन में भटका जन मन।
गत कर्मों का फल लौह नियति का बंधन, —
जग बना अविद्या स्वप्न मृग तृष्णा प्रांगण।

बुध भूल विश्वमय ईश्वर को निःसंशय
व्यक्ति से परात्पर आत्मा में हो तन्मय —
माया कह बहिर्जगत को — रहे प्रवंचित
दारिद्र्य तमस में जन भू को कर मज्जित!

इंद्रिय मन प्राणों के वैभव से वंचित
चिति विगत कल्प में रही मात्र आत्मस्थित।
अब जन जीवन में बहिरंतर संयोजित
उसको समग्रता में नित होना विकसित।

आनंद अखंड सृजन गति लय में स्पंदित —
रचना मंगल से उन्मेषित नित सत् चित्।
भू के प्रति आँखें मूँद अधर में स्थित मन
पा सकते सत्य न ज्ञान अंध उपरत जन!

अपवर्ग स्वर्ग परलोक अमेय से प्रेरित
जन चतुर्वर्ग में रहे न मूढ़ विभाजित
हों धर्म मुक्ति औ' अर्थ काम अनुशासित
ईश्वर न स्वर्ग में, जग भू पर हो स्थापित!

जिस जग में जन को सुलभ न स्वल्प समादर
पशु कृमि से विवश जहाँ रेंगा करते नर,
कैसे हो वहाँ मनुजता का संवर्धन
चाहिए धरा को नव संगठन नूतन!

जीवन इंद्रिय हो विकसित आत्म प्रकाशित
मन प्राण बुद्धि हों जिसको नित श्रद्धार्पित!
चित् हरित शक्ति से हो भू जीवन निर्मित
आनंद नीड़ में मानव मन अंतर्जीवित!

क्या सत्य ? प्रश्न अति गूढ़, अपेक्षित मन से पर,
वह शून्य न सूक्ष्मीकरण न तद्गत अंतर—
प्राणों से स्पंदित वह चिद् जीवन भास्वर—
सौन्दर्य प्रेम आनंद सृजन रस निर्झर !

वह भंगुर के गुंठन में नित्य चिरंतन
ज्ञापित जिससे जंगम जीवन क्रम अनुक्षण !
ऋत स्वर्ण शृंखला में गुंफित गति स्थिति लय
वह विश्व व्यवस्थित पूर्ण, सत्य महदाशय !

वह स्वतः सिद्ध जीवन में सतत प्रतीक्षित
संभाव्य भव्य सब के ही सहज निकट स्थित !
वह सर्व विश्व का सार, बुद्धि से अविजय
चिर साम्य सिद्धि जिसकी जन हित मंगलमय !

स्वर्ण स्मित पावक आत्म प्रज्वलित प्रोज्ज्वल,
जिसके रहस्य अंकुर से ज्योतित उडु दल !
अद्भुत प्रकाश से अपलक अंतर्लोचन,
सुनते अशब्द स्वर रोम कूप हँस प्रतिक्षण !

वह सत्य सूर्य ही परम साम्य शिव साधन
मन प्राणों में भरता उसका चिद् जीवन !
जन भू स्तर पर ही हो सकता ऋत मूर्तित
ज्यों दीप दीप से है समग्र आलोकित !

वह चिदुन्मेष करता जीवन उद्भासित
प्राणोच्छ्वस हो ज्यों भगवत् श्वास प्रवाहित !
वह मात्र प्रबोध न अमृत स्पर्श अति जीवित
जिस उष्मा बहिरंतर प्रसून सा महकित !

इंगित से उसके रस प्रहर्ष पड़ता झर,
रोमांचित शोभा मूर्त-रूप भरती भर !
वह ज्योति ज्योतियों की जिससे जग भास्वर
वह महत् सृष्टि आगम भू स्वर्ग निछावर !

अंतर पथ से कर व्यक्ति ऊर्ध्व आरोहण
उस परम सत्य के पथ पर करते विचरण
जो बहिरंतर हो भू जीवन संयोजन
जग सके धरा उस पूर्ण सत्य का प्रांगण !

तप त्याग यज्ञ ही सत्य सिद्धि के साधन,
जन मंगल हित जो हो श्रम तप आवाहन,
तो लोक यज्ञ सार्थक हो मुक्त धरा पर
सर्वात्म श्रेय ही भू मानव का ईश्वर!

वह स्वयं प्रकाश हिरण्मय द्युति से आवृत
नित आधिदैविक मति में रहता अंतर्हित!
जग को हिरण्य किरणों के पट में गुंठित
सविता को जग में करना प्राण प्रतिष्ठित!

भगवत् सुख का आनंद विमुख कर मन को
भव संघर्षण से विरत बनाता जन को!
लगता अपूर्ण दुःस्वप्न जगत् जीवन भ्रम
यह धरा नरक ही सूक्ष्म स्वर्ग का उपक्रम!

भौतिक आध्यात्मिक का विरोध — दुख कारण
भगवत् प्रकाश से दीप्त न जीवन प्रांगण!
वैराग्य नहीं अब दुख निवारण का साधन
अनुराग मूर्त हो सामूहिक जन जीवन!

विधि संयम आत्मिक शुद्धि मात्र — श्रम संयम —
मन के संग भू प्रांगण का भी हरना तम!
जग जीवन ही में संभव ईश्वर दर्शन
सुंदर से सुंदरतर हो जग भू प्रांगण!

शाश्वत का पा आनंद स्पर्श मानव मन
क्षण ऐंद्रिय सुख अतिक्रम कर बन नव चेतन
सीमाएँ बहिरंतर की कर विमज्जित
अंतर्जग में पाता रस भुवन तिरोहित!

आत्मा जिसको चुनती वैसी सक्षम वर
प्रभु का प्रसाद वह मुख हो उठता भास्वर!
अनुभूति आत्म वैज्ञानिक की — विद्युन्मय
भू जीवन मंगल में परिणत हो चिन्मय!

मन चमत्कार बन करता जिसके दर्शन
शब्दों में बँटता उसका सूक्ष्म न वर्णन!
यह अंतश्चेतन जग का सत्य निरूपण —
भू स्वर्ग गढ़े विज्ञान — मूर्त कर चिद् घन!

[illegible]
निस्सीम प्रेम पग पग पर पूर्ण प्रवर्धित !
सोपान विगत, — स्थिति-सीमा प्रति श्रेणी पर
ससीम पूर्ण — बहु पूर्ण पूर्ण के भीतर !

फिर कालातीत अवधि में काल निमज्जित
ज्यों लवण सिन्धु में — विश्व काल करतल स्थित !
वह प्रेम तत्व ! बहु एक — बुद्धि मन कल्पित
सीमा असीम शाश्वत अनित्य तन्मय नित !

भू सामूहिक-जीवन की हो समतल
बंधन विमुक्त हो अर्पित कर्मों का फल
तो सर्व भूतगत आत्मिक अनुभव उज्वल
चरितार्थ धरा पर हो जन जीवन मंगल !

यदि ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य असंशय
मिथ्या से मिल सकता न सत्य का परिचय !
नव प्रगतिशील चिद् सत्य अंश ही का स्तर,
प्रभु का गुण निश्चित देखेगा जग कर नर !

सामूहिक जीवन की विमुक्ति कर निर्मित
आत्मा के नभ में विचर व्यक्ति ध्यानस्थित
अंतःप्रकाश में हो सकता रस मज्जित
आनंद स्पर्श से शाश्वत के रोमांचित !

सर्वात्म भाव कर जन समाज में मूर्तित
जग हों कृत्रिम वर्जन निषेध से मुक्त !
इच्छाएँ पाश न रह बन स्वर्णिम तोरण
हों सामाजिक जीवन वैभव की वाहन !

भू संयम को हा जो जीवन यम अर्पित
जीवन का केन्द्र बन तब ईश्वर निश्चित !
प्रभु में सामूहिक मुक्ति सहज हो सक्रिय
ईश्वर से जग में जन्म — स्वर्ग सर्जन प्रिय !

हो शुद्ध स्वार्थ रत व्यक्ति अहं उन्मूलित
सामूहिक गरिमा में हो ईश्वर केन्द्रित !
आत्मा सामाजिक सीमाएँ अतिक्रम कर
सच्चिदानंद बन बन बरसे जन भू पर !

मध्य बिन्दु

निश्चय न व्यक्ति कल्पित जीवन मे
सब भूतों में आत्मा का करना अनु
सामूहिक स्तर पर हो न सका तब स
अंतर्मन से व्यक्ति मुख्य आराधि
अब भू मंगल हित मानव विधि को स
जग में हो भूतल जीवन पुन प्रतिष्ठि
वैज्ञानिक युग को मिला आत्म सज
अतश्चेतन मानव कर रहा पदार्प
धार्मिक तांत्रिक सामूहिकता की भू
नव मनुष्यत्व अवतरित हो रहा भास्वर
गत युग की दैविक सीमाएँ कर विस्तृ
आता सामाजिक मानव अंतर्विकसित
सामूहिकता का भौतिक जड़ युग दर्शन
गढ़ रहा लौह पीठिका – ज्ञात हो युग रथ !
छू अंतरैक्य की पारस मणि से पावन
जड़ लोहे को अब करना सुरभित कांचन !

फूलों को देखा वे तन्मय जीवन अथ
रोके न मनुज को युग को भरने को मन !
व अन्य नभ जो सहज प्रकृति के सहचर,
जग भू प्रिय प्रभु इच्छा से मुक्त निरंतर !
भू मन को बनना अतश्चेतन दर्पण
बिम्बित हो जिसमें नव ईश्वर का आनन !
जागो आओ अब मनश्चेतने जागो
त्यागो मूढ़ धर्ममुग्ध यह विधि मत मांगो !
युग बौद्धिकता के युग तमस न फँस कर
मन गिरे पुनरपि स्वप्न गत में दुस्तर !
जड़ बहिर्मुखी विज्ञान अन्य धार्मिक भर,
संपूर्ण सत्य का स्वप्न मुक्त अभ्यंतर !
ज्ञान समस्त इच्छा शक्ति का भी अनुभव
मन वाणी से पर नित्य सत्य चिर अभिनव !
छू पाता उसको नहीं

इंद्रिय-मन करता बाह्य उपक्रम संचित,
बस छाया पट सा जो प्रतिपल परिवर्तित —
मति करती मानस-ऊर्म व्यवस्थित, गुम्फित
वह अंतर्मुख मुक्त हो उठती चिद्दीपित!
आनंद सूर्य रे भीतर स्वयं प्रकाशित
मंगलमय शाश्वत एकाकी आत्मस्थित!
अनुपम, अनंत शोभा-समुद्र अतरंगित
अपरिमित स्वर्गों में संचित एक अखंडित!
छाई हिरण्मय ज्योति रत्न रज भास्वर,
जिस स्वर्ग पंथ छायाएँ बरसा भू पर!
बन भू की अक्षय संपद् दिव में पुंजित
जिसको जीवन में होना विकसित मूर्तित!

चिर स्वर्ग प्रतीक्षा रत वह भू पर बिखरे,
मानव अपने अंतःप्रकाश में निखरे!
जागो, भू की अध्यात्म चेतन आत्मा
मत संस्कारों भ्रमों के गुंठन त्यागो!
तुमको दुर्बोध रहस्यों में लिपटा कर
दुर्गम कर दिया युगों ने जन हित दुस्तर!
उतरो अब धीरे विस्तृत भू पर पग धर
बिखरो दीपित कर तन मन प्राणों के स्तर!
इस मरकत भू से विशद कौन सा मंदिर
शत रश्मि स्फुरित स्वर्णाभ शीश जिसका सिर!
जिसका प्रांगण सौन्दर्य प्रेम से पावन
प्रभु जहाँ जन्म लेते उर्वर रज में सन!
जिस पर चैतन्य विचरता तन्मय कर पद
सुर-नर कृतार्थ होते पा मानव का पद!
जिसके प्रांगण से धो गत युग के लांछन
जन मन का बनना स्वच्छ सुघर प्रभु दर्पण!
नर नारी से बढ़ और कौन स्वर्गिक धन
उन्नयन शील नित जिसका अंतर्वर्तन!
जगमग मंगल हित मम पूजन कर अर्पण
श्रद्धा में प्राण प्रतिष्ठा करती भूतन!

तप त्याग तपस्या भक्ति कर जन भू हित
मानव जीवन करता तुमको नव निर्मित !
देवोपम तुम साकार बहु विध मुकुलित
ईश्वर की सत्ता एकमेव सब में स्थित !

आत्मिक स्तर पर कर एकांगी प्रभु दर्शन
तुम बना न पाईं भू को भगवत् प्रांगण !
प्रस्तर में कर चिन्मय को प्राण प्रतिष्ठित
मति देख न पाई मानव ईश्वर जीवित !

ईश्वर की प्रतिमा अन्य कहाँ क्या संभव ?
जन धरती के अतिरिक्त मूर्त चिद् वैभव !
सर्जित ईश्वर जन युग युग में हो विकसित
प्रभु को करता अभिव्यक्त — हृदय में जो स्थित !

भू रचना भव से श्रेष्ठ कौन स्तव पूजन ?
सचराचर का जिसमें श्रेयस् संवर्धन !
भू जन का उन्नत भावों से हो पोषण
वे आप्त-काम प्रभु के प्रतिनिधि हों प्रतिक्षण !

जन भू को छोड़ न स्वर्ग कहीं है ऊपर
आनंद मधुरिमा मंगल का जग हो घर !
बहिरंतर सामूहिक जीवन कर निर्मित
भू पर हो सच्ची मुक्ति सर्व हित अर्जित !

गत रिक्त मुक्ति आदर्श मृत्यु था जग हित
परलोक मुखी जीवन निषेध विष पीड़ित !
वास्तविक मुक्ति यह, जब जन भू का प्रांगण
हो शुभ्र शांति सुख स्वर्ग सृजन श्रम रत मन !

हम नयी पीढ़ियों के वाहक जन भू पर,
उनके हित जीवन स्वर्ग रचें भी सुन्दर !
हों दान त्याग चरितार्थ तृप्त हों सुर नर,
जो मानव मंगल धाम बने भू सुंदर !

जीवन की ही है पूर्ण चेतना ईश्वर
जो व्याप्त निखिल जीवों में — शाश्वत निर्झर —
अमरत्व मृत्यु जनमने में सुख निरंतर
लीला नव उद्गम प्रसार स्थिति फिर अमर !

मन वाणी से जो परे, परात्पर, अविदित
वह एक सत्य जीवन में होने मूर्तित !
जीवन इंद्रिय से ही वह सुलभ न संशय
जो अवाङ् मनस गोचर, अव्यक्त अनामय !

स्मृतियों में स्वर-मुखरित चिति बनती दर्शन
तुमको जब युग जीवन का बनना दर्पण !
उपनिषदों में तुम ज्योति प्ररोहों में जग
दीपित कर पाईं गुहा-स्थ भू जीवन मग !

श्रुति ऊर्ध्व अगोचर वैभव से आलोकित
आत्मा की गौरव गाथा से चिर् मुखरित !
अमेय सत्य का कर प्रत्यक्ष निरूपण
वे दीपित करतीं अंतःसत्ता गोपन !

शाश्वत प्रकाश की भी प्रकाश निः संशय
भावी संस्कृति की नींव बनें वे अक्षय !
वे मानव की जिज्ञासा शुभ्र सनातन —
जिन पर आस्था रख परम शांति पाता मन !

उनमें अपार आत्मा के शिखरों का स्मित
अंतर्दर्शन ऐश्वर्य, रहस्य अनावृत !
शाश्वत सुख का सौन्दर्य, प्रहर्ष चिरंतन
जिसको बनना भावी में जन-भू जीवन !

मैं देख रहा हूँ शुभ्र ज्योति दिग् तोरण —
अंतर के स्वर्ण कपाट खुल रहे अनुक्षण !
जो बरस रहा मानिक प्रकाश का प्लावन
आनंद मधुरिमा शोभा मज्जित भू मन !

जब गत मानस का करता सिंहावलोकन
मैं पाता सीमित अर्ध सत्य का वितरण !
जिस महत् सत्य का मुकुर रहा उपनिषद्गण
स्थापित उसे न कर पाया भू जीवन !

धर्मों ने विधि नियमों में कर अवगुंठित
प्रभु को दुरूह कर दिया अगम्य तिरोहित !
बहु मंत्र तंत्र वादों पंथों में गर्हित
मानव मानव से निकट न आया किंचित् !

खोयी आस्थाओं विश्वासों से कुंठित
जन जीवन ईप्सित हुआ न विकसित, संस्कृत,
बिखरे बहु द्रष्टा साधक संत धरा पर
दो छोर विभक्त रहे जग के — नर, ईश्वर!

उद्देश्य न भू जीवन का था संवर्धन
परलोक पुनर्जीवन में भटका जग मन!
गत कर्मों का फल मोह नियति का बंधन —
जग बना अविद्या स्वप्न मृग तृष्णा आंगन!

बुध भूल विश्वमय ईश्वर को निःसंशय
व्यक्ति से परात्पर आत्मा में हो तन्मय —
माया कह बहिर्जगत को — रहे प्रवंचित
दारिद्र्य तमस में जन भू को कर मज्जित!

इंद्रिय मन प्राणों के वैभव से वंचित
चिति विगत कल्प में रही मात्र आत्मस्थित!
अब जन जीवन में बहिरंतर संयोजित
उसको समग्रता में नित होना विकसित!

आनंद अखंड सृजन गति सब में सम्मित —
रचना मंगल से उन्मेषित नित सत् चित्!
भू के प्रति आँखें मूँद अधर में स्थित मन
पा सकते सत्य न ज्ञान अंध उपरत जन!

अपवर्ग स्वर्ग परलोक श्रेय से प्रेरित
मन चतुर्वर्ग में रहे न मूढ़ विभाजित
हों अर्थ मुक्ति से धर्म काम अनुशासित
ईश्वर न स्वर्ग में जन भू पर हो स्थापित!

जिस जग में जन को सुलभ न स्नेह समादर
पशु कृमि से विवश जहाँ रेंगा करते नर,
कैसे हो वहाँ मनुजता का संवर्धन
चाहिए धरा को नव संगठन सृजन!

जीवन इंद्रिय हों विकसित आत्म प्रकाशित
मन प्राण बुद्धि हों जिसको नित सर्वार्पित!
चिर हरित भक्ति से हो भू जीवन निर्मित
आनंद नीड़ में मानव मन संतर्पित!

क्या सत्य ? प्रश्न मति मूढ़ व्यथित मन से पर,
वह शून्य न सूक्ष्मीकरण न तद्गत अंतर—
प्राणों से स्पंदित वह चिद् जीवन भास्वर—
सौन्दर्य प्रेम आनंद सृजन रस निर्झर !

वह अंतर के गुंठन में नित्य चिरंतन
शासित जिससे जंगम जीवन क्रम अनुक्षण !
ऋत स्वयं शृंखला में गुम्फित गति स्थिति लय
वह विश्व व्यवस्थित रूप सत्य महदाशय !

वह स्वतः सिद्ध जीवन में सतत प्रतीक्षित
संभाव्य सत्य सब के ही सहज निकट स्थित !
वह सर्व विश्व का सार, बुद्धि से अतिशय
चिर साम्य सिद्धि जिसकी जग हित मंगलमय !

स्वर्ग स्मित पावक आत्म प्रज्वलित प्रोज्ज्वल,
जिसके रहस्य अंकुर से ज्योतित उडु दल !
अद्भुत प्रकाश से अपलक अंतर्लोचन
सुनते अशब्द स्वर रोम रूप हँस प्रतिक्षण !

वह सत्य सूर्य ही परम साम्य सित साधन
मन प्राणों में भरता उसका चिद् जीवन !
जन भू स्तर पर ही हो सकता ऋत मूर्तित,
ज्यों दीप दीप से रे समग्र आलोकित !

वह चिदुन्मेष करता जीवन उद्भासित
प्राणोद्गम हो ज्यों भगवत् श्वास प्रवाहित !
वह मात्र प्रबोध न अमृत स्पर्श गति जीवित
खिल उठता बहिरंतर प्रसून सा प्रहसित !

इंगित से उसके रस अपूर्व पड़ता झर,
रोमांचित शोभा मूर्त-रूप सजी घर !
वह ज्योति ज्योतियों की जिससे जग भास्वर
वह महत् सृष्टि आशय भू स्वर्ग निछावर !

अंतर पथ से कर व्यक्ति ऊर्ध्व आरोहण
उस परम सत्य के पथ पर करते विचरण
जो बहिरंतर हो भू जीवन संयोजन
जन सकें उठा उस पूर्ण सत्य का प्रांगण !

जोगी आत्माओं विश्वासों से कुंठित
जन जीवन ईषत् हुआ न विकसित संस्कृत
बिखरे बहु द्रष्टा साधक संत धरा पर
दो छोर विभक्त रहे जग के — नर, ईश्वर !

उद्देश्य न भू जीवन का था संवर्धन
परलोक पुनर्जीवन में भटका जन मन !
गत कर्मों का फल लौह नियति का बंधन —
जग बना अविद्या स्थल मृग तृष्णा प्रांगण !

युग युग विस्मय ईश्वर को निःसंशय
व्यक्ति से परात्पर माया में हो तन्मय —
माया कह बहिर्जगत को — रहे प्रवंचित
दारिद्र्य तमस में जन भू को कर मज्जित !

इंद्रिय मन प्राणों के वैभव से वंचित
चिति विगत कल्प में रही मात्र आत्मस्थित !
अब जन जीवन में बहिरंतर संयोजित
उसको समग्रता में नित होना विकसित !

आनंद अखंड भुवन गति लय में शोभित —
रचना मंगल से उन्मेषित नित सत् चित् !
भू के प्रति आँखें मूँद अधर में स्थित मन
पा सकते सत्य न ज्ञान प्रेम उपरत जन !

अपवर्ग स्वर्ग परलोक श्रेय से प्रेरित
मन चतुर्वर्ग में रहे न मूढ़ विभाजित
हों धर्म मुक्ति से अर्थ काम अनुप्राणित
ईश्वर न स्वर्ग में जन भू पर हो स्थापित !

जिस जग में जन को सुलभ न स्नेह समादर
पशु कृमि से विवश जहाँ रेंगा करते नर,
कैसे हो वहाँ मनुजता का संवर्धन
चाहिए धरा को नव संगठन नूतन !

जीवन इंद्रिय हो विकसित आत्म प्रकाशित
मन प्राण बुद्धि हों जिसको सित मर्यादित !
चित् एषित शक्ति से हो भू जीवन निर्मित
आनंद नीड़ में मानव मन अंतःस्थित !

क्या सत्य ? प्रश्न अति गूढ़, व्यक्ति मन से पर,
वह शून्य न सूक्ष्मीकरण न तद्गत अंतर —
प्राणों से स्पंदित वह चिद् जीवन भास्वर —
सौन्दर्य प्रेम आनंद सृजन रस निर्झर !

वह अंकुर के गुंठन में नित्य चिरंतन
शासित जिससे जंगम जीवन क्रम अनुक्षण !
ऋत स्वप्न शृंखला में गुंफित गति स्थिति लय
यह विश्व व्यवस्थित पूर्ण सत्य महदाशय !

वह स्वतः सिद्ध जीवन में सतत प्रतीक्षित
संभाव्य सत्य सब के ही सहज निकट स्थित !
वह सर्व विश्व का सार, बुद्धि से अतिशय
चिर साध्य सिद्धि जिसकी जग हित मंगलमय !

स्वर्ग-स्मित पावक, प्राण प्रज्वलित प्रोज्ज्वल,
जिसके रहस्य अंकुर से ज्योतित उडु दल !
अद्भुत प्रकाश से अपलक अंतर्लोचन
सुनते अगाध स्वर रोम कूप हैं प्रतिक्षण !

वह सत्य सूर्य ही परम साध्य चिर साधन,
मन प्राणों में भरता उसका चिद् जीवन !
जग भू स्तर पर ही हो सकता ऋत मूर्तित,
ज्यों दीप दीप से रे समग्र आलोकित !

वह विद्युन्मेष करता जीवन उद्भासित
प्राणोज्ज्वल हो ज्यों भगवत् श्वास प्रवाहित !
वह मात्र प्रबोध न अमृत स्पर्श अति जीवित
खिल उठता बहिरंतर प्रसून सा प्रहसित !

इंगित से उसके रस प्रहर्ष पड़ता झर,
रोमांचित शोभा मूर्त रूप लेती धर !
वह ज्योति ज्योतियों की जिससे जग भास्वर
वह महत् सृष्टि आनन्द भू स्पर्श निछावर !

अंतर-पथ से कर व्यक्ति ऊर्ध्व आरोहण
उस परम सत्य के पथ पर करते विचरण
जो बहिरंतर हो भू जीवन मनोरम
बन सके धरा उस पूर्ण सत्य का प्रांगण !

तप त्याग मात्र ही सत्य सिद्धि के साधन
जब मंगल हित जो हो मम तप आवाहन
तो लोक मंत्र सार्थक हो मुक्त धरा पर
सर्वहित श्रेय ही भू मानव का ईश्वर!

वह स्वयंप्रकाश हिरण्मय द्युति से आवृत
निज आधिदैविक गति में रहता अंतर्हित!
जग को हिरण्य किरणों के पट में गुंठित
सविता को जग में करता प्राण प्रतिष्ठित!

भगवत् सुख का आनंद विमुख कर मन को
भव संघर्षण से विरत बनाता जन को!
लगता अपूर्ण दुःस्वप्न जगत् जीवन भ्रम
यह धरा नरक ही सृजन स्वर्ग का उपक्रम!

भौतिक आध्यात्मिक का विरोध—दुख कारण
भगवत् प्रकाश से दीप्त न जीवन प्रांगण!
वैराग्य नहीं भव दुख विनाश का साधन
अनुरूप मूर्त हो सामूहिक जग जीवन!

विधि अनवगत आत्मिक मुक्ति मात्र — यम संयम —
मन के संग भू प्रांगण का भी हरना तम!
जग जीवन ही में संभव ईश्वर दर्शन
सुंदर से सुंदरतर हो जग भू प्रांगण!

शाश्वत का पा आनंद स्पर्श मानव मन
क्षण इंद्रिय सुख अतिक्रम कर बन नव चेतन
सीमाएँ बहिर्जगत की कर निमज्जित
अंतर्जग में पाता रस भुवन तिरोहित!

आत्मा जिसको चुनती देती अक्षय वर,
प्रभु का प्रसाद वह मुख हो उठता भास्वर!
अनुभूति आत्म वैज्ञानिक की—विद्युन्मय
भू जीवन मंगल में परिणत हो अभिनव!

मन तदाकार बन करता जिसके दर्शन
शब्दों में बँधता उसका गुह्य न वर्णन!
यह अंतश्चेतन पथ का सत्य निरूपण—
भू स्वर्ग गढ़े विज्ञान—मूर्त कर चिद् घन!

अब प्रतीत न संप्रति में भविष्य में सीमित
निःसीम प्रेम पग पग पर पूर्ण प्रकंपित!
सोपान विश्व — स्थिति-शोभा प्रति श्रेणी पर,
सर्वांग पूर्ण — बहु पूर्ण पूर्ण के भीतर!

चिर कालातीत अवधि में वास निमज्जित
ज्यों लवण सिन्धु में, — विश्व काल क्रमतम स्थित!
वह प्रेम तत्व! बहु एक — बुद्धि मन कल्पित
सीमा असीम शाश्वत अनित्य तन्मय नित!

भू सामूहिक-जीवन की हो वक्षस्थल
बंधन विमुक्त हो अर्पित कर्मों का फल
तो सर्व भूतगत आत्मिक अनुभव उज्ज्वल
चरितार्थ धरा पर हो जन जीवन मंगल!

यदि ब्रह्म सत्य तो जग भी सत्य असंशय
मिथ्या से मिल सकता न सत्य का परिचय!
जब प्रगतिशील चिद् सत्य अंश ही का स्तर,
प्रभु का मुख निश्चित देखेगा जग कर नर!

सामूहिक जीवन की विमुक्ति कर निर्मित
आत्मा के नभ में विचर व्यक्ति ध्यानस्थित
अंतःप्रकाश में हो सकता रस मज्जित
आनंद स्पर्श से शाश्वत के रोमांचित!

सर्वांगम भाव कर जन समाज में मूर्तित
जन हों कृत्रिम वर्जन निषेध से मुषित!
इच्छाएँ पाश न रह बन स्वर्णिम तोरण
हों सामाजिक जीवन वैभव की वाहन!

भू मंगल को हो जो जीवन श्रम अर्पित
जीवन का केन्द्र बने तब ईश्वर निश्चित!
प्रभु में सामूहिक मुक्ति सहज हो सक्रिय
ईश्वर न जग में जग — स्वर्ग सर्जन प्रिय!

हो मुक्त, स्वार्थ रत व्यक्ति अहं उन्मूलित
सामूहिक महिमा में हो चेतन केन्द्रित!
आत्मा सामाजिक सीमाएँ अतिक्रम कर
सच्चिदानंद बन बन बरसे जग भू पर!

आनंद मग्न चिति के सर्वोच्च परम स्वर
अंतस्थ प्रेम गुण में जो बँधे परस्पर !
मन प्राण देह का सृजन यंत्र कर निर्मित
जीवन विकास क्रम में आत्मा अंत स्थित !
मधु व्यथित चेतना कोष बद्ध भू मानव
अपने को खोज करे विकास क्रम संभव !
हो विश्व मनस् से व्यक्ति मनस् संचालित
आत्मा से जीवन जीवन से मन शासित !
जन भू मंगल ही धर्म लोक मन पूजन
गत भव तमस से यदि मुक्त हो जन मन !
ध्यानस्थ सत्य सम्मुख स्थित देखें बुध जन
बहिरंतर भव सच्चिदानंद का आंगन !
स्थिर, निस्तरंग स्मित दुग्ध सिन्धु सा अंतर
शाश्वत स्थिति की निःसीम ज्योति से भास्वर —
कर देता उर निर्भ्रांत — बतलाता निःस्वर
जड़ जीवन मन का सत्य एक ही ईश्वर !
अति पुरा काल में देख सब विविध बंधन
जिज्ञासा मंथित हुआ आर्य जन का मन !
वचनों में श्रुतियाँ जगीं ज्ञान कह गोपन
ज्यों मनो युगों में तड़ित् स्फुरित अति चेतन !
विज्ञान शोध कर बोध सृष्टि संबंधित
मौलिक कारण का ज्ञान ध्यान से निश्चित !
जड़ मन हो फिर से दिव्य चित् शक्ति समन्वित
विज्ञान तमस जो ज्ञान रश्मि हो दीपित !

वह आदि हेतु ही अपने को कर सीमित
स्थित स्वर्ण गर्भ में हुआ स्वयं ही अर्पित !
लेटा था स्त्री सा असत् प्रसव दुख पीड़ित
टाँगें फैलाए, — तपस्तेज से गर्भित !
अद्भुत कारण था काम — अनंत तपोबल
सोया था नीचे अप्रकेत जल निश्चल !
अनिमेष देवता था साक्षीवत् ईश्वर,
कँपता अव्याकृत असत् सागर सा थर थर !

वह स्वर्णिम डिम्ब हिरण्य गर्भ ही बँटकर
बन गया स्वर्ग भू — सूक्ष्म स्थूल — सुर-नर नर !
वह विश्वात्मा रे स्वर्ण रश्मि से आवृत
परमेश्वर का शिव मुकुर, स्वरूप प्रकाशित !

वह परब्रह्म ईश्वर निःसीम मर्यादित
नव संभावित संगतियों में नित विकसित !
निज सृजन मुक्ति में रचना रत जगदीश्वर
शिव शक्ति ग्रथित प्रज्ञान मेघ वह भास्वर !

इस भाँति परम ईश्वर, हिरण्य आत्मा भव,
आलोक श्रेणियाँ ब्रह्म योनि की संभव !
आत्मा जीवन यथाशा, विराट् में प्रसरित
भव का विकास क्रम करती जो संचालित !

जब आदि शांति में मूल प्रकृति रहती लय
तब नाद ब्रह्म वंशी में स्वर भर तन्मय —
रचता अनंत में काल हीन रस तांडव
आनंद स्फुरित नव भरते मार्ग अमर भव !

प्रभु सृष्टि न रचते स्वयं सृष्टि बन जाते,
निज से ही निज में अभिव्यक्ति वह पाते !
वह उधर परात्पर, व्याप्त इधर जग जन में
आनंद महत् ही भव विकास के मय में !

भव-प्रकृति परम चेतन का यंत्र असंशय
परिवर्तन व्यर्थ न लिए गूढ़ महदाशय ! —
शाश्वत ही मे भंगुर पदार्थ का उद्भव
संप्रति में गुंठित मुग्ध भविष्य का चिर नव !

विरचित पथ-स्थ सोपान उच्च श्रेणी हित
सीमा निज सीमा अतिक्रम करती निश्चित !
सक्रिय जग जन में पूर्ण चेतना अविरल
बाधा बनती पथ, सत्पथ सिद्धि अनागत !

जग भगवत् सृजन कला, असीम गुण प्रेरित
सब कुछ प्रतिपल होता रहता परिवर्तित !
भव द्वन्द्व विरोधों में द्रुत नित विकसित
ऐश्वर्यमय संप्रति मे सलिल-प्रणय मणि गुंफित !

भू–स्वर्ग पीठ प्रभु के चरणों की अभय
द्वन्द्वों का संघर्षण न चिरंतन निश्चय !
जड़ चित्, भू, स्वर्ग — परम ही सब का उद्गम
भू का सुवर्ग रूपांतर विरचित विधि क्रम !
जड़ में चेतन ही स्वप्न खचित अविनश्वर,
पालेगा वह प्रभु की इच्छा सार्थक कर !
अब जग शुभात्मा प्रेम स्वयंभू ईश्वर,
चिद् जीवों का भव भव्य, वह शुभ परात्पर !
मिथ्या न जगत्, यह ईश्वर का वर आँगन
क्षण के लघु पग धर करता शाश्वत विचरण !
आनंद अमर बन होता ज्योति प्ररोहित
सीमा असीम के पंखों पर उड़ती नित !
नित व्यक्ति विश्व से पूर्ण — मनुज चिर भीतर,
वह नित्य असीम में मुक्त प्राण मन से पर,
सब स्वर संगति का भी वह मौन मुखर स्वर
नित उर सौरभ से मनुज विश्व देगा भर !
विश्वात्मा सत्य जगत् विकास के पथ पर
अंतश्चेतन अभिव्यक्ति सतत अविनश्वर !
ईश्वर भव सुख दुख सहता सब के भीतर,
उसका ही शोभा धाम बनेगा अंतर !

वह परम न जीवन शून्य — अखंड परात्पर,
भव जीवन का न विनाश क्रमिक रूपांतर !
वह जीवन का जीवन आनंद अमृत घन
सत्यों का सत्य अकारण जग का कारण !
उस परम सत्य के अपने में पालित जग
यह अमृत प्रसव उद्भव विकास अमित भव !
कुछ भी न विश्व में जो न ईश से भास्वर,
जड़ भी रहस्य कहते उसका छू अंतर !
यह जगत् सत्य रे नित्य ब्रह्म अवलंबित
अपने में मिथ्या बाह्य रूप से संचित !
ईश्वर अनंत यौवन कवि चिर रस प्रेरित
जग दिव्य काव्य चिर सृजन हर्ष में छंदित !

भव प्रतिपल सृजन प्रलय संतुलित निरंतर,
शाश्वत, विकास पथ में — निश्चित रूपांतर !
वह प्रेम हर्ष से सृजन भुवन भरते भर
मृण्मुरली में वह भरता चिद् पावक स्वर !

झाँकता अरूप अमित रूपों में गुंठित
नामों में बहु गुण एक सत्य ही के स्थित !
निःसीम — अरूप अनाम — न भव में सीमित
वह पुलिन चेतना करती रहती मज्जित !

जग ईश्वर पर सापेक्ष परम पर आधृत
वे स्वयं न निज कारण प्रतिकृति भर निश्चित !
फिर ब्रह्म बीज से विश्व चेतना गर्भित
भव ब्रह्म संचरण में होती सब हर्षित !

वह जीव, साँस के सूतों से जो गुम्फित
शिव पुरुष हृदय पुर के शतदल में निवसित !
प्राणों से उपचेतन जीवन निर्धारित
मन चेतन गतियों को करता संचालित !

भुव पंच तत्व निर्मित मानव — प्रभु का घर,
आनंद अन्न विज्ञान प्राण मन आकर !
मन प्राण सूक्ष्म तन अन्न प्राण पृथु जड़ तन
विज्ञान करण आनंद महत् विश्वात्मन् !

विज्ञान (बुद्धि) सत् का विषयाश्रित दर्पण
चित पुण्य अतीन्द्रिय ज्योति आत्मगत सोपन !
निज को अतिक्रम कर सकता जीव सनातन
वह विश्व चेतना आत्मा का पावक कण !

सामूहिक जीवन यदि न पूर्ण संयोजित
आत्मा विश्वात्मा से रह जाती वंचित !
तत्वत एक व, पृथक सृष्टि संक्रम में
फिर उभय युक्त हों विश्व ऐक्य उपक्रम में !

यह मानव का दायित्व जीव वह विकसित
भू पर हो भौतिक दिव्य एकता स्थापित !
शंकर, रामानुज मध्व आदि युग-दर्शन
एकता बराबर की करती सब वर्णित !

प्रभु विश्व प्रकृति के मध्य पंथ रे मानव
जीवन विकास क्रम जिसके कर से संभव।
भव दुःख मूल हर, सत्य मूल कर सिंचित
उसको प्रणाम नित्य करती आलोकित।

हम विश्व चेतना के सदस्य अविनश्वर
अज्ञान पशु प्रकृति — पाप मनुज हित दुस्तर।
भू हमें संजोती आत्म दीप बन भास्वर,
मृण्मय ही रे चिन्मय का ज्योतिर्मय घर।

आत्मस्थ सत्य से ही बिछोह — दुख तम भ्रम
अब पुनर्मिलन हो धरा स्वर्ग का उपक्रम।
क्षुर धारा पथ सा कृच्छ्र व्यक्ति आरोहण
मधु सिन्धु संतरण सामूहिक संयोजन।

इस विश्व चक्र को कर कल्याणक अधिकृत
शाश्वत का ध्येय जगत् में होगा विकसित।
होने ही को आत्मा बताते बुध जन
प्रभु ज्ञान न तर्क (जगन्मय प्रभु!) यह दर्शन।

सुनहले गगन में गूँज रहे अमृत स्वर
यह पूर्ण पूर्ण वह, — पूर्ण पूर्ण से लेकर
अवशेष पूर्ण ही पूर्ण पूर्ण का आकर।
ईश्वर अखंड दीपों का दीपक भास्वर।

जग में जो कुछ सब में व्यापक ईश्वर स्थित
भोगो जग को निज को कर प्रभु को अर्पित।
मत उसे बाँट सोचो मेरा तेरा धन
ईश्वर, जग तुम सब एक — न कर्म प्रथित मन।

यह जग असुर्य तम भुवन जहाँ वंचित मन
आत्महन् मनुज रहते कर बुद्धि विभाजन।
सब भूतों का एकत्व जहाँ संवीक्ष्य
उस भू के जन भय मोह शोक से वंचित।

वह इंद्रिय प्राण मनोजव से अति गति मय
वह दूर निकट बाहर भीतर, गति स्थिति मय —
मायिक संपति जस सलिल श्रुति से अतिशय
नित मातरिश्व करता उसमें जग संयम।

घन अंध तमस में गिरते विद्या रत मन
उससे घन तम में बाह्य अविद्या रत जन !
विद्याऽविद्या बहु एक–युक्त प्रभु में बर
अमरत्व प्राप्त जन करें मृत्यु सागर तर !

ओ सत्य सूर्य निज रश्मि समूह हटाओ
मुझको अपना कल्याण स्वरूप दिखाओ !
अग जग में बहुमुख व्याप्त एक जो भास्वर
मैं ही आदित्य पुरुष वह अन्य नहीं पर !

हे अग्नि सत्य पावक सत्पथ बतलाओ
जड़ भेद भस्म कर, चिद् प्रकाश बरसाओ !
शुभ ज्ञान कर्म ज्ञाता अनन्य स्व प्रकाशित
बहुमुख प्रदीप हों एक ज्योति से दीपित !

जिसकी इच्छा से प्राण बुद्धि मन प्रेरित
जिससे नित वाणी श्रोत्र चक्षु उन्मेषित –
वह मन का मन इंद्रिय की इंद्रिय अविदित
उस अमृत तत्व से जीवन मन संपोषित !

जा पाते वहाँ न श्रोत्र चक्षु वाणी मन
वह परे विदित अविदित से शक्य न वर्णन !
जीवन इंद्रिय से सार्थक उसके दर्शन
मूर्तित हो वह भू पर, कृतार्थ हो जीवन !

मन प्राण श्वास वाणी से जो न प्रकाशित
जिससे मन वाणी प्राण श्वास अनुप्राणित !
वह सत्य – न जो इंद्रिय से नित्य उपासित
उस मूल तत्व से ही जीवन संयोजित !

वह अविज्ञात पूर्णतः, ज्ञात भर किंचित्
वह ज्ञात जिन्हें उनको न ज्ञात यह सुनिश्चित !
वह चिद् विकास सोपान – अपार अपरिमित
भू जीवन में होगा शाश्वत जो विकसित !

जड़ प्रकृति सत्य का तृण रे, जिसके भीतर
अपनी अजेय गरिमा में गुंठित ईश्वर !
फिर अग्नि वायु का व्यर्थ बोध विजयी भर
सोचता रहे मे सत्य कहाँ जड़ के पर ?

प्रभु विश्व प्रकृति के मध्य पंथ रे मानव,
जीवन विकास क्रम जिसके कर से संभव।
भव दुख शूल हर, सरस मूल कर सिंचित
उसको प्रकाश शिखा करती आलोकित।

हम विश्व चेतना के सदस्य अविनश्वर
अज्ञान पशु प्रकृति — पाप मनुज हित दुस्तर।
भू हमें सँजोती आत्म दीप बन भास्वर,
मृण्मय ही रे चिन्मय का ज्योतिर्मय घर।

आत्मस्थ सत्य से ही विद्रोह — दुख तम भ्रम,
तब पुनर्मिलन हो प्रथ स्वर्ग का उपक्रम।
क्षुर धारा पथ सा दुष्कर व्यक्ति आरोहण
मधु सिन्धु सरल सामूहिक संयोजन।

इस विश्व धर्म को कर कल्याणक अधिकृत
शाश्वत का श्रेय जगत् में होगा विकसित।
होने ही को मानवता बताते बुध जन
प्रभु ज्ञान न तर्क (जगन्मय प्रभु!) बहु दर्शन।

गुंजाते गगन में गूँज रहे अमृत स्वर
यह पूर्ण पूर्ण वह, — पूर्ण पूर्ण से भरकर
अवशेष पूर्ण ही पूर्ण पूर्ण का आकर।
ईश्वर अखंड दीपों का दीपक भास्वर।

जग में जो कुछ सब में व्यापक ईश्वर स्थित
भोगो जग को निज को कर प्रभु को अर्पित।
मत उसे बाँट छीनो मेरा तेरा धन
ईश्वर, जग तुम सब एक — न कर्म कलित मन।

वह जग अपूर्ण तम शून्य जहाँ वंचित मन
आत्महन् मनुज रहते कर बुद्धि विभाजन।
सब भूतों का एकत्व जहाँ संवीक्षित
उस भू के जन भय मोह शोक से वंचित।

वह इंद्रिय ग्राम मनोजव से अति गति मय
वह दूर निकट बाहर भीतर, गति स्थिति सब —
प्राणिक संगति जन अभिन्न धृति से अतिशय
नित मातरिश्व धरता उसमें जल संभव।

अणु से अणुतर, महतों से अधिक महत्तर,
आत्मा चिर जाग्रत् हृदय गुहा के भीतर।
वह साक्षी ही न रहे सक्रिय हो भू पर,
निज स्वर्ण धरोहर पहचाने जन अंतर।

वह प्रवचन से मेधा या श्रवण मनन से
दुर्लभ, वह सुलभ अनवरत आत्म वरण से।
वह विरज अकर्ता अविषय — कहते प्राक्तन
वह सरज सृजन रस घन — गाता युग कवि मन।

यह आत्मा अमर रथी नर तन जीवन रथ
सारथि सद्बुद्धि मनस् प्रग्रह भू प्रति पथ —
जिनके इंद्रिय हय सत्सारथि संचालित
वे आप्त काम — भव कूप मग्न दुर्मति नित।

ऋतविद् बतलाते बुद्धि गुहा के भीतर
छायातपवत् रहते दो तत्व निरंतर।
वे आत्मा जीव अभिन्न प्रीति आलिंगित
रचते मिल रस भव — पृथक ज्योति तम सीमित।

इंद्रिय से पर नित विषय विषय से पर मन
मन से पर बुद्धि परे उससे आत्मा घन।
आत्मा से पर अव्यक्त पुरुष अति परतर,
सूक्ष्माति सूक्ष्म काष्ठा अंतिम गति — दुस्तर।

अस्पर्श अशब्द अरूप अरस अव्यय नित
आद्यंत रहित आत्मा अजरामर निश्चित।
वह शुभ्र पृष्ठ-पट जिस पर सतरंग चित्रित
भव — जन्म मरण छायातप संसृति विरचित।

जिसमें रे होता उदय अस्त भास्कर नित
उससे न अन्य — सब देव उसी के आश्रित।
जो उसके बहुमुख रूपों से ही परिचित
वह मृतक — एकता ज्ञाता ही मृत्युजित्।

अंगुष्ठ मात्र निर्धूम ज्योतिवत् वह स्थित
उस शुभ्र पुरुष से देह ग्राम मन शासित।
वह अमर, भूत भविष्य सभी का ईश्वर
जिसके प्रकाश से दीपित बाहर भीतर।

तुमको पुकारते भाव भजन शिखा सम
टेरते मौन उत्कंठित भू रज के कण —
जागे तुम में जग जीवन बन भू ईश्वर,
बदले नर, — बौना मंद यह रज बर्बर !

मन प्राण रहें नित सत्य बद्ध संरक्षित
सब साथ चलें जैसे कूलें हों निर्मित !
विक्षेप रहित हो मन तेजस्वी संस्कृत
निर्मित हो नव भू मानवता चिद् कुसुमित !

हम सुनें श्रवण से भद्र लोक मंगल स्वर,
नयनों से देखें जग भू आनन सुंदर !
हो सर्व क्षेम हित जनगण का श्रम अर्पित
भू पर बिखरें सुर, सिद्धि हों वैभव मंडित !

युग श्रेय प्रेय का फिर युग प्रश्न उपस्थित
जग भू को नवल समूहीकरण अपेक्षित !
स्त्री पुत्र वित्त का मोह, मनोगति निन्दित
सम्यक् संयत हो लोक क्षेम हित अर्पित !

जो अहंभाव से स्फीत अविद्या रत जन
अति आत्म निरत तार्किक मति ऐसे चतुर जन
भव तम में फिर वे भटका करते प्रतिक्षण
अंधा अंधों का करता मार्ग प्रदर्शन !

जो सुलभ न सब को सुलभ भी जिसको जन
कर सकते ग्रहण न — पाते विरस सरल मन !
उसके ज्ञाता बनता रे अद्भुत निश्चय
यह जग उसमें ही वह इस जग में तन्मय !

दुर्दर्श गुहा गह्वर में था गूढ़-स्थित
अध्यात्म योग से उसको — धीर विपश्चित !
वे हर्ष शोक से परे, नित्य आनंदित —
कहते ईश्वर पर ही यह जीवन आवृत !

रे उसे जानना सत्य ज्ञान का अर्जन
उसको न जानना महानाश का कारण !
भूतों में स्वर्णिम ऐक्य बीज कर अर्जित
जड़ भू पर शाश्वत जीवन करना निर्मित !

अणु से अणुतर, महतों से अधिक महत्तर,
आत्मा चिर जाग्रत् हृदय गुहा के भीतर।
वह साक्षी ही न रहे सक्रिय हो भू पर,
नित स्वर्ग धरोहर पहचाने मन अंतर।

वह प्रवचन से मेधा या श्रवण मनन से
सुलभ वह सुलभ अनवरत आत्म वरण से।
वह विरज अकर्ता अविषय — कहते प्राक्तन
वह सरज सृजन रत बन — गाता युग कवि मन।

यह आत्मा अमर रथी नर तन जीवन रथ
सारथि सद्बुद्धि मनस् प्रग्रह भू प्रति पथ —
जिसके इंद्रिय हय सत्सारथि संचालित
वे आप्त काम — भव कूप मग्न दुर्मति नित।

ऋतविद् बतलाते बुद्धि गुहा के भीतर
छायातपवत् रहते दो तत्व निरंतर।
वे आत्मा जीव अभिन्न प्रीति पर्यामिथित
रचते भिन्न रस भव — पृथक ज्योति तम सीमित।

इंद्रिय से पर नित विषय विषय से पर मन
मन से पर बुद्धि परे उससे आत्मा घन!
आत्मा से पर अव्यक्त पुरुष अति परतर,
सूक्ष्मातिसूक्ष्म काष्ठा अंतिम गति — दुस्तर।

अस्पर्श अशब्द अरूप अगम अव्यय नित
पार्थिव रहित आत्मा अजरामर निश्चित!
वह शुभ्र पृष्ठ पट जिस पर सतरंग चित्रित
भव — जन्म मरण छायातप संसृति विरचित।

जिसमें रे होता उदय अस्त भास्कर नित
उससे न अन्य — सब देव उसी से पालित!
जो उसके बहुमुख रूपों से ही परिचित
वह मूढ़ — एकता ज्ञाता ही मृत्युंजित।

अंगुष्ठ मात्र निर्धूम ज्योतिवत् वह चि
उस शुभ्र पुरुष से देह प्राण मन शासि
वह अपार भूत भविष्य मय वा ई
जिसके प्रकाश से दीपित बाहर भीत

पर्वत जल होता निम्न स्थलों में संचित
बहुदर्शी बहुरूपों में बहु विधि वर्तित !
एकत्व बोध से बनती आत्मा उज्ज्वल
ज्यों शुद्ध सरोवर में मिलकर संचित जल !

एकादश स्वर्णिम द्वार, — दिव्य जन का पुर,
जाते आते गोपन मंत्र पथ से सुर !
यह उत्तर सूक्ष्म साँसों के सोपानों पर
सीमा असीम मिल होते लीन निरंतर !

एक ही अग्नि या वायु — भुवन में विचरित
रूपों के ही अनुरूप रूप धरती नित !
ज्यों एक सर्वगत भूतात्मा अंतर्हित
रूपों में धा बहु रूप बाह्य रहता स्थित !

ज्यों लोक चक्षु रवि चक्षु दोष से विरहित
आत्मा न लिप्त भव दुख में — बाह्य प्रतिष्ठित !
यह विश्व समष्टि का गुह्य पठन स्वर मिश्रित
जिससे अदृश्य वीणा तरल जग प्रेरित !

वह एक अंतरात्मा सब को कर अधिकृत
बहुधा बन करता सर्व कामना पूरित !
वह नित्य अनित्यों में चेतन में चेतन
उसको पा शाश्वत सिन्धु शांति पाता मन !

वह अनिर्वाच्य सुख आत्मा का संविद् घन
ज्योतित हो उससे जन भू मन का प्रांगण !
जलते न वहाँ रवि शशि विद्युत, तारागण
सब का प्रकाश उसके प्रकाश ही का कण !

रे ऊर्ध्व मूल अश्वत्थ अधः शाखा तन
वह शुभ्र अमृत ज्योतिर्मय ब्रह्म सनातन !
संपूर्ण जगत् यह प्राण ब्रह्म के आश्रित
रवि अग्नि इंद्र मारुत यम भय से शासित !

उस अगाध मनसगोचर अलक्ष्य आत्मा पर
दृढ़ आस्था की उपलब्धि परम श्रेयस्कर !
हो तत्त्व भाव धीरे आस्था के अभिमुख
हर ग्रंथि छेद नर को देता अक्षय सुख !

ज्यों ऊर्णनाभ रचता प्रिय माया-बंधन,
भू ओषधि जनती रोम राजि जनता तन
अक्षर ही सर्जन करता जग में विचरण
बहु नाम रूप, मन प्राण कर धारण !

प्रज्वलित अग्नि से उठ तद्वत् पावक कण
उड़ कर ज्यों होते लीन उसी में तत्क्षण
एकात्मा ही आत्माओं की महदाश्रय
तब व्यक्ति मुक्ति का प्रश्न मात्र भ्रम विस्मय !

पावक मूर्धा दिशि श्रवण सूर्य शशि दृग्द्वय
वाक् ज्ञान विश्व उर प्राण वायु, पृथ्वी पद —
दिग् भास्वर अंतर आत्मा हृदय गुहाचर
व्यापक स्थित ऊपर नीचे भीतर बाहर !

संपूर्ण विश्व फिर ज्ञान कर्म इच्छा रत
हृदयस्थ पुरुष फिर अमृत रूप शुभ शाश्वत
वह छेद अविद्या ग्रंथि भेद मति बंधन
भू पर बसता धर सब विकास पथ प्रतिक्षण !

सित् विश्व बोध चिद् धनुष शुभ्र आत्मा शर
शाश्वत ध्रुव सत्य अकाम प्रीति मौर्वी धर,
तद्गत हो शर सा बढ़ते रहना अनुक्षण
सद्गति में स्थिति ही परम सत्य का वेधन !

दो पक्षी रहते एक वृक्ष पर शाश्वत
चखता पीपल फल एक स्वाद रस में रत !
दूसरा देखता मौन मुक्त मन अनशन
जीव ही ईश जो भव हित प्रभु अर्पित मन !

नित सत्य ज्ञान यम तप से आत्मा अर्जित
सत्य ही जयी जग में न अनृत — यह निश्चित !
जो सर्व श्रेय पथ देवयान वह विस्तृत
होता समग्र ही जग जीवन विकसित !

बलहीन प्रमाद भ्रमित को आत्मा दुर्गम
श्रम रहित ज्ञान — ज्यों सूर्य रश्मि वंचित तम !
आत्मा को पा कृतार्थ तुष्ट होता मन
वह व्याप्त सर्व में जग जीवन की जीवन !

पर्वत जल होता निम्न स्थलों में संचित
बहुदर्शी बहुरूपों में बहु विधि वंचित !
एकत्व बोध से बनती आत्मा उज्ज्वल
ज्यों शुद्ध सरोवर में मिलकर संचित जल !

एकादश स्वर्णिम द्वार,—दिव्य अज का पुर,
पाते जाते जोपम अंत पथ से धुर !
वह उतर सूक्ष्म साँसों के सोपानों पर
सीमा असीम मिल होते लीन निरंतर !

एक ही अग्नि या वायु—भुवन में प्रविष्ठ
रूपों के ही अनुरूप रूप धरती नित !
त्यों एक सर्वगत भूतात्मा अंतर्हित
रूपों में धर बहु रूप बाह्य रहता स्थित !

ज्यों लोक चक्षु रवि चक्षु दोष से विरहित
आत्मा न लिप्त भव दुख में—बाह्य प्रतिष्ठित !
वह विश्व जलधि का गुह्य अतल स्तर निश्चित
जिससे अहर्य लीला तरंग जग प्रेरित !

वह एक अंतरात्मा सब को कर अधिकृत
बहुधा जन करता सर्व कामना पूरित !
वह नित्य अनित्यों में चेतन में चेतन
उसको पा शाश्वत सिन्धु शांति पाता मन !

वह अनिर्वाच्य सुख आत्मा का सच्चिद् घन
ज्योतित हो उससे जग भू नभ का प्रांगण !
जलते न वहाँ रवि शशि विद्युत् तारागण
सब का प्रकाश उसके प्रकाश ही का कण !

रे ऊर्ध्व मूल अश्वत्थ अधः शाखा तन
वह शुभ्र, अमृत ज्योतिर्मय ब्रह्म सनातन !
संपूर्ण जगत् यह प्राण ब्रह्म से कंपित
रवि अग्नि इंद्र मारुत यम भय से शासित !

इस प्रकार मनसगोचर अरूप आत्मा पर
शुभ आस्था की उपलब्धि परम श्रेयस्कर !
हो तत्व भाव धीरे आस्था के अभिमुख
हृद् ग्रंथि छेद नर को देता अक्षय सुख !

ज्यों ऊर्णनाभ रचता प्रिय माया बंधन
भू ओषधि जनती रोम राजि जनता तन,
अक्षर ही त्यों जग करता जग में विचरण
बहु नाम रूप, मन अन्न प्राण कर धारण!

प्रज्वलित अग्नि से उठ तद्वत् पावक कण
उड़ कर ज्यों होते लीन उसी में तत्क्षण
एकात्मा ही आत्माओं की महदालय
तब व्यक्ति मुक्ति का प्रश्न मात्र भ्रम निश्चय!

पावक मूर्धा दिशि श्रवण, सूर्य शशि दृगद्वय,
वाक् ज्ञान विश्व उर प्राण वायु, पृथ्वी पद —
चित् भास्वर अंतर आत्मा हृदय गुहाचर
व्यापक स्थित ऊपर नीचे भीतर बाहर!

संपूर्ण विश्व चिर ज्ञान कर्म ब्रह्म रत
हृदयस्थ पुरुष चिर अमृत रूप शुभ, शाश्वत
यह छेद अविद्या ग्रंथि भेद मति बंधन
भू पर बसता धर नभ विकास पग प्रतिक्षण!

सित् विशद बोध चित् धनुष शुभ्र आत्मा शर
शाश्वत ध्रुव लक्ष्य अकाम प्रीति मौर्वी पर,
तद्गत हो शर सा कहते रहना अनुक्षण
सद्गति में स्थिति ही परम अभय का वेधन!

दो पक्षी रहते एक वृक्ष पर शाश्वत
चखता पीपल फल एक स्वाद रस में रत!
दूसरा देखता भोग-मुक्त मन अनशन
जीव ही ईश जो सब हित प्रभु-अर्पित मन!

नित सत्य ज्ञान श्रम तप से आत्मा अर्जित
सत्य ही जयी श्रम में न अनृत — यह निश्चित!
जा सर्व श्रेय पथ देवयान पर विस्तृत
होता सम्भव ही श्रम जीवन विकसित!

बलहीन प्रमाद अमित का आत्मा दुर्लभ
श्रम रहित ज्ञान — ज्यों सूर्य रश्मि वंचित नभ!
आत्मा का पा हृदयंगम गुरु ईश मन
वह व्याप्त सर्व में श्रम जीवन धी अंतर!

नदियाँ ज्यों सागर में बह होतीं अवसित
त्यों मुक्त पुरुष भी नाम रूप रज विरहित —
उस दिव्य परात्पर द्युति में बह होता लय
भव क्रम विकास में खुलता जिसका आशय !

यह प्राण अमृत घन जिसके रस से सिंचित
इंद्रिय तन्मात्राएँ, — आनंद प्ररोहित !
ज्यों विहग बसेरा लेते तरु पर, निश्चित
आत्मा के छाया हीन वृक्ष पर जग स्थित !

पति स्त्री के हित पति स्त्री प्रिय नहीं — असंशय
धन धान सुत देव न उनके हित प्रिय निश्चय !
आत्मा के हित प्रिय सर्व — स्वयं हो पूतन
आत्मा ही दर्शन मनन योग्य परमोज्ज्वल !

जग जीवन विरहित ब्रह्म निरर्थक मूक स्वर,
वह रिक्त ज्योति जिसमें न सप्त रंग के स्तर !
जो सर्व शून्य सत्ता में रत करते मन
वे दीप अक्षम शाश्वत वंचित होते क्षय !

अन्न ही ब्रह्म अपर जीवों का आश्रय
सर्वौषधि — इसमें ही उद्भव पालन लय !
फिर प्राण शक्ति से ओत प्रोत इसका तन
सर्वायुष — अनुप्राणित जिससे भव जीवन !

इस प्राण कोष में व्याप्त प्रकाश मनोमय
विज्ञान रूप जिसकी स्थित आत्मा निश्चय !
सत्कर्म बुद्धि को करता जो संचालित
जिसके भीतर आनंद ब्रह्म अंतर्हित !

उस असत् ब्रह्म से नाम रूप — सद् माया
वह सुकृत रसो वै स सर्वत्र समाया !
इच्छा बल से ही एक विविध में वितरित
आनंद उसे करता प्रेरित संचालित !

मन वाणी लौट जहाँ से आते निश्चय —
आनंद ब्रह्मविद् को न सताते दुख भय ! —
वह पाप पुण्य चिन्ता से रहता विरहित
दोनों ही उसके आत्म रूप में मज्जित !

मम हो ब्रह्म विमर्श मब उद्भव स्थिति मय
प्राण ही ब्रह्म या महत् मम का आमय ।
मन ब्रह्म – उभय ही मम प्राण का आमय
विज्ञान ब्रह्म या इन मब का मरदाशय ।

आनंद ब्रह्म – मानव मिलिम मब उद्भव
मानव विभव स्थिति उसमें ही मय संभव ।
निश्चित न मम यह जगत् मम ही में स्थित
हो मम प्राण विज्ञान मनम प्रभ अर्पित ।

केंचुली आज ज्यों सप निरमता आकर
गत का अतिक्रम कर प्रगतिशील हो युग नर ।
जो नहीं मनुज प्रेमी रचना मम साधक
वह मया मनुष्य नहीं – विकास पथ बाधक ।

कुम ज्ञान कोप म मुक्तावलि चिर् भास्वर
कवि ने ज्यों जन भावी हित प्रजलि म भर –
मानव ईश्वर का अर्पित की – वर मान्य
प्रभ युग स्वम में हो मम मन निरन्तर

ऐसा युग कवि ने मबम कम आध्यात्मिक
पृथ्वी पर ज्ञान प्रभु मानव ध मब चिर ।।
वह मान गीत जीवन मन की जट गोरहर
मानाव कर तम दे निमग्न रम स्थिर ।।

आवाहन उसने किया साधु मय साधन
विषम कर स्थापित पर कुण्ठित मानव मन ।
हो विमन ग्राम उभय पग दुर्मिबन जनगण
मब आम्पा दीपित मन शुभ ग्रथित जीवन ।

जामा जागो जन मबन बनने जामा
निज जन्म मम्य – मनुराग अर्पित शुभ माँगा ।
सौन्दय प्रेम का म पर कर आराधन
मामद गौरव शुभ बना जमों व मम मन ।

प्रिय हो मानव प्रिय मनु प्रिय गांधि गुरु धवर
प्रिय पन विश्व प्रिय भानु प्रिय गिरि अरि मागर ।
प्रिय शिल्पों के मूर्ग प्रिय हो रमणी सुन्दर
मनगाद मान हो वसुधा व प्रीति प्रसर ।

नदियाँ ज्यों सागर में बह होतीं अवसित
त्यों मुक्त पुरुष भी नाम रूप रह विरहित —
उस दिव्य परात्पर पुरुष में वह होता लय
सब रूप विकास में घुलता जिसका आशय!

यह प्राण अमृत धन जिसके रस से सिंचित
इंद्रिय तन्मात्राएँ, — आनंद प्ररोहित!
ज्यों विहग बसेरा लेते तरु पर, निश्चित
आत्मा के छाया हीन वृक्ष पर सब स्थित!

पति स्त्री के हित पति स्त्री प्रिय नहीं — असंशय
धन जन सुत देव न उनके हित प्रिय निश्चय!
आत्मा के हित प्रिय सर्व — स्वर्ग हो भूतल
आत्मा ही दर्शन मनन योग्य परमोज्ज्वल!

जग जीवन विरहित ब्रह्म निरर्थक मूक स्वर,
वह रिक्त ज्योति जिसमें न सप्त रंग के स्तर!
जो सर्व शून्य सत्ता में रत रहते भ्रम
वे दीप अभय शाश्वत वंचित होते क्षय!

अन्न ही ब्रह्म अशन जीवों का आश्रय
सर्वौषधि — इसमें ही उद्भव पालन लय!
फिर प्राण शक्ति से ओत प्रोत इसका तन
सर्वायुष — अनुप्राणित जिससे जग जीवन!

इस प्राण कोष में व्याप्त प्रकाश मनोमय
विज्ञान रूप जिसकी स्थित आत्मा निश्चय!
सत्कर्म बुद्धि को करता जो संचालित
जिसके भीतर आनंद ब्रह्म अंतर्हित!

उस असत् ब्रह्म से नाम रूप — सत् आया
वह सुकृत रसो वै सः, सर्वत्र समाया!
इच्छा बल से ही एक विविध में वितरित
आनंद उसे करता प्रेरित संवर्धित!

मन वाणी लौट जहाँ से आते विस्मय —
आनंद ब्रह्मविद् को न सताते दुख भय! —
वह पाप पुण्य चिन्ता से रहता विरहित
दोनों ही उसके आत्म रूप में मज्जित!

अन्न ही ब्रह्म जिसमें सब उद्भव स्थिति लय
प्राण ही ब्रह्म जो महत् मन का आश्रय ।
मन ब्रह्म — उभय ही अन्न प्राण का आश्रय
विज्ञान ब्रह्म जो इन सब का महदाशय ।
आनंद ब्रह्म — आनंद निखिल सब उद्भव
आनंद विश्व स्थिति उसमें ही लय संभव ।
निश्चित न अन्न यह जगत् अन्न ही में स्थित
हो प्राण मन विज्ञान सतत् प्रभु अर्पित ।
कंचुकी भाँति ज्यों सर्प निकलता बाहर
तन का अतिक्रम कर प्रगतिशील हो युग नर ।
जो नहीं मनुज प्रेमी रखता श्रम साधक
वह नया मनुष्य नहीं — विकास पथ बाधक ।
श्रम ज्ञान ध्यान स सम्यावसित चिर भास्वर
कवि ने ज्यों जन भावी हित प्रस्तुत स भर —
मानव ईश्वर का अर्पित की — कर गाकर
प्रभु धरा स्वर्ग में हो श्रम मन निर्भर ।

देखा युग कवि ने सम्यक् श्रम आध्यात्मिक
पृथ्वी पर ज्ञान प्रभु भारत स प्रथम थिर ।।
वह सम्य रीति जीवन मन की जड़ गोचर
आनाथ रूप तन में निवसन्त इन ईश्वर ।।
आवाहन उसने किया साधु श्रम पावन
जिससे कर व्यक्ति यह कुंठित मानव मन ।
हो विनत प्राण उसके पग पूजित जनगण
नव आस्था दीपित मन शुभ प्रेरित जीवन !
जागा जागा जन मानस पराने जागा
निज जन्म सत्य — जनगण मुक्ति शुभ सीमा !
सौन्दर्य प्रेम का स ... का आराधन
आनंद दीप्त शुभ बना जगों न मन मन !

प्रिय हो मानव प्रिय भू प्रिय गति युग संचर
प्रिय पवन विहग प्रिय जन प्रिय निशि सरि सागर।
प्रिय निशिमों के युग प्रिय हो स्नेही सत्पर
दृगगण सदा हो समता न प्रति पग !

जन जीवन के प्रति हो मन य आकर्षण
मानवता प्रेमी मंगल कामी हो मन !
तुम कर्म चेतना — हों कृतार्थ जीवन क्षण
भू रचना जीवी हों सकल श्रम रत जन !

सामाजिक जीवन ही भगवत् वैभव धन
जिस व्यक्ति सिद्धियाँ संभव जिसमें नूतन !
जल बिन्दु सिन्धु में बन जाता चिर विस्तृत
मन यान पार समता जिसमें नव मुदित !

आ नयी पीढ़ियाँ सुख से जीवन यापन
अब भू पर करें करें कुसुमित दिक प्रांगण !
भोगें जीवन मधु प्यार युवक युवती गण
रस संस्कृत हों मन शोभा अभिनव साधन !

नव हृदय जन्म ले रिक्त मनुज के भीतर —
नव मनुष्यत्व का अमृत भुवन रच सुन्दर !
जिसके स्वर्णिम प्रांगण में उतरें ईश्वर
नव रचना मंगल का दे जन भू को वर !

सांस्कृतिक क्रांति हो जीवन में बहिरंतर
चित्पावन सागर में नहाएँ नारी नर !
नव जीवन स्पर्शों से हों दीप्त चिरंतर
मानव मानव के आएँ और निकटतर !

फिर अन्तरतम संगीत लोक हो मुखरित
बरसे आनंद अमृत जन भू हो जागृत !
शशि कलश सौध — विज्ञान करों से निर्मित
मानव आत्मा की महिमा से हो मंडित !

काल उतारें नए स्वर्ग वातायन
आध्यात्मिक वैभव से कुसुमित हो विश्व जन !
उठें जन अंतर अंतरिक्ष में उड़ कर
चिर ज्योति — अमित शाश्वत प्रकाश से भास्वर !

सामंती सीमाओं से मुक्त धरा जन
भौतिक निर्जीव में भटक रहे भव भीषण !
पत धार्मिक आत्मा भग्न हृदय प्रांगण में
मम तत्काल सदेह गरजते मन में !

बौद्धिक विकास से चिर् विस्तृत जन अंतर, —
फूट रहा हृदय — आस्था हत निर्मम पत्थर!
भौतिक प्राणिक दर्शन से पा उद्दीपन
अवचेतन कर्दम में धँसता भू जीवन!

उर की आभा वासना गर्त में मज्जित
भावों की सीमा मलिन — द्वन्द्व भू कुंठित!
अंतश्चेतन आनंद ज्योति का अंबर
धूमों से छादित शुभ्र प्रीति का अंतर!

अनिवार्य अतः नव राग भावना बन कर
उतरो तुम चिर जीवन स्वर्ग धरा पर!
श्री शोभा प्रीति प्रतीति चिरंतर निश्वर
मानव अंतर में घूमें ज्योति रथ अंबर!

मत संप्रदाय धर्मों कर्मों के ऊपर
मानवता का भू स्वर्ग रचें नारी नर!
जिसके उर में हो भुवन हर्ष रत ईश्वर
बाहर जीवन शोभा जन मंगल का घर!

बाइबिल कुरान में श्रुति पुराण में निश्चय
एक ही ओर — ईश्वर मंगल — ज्योतिर्मय!
श्रुति शिखरों का जो ज्ञान प्रकाश की ज्वाला,
ईसा के दिव्य हृदय में उगता बाला!

उपनिषद् व्योम से भर किरणों के निर्झर
बाइबिल में हों बन गए अमृत चिर् रस सर!
वह प्राणों का पावक कुरान में भास्वर
धधता अगोचर आस्था का बन तूर्य स्वर!

नव स्वर्ग उतरने नियरा भू पर पावन
हो निखिल भरत आधार गवाक्ष बनें दाम!
यह सामूहिक चिर् राग संवरण भुवन
अब प्रथम बार करता जन भू पर विचरण!

इतिहास जानता मर्म न इसका गोपन —
सांस्कृतिक वृत्त से रहा उगम नव चेतन!
सहनी होंगी तुमको बाधाएँ निर्मम
कट चुका देव भव बाध उठेगा मति भ्रम!

गरजेगा पिंजर गुप्त मनुज पशु प्रतिक्षण,
उठने देंगे संस्कार न क्रूर पुरातन !
मधु यत्न स्वप्न मत करो मुकुट की माला
भू पर कृतार्थ होगी प्रभु की अभिलाषा !
धन भूल धूल हों बंधन बने न बाधा
शाश्वत जीवन की नहीं अन्य परिभाषा !
धीरे मन की सीमा अतिक्रम कर जीवन
आत्मा का क्षेत्र बनेगा – ज्योतित प्रांगण !
अनुभूति भावना मात्र नहीं परमेश्वर
उसको यथार्थ स्तर पर होना भू गोचर !
अभ्यंतर ही में नहीं बहिर्जग में भी
हो मान भूत पर मूर्त रूप रस सुन्दर !

संगीत नया ले रहा जन्म गोपन में
झरता अदृश्य शिखरों से मानव मन में !
रच रहा भावना में मधु अमृत प्रतिक्षण
गुंज रहे नए स्वर अभय हृदय नव स्पंदन !
बहु यत्न जाग रहे चेतन उपचेतन में
हो सके मूर्त दिक् जीत धरा जीवन में !
विज्ञान बहिर्जग प्रांगण करता निर्मित
धरती का रूप सँजो युग कर दिक् शोभित !
जन महत् नए युग में कर रहे पदार्पण
जड़ दैत्य प्रकृति से मानव युद्ध समापन !
पर्वताकार तम का दानव जो भीतर
उससे लोहा ले आत्म जयी हो युग नर !
अब नयी सुनहली प्रीति हृदय अंबर में
हो चुकी उदय – आभा अति से अंतर में
जूझती क्रूर दानव तम से जो निर्भय
नव भावी का रण क्षेत्र मनुज का दुर्जय !
आंदोलित नव युग बोध गूँजता निःस्वर
नव मानव शिशु जिसमें – अस्फुट अधरों पर
मँडराता नव संगीत जिसे स्वर देकर
धरती को स्वर्ग बनाएँगे जन सुखकर !

मैं देख रहा हँस उठते फूलों के क्षण
नाचते रजत नूपुर झंकृत कर उडुगण !
गाता शोणित कर छिपा श्वास में नर्तन
स्वप्न अस्थि मांस आनंद ज्योति के वाहन !

मैं अमृत सृष्टि गढ़ रहा — प्रेयसी नूतन
शोभा पावक तन स्वर्ग प्रीति दीपित मन !
जिसके स्पर्शों में नव प्रकाश अवगाहन
आनंद उपस्थिति से करता नित पावन !

धुंध स्वप्न भोगी भार गया नव नारी
ताराओं जड़ी रहस्यमयी अँधियारी —
अब स्वर्ण रश्मि मधु गंध शरद ज्योत्स्ना बन
सौन्दर्य प्रीति आनंद-ज्योति हरती मन !

दायित्व महत् भावी रामा के ऊपर
हो स्वर्ग मूर्त शोभा देही में भू पर !
वह हो स्वर्णिम अंतःप्रकाश की वाहक
जन मन में सुलगे आत्मा का रस पावक !

देखा कवि ने सीता को शिव आभा तन
पाताल पैठ जो निखरी भी पाया वन !
जन-भू छायाभा में अब सुषमा मंडित
बन स्वप्न चेतना करती यह मुख दीपित !

खोले जिन् स्वर्णिम प्रकाश के पथ का
पग जीवन में करते दिगंत प्रवाहित,
आत्मा का सत शिशु अमर पावक बन
रहे न अंतर मन ही में अंतर्हित !

धरा उदर में ज्ञान क्षुधा सुलगा मैं
जग में - रहे - नए स्वर्ग की मर्मर,
प्रसव व्यथा के प्रशम शांति से निखर
अमृत पुरुष का स्वप्न भुवन रम भास्वर !

मरणेषा पिंजर टूटे मनुज पशु प्रतिक्षण,
उठते देखे संस्कार न क्रूर पुरातन!
सधु यत्न ससाध्य मत करो मुकुट की आशा
भू पर कृतार्थ होगी प्रभु की अभिलाषा!
पथ शूल फूल हों बंधन बने न बाधा
शाश्वत जीवन की नहीं अन्य परिभाषा!
धीरे मन की सीमा अतिक्रम कर जीवन
आत्मा का क्षेत्र बनेगा —ज्योतित प्रांगण!
अनुभूति भावना मात्र नहीं परमेश्वर
उसको यथार्थ स्तर पर होना दृग् गोचर!
अभ्यंतर ही में नहीं बहिर्जग में भी
हो नाम-रूप पर मूर्त रूप रस पुष्कर!

संगीत नया ले रहा जन्म जीवन में
झरता अजस्र शिखरों से मानव मन में!
रस रहा भावना में मधु अमृत प्रतिक्षण
गूँज रहे नए स्वर अगण हृदय नव स्पंदन!
बहु यत्न कर रहे चेतन उपचेतन में
हो सके मूर्त शिव गीत धरा जीवन में!
विज्ञान बहिर्जग प्रांगण करता निर्मित
धरती का रूप सँवारो भूख कर शिव शोभित!
जन महत् नए युग में कर रहे पदार्पण
जड़ दैत्य प्रकृति से मानव युद्ध समापन!
पर्वताकार तम का दानव जो भीतर
उससे लोहा ले आत्म बली हो युग नर!
अब नयी मुसकाती प्रीति हृदय अंबर में
हो चुकी उदय —आभा छवि से अंतर में
जूझती क्रूर दानव तम से जो निर्भय
नव भावी का रथ खींच मनुज का दुर्जय!

आलोकित नव युग लोक गूँजता निःस्वर
नव मानव शिशु जिसमें —अस्फुट अधरों पर
मँडराता नव संगीत जिसे स्वर देकर
धरती को स्वर्ग बनाएँगे जन सुखकर!

मैं देख रहा हँस उठते फूलों के क्षण,
नाचते रजत नूपुर झंकृत कर उडुगण!
गाता शोणित, कर शिरा वास में मथन
रक्त अस्थि मांस आनंद ज्योति के वाहन!

मैं अमृत सृष्टि गढ़ रहा—प्रेयसी नूतन,
शोभा पावक तन स्वर्ग प्रीति दीपित मन!
जिसके स्पर्शों में नव प्रकाश अवगाहन
आनंद उपस्थिति से झरता नित पावन!

दुर्वह स्तन श्रोणी भार नता नत नारी
ताराओं जड़ी रहस्यमयी अँधियारी—
नव स्वप्न रश्मि मधु गंध शरद ज्योत्स्ना बन
सौन्दर्य प्रीति आनंद ज्योति, हरती मन!

दायित्व महत् भावी रचना के ऊपर
हो स्वप्न मूर्त शोभा देही में भू पर!
वह हो स्वर्णिम अंतःप्रकाश की वाहक
जन मन में सुलगे आत्मा का रस पावक!

देखा कवि ने सीता को शिव आभा तन
पाताल पैठ जो निखरी थी रचना बन!
जन भू छायाभा में नव सुषमा मंडित
नव स्वप्न चेतना करती भू मुख दीप्ति!

कविते चिर् स्वर्णिम प्रभात के भव का
जग जीवन में करो नित्य उद्घाटित,
आत्मा का नव विहग अमर पावक बन
रहे न अंतर नभ ही में अंतर्हित!

धरा उदर में काम गया सुलग मैं
जन्म-से रहे-गए स्वर्ग भी अमर,
प्रणय व्यथा के प्रथम धर्म व निखर
अमृत पुरुष का स्वप्न मूर्त रूप भास्वर!

गरजेगा पिंजर रुष्ट मनुज पशु प्रतिक्षण,
उठने देंगे संस्कार न क्रूर पुरातन !
पशु बल स्वाम्य मत करो मुकुट की आशा
भू पर कृतार्थ होगी प्रभु की अभिलाषा !
पथ भूल फूल हों बंधन बने न माया
शाश्वत जीवन की नहीं अन्य परिभाषा !
धीरे मन की सीमा अतिक्रम कर जीवन
आत्मा का क्षेत्र बनेगा — ज्योतित प्रांगण !
अनुभूति भावना मात्र नहीं परमेश्वर
उसको यथार्थ स्तर पर होना भू गोचर !
अभ्यंतर ही में नहीं बहिर्जग में भी
हो भाव भूत पर मूर्त रूप रस सुन्दर !

संगीत नया मैं रहा जग गोपन में
भरता अस्फुट शिखरों से मानव मन में !
रस रहा भावना में मधु अमृत प्रतिक्षण
गूंज रहे नए स्वर अथक हृदय नव स्पंदन !
वह मरम बस रहे चेतन उपचेतन में
हो सके मूर्त विपरीत बाह्य जीवन में !
विज्ञान बहिर्जग प्रांगण करता निर्मित
धरती का रूप सँवारो युग कर चिर शोभित !
जन महत् नए युग में कर रहे पदार्पण
जड़ दैत्य प्रकृति से मानव युद्ध समापन !
पर्वताकार तम का दानव जो भीतर
उससे लोहा ले आत्म बली हो युग नर !
अब नयी सुनहली प्रीति हृदय अंबर में
हो चुकी उदय — आशा शशि ले अंतर में
जूझती क्रूर दानव तम से जो निर्भय
नव भावी का रण क्षेत्र मनुज का दुर्जय !

आंदोलित नव युग दोल झूमता निःस्वर
नव मानव शिशु जिसमें — अस्फुट अधरों पर
मँडराता नव संगीत जिसे स्वर देकर
धरती को स्वर्ग बनाएँगे जन सुखकर !

मैं देख रहा, हँस उठते फूलों के सब
नाचते रजत नूपुर झंकृत कर उडुगण!
गाता शोणित कर सिरा जाल में नर्तन
त्वच ग्रंथि मांस आनंद ज्योति के वाहन!

मैं अमृत सृष्टि गढ़ रहा — प्रेयसी नूतन
शोभा पावक तन स्वर्ग प्रीति दीपित मन!
जिसके स्पर्शों में नव प्रकाश अवगाहन
आनंद उपस्थिति से भरता नित पावन!

दुर्वह स्तन श्रोणी भार नता नत नारी
ताराओं वाली रहस्यमयी अँधियारी —
नव स्पर्श रश्मि मधु गंध शरद ज्योत्स्ना बन
सौन्दर्य प्रीति आनंद-ज्योति हरती मन!

दायित्व महत् भावी रामा के ऊपर
हो स्वर्ग मूर्त शोभा देही में भू पर!
वह हो स्वर्णिम अंतःप्रकाश की वाहक
जन मन में गुँजे आत्मा का रस पावक!

देखा कवि ने सीता को सित आभा तन
पाताल पैठ जो निखरी थी राधा बन!
जग भू छायाभा में अब सुषमा मंडित
बन स्वर्ग चेतना करती जड़ मुख दीपित!

कवि चित् स्वर्णिम प्रकाश से मन को
जन जीवन में करता चिरंत प्रवाहित
आत्मा का शत विद्युत अमर पावक कण
रहे न अंतर जग ही में अंतर्हित!

धरा उदर में ध्यान लगा सुनता मैं
जन्म ले रहे-नए स्वर्ग की मर्मर
प्रणय व्यथा औ प्रसव वारि से निर्झर
अमृत पुण्य का स्पर्श भुवन रस भास्वर!

गरजेगा पिंजर गुप्त मनुज पशु प्रतिक्षण
उठने देंगे संस्कार न क्रूर पुरातन!
प्रभु यत्न श्लाघ्य मत करो मुकुट की आशा
भू पर कृतार्थ होगी प्रभु की अभिलाषा!
पथ शूल फूल हों बंधन बने न माया
शाश्वत जीवन की नहीं अन्य परिभाषा!
धीरे मन की सीमा अतिक्रम कर जीवन
आत्मा का क्षेत्र बनेगा — ज्योतित प्रांगण!
अनुभूति भावना मात्र नहीं परमेश्वर,
उसको यथार्थ स्तर पर होना दृग् गोचर!
अभ्यंतर ही में नहीं बहिर्जग में भी
हो नाम भूत पर मूर्त रूप रस पुष्कर!

संगीत नया ले रहा जन्म गोपन में
झरता अशब्द शिखरों से मानव मन में!
रच रहा भावना में मधु अमृत प्रतिक्षण
बुन रहे नए स्वर सपन हृदय मय स्पंदन!
बहु यत्न चल रहे चेतन उपचेतन में
हो सके मूर्त विश्वगीत धरा जीवन में!
विज्ञान बहिर्जग प्रांगण करता निर्मित
धरती का रूप सँवारे मुख कर विद्युत् शोभित!
जन महत् नए युग में कर रहे पदार्पण
जड़ दैत्य प्रकृति से मानव युद्ध समापन!
पर्वताकार तम का दानव जो भीतर
उससे लोहा ले आत्म जयी हो युग नर!
पथ नयी धुनझुनी प्रीति हृदय अंबर में
हो चुकी उदय — आभा शशि से अंतर में
जूझती क्रूर दानव तम से जो निर्भय
मन भावी का रण क्षेत्र मनुज का दुर्जय!

आंदोलित नव युग बीन गुनता निस्स्वर
नव मानव शिशु जिसमें — अस्फुट अधरों पर
मँडराता नव संगीत जिसे स्वर देकर
धरती को स्वर्ग बनाएँगे जन मुखकर!

द्वितीय खण्ड

अन्तश्चैतन्य

कला द्वार

१ संस्थान
२ द्वन्द्व
३ विज्ञान

सत्यों में हो मनुज सत्य विजयी
जयी शक्तियों में हो अंतर्बल
संकल्पों में जन-भू रचना रत,
मन संभव में मनुज ऐक्य संयम ।

प्रस्थान

प्रणत, मुग्ध कवि का मन
प्रभु के प्रिय प्रतिनिधि नर,
प्रेमसमय हो तुमको
नव भू जीवन का वर!
पाप पुण्य से ऊपर
तुम अमर्त्य चिर भास्वर,
निखर रहा युग तम में
नव मानव भू ईश्वर!

अमर शिल्पी तुम कसे प्रवीण
मुक्त शाश्वत का ले आह्लाद
चेतना की दे गहरी नींव
पुनः गढ़ नव जन भू प्रासाद!
शून्य तंत्री स्वर तार विहीन
गूँजती भर ब्रह्माण्ड झंकार,
बरसता निराकार सौन्दर्य
सूक्ष्म स्वप्नों के पंख पसार!

घिरे रस गुप्त भावना मेघ
सौंप भू मन समुद्र–उस पार
उतरती रस छवि चिन्मय ज्योति
मर्त्य तम को जो करती प्यार!
कला के लिए कला का राग
व्यर्थ कवि मानी का व्यभिचार
लोक जीवन के भीतर पैठ
रचो गाथा में उसे संवार!

वर्ष दश हरि ने कवि उर स्वप्न
किया भू पलकों पर साकार,
दिया सांस्कृतिक भूप को रूप
जोड़ जन कला शिल्प संभार।
निभृत गंगा तट, जनपद प्रांत
प्रकृत जन मन को परख सँवार,
तिवारी नयी भावना भूमि
सँजो जीवन मूल्यों का सार।

प्राप्त कर वृहद् रम्य भू भाग
भूप राजा ठाकुर से दान
रचा जन कला साम्य प्रासाद
ताम्र कलि मंडप बेलि वितान।
मलिन मिट्टी पाँवों की भूमि
उठा जीवन शोभा संस्थान—
कठिन मिट्टी श्रम जल में गूँध
सुरूप सौरभ आत्मा का भान।

मानसिक भौतिक पृथु संपत्ति
सुलभ यांत्रिक श्रम युग के पास,
ज्ञान विज्ञान संगठन शक्ति
प्राविधिक कौशल कर्म प्रयास।
न भीतर शांति न बाहर श्रेय
जगत हित युग संकट क्षण पार,
उच्च चेतना बिना अनिवार्य
न संयोजन संभव सब ओर!

चलना मात्र न आत्मिक ज्योति
प्राण इन्द्रिय मन के उस पार—
इन्हें अतिक्रम कर वह अविकार
मुक्त बहती समय रस धार।
देह मन आत्मा में वह व्याप्त
देश राष्ट्रों में वह अविभक्त
भूत भव., भविष्य से मुक्त—
पूर्ण भू जीवन में हो व्यक्त!

सीस असीस भूत्य वो हाथ,
असुंदर सुंदर गुण स्थिति पात्र
द्वन्द्व अतिक्रम कर, रच कल्पाति
सत्य शिवमय भू शोभा गात्र!
सूक्ष्म रस सृष्टि तृप्ति का ध्येय
लोक मंगल शुभ प्रेरित भाव —
संत ऋषि योगी भी कृतार्थ
कला के यदि न नम्र वे छात्र!

लक्ष्य कवि का न मात्र आनंद
न रस ही उसकी अंतिम सिद्धि
उच्चतम अनुभूति जनित परिणाम
अर्थ गौरव की करते वृद्धि!
काव्य का तत्व अनिर्वचनीय
हृदय प्रज्ञा से संभव बोध
व्यक्त करता अंत: सौन्दर्य
भावना तन्मय कवि का योग!

कल्पने स्वप्नों को दे पंख
बदलता युग पट दृश्य महान्
उड़ रहे पक्ष मास ऋतु वर्ष
उड़ रहीं सदियाँ दिशि अपमान!
बदलता रभस वेग से विश्व
मनुज के तन मन जीवन प्राण
महत् युग चित्रपटी में देख
चेतना का अजेय आख्यान!

न माने मन यदि सत्य प्रकाश
स्वस्थ मति समझें कला विलास
वरण कर नव विकास के तत्व
हरें सहृदय जन भू तम त्रास!
जीर्ण जीवन के वस्त्र उतार
प्राण नव खोलें अंतर द्वार, —
प्राण मन (वह भू संस्कृति पीठ!)
देह से स्थिर करें अभिसार!

रूप रख हरि ने कवि उर स्वप्न
किया भू पलकों पर साकार,
दिया सांस्कृतिक वृत को रूप
जोड़ जन कला शिल्प संभार।
निभृत गंगा तट, जनपद प्रांत
प्रकृत जन मन को परख सँवार,
भिखारी नयी भावना भूमि
सँजो जीवन मूल्यों का सार।

प्राप्त कर वृहद रम्य भू भाग
नृप राजा ठाकुर से दान
रचा जन कला लोक प्रासाद
तान कवि मंडप केलि वितान।
मलिन छिपी गाँवों की भूमि
उठा जीवन शोभा संस्थान —
कठिन मिट्टी मन घास में गूँथ
हृदय सौरभ आत्मा का गान।

मानसिक भौतिक पृथु संपत्ति
सुलभ सांस्कृतिक बस युग के पास
ज्ञान विज्ञान संघटन शक्ति
प्राविधिक कौशल कर्म प्रयास!
न भीतर शांति न बाहर श्रेय
जगत हित युग संकट दाय पार
उच्च चेतना बिना अनिवार्य
न संयोजन संभव सब ओर!

चेतना मात्र न मानसिक ज्योति
प्राण इंद्रिय मन के उस पार —
इन्हें अतिक्रम कर वह अविकार
मुक्त बहती समग्र रस धार।
देह मन आत्मा में वह व्याप्त
देश राष्ट्रों में पर अविभक्त
भूत सत्य, भविष्य न मुक्त —
पूर्ण भू जीवन में हो व्यक्त!

ससीम असीम सूक्ष्म औ स्थूल
असुंदर सुंदर शुभ स्थिति पाप
द्वन्द्व अतिक्रम कर, रच कल्याणि
सत्य शिवमय भू शोभा मात्र !
सूक्ष्म रस सृष्टि तृप्ति का ध्येय
लोक मंगल सुख प्रेरित मात्र —
संत ऋषि योगी भी अकृतार्थ
कला के यदि न सत्र के छात्र !

सहज कवि का न मात्र आनंद
न रस ही उसकी अंतिम सिद्धि
उभय अनुभूति जनित परिणाम
अर्थ गौरव की करते वृद्धि !
काव्य का तत्व अनिर्वचनीय
हृदय प्रज्ञा से संभव बोध
व्यक्त करता अंत सौन्दर्य
भावना तन्मय कवि का बोध !

कल्पने शब्दों को दे पंख
बदलता युग पट दृश्य महान,
उड़ रहे पल मास ऋतु वर्ष
उड़ रही सदियाँ क्षिति समान !
बदलता रंगत वेष से विश्व
मनुज के तन मन जीवन प्राण
महत् युग चित्रपटी में वेष
चेतना का अजेय आख्यान !

न माने जग यदि सत्य प्रकाश
स्वल्प मति समझें कला विलास
वरण कर नव विकास के तत्व
हरें सहृदय जन भू तम त्रास !
जीर्ण जीवन के वस्त्र उतार
प्राज्ञ नर खोलें अंतर द्वार —
प्राण मन (यह भू संस्कृति पीठ !)
देह से निखर करें अभिसार !

अब इस हरि ने कवि उर स्वप्न
किया भू पलकों पर साकार,
दिया सांस्कृतिक वृत्त को रूप
जोड़ धन कला शिल्प संसार!
निभृत गंगा तट, जनपद प्रांत
प्रबुद्ध जन मन को परख सँवार
निखारी गयी भावना भूमि
सँजो जीवन मूल्यों का सार!

प्राप्त कर वृहद रम्य भू भाग
वृद्ध राजा ठाकुर से दान
रचा धन कला साध प्रासाद
दान कवि मंडप बैंसि वितान!
मलिन बिछी पौधों की भूमि
उठा जीवन शोभा संस्थान —
कठिन मिट्टी श्रम जल में गूँथ
हृदय सौरभ आत्मा का गान!

मानसिक मौलिक पूर्ण संपत्ति
सुलभ यांत्रिक बस युग के पास
ज्ञान विज्ञान संगठन शक्ति
प्राविधिक कौशल कर्म प्रयास!
न भीतर शांति न बाहर श्रेय
जगत हित युग संकट तम घोर
उच्च चेतना बिना अनिवार्य
न संयोजन संभव सब ओर!

चेतना मात्र न आत्मिक ज्योति
प्राण इन्द्रिय मन के उस पार —
इन्हें अतिक्रम कर वह अविकार
मुक्त बहती समत्व रस धार!
देह मन आत्मा में कर व्याप्त
देश राष्ट्रों में भ अविभक्त
भूत भव्य, भविष्य से मुक्त —
पूर्ण भू जीवन में हो व्यक्त!

सभ्यता को दृत मानव बुद्धि
चरम चिद् विभव कर चुकी दान
विश्व सब हस्तामलक समान
विजित दिक्,—अंतरिक्ष अभियान!
शुष्क जड़ तथ्यों के मरु बीच
भटकते मृग जल में मन प्राण
खोजता नयी भावना भूमि
मनुज का रिक्त हृदय अनजान!

पाँच वर्षों में मन ने खूब
बाह्य संघर्ष किया निर्माण
जुगाए कला भवन के हेतु
वस्तु साधन उपकरण विधान!
सँवारे ललित कला के कक्ष
बुला गायक वादक स्वरकार,
छात्र छात्राएँ, शिक्षक गुरु
रूपजीवन नर्तक नट अधिकार!

बना संरक्षक संघ सदस्य
बढ़ाई शिविर शक्ति निधि कोष
रूप रेखा विकसित कर स्थूल
मिला हरि उर को क्षण संतोष!
भोज्य गृह, स्वास्थ्य शिविर एकांत
स्नान सर, सीकर, शाद्वल रम्य
रंग भू, क्रीड़ा वन उद्यान
मठ गृह, तरु पथ गुल्म मनस्य!

सँवारा मानवीय परिवेश
भरा को उर शोभा में काम
बढ़ी जिज्ञासा जन में मूक
शिविर का सौष्ठव देख विकास!
कौन वह अंतर्जीवन सत्य
लोक भू का जिसमें शुभ श्रेय?
मधुर कवि उर का शोभा—स्वप्न
गुरु हरि भैया का प्रिय ध्येय?

ज्ञात था नहीं किसी को मर्म,
समझ उसको हरि का आदेश
सृजन श्रम में रहते सब मग्न
समर्पित हरि के लिए अशेष।
सदाशय था हरि का व्यक्तित्व
कर्ममय उसके श्रद्धा त्याग
सभी आकर्षित उसकी ओर
उस सब पर था सम अनुराग।

शिविर था केन्द्र बिन्दु भर स्वल्प
शिथिल जन कम होते था गौण
अकल्पित रचना श्रम की शक्ति
जनों पर पड़ा अदृश्य प्रभाव।
प्रथम शिक्षा — हरि कहता बाह्य
कर्म पर हो निष्ठा विश्वास
कर्म का प्राण रचना था गुरु
जना का संभव मनोविकास।

कर्म-प्रेरणा करें जन प्राप्त
रिक्त जीवन वर्जन से मुक्त —
कर्म प्रेरणा शक्ति का स्रोत
जनों को करे लोह संयुक्त।
भाग्य श्रम पर बैठे निरुपाय
पूर्वकृत पापों के अभियुक्त —
जगे छाया जीवन चैतन्य
कर्म ईश्वर, श्रम हों न वियुक्त।

और भी गौण धन में चन्द्र
था सदा स्वप्न मूर्त आकार
उगा जन मन में स्पंदन रुद्ध
धरा जीवन में गति संचार।
मौन था ज्ञान कराते काल
बड़ा भर भारी उर में ताप
मनुज के प्रति आत्म विलय
धरा मन का प्राचीन स्वभाव।

बाह्य वैभव संचय ही मात्र
लोक का होता यदि उपचार,
न होते सबसे अधिक दुखार्त
धरा के धनपति — धन भू भार!
महत् के प्रति क्यों नहीं विभाव
लोक मन में? — हरि को ना ज्ञात
जगत भौतिक मद जन को नम्य
चेतना में होता मधु स्नात!

केन्द्र के पीछे अंधी भूख
प्रेरणा का अदम्य था स्रोत
उपस्थिति है जिसकी अनिवार्य
लोक जीवन का ओत प्रोत!
कामना यह भू मन में दीप्त
उच्च होती चिद् नभ की भाग
ज्योति पल्लव स्वप्नों के बीच
ज्वाल पंखी जीवन अनुराग!

नम्र था कवि प्रसंग आत्मस्थ
बहिर्जीवन तटस्थ प्रति सत्य
भाव उन्मेषित रहता नित्य
प्राण मन्त्र शोभा के तथ्य!
समर्पित जीवन था एकाग्र
प्रणत छाया वह, प्रेम प्रकाश
धरा पर रचने जीवन स्वर्ग
चेतना करती सृजन विकास!

अधर पर धर युग कवि मधु वेणु
हृदय में भरता रस झंकार
भावना में स्वर संगति फूँक
सृष्टि पथ में नव स्वप्न सँवार!
अचेतन पत्थर में आलोक
जगाता प्राणों में आह्लाद
खिला जीवन मुख पर सौन्दर्य
मिटा कटु अवचेतन अवसाद!

वर्ष वर्ष ही में हुआ कृतार्थ
पल क्षण वर्षों का विस्तार,
प्रतीक्षा की युग मन में तीव्र
भरा उर में उत्कंठ पुकार!
समापन प्राय पुरातन वृत्त
उदित नव आशा का संसार
विरत संशय भय का तम धीर
बनी युगता प्रकाश का द्वार!

मात्र चेतना हो सके मुक्त
चाहिए दृढ़ नैतिक आधार,—
कहा वंशी ने—हरि, आ स्पष्ट
तुम्हें जन भू हो स्वर्ग विहार!
अस्थि पंजर का न अवलंब
देह न मांसल रंग उभार
रूप सौष्ठव करते चरितार्थ—
साधना ही जीवन शृंगार!

नहीं मानसिक संयमन मात्र
कृच्छ्र अर्जित नैतिक आचार,
परिस्थितियाँ रच रुचि अनुकूल
तुम्हें गढ़ना भू संस्कृति द्वार!
संगठित हो जो बाह्य समाज
स्वतः हो सुगम आत्म संस्कार,
मर्मावृत भू जीवन की पीठ
स्वर्गिक उर देगी स्वयं सँवार!

बन गए जन मन जो उड्डीन
स्वर्ग उतरे वसुधा पर काम्य
विरत भू जीवन स्थितियों बीच
साधना तुमको व्यापक गम्य!
बना भू जीवन मन के रंध्र
एकता हो जीवित सब ओर,
राग सागर—मेरा सुर दाय
पग पग से रस गुप्त हिलोर!

जाति वर्गों के वैषम्य बोझ
छिन्न कर रूप रूढ़ि के पाश
मूर्च्छित धर्मांध द्वेष भय मुक्त,
मनुजता को आना अब पास!
देश राष्ट्रों की सीमा लाँघ
बढ़ा अंतर आदान प्रदान
बाँध नारी नर के शिव प्राण
स्वर्ग को देना भव आह्वान!

राजनीतिक आर्थिक अवरोध
किए भू जीवन को म्रियमाण
मिटा राष्ट्रों का स्पर्धा द्वेष
भरा मन का करना निर्माण!
केन्द्र रचना का तात्विक धर्म
देश भर का युगपद् उत्थान
सूक्ष्म अंतश्चेतन मह भूत
इसी में जग भू का कल्याण!

दूर गत भू स्थितियों से स्व
पूर्ण हो सका न मनोविकास
विचरता बौना क्षुद्र मनुष्य
मनुजता का भू पर उपहास!
जन्म लेता, नव भव चैतन्य
विश्व मानस में—पूत महान्
छुए भू मर्म तिमिर को चीर
विहँसता स्वर्ण-सूर्य अम्लान!

नव सांस्कृतिक स्तर को मूर्त
समग्र भू जीवन का शिव कक्ष
घेर शृंखल जन मन के बोध
सूक्ष्म को करो रूप प्रत्यक्ष!
विरोधों को संगति में बाँध
भरो जन मन में रुचि संस्कार,
मनुज हो एक भाव स्वर वचन
कर्म पथ योगी सोच विचार!

सारग्राही थी हरि की बुद्धि,
उतर आया मन में तत्काल
अंतदर्शी कवि उर का सत्य
विश्व मंगल का स्वप्न विशाल।
शिविर का भीमयोग कर शीघ्र
केन्द्र का समझा सर्वोत्तम ध्येय
किया हरि ने सब का उद्बुद्ध
जगा मन में संकल्प अजेय।

सौम्य श्रम जीवन का था पथ
लोक स्तर पर नव सत्य प्रयोग
सदस्यों में अपूर्व उत्साह
कर्मों में था सक्रिय सहयोग।
ज्योति का अंतरिक्ष उन्मुक्त
खुला हो जब सम्मुख अनिमेष
नयी भू पर स्थित थे अब पैर,
प्राण मन में जीवन-उन्मेष।

चन्द्र से अभिप्रेरित ज्यों सिन्धु
केन्द्र से अनुप्राणित था ग्राम
ज्वार भाटा सा घट बढ़ नित्य
निखरता जीवन तत्व ललाम।
मुक्त भावना में मृषा स्वभाव
कर्म रत तन्मय रहते छात्र
प्रेरणा पुलकित रखते प्राण
युवक युवती जन मंगल भाव।

प्रकाशित दोनों के प्रति दृष्टि
केन्द्र की थी निर्भीक उदार,
संगिनी जन भू मन की आस
शिष्टि सेवी थी मधुर संभार।
असत् को कर सदय स्वीकार
उसे देता था सत्संस्कार,
पाप को मान पुण्य स्तर निम्न
विषमता का हरता था भार।

सिन्धु विप्लव में प्रथम निमग्न
बचा हो भू का श्यामल कूल
उगा शोभा मय वन, जन केन्द्र
काल गति थी जीवन अनुकूल!
देश भर में छाई द्युति गंध
नागरिक आए लिए उमंग
देव भू उर का स्वर्ग प्रकाश
बने नव मानवता के अंग!

धीर जन का पा प्रिय सहयोग
शिविर का हुआ अभीप्सित विकास
धर्म का दे संस्कृति को स्थान
रूढ़ि विधि से कर मुक्त प्रकाश!
विश्व मानवता का आदर्श
लोक समता में हो साकार,
बहिर्जग हो ईश्वर का रूप —
केन्द्र ने किया ध्येय स्वीकार!

सरित तट पर जन लोक निवास
चतुर्दिक विस्तृत मग से द्वार
चेतना गंधी स्वच्छ समीर
स्वस्थ जीवन करती संचार!
स्वच्छता जन भू का आदर्श
स्वच्छ सब हाट बाट पुर ग्राम
सुभग सुख का हार्दिक परिवेश
स्नायुओं को मिलता विश्राम!

प्रथित था हरि का गृह भू प्रेम
हरी धरती हो सुघर सुरूप
सुरँग फूलों में लिपटे अंग
स्वर्ग स्मिति सी मुख पर प्रिय धूप!
घूमते पुर पथ में जब लोग
कहीं लगता उसको आघात
सोचता — होता यह मधु मेघ
दूब से धोता भू का गात!

अभी प्रावस्था में विश्राम
पटरियाँ पँख कोयला धूम
किए भू पंजर मग्न कुसुम
देख करवट फिर जाता घूम!
भाप की सीटी कर चीत्कार
काम के पर्दे इसी फाड़
मोह हग भाग रहा युग दैत्य
वन्य पशु सी भर हिम दहाड़!

पौर जन देखा करम स्तब्ध —
शांति स्थित हो भू पर साकार
सभी मत कल्पित मन प्राण
साधते नियत कर्म व्यापार!
हृदय में हो प्रणय रस स्नान
दृगों में आशा का संसार,
ग्राम जीवन रचना में लीन —
श्रेय सुबंधन हो सुख सार!

कला प्रांगण में स्थापित उच्च
चतुर्मुख युग ब्रह्मा की मूर्ति —
राम शंकर बुद्ध मुहम्मद ईश
विविध कला का करते पूर्ति!
अनुपम शील पथ के मध्य
त्याग का बाल हीन गिर हाथ
लिए नव ज्योति शिखा या ऊर्ध्व —
मनुष्य का युग प्रतीक हो साथ!

जिस धर्मों के छाया छात्र
विमल युग के निखरे सकल
प्रेरणा बल अभिनव प्राण
देख युग प्रतिमा का अभिनय!
सब सत् चित् आनंद प्रकाश
निखिल भव जग जीवन में व्याप्त —
उन्नत गगन — उभर ही जन
पवन युग तुल्य में अभिनय!

स्तवन करता नर नारी मन
मुक्त कर श्रद्धा सिक्त विचार
लोक जीवन आस्था बन मूक
सत्य आस्था लेती आकार ! —
धन्य हे नव युग के कर्तार
तुम्हारे हमी मूर्त आभार
तुम्हें वाणी दे मन वच कर्म
प्रगति का वहन करें श्रम भार !

पूर्ण तन्मय हो तुममें प्रेम
बनें हम नव विकास के अंग
शुभ्र श्रद्धा हो सारथि शुद्ध
बुद्धि गति रोध तमस हो भंग !
शुद्ध मति व्यक्ति भाई में कीर्ण
लोक जीवन बन, रसच्छाय
सँजो भू प्रीति रश्मि सुरचाप
सँवारे शुभ मानव का वाय !

जगत् जीवन में हो तुम मूर्त
धरा पर करे स्वर्ग अभिसार,
एकता का रच स्वर्णिम सेतु
मनुजता हो भव सागर पार !
देश राष्ट्रों को कर भू मुक्त
खोल निर्मम जन अंतर द्वार
जाति धर्मों से बंधन मुक्त
बने मानवता भू शृंगार !

करो तुम मौन लोक में वास
भरे अंतर में चित आनंद
प्रीति संचित हो संचित प्राण
अमृत जीवन हो सांघिक छन्द !
समर्पित तुमको सब भव कर्म
तुम्हें देखें भू पर साकार
देश की ही सब जन संतान
नविस भू हो मानव परिवार !

बसो पलकों में बन युग स्वप्न,
हृदय में बन भू मंगल नित्य
बुद्धि में लोक कर्म संकल्प
सदा जीवन हो चिर कृतकृत्य!
अरे शोभा में तुमको देख,
सृजन सुख में भ जन के प्राण
प्रीति में भर नारी रस शुभ्र
शांति में महत् लोक निर्माण!

प्रकृति प्रबल था ग्राम उपांत
मांगलिक था स्वर्णिम एकांत
नील नभ प्राण हरित वन प्रांत
रजत दर्पण गंगा तट शांत!
मधुर वन मर्मर प्रेरित मंद
मार पंछी जन भाव समीर,
रंग पंखों की कर बस वृष्टि
चहकते चाप — चातक पिक कीर!

उषा के बल स्पर्श पर जाग
बिहँसता प्रात रवि साभार
विश्व के भीतर ज्योतिर्विश्व
भासता नि स्वर मनझार!
प्रकृति संपद् से हो उर पुष्ट
अहमिका का खोता कटु भार
वस्तुओं का मुग्ध गुंठन खोल
देखती प्रकृति — गर्विता साभार!

बहिर्मुख विचर मन का म्लान
खींच भीतर निभृत एकांत
कर जीवन समर्पण शुद्ध
शिरा को करता निर्मम शांत!
गुप्त विरागात्मा मन में बैठ
देख बनता उर का धनवान
लीन होते मगन भव भेद
गतमद के मौन सदृश प्राण!

नित्य कर्मों से हो युग मुक्त
गाँव में करते छात्र प्रवेश
लोक मन पहिले तब निज बुद्धि —
यही था हरि का शुभ आदेश !
व्यर्थ वह तुच्छ आत्म-संस्कार
असंस्कृत जो भू पृष्ठ प्रदेश
स्वर्ग से होते जो न वियुक्त
न अंकित होते भू के देश !

विश्व स्थिति निर्मित कर ही व्यक्ति
मुक्त क्षमता — मिथ्या संदेह,
संगठित हो जो जीवन शक्ति
सुरक्षित हों शोभा भू गेह !
आज अभिप्रेत महत् जग क्रांति
ऊर्ध्व विस्तृत हो जीवन वृष्टि
व्यक्ति मन अतिक्रम कर, कृतकाम
विश्व मन पर शोभित हो सृष्टि !

श्रमिक धनिकों में वर्ग विभक्त
धरा जीवन का दुःखद वृत्त
बँटे अंतर्मूल्यों में लोग
बाह्य वैषम्य न मूल निमित्त !
न अभिमत स्तर पर जब तक विश्व
संगठित होगा — जीवन भार !
खुलेगी रुद्ध सुई की आँख
ऊँट वैभव सँग होगा पार !

युगों से रच अब सत्ता तंत्र
सभ्यता ने बहु किए प्रयोग
महत् मानव गरिमा के योग्य
सफल हो सके न गत उद्योग !
उस महिमा पर नव आधार
विषमता कर बहिरंतर चूर्ण
ऊर्ध्व समदिक् सँग व्यक्ति समाज
समन्वित हों जिसमें संपूर्ण !

शिक्षित व जन को सहयोग
व्यक्ति मन का हर स्पर्धा द्वेष
वृहद् सामाजिकता का स्वप्न
हृदय में भरता नव उन्मेष!
वर्गों में जन के प्रति सद्भाव
सहज आकर्षण हो क्यों रुद्ध?
स्फुलिंगों को बनना संयुक्त
भाव मय पावक हुए प्रबुद्ध!

ग्राम स्तर पर युग स्थिति अनुरूप
नियत कर श्रम काम का स्थान
छात्र सहश्रम से करते सिद्ध
ग्राम्य जीवन का नव उत्थान!
मनुज मन के बन्ध था युग दग्ध
चेतना करते नव संचार
मिटाते बहिरंतर जन दैन्य
भरा जीवन मुख पोंछ निखार!

नया मानव 'जनपद' का रूप
किया लोगों ने नव निर्माण
धूम खपरैलें पटी कुटीर
बनी बस्तियों में जन संस्थान!
स्वच्छ पुलें कूपों के कूप
पंथ प्रच्छाय छूटे विस्तीर्ण
स्वास्थ्य गृह अतिथि धाम पथ मार्ग —
मग भूमिज हो पगतर जीर्ण!

तैल बिजली में चमक चंद
बड़े गाँवों में मधु उद्योग
गुर्व दद् बिना वन्द के साथ
साधनों का सब किया प्रयोग!
दग्ध दुःख जन मन एका त्याग
किया जनमन ने जन पर ध्यान
हुआ विद्युत् से गगन विकल्प
बना भू रोशन जीवन गान!

मनुज का मुख्य प्रेरणा स्रोत
नहीं भौतिक ऐश्वर्य विधान —
प्रेम सौन्दर्य सृजन आनंद
हृदय में पाएँ जन के स्थान!
मूलगत सत्य न वस्तु समृद्धि —
शुभ्र अंतर आस्था चिद् वृष्टि —
सूक्ष्म एकता सूत्र में बद्ध
निखिल सचराचरमय यह सृष्टि!

लोक श्रम ही संपद् — सिद्धांत
जगाता कर्म प्रेरणा शिखि
धरा जन श्रम कण से अभिषिक्त
उगलती रज से स्वर्ण समृद्धि!
मनुज के छू कुंठित उर तार
जगाता था चैतन्य नवीन
उसे भीतर से बाहर खींच
धरा पर करता था आसीन!

विविध वैज्ञानिक यंत्रोपाय
श्रेय सुख के साधन अनिवार्य
वाष्प विद्युत् का हो दायित्व
मनुज कर पद करते जो कार्य!
सफल हो सहकृषि जन सहकार,
सफल हो एक धरा परिवार,
बढ़ें बाहर संयुक्त प्रयत्न
खुलें भीतर निरुद्ध उर द्वार!

सरल निश्छल हो मानव वृत्ति
नम्र ऋजु बढ़े स्वयंप्रभ बुद्धि
बहिर्जीवन संचय हो स्वस्थ
महत् चित् संपद् अंतःशुद्धि!
मुक्त मन भाव दीप्त आकाश
सुलभ हो — न हो विषमतर बाह्य —
ऊर्ध्व मुख मनुष्यत्व हो सौम्य
बहिर्मुख जन भू सौष्ठव बाह्य!

युवाओं का दिशि पथ का ज्ञान
प्रौढ़ वीरों को श्रम विराम
चाहिए संरक्षण था वृद्ध
स्त्रियों को आभा शील ललाम!
जहाँ शिशुओं का हो संस्कार
राष्ट्र की जो भावी संपत्ति
संगठित बहिरंतर वह देश
न उस पर आती कभी विपत्ति!

तिरस्कृत वंचित जहाँ समाज
स्वार्थ रत आत्म-निष्ठ सब लोग,
धर्म हो शासन डाकू चोर
उसे पीड़ित रखते बहु रोग!
महामारी दारिद्र्य दुकाल
अभागी भू का करते भोग
बहिर्जीवन विहीन वह देश
व्यर्थ सब जप तप साधन योग!

उभय जीवन मुद्रा के पक्ष —
वस्तुगत-पथ वस्त्र आवास —
स्वच्छता सुंदरता पावित्र्य
मूल्यगत गुण-श्रद्धा विश्वास!
समन्वित कर दोनों ही रूप
मनुज का संभव पूर्ण विकास
वस्तु गुण ईश्वर का बहिरंग
भाव गुण भगवद् हृदय प्रकाश!

उभय में वस्तुगुण ही श्रेष्ठ
हृदय का करता जो संस्कार
बिना संस्कृत मन के भू-भाग
जगत में पूर्ण नरक का द्वार!
प्रेरणा धर्म नीति का सार
शांति सुख ऐक्य लोक कल्याण —
चेतना मनुष्यत्व का सार
चेतना वस्तु जगत का प्राण!

पन्त द्वार

उपेक्षित था गृह मधु समाज
यशोदा की मन मंदिर देह
विरस जीवन बंजर उर प्रांत
बरसती छाया बन रस मेह!
भ्रांत भू गृहिणी में नव ज्योति
जगा उर में भर उर का स्नेह,
सिखाती होगा सच्चा बोध
सँवारो घो वे मन्मय गृह मेह!

भग्न ईंटों के खँडहर देख
झुर्रियों के आकर कृश गात
दया ममता के आँसू रोक
दादियों से कर मीठी बात —
कभी युवती जब उन्हें सँभाल
बँटाती काम काज में हाथ
रोगियों को दे इलाज पथ्य
बूढ़ियों का सुख दुख में साथ!

धैर्य वे देती उन्हें प्रबोध —
आ रहा सत् युग स्वर्ण प्रभात
मनुज जीवन जब धर नव रूप
संगठित होगा भू पर, मात!
दैन्य धन जन के भय दुख द्वन्द्व
नहीं रह जाएँगे अनिवार्य
वांछित साहस सह जीवन युक्त
धरा पर नर होगा कृतकार्य!

जनों को हरि आकर प्रति बार
सिखाता संतति निग्रह मंत्र
नियोजित यदि न मनुज परिवार
न संभव पूर्ण काम जन तंत्र!
अविधित निर्धन रक्त अपाप
बढ़ाते स्वर्ग नरक भू भार,
नरक क्यों बने न जन भू स्वर्ग
नहीं जब प्रजनन पर अधिकार!

विषय सुख सब यौवन का सत्व
महत् तन से हृदय का प्यार,
मत्त वह, क्षण मदिरा आवेग
नित्य यह मधुर सुधा रस धार।
बाह्य साधन से मर्म निरोध
बुद्धि संयत — कुसुमास्त्र प्रवेग
सुप्त कर नारी उर का प्रेम
जयी हो समर पर — जीवन ध्येय!

सहज बन म छन ज्यों रवि रश्मि
दीप्त करती सघु बन भू भाग
हृदय में भर जन के उल्लास
जगाति आशा की उठती आग!
प्रेम ही मानव जीवन सार,
प्रेम हरि कहता सब समर्थ
प्रेम के बिना न जीवन मूल्य
समझता मन, न सृष्टि का अर्थ!

युग्म मुग्धा का विवरण जीर्ण
धाम राग पथ मात्र विलास
बद्ध संकीर्ण परिधि में व्यर्थ
राग गर्वी कटना प्रयास!
नये सांस्कृतिक युग का जन्म
प्राप्त कर रहे — यह विधि काज
भाव जीती स्त्री पुरुष कृतार्थ
गढ़ेंगे गामामुही समाज!

बन सब जन जीवन स्तर उच्च
राग को भी करना निज दास
संस्कृत हो जो जन भू शक्ति
गाढ़ जीवन न रहे असहाय!
वर्गों के टुकड़े का महत्त्व
रूढ़ चिर स्तर गामक धर्म
यथार्थ होगा गुरु विवेक
बना का कर जीवन उज्ज्वल!

ऐक्य मनि सेतु सांस्कृतिक वृत्त —
न शासक शासित इसमें भिन्न
विवर्तन स वांछित अभिवृद्धि
दैन्य दुख बंधन हों विच्छिन्न !
मान पद सुख सुविधा में मग्न
न जन प्रतिनिधि हों लोक विरक्त
मिटे कुत्सित कुत्स्य भू चित्त
मनुज जीवन मन हो अभिव्यक्त !

क्रांति भी संभव विश्व विवर्त —
मनुज मन हो जो आत्म प्रबुद्ध
राजनीतिक धार्मिक संघर्ष
मिटें भू से विध्वंसक युद्ध !
सांस्कृतिक मुक्ति जगत की मांग
किए बौने (अधि) नेता स्वांग
बहिर्मुख पंथ प्रगति न उपाय
अपेक्षित जग हो पंथ मुक्त !

दोपहर में कर सरिता स्नान
छात्र लेते दो घड़ी विराम
तीसरे पहर, अध्ययन मग्न
खोजते मन का भुवन तमाम !
खोजते कहाँ सभ्यता धाम ?
मनुज जीवन का क्या आदर्श ?
कहाँ असफल समृद्ध इतिहास
कहाँ अधिदर्शन का उत्कर्ष !

विजित क्या बहिर्मुखी विज्ञान ?
ज्ञान क्यों अपने में असमर्थ ?
उभय का हो क्या सामिक रूप
मत पति तार्किक मति क्या व्यर्थ ?
धावते कैसे हो चरितार्थ
मनुज स्तर पर जड़ सृष्टि विकास
करें जन जो समग्र निर्माण
स्वयं सुख भू पर करे विलास !

मनुज ही सब दुःखों का मूल
प्रगति की बागडोर से हाय
बँधे बहु, गत भय संशय मूल
अभ्युदय संभव सबका साथ।
मनुज भू हो प्रति पीढ़ी स्वर्ग
मर्त्य में छिपा अगम्य प्रकाश
त्याग ही से संभव सब भाग
त्याग वंचित भू नरक समान।

धरा के पार छोर सब पार
अँधेरे में डूबे असहाय
दैन्य दुख दुविधा पंक निमग्न
भग्न मन जन रहते निरुपाय।
विषमता — उधर विश्व संपत्ति
कमाती भू शोषण धनु अस्त्र
इधर श्रम कृमि सहस्र पग दीर्घ
रेंगता बिना अन्न पर वस्त्र।

चल रही रूढ़ि रीतियाँ प्रथ
मृतक छायाएँ भू पर साथ
बिखर युग युग के कुत्सित प्रेत
नाचते मृत निशा में साथ!
भूल निज आत्मा — आत्मभुव सकल
जाति धर्मों के मुण्ड हार
मना के मुखौटे पहन कुरूप —
मनुजता हा सहस्र पथ त्रास!

ईंट गारन पर रन्गा छात्र
यौवन दुर्दमी गाता गान
गाँव के नगर प्रेम के ग्राम
गान पारस्परिक करते ध्यान!
समस्याओं जग की गंभीर
मदिर बनती मिल उभय प्राण —
विश्व की पूर्ण धर्म में मग्न
मनुज का करने के निर्माण!

नए युग में भौतिक विज्ञान
बदल अब रहा बाह्य परिवेश
मनुज अंतर्विरोध हों चूर्ण
जगाना जग में नव उन्मेष!
कला से भावी मानव रूप
व्यक्त करने का कर प्रयास —
आँकते वे अंत: सौन्दर्य
सूक्ष्म में भर रँग रेख प्रकाश!

पूछते समदर्शी अध्यात्म
हर सका क्यों न विश्व संताप?
अमर शाश्वत सुख का पा स्पर्श
मिटा वह सका न भू अभिशाप!
और, बहुदर्शी जड़ विज्ञान
प्रकृति का पा अमोघ वरदान
मूढ़ भस्मासुर सा उन्मत्त
प्रलय को देता अब आह्वान!

अंध जड़ प्रकृति तत्व को प्राप्त
पुरुष का हो जो दृष्टि प्रकाश
पंगु आत्मा का पकड़े हाथ
प्रकृति जो हो चरितार्थ विकास!
समन्वित हो जड़ चेतन शक्ति
ज्ञान सारथि हो रथ विज्ञान
प्रगति हो जीवन की सर्वांग
ऐक्य ही में समष्टि कल्याण!

मूढ़ भूतवाद के विवश पशु
जिन्हें हो प्राप्त न अंतर्दृष्टि
अंध मत भारवाह, दिग् भ्रांत
ज्ञान उनका अक्षर की सृष्टि!
न वह पांडित्य गजस्नान मात्र
नहीं जिसका जन हित उपयोग
न जो युग को है नव गति ज्योति
व्यर्थ वह कवित्व अर्चन राग!

भला उस शिक्षा का क्या मूल्य
धर्म फल कर न भू हित दान ?
रिक्त ज्यों पंच कुसुम मधु हीन
बुद्धि का दे मिथ्या अभिमान !
प्रकाशित कर जीवन तम तोम
पार कर सके नहीं भव यान
भिन्न विषयावर्तों में लीन —
समन्वित सागर ज्यों न महान् !

नहीं शिक्षा जो खोलें ज्ञान
मनुज सीमाओं का दे भान
कहाँ अब मानव-जीवन मूल्य
सभ्यता संस्कृति का अभियान ?
जहाँ जन भू विकास अवरुद्ध
प्रभावित हों कैसे मन प्राण ?
प्राप्त हों नव भू जीवन मूल्य
मनुजता का हो पुनरुत्थान !

ज्ञान मद में भरते बाल
खोजते क्षण ही का उपचार,
इसी से धार्मिक तांत्रिक पंथ
नवीन संभूत पाते सत्कार !
विपरिचित आडंबर मन मुग्ध
तिरोहित काल धुंध में मौन
मात्र भू संयम हित अनिवार्य
सांस्कृतिक ज्योति दिखाए कौन ?

भेद मति में कर स्वार्थ विभक्त
व्यक्ति भू राष्ट्र विश्व के दल
घृणा ईर्ष्या स्पर्धा फिर द्वन्द्व —
न मन में मानव नव उन्मेष !
शुभ भावत्व सत्ता का साथ
सर्वान्तर आत्म ऐक्य का बोध
न हृदयों में अनंत का रस
विश्व मन में अनन्य अति रोध !

कन्या हार

हृदय के बंद भी खुले कपाट
धरा पर बिखरा जीवन स्वर्ग
एक चेतना सिन्धु में लीन
हुए बहु धर्म जाति मत वर्ग।
विश्व संकट उर के पट बंद
स्वर्ग कुंचिका मनुज के हाथ —
घटित हो विश्व मिलन का पर्व
शांति सुख भोगें भू जन साथ।

खंड युग सीमाएँ कर छिन्न
हो सके मानव भू संयुक्त
मुक्त कर सकें स्व उर द्वार
मनुज गरिमा के बन उपयुक्त।
चेतना में पा ज्योति प्रवेश
अहंता के जड़ तोड़ कपाट —
लोक संस्कृति का स्वर्णिम ध्येय
एक हो मानव विश्व विराट्।

लोक धारणा का तोरण दीप्त
शुभ्र चिद् शोभा का पा स्पर्श
वहन कर सके धरा की ओर
मनुज अंतर्जग का चिर हर्ष। —
सुरा संस्कृति का शुभ संदेश
बताता हरि छात्रों को लक्ष्य
पास समदिक भू के कर पूर्ण
ऊर्ध्व निधि हो जीवन प्रत्यक्ष।

प्रसाधन-स्मित कृत्रिम सौन्दर्य
मात्र सुंदरता का उपहास
दीप्त करने शोभा का दीप
मनुज आए निसर्ग के पास।
उषा संध्या सुषमा अनिमेष
निहारे तारा पथ आकाश
फूल हिम लहर किरण खग गीत
चंद्रिका का पीए उल्लास।

मनुज सहृदयता का सौन्दर्य,
क्षमा करुणा, समता, सित त्याग
और सर्वोपरि ईश्वर प्रेम
अभीप्सा की अंतर में आग! —
घृणा स्पर्धा के युग में आर
जहाँ छाया भौतिक उन्माद
मनुज आंतरिक गुणों से हीन
नष्ट होने को — यह अपवाद!

इंद्रियों के मधु रस से पूर्ण
समन्वित हो मानव चैतन्य
प्रस्फुटित पद्दल पद्म समान —
प्रीति सौरभ से हो भू धन्य!
इंद्रियों से आत्मा तक शुभ्र
एक हो स्वर्णिम रस सोपान
न गत जीवन निषेध से शुष्क
अस्थि पंजरवत् हो मनुज्ञान!

मनुज संस्कृति का जीवन मुक्त
उठाना भू पर सौध नवीन
अचेतन तम पर धर दृढ़ नींव
अमर शिखरों की आभा छीन —
सर्वहित योग युक्ति के द्वार
पुरुष स्त्री का नव प्रीति अधीन
अथक आत्मिक सुख में स्थित चित्त
धरा रचना में तन मन लीन!

काम का ऊर्ध्व मौन चित् शृंग
स्नेह का सुन्दर हरित निखार
पार्थिव स्वप्न भू में बाँध
काम मद अस्थिरता का भार,
प्राण मन आत्मा का उभार
नाप जीवन में कर साकार
मनुज संस्कृति का शिव दर्शन
धरा पर कर स्वर्ग अभिसार!

कला हार

सीखते चित्र नृत्य संगीत
भव्य वर्णों के नव स्वरकार,
झाँकती सृष्टि भाव का रूप
लोक भू का करते शृंगार।
मूर्त करते अमूर्त युग स्वप्न
सूक्ष्म में भर जीवन संस्कार,
शिल्प का करते वे उपयोग
धरा जीवन सौन्दर्य निखार।

कला क्या? कहता हरि सोन्मेष
असमति में संगति भर नव्य
असुंदर में सुंदर को खोज
रूप महिमा बन भू का भव्य।
खंड कुंठित को नव रस पूर्ण
गूढ़ पंथ स्वर को कर श्रव्य
हटाना जग मुख का कटु धूम
मोक्ष उर में स्वर्गिक भविष्य।

ध्वनित कर गुहा निहित चिर सत्य
प्रेम को रोमांचन में बाँध
धरा प्राणों का उन्मद छंद
लोक हित स्वर संयम में साध
अचेतन तम का मुख भर धूम
कला को करना रस संस्कार
नरक को बना स्वर्ग में — स्वर्ग
शिखर में भर समदिक विस्तार।

बाह्य भावों के अविगत स्वर्ग
उन्हें जन मन में गहन उतार,
उच्च सुषमा पावनता शांति
प्रीति से भू संघर्ष सँवार, —
सत्य से मोक्ष महत्तर सत्य
कला को रचना नव संसार,
अमर शोभा के कर स बोस
लोक जीवन संयम क द्वार।

आज की कला किस संदेह ?
ह्रास युग की निर्जीव प्रतीक
न स्वर में संगति सौष्ठव धार
मात्र अपरूप अमूर्त अलीक !
गलस्तन गगन कुसुम शश शृंग
न जन भू जीवन हित उपयोग
भाव रस की न रूप से पुष्टि
रंग रंग रुचि का रिक्त प्रयोग !

न वह सौन्दर्य न जिसमें सत्य
भ्रान्ति छाया का माया जाल
न वह सत्य हो न जो शिव रूप
काम की मसें भिगाते बाल !
अचेतन उपचेतन के चित्र
मात्र अति वैयक्तिक उच्छ्वास
रेंगती कला पंक कृमि तुल्य—
अधोमुख कुंठित बुद्धि विलास !

हाय सामाजिक जीवन की भ्रांति—
ऊर्ध्वमुख दृष्टि न उसके पास
न उर अन्तर्जीवन से युक्त
न मन में नित्य मिलन विश्वास !
अनास्था व दमन व द्वन्द्व—
निराशा संशय भय अवसाद
शिरा भूषा में टंगे विद्युत—
स्नायु पंजर भर भर उन्माद !

कला का अंत अगति गाढ
जगत् जीवन का गहना रूप
तरंगित हो फिर गाथा सिन्धु
शिखर सी बिखरा नभ कूप !
मुक्त युग-दान अतीत युग धूम
महत् आदर्श करें पथलीन
गुण गौरव न हो रस दृष्टि
नित्य यौवन प्राण न जीर्ण !

लोक व्यापक नव संस्कृति पूत
न उसमें वर्जित भय बल योग
सुदृढ़ अनुशासन से ही साम्य
इष्ट भू जीवन का सुख भोग।
ध्येय यदि शुभ शुभ मति परिणाम
सफल तब सहृदय शक्ति प्रयोग
विषमता व समाज बल क्षीण
असंयम गोपन मानस रोग।

कलात्मक चित संयम कर प्राप्त
मुक्त फिरते मिल छात्रा छात्र
भोगते भाव स्वर्ग ऐश्वर्य
चेतना के संस्कृत रस पात्र।
स्वर भर नारी उर की प्रीति
मुखर पाती जीवन अभिव्यक्ति
विशद सामाजिक लय में बद्ध
मुक्त बनती विदेह अनुरक्ति।

बना अमरत्व का निर्मम सत्य
युवक युवती जन का सहचार
पुरातन पंथी भूखे लोग
नया सब जिनको मिथ्याचार —
रसिक बन कुत्सित स्त्री मुख
कथा गढ़ करते मृषा प्रचार,
और जो काम द्वेष विष दग्ध
घृणा निन्दा जिनका आहार।

सीखते गीत नृत्य पदचार
भाव मुद्राओं की घन मूर्ति
झनक कर पद नूपुर झंकार
नृत्य प्रिय भू उर में भर स्फूर्ति! —
अंग संचालन ग्रीवा भंग
देह में भरते संगति स्वस्थ
हाव भावों की लय में मग्न
छात्र छात्रा लगते विस्रब्ध।

ख्याति गिरों के भाग में मुग्ध
सृजन आनंद छंद में लीन
हृदय रहता तन्मय – उन्मुक्त
प्रेरणा पंखों में उड्डीन !
भाव लय में बँध सब मृदु देह
सूक्ष्म पटु साधन करती प्राप्त
उमड़ प्राणों का रस संगीत
जग जीवन में होता व्याप्त !

भंगिमाओं से भंगिमाएँ सूक्ष्म
ललित अंगों से कर मिल अंग
सहज करते जग मन को स्पर्श
बाँध उर सचराचर के संग !
मनुज तन का सारा पार्थिव
समावृत कर ईश्वर की सृष्टि
रोम कूपों में भर आनंद
मनोभू में करता रस वृष्टि !

साध जीवन के विषय संसार
नृत्य रचना कर भाव प्रसार
विविध धर्मों की करता पूर्ति
चेतना कर जन में संचार !
भावनी गति लय में विन्यास
रचन मधुरमय सुन्दर गंभीर,
भावनी रवि किरणों छवि दीप्त
हर मन के विषाद को चीर !

नृत्य में तन्मय साधन देह
करे आत्मा की गाथा व्यक्त
छंद में जीवन के आभास
गा उठे हृदय दिशा में रस –
बरस पुष्प – सुगंधा मधुर –
उन्नत पर पुष्प पाद गति दीप्त
मुक्त स्वरकर का बजता राग
नृत्य मुद्रा में भर तल्लीन !

विषमताएँ कर श्रम की पूर्ण
मुग्ध भू मग तांडव को व्यग्र
अपेक्षित श्रम को जीवन मुक्ति
लोक संयोजित भू न समग्र।
ओज प्राणों के ज्वाला पंख
जगें पावक के सुप्त स्फुलिंग
सभी संग बढ़ें त्रास भय बद्ध
जगें छमछम अवरोधक शृंग।

सृष्टि सुधा रच सुघर पथ
लोकप्रिय भाव पूर्ण कर हास
कुसुम रच भ्रमर, हंस प्रिय गात
व्यथा मुदित कर शक्ति विकास।
युवक युवती जन रचते रास
भृंग कलिका से मधु पद भार,
तरंगित कर भावों का सिन्धु
ओज गोपन अंतस् रस धार।

धरा हो जन क्षमा का पर्व
देह में हो आत्मा चरितार्थ
रूप में पूर्ण प्रस्फुटित भाव
मर्त्य जीवन में स्वर्ग यथार्थ।
अप्सरा-सी जिसमें नित्य
मुग्ध पद ऋतुएँ करतीं नृत्य
सृष्टि के उसी छंद में बद्ध
जगत जन जीवन हो कृतकृत्य।

लोक नृत्यों से ले पद न्यास
वेश भूषा स्वर सम विन्यास
छात्र रचते मोहक सह नृत्य
जन मन में भर भाव हुलास।
सीखतीं ग्राम स्त्रियाँ अभ्यास
रंग शैली सज्जा शृंगार
अंग सौष्ठव जीवन उल्लास
कला रुचि शील सुघर आधार।

बाद्य बूँदों की ध्वनि गंभीर
अचेतन भू तम देती चीर,
मंद्र गुरु धुन मृदंग की थाप
काँप उठता दिङ् मौन गभीर !
बाद्य भेरी की तरल तरंग
मिटाती क्षन मन का औदास्य
गूँजता गगन नाद स्वर मत्त
ग्राम भू रजनी बन रस लास्य !

मधुर बीणा करती झंकार
भ्रम मधुपवन भरता गुंजार,
बाँसुरी की धुन स्वर्णिम टेर
काम का हटता मन से भार !
धमक उठता मंजीर अमंद
ताल देते तन्मय धुन पद
टनकन कांस्य गमकते ढोल
नाद का कसता नभ में छत्र !

सुषिर तत के संग घन आनद्ध
फूँकते जग मन में नव प्राण
सिहर उठता भू गुहा वितान
जाग उठते जन भू म्रियमाण !
दिशाओं से आ प्रतिध्वनि गूढ़
क्षितिज श्रवणों में कहती भेद—
नाद ही जीवन का उन्मेष
नाद ही सृष्टि नाद ही वेद !

तोड़ रुद्ध पथ मुग्ध जन मग्न
हृदय में भरते मुक्त उमंग
विविध मंजीरा से तन संग
थिरकते पग मन मग्न अनंग !
ताल महत्ता का ही सब मान
तमकत धूर्जटि के रंग
मांगलिक पर्व मनाती भूमि
घोर झमझमाता करते भग !

कमला द्वार

मधुर सारंगी मुखर सितार,
झांझ भेरी जल काष्ठ तरंग
दिलरुबा बजता प्रिय इसराज
मुग्ध कर जाता काम कुरंग !
सितारा शहनाई मधु बीन
मंच पर भिन्न स्वरों का वास
शरद घन सा भरता कल नाद
तुंग पातों सँग वन उच्छ्वास !

प्रतीक्षा में जन भू संस्थान —
उदय हो उर में नव संगीत
प्राण मन जीवन कर रस मग्न
करे जो भू जन को उन्नीत !
मुक्त कर अंतर के सित स्रोत
राग को दे जो मूल्य नवीन —
जन्म ले नया हृदय — भू भेद
गहनता में हों मग्न विलीन !

ऊर्ध्व शृंगों में खोए लोक
ध्वनित स्वर में हो जिसके व्यक्त
शुभ्र आत्मा की निःस्वर शांति
ध्वनित अवरोहों में अभिव्यक्त !
नीलिमाओं में जिसका नाद
दीप्त भर दे नव स्वर्णोन्मेष
हरित निस्तब्धताओं में मग्न
करे प्राणों में ज्योति प्रवेश !

श्रेष्ठ गंधर्व कला संगीत
अमर जीवन को दे नव अर्थ
बिना स्वर पंखों में उड़ शब्द
भाव मन छूने में असमर्थ !
अपरिमित सूक्ष्म चेतना लोक
मर्म वाणी है उसे महान्
मूर्त हो भू जीवन का गान
हास स्वर संगति में मन प्राण !

बताते युग-संसृति चिद् छंद,
बँधें जो स्वर्णिम लय में लोक
स्वर्ग शोभा पुष्पित हो विश्व
धरा जीवन हो पूर्ण, अशोक!
शिरा में बहे रुधिर बन गीत
लोक श्रम सप्तक हो लय बद्ध
व्यक्त करते असीम आनंद
हृदय वीणा हो स्वर सन्नद्ध!

महत्तर हृती अंतर्दृष्टि
सुनाई पड़ता सित संगीत
गूँजते-से अहरह निःशब्द
प्राण तन मन के भुवन पुनीत!
अखिल के स्वर में उर को साध
चेतना गाती जीवन मुक्त
विषम को सम कर तम का ज्योति
मनुज का शुभ विभक्त को युक्त!

बहिर्मुख मन को न पा बोध
स्पर्श सित आत्मा का स्वर तार
मनुज की प्राण गुहा का दैन्य
दीप्त कर दे जो चिद् झंकार—
भेद जर्जर भू मानस गर्त
भरे, बन भी शोभा सम्भार,
रजत स्वर सर अनंत का हर्ष
बने भू स्वप्न हित वरदान!

रमा व स्वर्गों में इस भाँति
देह मन का नित कर निर्माण
धरा को करने शोभा-पूर्ण
शिशिर जीवन करता मम त्राण!
न रंभा तब मीलित हो काम्य
घटा ही में न सुरधनु चित्र
रमा जग भू का कर शृंगार
मोद जीवन का करे पवित्र!

खाद ही से खिलते हँस फूल
काष्ठ उर ही में पावन आग
सदा सुख का सोतो जड़ पंक
हृदय में यदि जीवन अनुराग !
उन्हें प्रेरित करता हरि नित्य
न हो भू दुख कर्दम से भीत
चेतना बीज कलुष तम मुक्त
बढ़ो भू रज में सने पुनीत !

पाप में जिन्हें न दिखता पुण्य
विश्व संघर्षों में शिव शांति
नरक में छिपा स्वर्ग सौन्दर्य
सत्य प्रति उनके मन में भ्रांति !
तमस में देख न पाते ज्योति
स्वर्ग भू को जो किए विभक्त
मूलक जड़ – कुसुम नहीं अमृतत्व
ईश वंचित वे विश्व विरक्त !

ग्राम जीवन की त्रुटियाँ बोध
मन पर होते आत्म प्रकाश
मुखर हों मूक जनों के भाव
लोक चिति का रचते इतिहास !
त्रुटीले होते व्यंग्य कटाक्ष
शिष्ट निष्ठुर उनका परिहास
सुनाते कहाँ पंथ स्वप्न गूढ़
कहाँ मन रूढ़ि रीति का दास !

जाति धर्मों का ईर्ष्या द्वेष
मनुज को कैसे करता भ्रांत
स्वार्थ कलहों के निर्मम दृश्य
दिखाते वे दारुण दुर्दांत !
भाग्यवादी का करुण भविष्य
निराशा निष्क्रियता में लीन
अविद्या दैन्य प्रथाएँ जीर्ण
बनातीं कैसे जन को दीन !

क्रोध भय लोभ मोह व क्षोभ
दर्प माया—वैराग्य विषाद
नियति के संग मुखरता नैष्कर्म्य
घृणा निन्दा का बाद विवाद!
इधर सहृदयता करुणा प्रीति
शांति धात्री श्रद्धा विश्वास
सदमता तुरत सरक पट दृश्य
मंच पर हँसता स्वर्ग प्रकाश!

अवतरित करता पुण्य चरित्र
लोक मन में आदर्श सँवार
महापुरुषों के जीवन वृत्त
धरा तम का हरते जो भार!
स्वग दूना का भू के क्रूर
धूम कैसे करते शृंगार,
माक जीवन हित जिसका मूल्य
मंच पर देते उसे उतार!

लोक मंगल में आस्थावान
न बाधाओं से होते भीत
धैर्य साहस सहयम व गुण
विघ्न भू पथ व लेते जीत!
कथानक पुण जीवन व गूँथ
भाव गरिमा ग कर अभिनीत
महत् संकल्प शक्ति का मूल्य
सिखाते जन को पात्र पुनीत!

सदन जीवन में जा संभाव्य
न संसृति देश काल में ग्राह्य
रंग भू पर प्रस्तुत कर दृश्य
बनाते उसे बोध अवगाह्य!
योजना नयी भावना भूमि
घटना को सब दृप अनुरूप
कर सज्जा रूप रंग प्रकाश
रचना की देव सत्य स्वरूप!

रमा द्वार

दिखाते बहुरूपि यह भू कम
मिटाते कैसे भू दुख भार
क्षुद्र बूंदों ही का सहकार
महाब्धि बोहित करता पार !
मंच हो मोहित दर्पण मूर्त –
दर्शकों को रखता अनिमेष
सतत बिम्बित कर अभिनव दृश्य –
कहाँ अब मनुज काम भू शेष !

दिखा कर कठपुतली का नाच
नचाते मंच कवि के तार
मचाते कैसे जन को बोध –
रूप रस से दुष्कर निस्तार !
दिखाते कैसे भली लोक
नचाओं से कर जन पर राज
लपेटे खादी में पद दर्प –
लाज से नत सिर लोक समाज !

नाटक के बीच होते बहुमूल्य
प्रदर्शन प्रहसन कला प्रकार
मूर्तियाँ रूप रंग की मार
शिविर करता शुभ सत्य प्रसार !
नाचती गाती भू भी बोल
प्राण सागर में उठता ज्वार,
प्रस्फुटित होता भू सौन्दर्य
प्रबोधित मन आचार विचार !

चाहते कभी छात्र एकांत
हरित आश्रम पर बैठ प्रशांत
बुझाते प्राणों का संघर्ष
बुद्धि को करता जो भ्रम भ्रांत !
चाहते यह जीवन का अंत
और यह जीवन का उत्कर्ष
केन्द्र का पथ या घर अधिकार,
मुक्त जीवन – मय विस्मय हर्ष !

संतुलन कर प्राणों का प्राप्य
भावना का मुख कर रस स्नात
काम कर प्रीति अग्नि में शुद्ध
दीप्त करती थी भू की रात!
देह रज सीमा में निःसीम
मधुर मित आभा का कर प्यार,
स्वर्ग कुसुमों भावों से मुग्ध
स्त्रीत्व था करता था शृंगार!

बढ़े भू प्राणों की सम श्वास
ज्योति की कनक शिखा मन मुक्त
स्वर्ग शोभा से निज भगवान
देह दीपक में आभा युक्त!
जगत के अधकार में ऊर्ध्व
जगे इच्छा का हीर प्ररोह,
प्रीति हो सहज प्रतीति — न मोह
न ईर्ष्याऽस्मिता न मिलन बिछोह!

नील सरसी जल में ज्यों प्रात
स्वर्ण लहरें करतीं स्मित लास
मनुज तनिमा में हँसता सूक्ष्म
रंग कुसुमों का नव मधुमास!
युवक युवती जन के मृदु पग
प्रकृति कर मन का प्रणय विराग
चतुर्दिक करते सहज विकीर्ण
सूक्ष्म भावों का शुभ्र पराग!

कल्पना मनसों में अनिमेष
निखर खिलते छवि क्षितिज उदार
द्वार गृह आँगन के तट मौन
शोभता नव मानव परिवार!
भावना सागर में रस मग्न
रहते जाति का शुभ धी
जन्म लेता नव मानव धर्म —
धरा जीवन हो विकसित स्वर्ग!

अँधियारी भू जन मन की खोल
निखरती हो चेतना नवीन
फूट अंगों से शोभा कांति
हृदय अंतर्मुख करती लीन!
देह छवि लजाएँ न विभिन्न
रसोदधि की वे रूप तरंग
काम के क्लेश द्वेष से मुक्त
प्रीति सुख बन निर्भय निःसंग!

धरा के अंधकार से भीत
राग का मुख बन सुंदर कांत
शिराओं में उर की प्रभात
प्रेम माता रहता अभ्रांत!
हर्ष शोभा के अंतर्लोक
प्राण मन में खुलते एकांत
काम ही स्वर्ग सृष्टि का बिम्ब —
हृदय कहता मति से निर्भ्रांत!

छाव छाया पाते चित पास
भावना पाती पूर्ण विकास
प्रेम का एक नया ही रूप
हृदय में भरता शुभ्र प्रकाश!
उन्हें था वंशी का आदेश
छिपाएँ वे न मर्म की बात
प्रेम ही प्रकृति पुरुष स्त्री एक
सत्य जीवन का होता ज्ञात!

विगत युग सीमाओं में बद्ध
हुआ निर्दिष्ट प्रेम का रूप
रिक्त वर्जन निषेध से रुद्ध
अमृत रस सिन्धु बना तम कूप!
अंतर्गत संस्कृति जनित अनेक
अभी भी प्रश्न विकट गंभीर,
चेतना को मूल्यों में भव्य
प्रकट होना तम के पट चीर!

प्रस्फुटित होते नव संबंध
युवक युवती जन उर में भाव,
बँधा छिन पाप मूल में पाँव
सौम्य भू मम रत निखिल समाज।
तृप्त रत देह प्रीति रस स्नात
उन्मथित हृद्य मूल्य की साज
स्वर्ग स्मित भाव मुकुल दल फुल्ल
प्रेम सिर पर काँटों का ताज।

स्थापित होता नव सम्य मत चित्त
प्रबोधन रता अंधी क्षुब्ध
शिविर में पड़ता उनका स्वप्न
भाव जिनके रही तन पर मुग्ध।
केन्द्र की सीमा प्रकृति स्पष्ट
मनुज भू का नव मनोविकास –
व्यक्ति केन्द्रिक संधा जड़ प्रेम
संग माया मिथ्या उपहास।

प्रीति की बाँह पकड़ कर शुभ
वहन कर गाथा मंगल छाँह
भोगो नव भू जीवन का स्वर्ग
युवक जन करते नृप उत्साह।
मोक्ष भू छिन्न हुआ परिणत कर्म
यहीं तज त्याग यज्ञ का भार
न ईश्वर भक्ति ज्ञान वाग्विधायें
न दर्शन भू जीवन प्रति मनुहार।

प्रेम का हुआ भग्न हो रूप
देहली पर मन की बलिदान
रखा पर ही जिनकी कार्मिका
न उनका मिला केन्द्र में स्थान।
रहे वे बाहर जग में मग्न
जहाँ तन न ही मुख्य प्रधान
बंद साधन में निखिल प्रेम
रँगता दृष्टि रिक्त निष्काम।

धरा पर मनुज हृदय का सत्य
हमें स्थापित करना अनिवार्य
मूर्त कर शुभ्र हृदय की ज्योति
करे जन भू जीवन में कार्य!
भावना निखरे, धर नव रूप
राग मूल्यों का हो उद्धार,
देह चेतना द्वेष-राग मुक्त
स्वतः होगी विकसित अविकार!

भावना का भावी सित रूप
न शब्दों में हो सकता व्यक्त
मूर्त होकर ही जीवन सत्य
श्रेय होता — सत् चित् अविभक्त!
चाहता मैं नव संस्कृति केन्द्र
धरा पर कार्य करें अविराम
महत् से बनें महत्तर लोग
सतत शिव से शिवतर भू धाम!

रूप रस से जिनको अनुराग
विरत भू भूत करें स्वीकार,
स्वर्ग-भू धरा हृदय-जग केन्द्र
विभव स्वस्थ मन चैतन्य विहार!
युवक जोतें धर मंदिर द्वार
शक्ति में पुरुष तन्मयाकार,
प्रकृति सारी स्वप्नों का हार
करें भू जीवन का श्रृंगार!

परात्पर, विश्व व्यक्ति-शिव श्रेणि
सत्य का अविच्छिन्न सोपान —
परिस्थिति दैविक गुण दिक् काल
व्यक्ति का सीमित करते मान!
अनघ लघु व्यक्ति प्रकृति का सत्य
विश्व में पाए निज शुचि स्थान
ऊर्ध्व के ज्योति स्पर्श से युक्त
सर्व सँग हो उसका कल्याण!

युवतियाँ यह भाव है भूल
न करतीं सहज स्नेह स्वीकार,
व्यक्तिगत मूल्यों के संस्कार
जगाते भय संदेह विकार!
उपेक्षित आत्मा का ऐश्वर्य
त्वचा की शुद्धि क्षीण या रोम
मात्र पग का स्वर्णिम सौन्दर्य
न कर पाते स्त्री मन उपभोग!

अंध अवचेतन हठ हो आरूढ़
नीति अनुशासन जनरव भीति
आत्म सीमित रहता उर राग
न मिल पाती समष्टिगत प्रीति!
गर्व संगी अंतःपुर द्वार
पोतता सिखा उन्हें वह वर्म
प्राण मन का ऊँचा घन भूम
वर्ज्य करता निसर्ग का धर्म!

स्त्रियों के प्रति अब नर संस्कार,
रूप के प्रति वैयक्तिक दृष्टि
स्वत बदली जागी सर्वांग
हृदय में व्यापक शोभा सृष्टि!
युवतियाँ आत्म दर्प में लीन
तिरस्कृत करती थी जो स्नेह
दैव का मुग्ध भेद हित और
मम महत्व बन हुई विदेह!

युवक युवती का अंतर खोर
स्वर्ग सामाजिक का अभिसार,—
शील के पथ पर सौम्य पवित्र
बिखरता यहाँ परंपरा प्यार!
नृत्य शिव पग मधुर झंकार
नवी वय उठती उर में मंद
उसे रस भंगिमा करता दान
देन्य यौवन का मांसल छंद!

जन्म लेता नव जीवन स्वर्ग
मुग्ध वंशी के मन में मौन,
धरा पर सुन पड़ती पग चाप,
अगोचर चमता जाने कौन !
देखता काम पंक में आज
खिल रहा नव चैतन्य सरोज
छोड़ कर धरा स्वर्ग अब मुक्ति
व्यर्थ थी स्वर्ग मुक्ति की खोज !

सृजन शोभा स्वप्नों में लीन
युगों से उठ आता व्यवधान
लोटती भू पर शिखर समीर
स्पर्श से रोमांचित कर प्राण !
केन्द्र के आँगन में चुपचाप
उतर आता स्वर्गीय प्रकाश
डूबते मन के डोरे सूक्ष्म
देखता शाश्वत कर मृदु हास !

सृष्टि संसृति में बंधे अनंत
नाचते जग भू स्त्री नर संग
प्रकृति भव से उठता क्रम ग्राम
खेलते शशि रवि किरण तरंग !
प्रतीक्षा रत सहस्र युग स्वर्ग
काल के उर में सपने लीन —
धरा हो मनुज मिलन का तीर्थ
ऐक्य के हो जग मुक्ति अधीन !

जगत से निखर सूक्ष्म जग एक
चकित करता कवि की स्थिर दृष्टि
मग्न करती नव जग के रूप
हृदय नभ से झर शोभा वृष्टि !
ऊर्ध्व के ज्योति स्तम्भ से शुभ्र
वीणा मं— प्रभात
पावनर्सों —
करती म व !

स्वर्ग विस्तृत थी नव चिद् ज्योति
सर्वमय परम — न संभव माप
छेड़ रहा था अवचेतन — धूम
कट रहे थे जड़ भू अभिशाप!
मधुरिमा से विस्मित दृग अनिमेष
ज्योति लय में उठता तम काँप
भागता बाहर मन चुपचाप
अवचेतन की बाँबी का साँप!

मुग्ध मादक छंद में बद्ध
प्रीति आभा सागर में लीन
युवक युवती मिलते निर्बाध
देह मन की कुंठा से हीन!
उषा ज्योत्स्ना का सित सौम्य
सौगुना उठता उर से फूट
कोटि रति काम मुग्ध परितर्प —
हाव भावों की मचती लूट!

पलता पट में ज्यों दिग् दीप्त
विश्व लगता घन छाया चित्र
मनोहर सुंदर, रचित पूर्ण
पंक का सुख निरपेक्ष पवित्र!
सुनहले आभा पट में सूक्ष्म
सुहागा लिपटा भू मृद् गात
उतरता हृदय शिखर पर मौन
प्रेरणाओं का रश्मि प्रभात!

निःसीम मनुजों में मूर्त — प्रचंड
दीपता उगता मानव एक
अमर जो जरा मरण भय हीन
स्वर्ग बनता मिटता अविवेक!
नित्य नव को पा जग अभिराम
मुखर धरती सर्वस्व अपार
लिए शाश्वत यौवन ऐश्वर्य
दिव्य धाम में बनता अभिसार!

जन्म लेता नव जीवन स्वर्ग
मुग्ध वंशी के मन में लीन
धरा पर सुन पड़ती पद चाप
अगोचर भ्रमता जाने कौन।
देवता काम पंक में वाम
खिल रहा नव चैतन्य सरोज
छोड़ कर धरा स्वर्ग जन मुक्ति
व्यर्थ थी स्वर्ग मुक्ति की खोज।

सुजन शोभा स्वप्नों में लीन
युगों से उठ आता अवधान
लोटती भू पर बिखर समीर
स्पर्श से रोमांचित कर प्राण!
केन्द्र के गोपन में चुपचाप
उतर आता स्वर्गीय प्रकाश
छूटते मन के धीमे मूल्य
देवता शाश्वत कर मृदु हास!

सृष्टि संगति में बंधे अनंत
नाचते खग मृग स्त्री नर संग
प्रकृति मग से उठता रस राग
खेलते शशि रवि किरण तरंग!
प्रतीक्षा रत सहस्र सुख स्वर्ग
काम के उर में बसते लीन—
धरा हो मनुज मिलन का तीर्थ
ऐक्य के हो जन मुक्ति अधीन!

जगत से निखर सूक्ष्म जग एक
चित्रित करता कवि की स्थिर दृष्टि
मग्न करती पग पग के शूल
हृदय नभ से झर शोभा वृष्टि!
स्वर्ग के ज्योति स्पर्श से गूढ़
देह वीणा झंकृत अज्ञात
अमित आनंदों में अभिव्यक्त
विश्व को करती नव रस स्नात!

स्वर्ग विस्तृत थी नव चिद् ज्योति
सर्वमय परम,— न संभव माप
छँट रहा था अवचेतन - धूम
कट रहे थे जड़ भू अभिशाप!
मधुरिमा से दिशि क्षण अनिमेष
व्याप्ति सम में उठता तम कोष
भागता बाहर क्षण चुपचाप
अचेतन की मोबी का साँप!

सृजन आनंद छंद में बद्ध
प्रीति आभा सागर में मीन
युवक युवती मिलते निर्बाध
देह मन की कुंठा से हीन!
सुधा ज्योत्स्ना का सित सौन्दर्य
सौगुना उठता उर से फूट
कोटि रति काम मुग्ध चरितार्थ —
हाव भावों की मचती लूट!

चेतना पट में ज्यों दिग् दीप्त
विश्व लगता घन छाया चित्र
असुंदर सुंदर, खंडित पूर्ण
पंक का गुण निरपेक्ष पवित्र!
सुनहले आभा पट में सूक्ष्म
सुहाता स्वप्न भू मृद् गात
उतरता हृदय शिखर पर मौन
प्रेरणाओं का नमित प्रभात!

निखिल मनुजा में मूर्त — अपार
दीखता उसका मानव एक
अमर था जरा मरण भय हीन
स्वर्ग करता जिसका अभिषेक!
भिन्न नव जो था जन्म विकास
सुघर धरता सर्वांग आकार
नित्य नूतन यौवन ऐश्वर्य
दिव्य मन में करता अभिसार!

चेतना बंधी हरि मन देह,
परस्पर प्राणों में शिव स्नेह, —
प्रेरणा था कवि हरि शुभ कर्म
केन्द्र भू भी शोभा का गेह !
देख छात्रों में रुचि संस्कार
सदा प्रति रहता उर साभार
शुभ्र अंत संस्कृत चैतन्य
विचरता पग भू पर साकार !

सोचता बंधी — क्या साफल्य ?
सभ्य कर युवती युवक समाज —
उसे लगता संसृति का सत्य
सहज ही शोभामय निर्व्याज !
केन्द्र के नर नारी सामान्य
सुघर लगते था रुचि परिवेश
मधुरता के प्रति कृत्रिम दृष्टि
हृदय को देती उसके क्लेश !

बाह्य साधन सज्जा परिधान
नहीं करते संवरता बुद्धि
सुघरता आत्मा का संस्कार
चाहिए उसको अंत सिद्धि !
विगत युग के शोभा के मूल्य
उसे लगते सीमित संकीर्ण
नागरिक आभिजात्य सौन्दर्य
अंगरागों में पोषित जीर्ण !

सभी आकृतियाँ रेखा रूप
हमें करने अविकल्प स्वीकार,
न दे यदि रम्य अपांग विकल्प
असंशय दे शोभा छवि हार !
प्रकृति गत वैविध्यों से योग्य
चाहिए अंतर्दृष्टि उदार, —
सभी को मुक्त क्षेत्र हो प्राप्त
सभी विकसित हों रुचि अनुसार !

यही पाली की लड़की स्वयं
निपट अल्हड़ स्वभाव में क्रोध —
शिविर की अब मति सचिव संग
सतत हँसमुख मन द्वेष विरोध!
व्यवस्था करने में वह दक्ष
प्रकृति आवेग कम मुग्ध मौन
उसे भाता उद्यान विभाग
स्तवक, सरः रचना कला प्रवीण!

ममसती सहज बुद्धि से मम
समय उत्सुक वह मति से मंद
सीखती गीत सुरुचि सहयोग
उन्निद्र प्राणों में नव नव छंद!
न उसको आकृति का वरदान
निसर्गजा धर्मा ने छवि कांति
एक सुंदरता उसमें सूक्ष्म
पूर्ण मुग्ध पर हो मन की शांति!

जगत में युग मनोज्ञ बहु रंग —
महत् सुंदरता न वे अंग
भावना सागर में शशि ज्वार
उठी हो रस ऐश्वर्य तरंग!
मनुज अंतश्चरता अनिन्द्य
सूक्ष्म स्तरों में होती व्यक्त
आंतरिक शोभा उसकी काम्य
देह के प्रति भी वह न विरक्त!

बीतने गए वर्ष पर वर्ष
बढ़ा मन प्राणों का मंथन
मचलता रहा भावना ज्वार,
गोपनता रहा प्रश्न पर हर्ष!
हुई मन की प्रारब्ध अनुभूति —
वर्जित अवचेतन का संस्कार,
जगी प्राणों में उतरी ज्योति
गुंथा विस्मय का रश्मि हार!

नमे शोभा के कुसुमित स्पर्श
धँसा उर में स्वर्णिम रस तीर
बही रोमों में तड़ित् तरंग
हुए तन मन के भुवन अधीर!
अचेतन का तम स्वप्न प्रदीप्त
हँसा — तारांकुर लिपि नभ प्रांत
उषा का मर्मचुभा सौन्दर्य
लुभाता हृदय क्षितिज पर शांत!

केन्द्र में खुले नवीन विभाग
पूर्ण वह हुआ अनेक प्रकार,
देश देशों से आते लोग
ज्ञान जीवन पाता विस्तार! —
विश्व संकट क्षण बढ़ता नित्य
काम करते न नीति न विचार,
खोजते भू शुभ चिन्तक प्राण
समन्वित नया सत्य आधार!

खुला शिशु कक्ष सुघर सजीव
बाल मन॰ अनुशीलन का द्वार,
मातृका पाल पोस रख स्वस्थ
नवागत का करतीं संस्कार!
सुरुचिमय था संस्कृत परिवेश
सुयोजित होता मनोविकास
अपेक्षित रुचि स्वभाव अनुरूप
प्रस्फुटित होता हृदय प्रकाश!

संग्रहालय संग ग्रंथागार
खुला — जन शिक्षा पथ अनिवार्य
रात्रि को पढ़ते स्त्री नर प्रौढ़
समापन कर निज दैनिक कार्य!
मुद्रणालय ने लोक अभीष्ट
प्रकाशित की पत्रिका ललाम
शिविर जीवन की सित आदर्श
लोक चेतना — मूर्त हो नाम!

केन्द्र में खोला करुणा कक्ष —
(प्रेम का कैसे वह संस्थान !
जहाँ आस्था आशा आनंद
सुजन सक्रिय रखते भू प्राण !
महत् के हित जिनमें चिर साध
हृदय में गत प्रीति निष्काम
समर्पित जिनके जीवन कर्म
केन्द्र मुख्यतः उन्हीं का धाम !)

आर्त अबला जन का वह कोष्ठ —
जहाँ रहतीं विधवा निष्प्राण
परित्यक्ता लांछिता अनाथ
सपत्नी वंध्या निःसंतान !
अपुत्रा पति पीड़िता अनेक
स्वजन करते कटु अत्याचार —
रूढ़ संस्कृति की करुण प्रतीक
वह जीवन मन जिन तन हार !

वृहद् भू जीवन का सौन्दर्य
न उर में भरता स्वर्ग हिलोर —
शिथिल करता उनका भाग्यग्रस्त
व्यक्ति स्थिति में जो निहत कठोर !
केन्द्र के साहचर्य छाया छाँव
ध्यान देते उन पर सविशेष
प्रेरणा भरते उनमें दीप्त
प्राण में नव जीवन उन्मेष !

व्यक्तिगत कुंठा व हर रूप
हृदय में भर नव भावोद्रेक
विरत जीवन स्वप्नों में स्नात
दग्ध उर का करते अभिषेक !
शांति सुषमा का प्रांगण धाम
भग्न उर का हर मादक भार
खींचते मनोदृगों में मुग्ध
अमित शोभामय जग शृंगार !

कला द्वार

कहतीं मातायें वे–मौन
लोक श्रम में रत रहता चित्त
शक्ति अनुभव करते स्वस्थ प्राण
मनुज जीवन अब सर्व निमित्त!
हृदय में होता रस संचार
एक अब भू मानव परिवार,
धरा शोभा उनका प्रिय वेश,
सुरुचि से करतीं वे शृंगार!
जगत जीवन के प्रति आकृष्ट
युग मिलता शोभा विश्वास
मुग्ध प्राणों में बहती मौन
अमृतमय विश्व प्रकृति की साँस!
अजिर में गाता विधु संगीत
लोक जीवन से जुड़ते प्राण
सृष्टि के अमित विभव में डूब
शुभ लगते निज रोदन गान!

पूर्णिमा आई स्निग्ध प्रशांत
शुभ्र शरदोत्सव का जन पर्व–
प्रात ही से लगते प्रति व्यस्त
शिविर के स्त्री नर–स्नेही सर्व!
धरा का वे सँवारते रूप
प्रथम गाँवों को दे श्रम दान
स्वच्छ अब हाट बाट पुर सद्म–
स्वच्छता का सर्वोपरि स्थान!
आम्र दल के नव वंदनवार
टँगे पुर पथ में शुभ अभिराम
हरित कलशों में लिपटे अंग
सुहाते पुरते खेते ग्राम!
सुरँग रुचि अल्पना में भर नारि
घरों में करतीं मंगल गान
रजत शोभा में लगते धौत
बैल हल कूप खेत खलिहान!

यंत्र हल जो धरती की योनि
बीज गर्भित करते नित धन्य।
धन्य जीवन—जोतते किसान
धरा पालती जिन्हें दे स्तन्य।
गाय भैंसें सब लगतीं स्वस्थ
जानते पशु पालन सब लोग
उपेक्षा गायन की अपराध
सुखद पशुओं के संग भू भोग।

हिनहिनाते घोड़े—गृह श्वान
हिलाते पूँछ चाटते हाथ
भाग्यशाली मानव परिवार
चराचर का जिसका प्रिय साथ।
गूँजता मोद धुनों से गाँव
मुखर मुर्गों से प्रांगण हाट
धरा कुसुमित पौध तरु किरीट
जोहती जनता पर्व की बाट।

हरित साड़ी पहने वन भूमि
ओढ़ शालों का श्वेत दुकूल
कुंद दशनों से कर मृदु हास
सुहाती सद्य स्नान निर्धूल।
गुँई लम्बी वेणी में फूल
गूँथ नव हरसिंगार के हार
मालती के मृदु कंकण बाँध
सजे ऋतु कुसुमों का शृंगार—

मेघ पट न दिखता मुख चाँद
उठाती हृदय सिन्धु में ज्वार
नील नयनों की पाँखें खोल—
प्रकृति देवी ही हो साकार।
रजत सौरभ से भरे दिगंत
स्वच्छ नव मणिमालाओं का नीर
रम्य से शुभ्र गिरा तन मन
प्राण में धर न ध्वनित गंभीर।

सुहाते पवन स्पर्श कण शांति
हंस पंखों का दिखा प्रसार,
चाँदनी देख हृदय निःस्तब्ध —
सत्य क्या निराकार साकार ?
बिचरते स्वप्न चरण धर मौन
अप्सराएँ फिरतीं कि अदृश्य ?
स्पर्श से तन्मय तन मन प्राण
मात्र देही शोभा अस्पृश्य !

ज्योति प्लावित वन भू के फूल
वस्तु भावों में ग्रथित विसीम
धरा लगती न धरा सी स्थूल
एक आत्मा के जगत् अधीन !
शुभ्र भू, शुभ्र धवल घन शीश
कुंद हिम कुमुद चंद्र से भाज
रूप रंगों के लय सब भेद
एक सत् बहु गुण वस्तु समाज !

भुला जग की चिन्ताएँ — श्वेत
दृष्टि मग श्री में साकार
प्रकृति शोभा ध्रुव सम्मुख मूर्त
हृदय में करती स्वप्न विहार !
स्निग्ध स्वर्णिम स्वर नभ में गूँज
स्पंदित मन भावों को एकांत
सृष्टि सम्मति में निःस्वर बाँध
लुब्ध अंतर को करती शांत !

अनावृत हो आदिम सौन्दर्य
लाज गौरव जिसकी पद चाप
रंगिणी स जो शोभा भीड़
मौन करता हो मधु संलाप !
प्रीति तन्मय जिसका मृदु स्पर्श
हृदय का हर लेता संताप
शील की छुईमुई सी देह
मधुरिमा में मोमल चुपचाप ! —

कुसुम वसि रोके सौरभ साँस
खड़ी लहरें भावी उठ मौन
पुलक तरु मर्मर भर मद
उतरती धरती पर यह कौन?
तारिकाएँ नभ में अनिमेष
छुईं खोले सर में कुमुद स्फार—
स्वप्न सी विस्मय सी यह कौन
चल रही जग स्वास पर सुकुमार!

नीलिमा की सी स्मित साकार
भाव शोभा में लीन अजान
प्रतीक्षा में हा विरत पलक
सुघर हो जीवन में वह मान!—
स्वर्ग शोभा थी समरस पूर्ण
चाँद का भू ने लिया कलंक
पूर्णतम किया उसे रच प्राण
धरा को सदा स्वर्ग के अंक!

ग्राम भू ज्योत्स्ना का सौन्दर्य
अभी अक्षुण्ण भावना पूत
निभृत पथ सरित सरों के तीर
विचरतीं अप्सरियाँ स्वर्दूत!
उतरते अब भी स्वप्न सदेह
हरित वन स्तरों के उस पार,
बुद्धि दंशित नगरों का क्षुद्र
नहीं प्रतिदिन का मित संसार!

पूर्णिमा का यह जनप्रिय पर्व—
भजना संयोजित हो नव्य
हर रैन रज मे छन कर मौन
बिखरती हो जन भू पर भव्य!
प्रीति सौन्दर्य ज्योति आनंद
अमर हो जीवन में निर्बंध
सवर्णित होरे घर गिर दे—
रश्मियों के सुख में स्वच्छंद!

[illegible] पत

शील संतुलन शांति सौजन्य
आंतरिक ऐक्य बहिर्गत साम्य,
सँजोए वे जीवन परिवेश
समर्पण सुख था जन को काम्य!
बाँटते युवक पुष्प कलि गुच्छ
युवतियाँ पहनातीं मृदु हार,
कुसुम के वलय हाथ में बाँध
परस्पर देते वे उपहार!

मनाता रूप रंग का पर्व
गंध मुकुलों में खिल उद्यान
युवक युवती उठाते खिल
तृप्ति से भर रंगों में प्राण!
बिठा मित्र छवि के प्रिय प्रतिमान
मनोरंजक कर उनसे बात
भाव रेखा स्वप्नों में बाँध
मधुरिमा को देते मृदु मात!

नृत्य गीतों के वे जन मोद
मनाते रस संयम मिल छात्र
नाट्य प्रहसन रच कर सविक्षेप
दिखाते रंगभूमि पर पात्र!
सुभग क्रीड़ा वन में एकत्र
केन्द्र करता आमोद अमोघ
खिलाड़ी दिखा मनोज्ञ वेश
जनों का करते मनोविनोद!

अनिर्वचनीय सुख आनंद
सतत बहता प्राणों में मुक्त
देह संज्ञा शोभा सुख लीन
भाव रस का अति सूक्ष्म प्रयुक्त!
लहरियों से मिल लहरें लोल
लौटतीं भर सीमा लावण्य—
प्राण सुषमा का था चिर पर्व
हृदय तन्मय भू जीवन धन्य!

कुसुम मसि लहर किरण के साथ
नाचते युवति युवक मधु-भार,
रूप रस की पूरी कर साध
विरचते कला पुत्र सुकुमार!
रंग वस्त्रों में सज प्रिय देह
गंध कुसुमों से कर शृंगार
प्रेरणाओं को कर रस मूर्त
मुग्ध करते खग मृग परिवार!

विचर उपवन में छाया छाँह
यामिनी का करते उपभोग
मिटी का वहाँ प्रेमी दग्ध
मिला नागर को प्रिय सलाप!
कुंज में से जा उसको मौन
पकड़ सादर उसका प्रिय हाथ
कहा उसने भी तुमको ज्ञात
सदा रानी तुम मन में साथ!

कहूँ क्या छिपी न तुमसे बात
शिविर में मैं एकाकी प्राण
जानता यहाँ मर्ममय प्रेम
भूलता मन न तुम्हारा ध्यान!
शिविर में उस बिता निज याम
कहा हँस मावे करुणा स्पर्श
धर्म्य हो स्निग्ध व्यक्तिगत प्रेम
सदा सच का यह कभी न भय!

सूक्ष्म यदि स्थूल ग्राम का राग
हुआ हा मानव हृदय विराग
व्यक्तिगत प्रेम कभी अनिवार्य
महा था नित्य प्रणयोद्गार!
केन्द्र जो यदि हो उर
उसी में हो सारा परिवार
प्रीति ... उर का मर्म
... कर सकती तुम्हें ... !

सखी हम एक प्राण दो देह
तुम्हारी प्रशंसिका वह नित्य
प्रतीक्षा में रत छिपा न भेद
सहज होंगे दोनों कृतकृत्य !
रहा शंकर सुन क्षण भर मौन
किया उसके मन ने स्वीकार,
प्रीति का उर में कोमल स्थान
और वह हर सकती उर भार !

कहा शंकर ने तुम हो स्वप्न
सत्य हो संभव सहृदय प्रीति
किन्तु हरि मैया का अनुराग
तुम्हारे मन की गोपन भीति !
वहिन भाई का दुर्लभ प्रेम
केन्द्र में सफल तुम्हारी नीति
पूर्णतर किन्तु सुहृद का प्रेम
प्रेम स्तुति नहीं मधुर रस गीति !

खिली वह भाव मग्न कुछ काल
नम्र हो बोली — मुझे प्रतीति
पुरुष स्त्री उर का हित सौहार्द
प्रेम की विकसित सार्थक रीति !
स्नेह का देती तुमको हाथ
सकें मैं खोल मुक्त उर द्वार,
अतल निःसीम प्रणय पाथोधि
सुहृद स्त्री पुरुष कर सकें पार !

प्रणय की अस्वीकृति से मग्न
भावना में शंकर की रुद्ध
बँध गई थी श्री की प्रिय मूर्ति —
मुक्त उर पुन हो गया शुद्ध !
हृदय से निकली सुख की साँस
हट गया अंतर मन का भार,
छा गया प्राणों का आगार
क्षितिज में भर नवीन विस्तार !

पलट शंकर ने देखा मुग्ध
सामने प्रीति खड़ी थी स्तब्ध
दग्ध उस दीप शिखा का ऊर्ध्व
ज्योति बन हुई उस उपलब्ध!
दृष्टि के मौन स्पर्श से मात्र
छूट गया दुविधा का तम भार,—
खिली बोली हँस बाला प्रीति
सिन्धु में बनो मुकुल पतवार!

दग्ध क्षण भर पवित्र सौन्दर्य
गया शंकर अपनी सुधि भूल
गुहा स्वप्ना का सम गवाक्ष
निकल सा गया हृदय का शूल!
वासना का बरसा ऐश्वर्य
भाव विस्मृत कर मन के द्वार
देह की सीमाओं का लाँघ
प्रेम का स्वर्ग हुआ साकार!

उगा बह रहा प्रीति का वेग
कभी न रुका था उस पर ध्यान
रूप के शोभा रस में लीन
प्रेम शशि उदय हुआ अम्लान!
अधर पुट से माणिक रस पात्र
नयन में सीमाहर खुमार—
पीन स्तन पर सकता झुक
रूप में था समुद्र का ज्वार!

कल्पित निर्मम पर शुद्ध
सुनहरी कल्पना अभिराम
दिगन्त पर्वत पवन सब मुग्ध
स्नेह आभा में बँध निष्काम!
आलिंगित अनिंद्य मन्थन स्पन्द
स्वप्न धारा से स्नेही स्पन्द?
यौवन विस्तार स्वर्गी स्वच्छन्द—
न अमर स्नेह पर दावानल!

रमा द्वार

चाह चमक अंतर की बात
विहँस कहता वंशी स्वर शांत
ग्राम के युवति युवक थे बंधु,
सभी जिज्ञासु, शिशिशु नितांत!
गोपियाँ सुर बालाएँ पूर्व
भावना जीती रही विदेह,
नयी चेतना आज गतिशील
देह गेही जो निःसंदेह!

धरा जीवन से विमुख विरक्त
पारलौकिक था वह उच्छ्वास
चेतना का एकांगी भूत
समझियाँ देता जिसकी रास!
सर्वगत भू जीवन अनुरक्त
उतरता मन में नया प्रकाश
गोपियों सा जो तन्मय मुक्त —
पूर्ण इंद्रियमय प्रेम विकास!

निरर्थक स्वर विहीन संगीत
इंद्रियाँ ही ईश्वर की द्वार,
स्वर्ग रच सका न जिसको बाँध
धरा पर करता वह अभिसार!
बहाता चंद्र अमृत रस बाढ़
मुग्ध रहता न सिन्धुसुख ज्वार
वीचि उर में सुलगी उठ ज्वाल
दूर निःसीम नहीं — उस पार!

राग भावना द्वेष विष मुक्त
सहज विचरे जन भू पर आज
हँसे तारापथ सा सौमेय
मर्त्य मिति में स्त्री पुरुष समाज!
श्याम घन में आभो के दीप्त
इंद्रधनु स्मित हो सित अनुराग
स्वर्ग देवे सी धोवें धाम
धरा का अतुल अखंड सुहाग!

अभी प्रारंभिक युग ये सत्य
चेतना से हो जन संयुक्त
धरा पर जीवन हो चरितार्थ
प्राण मन के बंधन से मुक्त!
अखिल मानव जीवन का सत्य
मनुज के सिर से मिटे कलंक
सत्य हो अमृत तत्व से पूर्ण
स्वर्ग बिखर भू पर निःशंक!

उमड़ती मेरे मन में शुभ्र
भाव प्रेरणा पूर्णिमा ज्वार
महत् उनका जीवन दायित्व
स्वर्ग ही भू-जीवन सिद्धांत!
भुवन हित हो संचालित कर्म
प्रेम रत हृदय सत्य अभिराम
धरा जीवन मन का संस्कार —
यही भावी मानव का धर्म!

अमृत आनंद तत्व का मर्म
शुभ्र प्रतिपल होगी रस वृष्टि
उत्सवी उमड़ी होगी लीन
अखिल जीवन अवनि में सृष्टि!
पुरुष शक्ति शांति से हों नर नारि
धरा मूर्त्यों से सुभग अनन्य
न हो ज्यों राग भावना शुद्धि
रहेगी जन भू नारद अनन्य!

मर्यादित मन से मुक्त और
तत्व का भरने में संयम
सभी दे सही प्रेम सहित
जीवन कवि वाणी का पथ!
और कुछ दम भी ये प्राण
जिन्हें प्रभु मनन मन्त्र स्वर
निखिल व अमर के दृढ़ पंथ —
सबै का करने न्याय उदय!

गंगा द्वार

स्फटिक का हो उज्ज्वल चिद् सौध
जहाँ करती हो शांति निवास —
चंद्रिका के पग में निःसीम
भावना करती मुक्त विलास !
पंख खोले नव राग मराल
उड़ रहे हों अनंत में लीन —
चेतना देश काल में शुभ
विचरती हो बाधा विहीन !

स्वप्न शोभा मंदिर हो धीर
प्रेम की स्थापित भीतर मूर्ति
भारती गा निःस्वर आनंद
स्वर्ग सुख की कर भू पर पूर्ति —
विमोहित राका का निःशब्द
सुकवि उर को देता आभास —
कौमुदी का विदेह सौन्दर्य
न बँधता रूप शब्द के पाश !

सूक्ष्म सौरभ सी मुक्त अनाम
ग्रहण कर सके न जिसको घ्राण
बहिर्नयनों के लिए अदृश्य
पुष्प सित शतदल सी अम्लान !
मृदुल छवि मल्लिका सी अस्पृश्य
गीति लय सी निःस्वर, अवाच्य
नाद सी परा प्रकृति की स्रोत
पुरुष के विस्मय सी वह भव्य !

नीलिमा हँसती थी निर्वाक
चाँदनी फैली थी विस्तब्ध
साधते सागर भीतर पैठ —
मग्न कवि वचनों से निःस्तब्ध !
देवता था अनंत अनिमेष —
चेतना था रहस्यमय स्निग्ध
चाँदनी का पा अंत स्पर्श
सत्य क्या ? कहता मन संदिग्ध !

दिशाएँ लगता सीमा मुक्त
दिवस रोमों से स्मित नदात
काल रथ स्तंभित चक्र विहीन
शांति करतल सा नभ का छत्र !
ज्योति अंकुरित अपरिमित नील
मग्न हो शाश्वत गुह्य अगाध
खिले मन जीवन स्तर पर मूर्त
विचरता धरती पर निर्बाध !

श्याम फूलों की भारी बाँह
मालती की लिपटी थी बेल
उतर आया नभ में ही चाँद
सलिल में छिप छिप करते खेल !
चाँदनी में आता सुकुमार
राग हर्षित सा हरसिंगार
तारिकाओं सी नभ से छूट
बूँद कलि झरती भू अभिसार !

शरद ऋतु का था अंत समीप
वृष्टि से धुला ताप का भार
शीत का सूक्ष्म स्निग्ध स्पर्श सजग
अगम गुण का करता संचार !
प्यार से भरा गुनगुना शीत
गुनगुना गूँजे क्षितिज के पार –
प्रकृति का शोभा स्वप्निल रूप
भावना का करता शृंगार !

राग कामना भर मानव की मूक
धरा स्वर्ग का भरे रम्य परितापें
जीवन मन हों चिन्मय औ संयुक्त
भेद भेद हों दूषण मल हटाएँ !
ज्यों सूक्ष्म भावों के अन्तर
भरे रंगिन भू पर फिर स्वर्ण प्रकाश
इन्द्र धनुषों की शोभा में पूर्ण
मनुज आत्मा का हो अभय विराग !

रम्या दार

द्वन्द्व

शिशिर झरते जन मन के पात
शुष्क जब प्रसव वट का ठूँठ
ह्रास युग का छाया घन धुंध
सत्य के मुख को ढाँपे झूठ!
विश्व विघटन युगांत का ध्वांत
सजग सक्रिय निश्चेतन शक्ति
स्वर्ण मधु से भू मन सम्मिश्र
जीर्ण जग के प्रति नव अनुरक्ति!

असत् सत् की पर्याय रस श्रेणि
असत् ही में सत् का अधिवास –
सत्य था भ्रम जो आज असत्य
जगत जीवन रहस्य इतिहास।
समापन प्राय पुरातन युग
क्षितिज तम से छन नव्य प्रकाश
निकष पर स्वर्ण रेख सा शुभ्र –
विहँसता – भू चेतना विकास!

आंतरिक बढ़ती जब बहु भ्रांति
विश्व पट परिवर्तन अनिवार्य –
गुप्त शक्तियाँ अचित् में व्याप
अगोचर में करती निज कार्य!
प्रगति पथ में जग के प्रति रोध
सहायक होती अप्रत्यक्ष
परीक्षा में होता उत्तीर्ण
जगत् पर सत्–जो विधि का लक्ष्य!

बसें सहृदय गंगा के तीर
समांतर देखें संस्था धीर,
वास निरवधि, विपुला धन भूमि
यहाँ सब के हित निश्चित ठौर!
केन्द्र स्पर्धा में मठ को दीप
दिया माधो गुरु ने मठ रूप
शांति आश्रम मठ बहु विस्तार
धर्म का भू पर कीर्ति स्तूप!

शांति में विश्व मोहिनी शक्ति
शांति के देशों में बहु पथ
राजनीतिक गति विधि हो धर्म
शांति इस युग में सर्व समर्थ!
शांति आश्रम मुमुक्षु यम द्वार
सिखाते जहाँ अष्ट विधि योग
ब्रह्मचारी बटुमात्र छात्र
साधते तरुणी करुणा योग!

साधना का था युग सोपान
विरल तरुणी करते का मूल
सधा साम्या में जो एकाग्र
चित्त का रखते साधक पूत!
सूक्ष्म संस्कारों का मन स्थूल
बीज पदलिप्सों से पर शून्य
बना संयम की धूनी शुष्क
राग को करते थे निर्मूल!

प्रात गायें कर गंगा स्नान
स्निग्ध कर संध्या, जप तप ध्यान
हवन के मंत्र धूम से सिक्त
वे मंत्रों का रम्य गान!
भारत गुरु मठा में संलग्न—
बन्धु बहु दूर आ हों प्रत्युत्तर
पंथ के गाँवों हम उर बल
दिये मन को भर सागर धन!

सर्प भ्रम भंगुर भव में स्थित
मोह माटी के तन का छोड़
पकड़ गुरु ब्रह्म ज्ञान की रज्जु
जगत की माया से मुँह मोड़ –
ग्रहण कर दुर्लभ मानव योनि
तोड़ कारण जन्मांतर पाश
मुक्त हो सका न जो हत जीव
नियत उस काम ग्रास का नाश !

नित्य गुरु देते सद् उपदेश
अहिंसा सत्य सनातन धर्म –
न चींटी पर पड़ जाए पाँव
जीव रक्षा जग में सत्कर्म !
खिलाते जो मछली को चून
खिला चींटी को करते दान
दया ममता की कर के वृद्धि
स्वर्ग मे पाते उत्तम स्थान !

धर्म का तत्व गुहा में लीन
महाजन बना गए जो पंथ
उसी पर चलने में कल्याण
बताते सभी शास्त्र सद्ग्रंथ !
बटुक का हो चरित्र निर्माण
युवक का ब्रह्मचर्य हो ध्येय
वृद्ध का चतुर्धर्ममय रूप
मनुज का चतुराश्रम में श्रेय !

द्विजों के हित बन ज्ञान प्रकाश
शूद्र हित रच पद सेवाचार,
क्षात्र हित शौर्य वैश्य हित वित्त
हुई भगवद् करुणा साकार !
न हिन्दू संस्कृति का उपमान
कहीं जगती में मिलता अन्य
मनुस्मृति में कह अंतिम शब्द
कर गए मनु धरती को धन्य !

क्या कहते सद्गुरु ध्यानस्थ
कभी हो उठते गुरु दृग मूँद
श्याम सहसा हो जाती स्वच्छ
टपक पड़ती आँसू की बूँद।
मुग्ध श्रोतागण पर तत्काल
गहन पड़ता एकान्त प्रभाव
धन्य प्रभु-कहते गुरु प्रवृत्तिस्थ
न तुमसे मुझको तनिक दुराव।

नवाते मन श्रद्धा स भाव
विनय गुरु देते आशीर्वाद
पूछते कुशल सुभाव मार्ग
मिटाते सर्व जनित अवसाद।
पाप सब तृष्णा-जनमें दुःख
मूल में जग के जड़ अज्ञान
न जब तक हुआ न तनिक निवृत्ति
न जब तक मन में सम्यक ज्ञान।

न जब तक हो निर्धूम विराग
प्रखर होगी न ज्ञान की आग
ज्ञान ही सत्य ज्ञान ही ब्रह्म
गहे सद् ज्ञान मूल हित त्याग।
जगत मेला जग में फिर मीत
पूर्व कर्मों का करने भोग
निरन्तर व मोह चक्र में घूम
साधना-नियम विधि [illegible]।

बताते [illegible] साधु सत
[illegible] मन पुरुषोत्तम [illegible] नीड़
जहाँ निर्मल बीतद् धन पाव
वहाँ सम की बन सौरभ भाट।
प्रवासी [illegible] जग के बीच
सर्व सु [illegible] का [illegible]
निर्विघ्न [illegible] मुक्ति
[illegible] पूर्ण [illegible]।

[illegible] दत्त

गूँजता जहाँ अनाहत नाद
जहाँ प्रिय की नगरी का द्वार,
भटकना मूढ़ निशा में व्यर्थ
मूढ़ नर का प्रिय घर उस पार!
जहाँ कुछ नहीं किसी का प्राप्य
सभी को जाना प्रिय के देश
स्वयं तू काट शीश कर भेंट —
प्रेम का यह निर्मम संदेश!

नित्य फूलों से रच शृंगार
सँजोती फूलों की तप सेज
सहेजता सुख दुख मान ममत्व —
भेजने प्रिय के योग्य सहेज!
प्रतीक्षा में जग कर अनिमेष
प्राण की पकड़ ऊर्ध्वमुख डोर
अपोहियाँ कर चक्रों की पार
सतत बढ़ता प्रभु मंदिर ओर!

सत्य गूँगे के गुड़ का स्वाद
मनुज का वह आध्यात्मिक बाद
व्यक्ति जब भव माया वश ग्राह,
मुक्ति का दृढ़ वैराग्य उपाय!
जानते अंतर्यामी मर्म
वही भीतर के साक्षी मौन
कर्म जब कर होवे संन्यस्त
तभी जानोगे कर्त्ता कौन?

स्त्रियों को देते गुरु उपदेश
पतिव्रत धर्म सृष्टि का सार,
उसी से संभव लोक समृद्धि
वही निःश्रेयस का आधार!
नहीं नारी स्वतंत्रता योग्य
धर्म बल होता उससे क्षीण
पिता माता का घर वह छोड़
रहे पति गृह के सतत अधीन!

कठिन भू पर विधवा का धर्म
त्याग जप तप, संयम उपवास
नित्य परिश्रम सेवा में लीन
रहे वह जग से विमुख उदास !
देह सुख फूलों की पर सेज
क्षणिक इंद्रियाँ नरक दुख द्वार
उसे रखनी निज कुल की लाज
अंग साहस धँसार शृंगार !

विसदृश मिश्रण से युग युग —
धर्म का परंपरागत पक्ष
मानव — कर्मों में स्वाधीन
कुकर्मों बाम् जाता में दक्ष ! —
चेतना तत्व हुआ चुका गुप्त
धर्म का छिलका भर अब शेष
पोषते भक्तों को निःसार
मध्य युग से पकड़े था देश !

जगत का कलसा माया जाल
धरा जीवन प्रति बड़ा विरक्ति
मृत्यु परलोकवास से त्रस्त
रही जन में न प्रेरणा शक्ति !
समागति रूढ़ि रीति स दृढ़
स्वर्ग सुख के प्रति अर्जित कर्म
जगत म ईश्वर को कर भिन्न
बना संयम निषेध गति धर्म !

पलायन दैन्य निराशा ग्रस्त
रहा वह पार पुण्य संलग्न
समाजात्मक विगत हत दृष्टि
नियति, विधि पूर्व जन्म में मग्न !
समानस्तरी दैवाधीन
स्वार्थहीन न रहा वह संघ
व्यक्ति केंद्रित बद्ध मुक्ति विचार
मान निश्चित विराग का अंत !

कला हार

हृदय स्पंदन अध्यात्म प्रकाश
हुआ मत वादों से आच्छन्न
पक्ष पीड़ित मति रुद्ध समाज
रहा कुंठित संकीर्ण विपन्न !
बने शासन सर्वोपरि साध्य —
जीर्ण परिपाटी नियम विधान
व्यक्ति को अमर बेल सा चूस
मतों के फैले जटिल वितान !

बताता धर्मों का इतिहास
असंभव उनका पुनरुत्थान
मनुजता को वे किए विभक्त
खड़े कर मंच रूढ़ि व्यवधान !
जो गया शब्दों में दब सत्य
रिक्त पिंजर वे — बन निष्प्राण
भयानक केंचुल से मति शून्य —
कर गया जीवन प्रगति प्रयाण !

फटक धर्मों की भूसी जीर्ण
मुक्त कर बीज स्वरूप प्रकाश
मनुज संस्कृति में उसको सम्य
संजोना — हो अनिवार्य विकास !
जगत को कर ईश्वर से मुक्त
स्वर्ग कर जन भू पर निर्माण
मनोजीवी को बनना पूर्ण
चेतना का कर पुनरुत्थान !

कल्पित अर्चन से हो मुक्त
छिन्न कर तर्कवाद का पाश
खींच अंतर का शाश्वत सत्य
उसे जन भू जीवन में ढाल —
स्थूल वैज्ञानिक युग को आज
पिला मन आध्यात्मिक पीयूष
मनुज को हर अहंता का ग्रास
नए युग का लाना प्रत्यूष !

चेतना हो फिर से गतिशील
खुलें अंतर्बाधा के द्वार,
बाह्य भौतिक आडंबर शून्य
सत्य का हो फिर से उद्धार!
वह मन के पापों से पूर्ण
हृदय में हो शाश्वत संचार,
पूर्ण आध्यात्मिक मानव जन्म
धरा पर ले — हर तम भ्रम भार!

व्यक्ति की मुक्ति पूर्णता व्यर्थ
जगत यदि बंधन ग्रस्त अपूर्ण
सर्व के संग ही संभव श्रेय
सर्व ही में अभिव्यंजित पूर्ण!
जगत के प्रति मिथ्या का भाव
जगत कर्ता का चिर अपमान
मानव जीवन ही में प्रभु मूर्त
प्यार कर्मों ही में कल्याण!

इंद्रिय के पथ से उन्मुक्त
चेतना करती विरत विहार,
और, दर्शन पिंजर में बद्ध
न उड़ पाता मन तम के पार!
विगत वैराग्यवाद ने घेर
लिया जग ईश्वर का अधिकार
पारलौकिक जीवन का ग्रहण
सृष्टि मुख पर आसुरी प्रहार!

पुरोहित पंडे हो स्वार्थांध
ग्रंथ विश्वासों का बुन जाल
नरक में जग का गए ढकेल
हम को अंधकार में डाल!
पुण्य पाखंडों की कर सृष्टि
धर्म के ये नामी बटमार
बेच खा गए धर्म का सार
गये कर श्रम बाह व्यापार!

[illegible] द्वार

छोड़ कर आगम जीवन-स्रोत
गए जन वन को ले संन्यास
हिला सामाजिकता की नींव
जगत् जीवन का कह आभास!
घोर दारिद्र्य मनों में व्याप्त
सिखा निष्क्रम निष्क्रिय अभ्यास
बना हत जन भू को निःशक्त
मोक्ष से बुझा मृषा की प्यास!

घृणा ईर्ष्या स्पर्धा प्रतिशोध
किए सब पत भू को आक्रांत
गरजते विध्वंसक अणु अस्त्र
भीत जग मन रण भय उद्भ्रांत!
भरा हो मानवीय-सा ध्वंस
यही जन सम्मुख अब परिणाम
विगत अंतर्विरोध से मुक्त
सत्य का करना नव निर्माण!

शांति आश्रम के शीलाचार्य
इंगितों ही से करते बात
जानते सब के मन का भेद—
लोक भर में था यह विख्यात!
दीर्घ तन आनन ओप की मूर्ति
मात्र उच्चारण करते ओम्,
सदा भक्तों से रहते दूर
कमंडलु जल से करते होम!

स्त्रियों की गोदी पर धर शीश
स्तन्य करते थे भक्तगण पान
सहज रह काम भाव में लीन—
भक्त महिमा जानें भगवान!
कुटी में बैठे ही चुपचाप
कभी हो जाते अंतर्धान—
भक्त मानस की उर्वर भूमि
रहस्यों के बुनती आख्यान!

हिरन पाले थे मोती एक
बँधा रहता कुटीर के पास
नित्य मार्जन करते थे पूत
विसात उसका पहिला ग्रास!
स्वयंपाकी थे — चारों धार
तृप्ति सूचक निज चितवन द्वार
बताते थे अपने ही आप
रहे मधु इतर जीव का पान!

वहाँ रहते बाबा हरिदास
नियम से रखते था उपवास
हथेली भर तिल खाकर नित्य
बुझाते तन की भूखप्यास!
धर्म साधन भर जग में हेतु,
नहीं वह साध्य पाप की भूल —
दूब का रस पीकर भी धन्य
बनी ही रहती यह नित स्थूल!

मनाते थे गीता सप्ताह
धर्म फल का निष्कामे त्याग
त्याग ही भुक्ति मुक्ति सोपान
त्याग ही देता पूर्ण विराग!
बताते पद्मासन में बैठ
फेर मन की दाढ़ी पर हाथ —
आत्मा माया जग में व्याप्त
न ले जाएगा पर कुछ साथ!

पार कर चौरासी पशु योनि
यहीं मिलती तब मानुष देह
भजन हरि का न किया तो व्यर्थ
जनम भर का — मन मधुर गेह!
कथा में गाता मुरली बोल
जगत में जाता हाथ पसार
यहीं भर जीवन का हरिनाम
जगत मात्र का मेरु प्रसार!

मध्य युग के मोटे आदर्श
न जिनका जीवन हित उपयोग
पराजय दुःख मिटाता पूर्ण —
भाव से सुनते भोले लोग!
सत्य को कर आत्मा से शून्य
वास में उसकी सूखी ठूँठ
टाँग उलटा — कहते यह ब्रह्म
चेतना का रस उससे चूस!

आरती करते मिल हरिदास
कांस्य के घंटे पर दे चोट,
नाचते कीर्तन था उन्मत्त
छिपा मुख को घूँघट की ओट!
उतरता उन पर पत्नी भाव
भक्त जन करते जय जयकार,
स्त्रियों में छिप जाते वे बैठ
पुरुष तन को कर अस्वीकार!

सिखाते जग को आत्म सुधार
यहाँ हँसमुख थी आत्मानंद
भूमिया विजया प्रतिदिन छान
मुसकुराते रहते मृदु मंद! —
स्वर्ग देवी देवों के भेद
एक घटवासी आत्मा राम
उन्हीं की सेवा में हो पूर्ण
मनुज जीवन अर्पित निष्काम!

उन्हीं की इच्छा से अविराम
अष्ट धनुस भर चलती श्वास
उन्हीं से तन इंद्रिय मन प्राण
कर्म निज करते बिना प्रयास!
इड़ा पिंगला नाड़ियाँ शोध
सुषुम्ना में ले जाकर प्राण
अगोचर जो मन बुद्धि अतीत
साधु जन करते उसका ध्यान!

मेरु से लिपटी भुजगाकार
गुप्त अहि सी कुंडलिनी शक्ति,
उसी को जागृत कर पुरुषार्थ
प्राप्त कर सकता जग में व्यक्ति।
षट् कमलों के स्तर कर पार
सुलभ होता नर को शिव लोक
जहाँ से सहस्रार की ज्योति
चित्त को रखती शांत प्रकाश।

सिखाते आसन प्राणायाम
यम नियम सूक्ष्म धारणा ध्यान
कर्म कौशल प्रिय आत्मानंद
सभी मन से पाते सम्मान!
शांति आश्रम का झाड़ बुहार
स्वच्छ रखते कर स्वयं प्रबंध
प्राप्त कर के गुरु का विश्वास
पागते छात्रों पे नित रंग!

और भी थे अनेक व्यक्तित्व
शांति आश्रम ही के अनुरूप
सिद्ध आत्मा अलिप्त स्वच्छन्द
छुआ सकता न जिन्हें भव कूप!
परम संतोषी नर स्थित प्रज्ञ
जनों को देते नित उपदेश
गुप्त जीवन निष्क्रिय निर्द्वन्द्व
कामनाप्रद अपाप मृदु वश!

पूछते उनको यदा मूड
भेंट कर धन भक्ति धन धान्य
गेरुआ वस्त्र साधु का वेश
देश में बहुत सर्व जन मान्य!
वहाँ पंडित थे शास्त्र प्रवीण
पढ़ाते षड्दर्शन षड्वंग
तर्क करते बहु कूट विचार
परिचर्चाएँ निष्कामी रंग!

रमा दास

सीखते न्याय सूत्र अनुरूप
शिष्य षोडश पदार्थ का ज्ञान
तर्क को है सर्वोपरि स्थान
रटाते पुन–क्षमा चार प्रमाण!
दर्शनों का राजा यह न्याय
विवेचन पद्धति सूक्ष्म नितांत
घोषणा कर कहते आचार्य–
न्याय के थिर अकाट्य सिद्धांत!

बताते नागार्जुन दिङ्नाग
कुतर्कों का रच बौद्धिक जाल
सत्य के प्रांगण में किस भांति
खड़े कर गए सम्म कंकाल!
जिन्हें वाचस्पति मिश्र अनंत
प्रखर निज तर्कों से कर चूर्ण
न्याय के गौरव को अक्षुण्ण
पुन कर गए प्रतिष्ठित पूर्ण!

विलक्षण वैशेषिक का बोध
दे गए हमें महर्षि कणाद
जिन्होंने सर्व प्रथम कर शोध
किया परमाणुवाद का नाद!
तत्व अन्वेषण में तल्लीन
न रहता उन्हें उदर का ध्यान
खेत में पड़े धान कण बीन
तृप्त करते क्षुधाग्नि बलवान!

तपस्या से हो हर ने तुष्ट
दिया उनको उलूक बन ज्ञान
कहाया मुनि दर्शन औलूक्य–
दृष्टि करती नित अनुसंधान!
न्याय में अंतर्जगत् प्रमाण
बहिर्जग वैशेषिक का क्षेत्र
वस्तु का मौलिक सत्य विशेष
देख पाए शुभ ऋषि के नेत्र!

सावयव जग के निखिल पदार्थ
निरवयव अविनश्वर परमाणु
सृष्टि या लय का आदि न अंत —
न कुछ भी इस बात में स्थाणु।
मुख्यतः षट् पदार्थ या भाव
अनन्तर माना पदार्थ अभाव
मानते ऋषि दो मुख्य प्रमाण —
पढ़ाते गुरु षट् भेद वाद।

सूक्ष्मतम जड़ परमाणु स्वतन्त्र
निखिल जड़ जग विकास संयोग
दुःखमय मान रूप का विश्व
न सम्भव यहाँ नित्य सुख भोग।
मुक्ति में संसृति के प्रयाण
मोक्षकारण ध्रुव तात्त्विक ज्ञान
सहज पूरक वैशेषिक न्याय —
तत्त्व दर्शन के दृढ़ सोपान।

सांख्य क्या? सम्यक् तत्त्व ज्ञान
न्याय वैशेषिक से प्राचीन
कपिल का एक प्रथित सिद्धान्त
प्रकृति या एक पर आधीन।
अविद्या आत्मा का है बाध
जगाता मन में सांख्य विवेक
सत्त्व रज तम से त्रिगुणातीत
शुद्ध आत्मा की ले दृढ़ टेक।

द्वैत मूलक अविच्छिन्न सांख्य
मूल प्रकृति पुरुष दो तत्त्व
प्रकृति जड़ — सत् रज तम गुण साम्य
पुरुष चेतन — निर्गुण निःसत्त्व।
विगत न सत् तत्त्व का जन्म
सत् न नष्ट — व्यक्त सम व्यक्त
सत्य में कारण आविर्भाव
समय में कार्य का भव भाव।

उत्पत्ती वस्तु न वस्तु स्वरूप
रूप परिवर्तन ही परिणाम
कार्य रहता कारण में लीन —
यही सत्कार्यवाद अभिराम।
सांख्य नास्तिक — आस्तिक वेदांत
बौद्ध दर्शन का यह आधार,
लौह चुंबक का हो संबंध
सांख्य का अंध पंगु परिवार।

पतंजलि ऋषि को कोटि प्रणाम
कर गए योग सूत्र निर्माण
आत्म दर्पण में दर्शन बिम्ब
भर गए — शिव समाधिगत धाम।
छीन कर ब्रह्म जीव के भेद
ईश में होगा तद्गत लीन —
योग का यही परात्पर लक्ष्य
ब्रह्म चित् सिन्धु, जीव चित् मीन।

वृत्तियों का कर पूर्ण निरोध
पंचविध क्लेशों से हो मुक्त
सिद्ध कर संप्रज्ञात समाधि
चित्त होता ईश्वर से युक्त।
दुःखमय जड़ असार संसार
जीव हित मोक्ष द्वार शुभ योग
प्राप्त हो जो ईश्वर अभिमान
सहज ही छूटें भव के रोग।

स्वयं बन जाता भगवत् रूप
यही जीवात्मा का वर श्रेय
सभी अष्टांगों से सन्नद्ध
प्राप्त करता परमोत्तम ध्येय।
विकल्पों संकल्पों से शून्य
चित्त से लगा अभेद समाधि
सुगम कर परम सत्य सान्निध्य
न रहती दुःख दर्द की व्याधि।

मुक्त आत्मा ही ज्ञाता नित्य
चित्त जड़ ज्ञेय विकृतन प्राय,
ज्ञान से वस्तु असत् प्रति भिन्न
नहीं यह मन-कल्पना मात्र!
मुक्त विजयी योगी ही सिद्ध
अष्ट सिद्धियाँ सहज कर प्राप्त
मुक्ति पथ का नेता अवलंब
कहाता पूर्णकाम वह आप्त!

धन्य जैमिनि मीमांसाकार
वस्तुवादी थी जिनकी दृष्टि
धर्म विधि का दे गए स्वरूप
नित्य शब्दार्थ नित्य यह सृष्टि!
धर्म जिज्ञासा द्वारा विधान
वेद का अपौरुषेय प्रमाण
प्राप्त हो परमानंद महान्
कर्म का हो जो सदनुष्ठान!

वेद भगवान् पुरुष के निःश्वास
नित्य व स्वतः प्रमाण अनादि
न ऋषि दृष्टिता-प्रवक्ता मात्र -
महा पुरुष व गम्य न आदि!
पूर्व कारण अदृष्ट की शक्ति
सभी जिसमें पदार्थ संभूत
कर्म संचय का सूत्र अपूर्व
अशुभ शुभ का फल जिसमें स्यूत!

निरतिशय सुख का कारण स्वर्ग
यज्ञ ही स्वर्ग प्राप्ति का द्वार
स्वर्ग न भी निःश्रेयस श्रेष्ठ
बनें निष्काम कर्म आधार!
जगत् संबंध विषय का नाश
रूप इंद्रिय विषयों के पार
सर्व बंधन संचय कर क्षीण
मुक्त होगी आत्मा अविकार!

क्रमशः

आकार
षड्दर्शन से मायास्त
जगत् जीवन का कर संहार !!
हुआ भारत मानस विभ्रांत
सीख जीवन निषेध का मंत्र
जगत् से ईश्वर को कर मान्य
पारलौकिक दृढ़ साधन तंत्र !

अस्मिता का करते अभिषेक
सभी कुछ कर देते बहु दान
स्वत्व निज संचय स हो शून्य
सहृद आकर्षित करते ध्यान !
लोग समझाया क्या मे भाई
निछावर करते उस पर प्राण
बन गए माधो गुरु रहस्य
नित्य जन सुनते सब आख्यान !

बरस बीत गई इधर अज्ञात
सखा बंगी कवि के प्रति दृष्टि
सुनाते गुरु धुन उभय मीत
प्रेम की कर प्रतिपद रस वृष्टि !
बन गया था प्रसिद्ध अपवाद
सखा के प्रति गुरु का अनुराग
सुरक्षित था बंगी निर्वैर,
अथक था गुरु का निर्मम त्याग !

गए कविता के प्रति नव स्नेह
प्रेरणा करते उन्हें प्रदान
उगाकर मर्म भूमि में शूल
पदंश कर उसकी अपमान !
कूट आध्यात्मिकता से दीप्त
शिखर पर था तब गुरु का स्थान
प्रोज्ज्वल रस शैली में उन्मुक्त
मर्मान्तर स्वर शिल्प विधान !

शुभ्र परिवेष्टन उनको घेर
ध्यान सा रखता बाह्य भार
प्रकाशित करता था अनजान
दर्शकों को कर मोह विभार !
महिमा युग अस्मिता प्रतीक
अर्पित कर न दे [illegible]
शाश्वत रस सब मंत्र निपुण
छिपा गुरु सब उस स्वप्न !

रमा हार

काष्ठ उर में रहती ज्यों अग्नि
प्रकृति में था माधो के द्वेष
प्रीति का मुखड़ा पहन उदात्त
हृदय में पाते गोपन क्लेश ।
न मौका जग में उनका मूल्य
मिला जग से न कीर्ति धन नाम
ऐंठ सी गई अहंता रज्जु
उपेक्षित देख अमर सब काम ।

छीन कर उनका कीर्ति किरीट
घूमता वंशी बन सम्राट्
सालता उर में निष्ठुर शूल
क्षुद्र बन जाता सिमट विराट् ।
कुसुम वंशी पर दुख से आर्त
समझता उसको निज अपराध
पति साधक कवि का कारुण्य
द्वेष गुरु का था निर्दय व्याध ।

जानते गुरु वंशी का भेद –
किया उसको प्रभु ने स्वीकार
अस्मिता उसकी अर्पित शून्य
दंत विष रहित प्राण फूत्कार ।
घात कर सकने में असमर्थ
द्वेष के सम्मुख नत मद हीन
अपत का वह न गई रत बीच
चेतना ज्योति स्पर्श में लीन ।

स्पर्श मिलते वंशी को दीप्त
स्वत बँध जाता मन का ध्यान
स्वर्ण क्षण –हुए तद्गताकार
महत् सौन्दर्य ज्योति में प्राण ।
रहा जाने कितने दिन मुग्ध
आत्म मज्जित वह हर्ष निमग्न
प्रीति आनंद सिन्धु में दीप्त –
डूबती स्मृति अंत संमग्न ।

हो गया विस्मृत अपना आप
भरी सोगी गत स्मृति अनजान
कल्पना चित्रा में दृग मूर्त
बाह्य जीवन का आया भान!
दीखता अपने चारों ओर
विश्व के भीतर ज्योतिर्विराट
शांत मन निस्तरंग प्राणद
बना वह जाने क्या था निःस्व!

एक दिन छाया सा [illegible] विरत
गया पीछे — कवि हुआ मगन
नाभि से उगा ऊर्ध्वमुख भार •
गीत उल्लसित हुआ उर बस!
निरख द्वारों अभिनव अनुभूति
संचमित हुआ शक्ति का राग
अमित मधवत् करुणा का स्वर्ग
नहीं पर परिमित यह प्रभु ध्यान!

उगा जब शुभ्र नाभि का गन्ध
मिला कवि का अंतर आधार,
लगा — वह रीढ़ मग्न मन स्थित
गिर पड़ेगा भू पर हत भार!
भार क्या था वह ज्योतिम मद
गुणा स्तर पर स्तर जिस पर ध्यान
उभरने चढ़ने को प्रच्छन्न
चलना का हो मति आसान!

[illegible] में कवि व ज्योति स्नात
[illegible] [illegible] [illegible] अंतिम —
[illegible] में उसका मन मधुकर
[illegible] [illegible] ज्योतित [illegible]!
अविरत् भी [illegible] [illegible] अंकित
[illegible] [illegible] [illegible] उस पर गुरु
[illegible] का [illegible] कवि निज बस
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] सिन्धु!

रमा दत्त

शक्तियाँ रहती बहु प्रच्छन्न
महत् मन में—करते प्रभु कर्म
गुप्त स्वर करता सतत विरोध
सूक्ष्म चेतना का जो शुभ धर्म।
गूढ़ रखते उनसे सम्बन्ध
अचेतन उपचेतन के देश
विटप पशु खग उनको चुपचाप
निखिल का देते पथ संदेश।

सूक्ष्म रखते गुरु भगवद्दृष्टि
योगियों का पा सत् सहवास
उग्र वे अंध मन संस्कार
सत्य को ढँक लेता अभ्यास।
हृदय में बसता क्रुद्ध संघर्ष
दंभ से जाती सम्मति हार,
अधोमुख मानिस शक्ति प्रभुत्व
कर लिया उर ने अंगीकार।

मोहते गुरु रख मत छद्म वेश
असत् का होता गूढ़ स्वभाव
सरल था वंशी सहृदय प्राण
न मन में था भय द्वेष दुराव।
आत्म तन्मयता कवि की शक्ति
ध्यान छल कौशल से कर भंग
पिलाते उसे अचित् तम घूँट
कपट कर गुरु वंशी के संग।
विविध रच सम्मोहन के रूप
चेतना में करते गुरु दंभ
अचेतन तम का करे आह्वान
मनोदुग करते कवि के अंध।
द्विधा होता बँट भाव शरीर
कभी तम बनता कभी प्रकाश
शक्तियों का अकरण संघर्ष
चित्त को करता शून्य हताश।

कल्पना का कुमता सान्दय
भाव धरते सुरूप आकार,
भूतल में पाते रस प्रिय प्राण
मनो जग करता हाहाकार!
दीप सौन्दय बोध रस तरव
सृजन करते मानो नव काव्य
हृदय निज मानस भर को दीप
सँवारे हरीतिमा अमाप्य!

पकड़ ज्यों परजीवी नभ बेल
विटप पर छा हरती रस प्राण
दीन बंशी की संतत् ज्योति
छेड़ते गुरु मम युग के गान!
सर्व जन में करते सम्मान
विदेह, बंशी पर बरसा स्नेह,
आज भी गुरु की कला न मुए —
धन्य का हा भी क्या सन्देह!

किसी से नहीं मुझे अनुराग
साधना मुझको अपना कार्य
सहज पशु करे आत्म बलिदान —
नहीं था बस प्रयाग अनिवार्य!
तपक सिर के ऊपर से बाल
गिराएँ कर दन मद ध्वस्त
दर्प के अट्टहास से पूर्ण
प्राण मन हो उठते संत्रस्त!

धूम मेरे बंसी का सत्व
शाप धीरतर वेग में भीख
महाि तुम में कर पुण्य पन्थ —
घोर मेरे वह तम कर भीख!
शिखर पर होते मद के पात
न पड़ जाते या मेरे हाथ
घुटकाते वह पाते पाप —
छोड़ चरणा से सुन्दर गाथ!

रमा हार

न मैं धर्मात्मा या धर्मज्ञ
उभर हित भू पर बहुरूप वेश
एक क्षण – अंधकार का वेश
एक क्षण जीवन का उन्मेष !
देखता मैं दोनों ही रूप
प्रथम तम से नित विविध प्रकाश
शक्ति पूजा की जय सर्वत्र
सत्य पूजा का सर्व विनाश !

गिरा जो पंक गर्त में घोर
उसे सद्भावों से क्या काम ?
कहूँ जब तुमको भी निर्मूल
तभी सार्थक मेरा शुभ नाम !
भरेगा मां का खप्पर रिक्त
तुम्हारा कर बलिदान धर्मज्ञ
स्वगत कहते करते मन भीत
क्रूर, धार्मिक मानो सर्वज्ञ !

मित्रता का मरता कवि मुग्ध
स्नेह करुणा विगलित स्वभाव
किन्तु गुरु थे निर्मम स्वार्थांध
दुस्तर था उनका विषम प्रभाव !
बताते जग को शून्य श्मशान
मनुज को पशु, जड़ सब निष्प्राण
तीक्ष्ण स्थिर दृप्त दृष्टि से देख
विवश हर लेते कवि का ज्ञान !

चमक गुरु के भावों की क्रूर
शूल सी चुभती उर में घोर
दशा बंदी की थी दयनीय
न रह सकता वह सजग कठोर !
चूक इतने कि सके वह ताड़
मन्त्र-तम की दारुण चट्टान
उसे गढ़ कर उसके शुभ मात्र
आरम्भ बस करना था निर्माण !

भूत पशुवत् सह अधिक प्रयोग
हुआ योगी का मन भी प्रेत
छिन्न कर भाव जगत् संबंध
शक्ति उसने की निज समवेत।
प्रार्थना करता वह दिन रात
न उस पर पड़े अनिष्ट प्रभाव
प्रबल था माया का अभिचार
विफल होता न सहज ही दाँव।

दृष्टि सम्मुख खुल पाटल पत्र
ज्योति का बन जाता नव स्रोत
सूक्ष्म शोभा का मांसल स्पर्श
हृदय का हर लेता मद मोद।
गर्व गुरु के प्रभाव से मुक्त
दीप्त होते योगी के प्राण
व्यथा विष दंश तमस का भूल
फूलता मनोगुहा में ध्यान।

देख योगी का सजग सतर्क
पैंतरा बदला गुरु ने गूढ़
गोष्ठियों में होती जब भेंट
प्राण रण पर होते आरूढ़।
शिविर की निशा में संलग्न
जनों में करते मृषा प्रचार—
पतित योगी चरित्र बन हीन
स्त्रियों पर करता वह व्यभिचार।

समागम से कर जन मन स्पर्श
उठे सद्भाव वृद्ध विरुद्ध
मिलित की उस विरोधी शक्ति
जगत सुकर्मों का मार्ग निरुद्ध।
गूढ़ स्वर में कहते ममकार—
बना जन पथ मरण का द्वार
हमें धर वज्र कठिन संकल्प
रोकना भू का अत्याचार।

न मुझ सा द्रष्टा पथ में और
न माधव से बढ़ बुधि सम्मान
सत्य की जिसके उर में आग
उसे भाता निज पर अभिमान!
वीर मोम्मा वसुधा–विख्यात
जगत जीवन मगन संघर्ष
जूझते छूटेंगे ये प्राण
न इसमें मुझको हर्ष विमर्ष!

तुरत कर अट्टहास स स्वच्छ–
स्वगत कहते वह, हँस मृदु मंद
न मैं कवि या तत्त्वज्ञ–निमित्त
रिक्त मुरली मैं, तुम स्वर छंद!
धर्म क्या? ज्ञात–न मुझे प्रवृत्ति
जानता क्या अधर्म–न निवृत्ति
हृदय में स्थित तुम–यथा नियुक्त
कर्म करता–न ध्येय निष्पत्ति!

कभी माओ गुरु प्रकृति प्रसन्न
पूर्व कवियों के कर गुण गान
मुक्त उद्धृत कर स्मृति से श्लोक
सुनाते युवकों को आख्यान!–
गिने छिगुनी पर कवि गुरु श्रेष्ठ
पुरा कवि गणना में अभिराम
न वैसा मिला महाकवि अन्य
पड़ा तब से अनामिका नाम!

बताते हँस सुखी फटकार
हुआ घट खर्पर यथा विख्यात–
बना कवि घँस मूढ़ कुम्हार
हलाहल पी कुप में अज्ञात!
प्रथित–कवि कालिदास कर प्राप्त
वरद वाणी का अमर प्रसाद
बने भूतल के अतिथि अजान
रात्रि को हरते श्रम अवसाद!

गुप्त रख वाणी का वरदान
पूछने पर सखी के बात
कहा कवि ने यह माहि विष कूट
तुम औषधि — मैं रोगी जान!
प्रतिपद पद थे फिर निज मग्न
कर्णगा स्त्री स गुप्त-विपन्न
लिया सुन्दर ने यह विष पान
जगा कवि बन प्रतिमा सपन्न!

सुना उपमा तु कालिदासस्य?
बताते गुरु — पंडित थे दीन
भोज में पाते मुक्त दान
उन्होंने गढ़े छंद पर तीन! —
पके जामुन फल सरिता तीर
तरल जल में फल गिरे अनेक —
देख कर उन्हें न पाते मीन
क्यों नहीं? — सभी न पंक्ति टेक!

थाक कर बुद्धि गई जब हार
बैठ बुद्धि दम जाय निहार
चले थे भोज सभा की पार
मिले पथ में कवि गुरु साकार!
बताया कालिदास ने छन्द
सहज पंक्ति पर कर निर्माण —
नहीं पाते डर से फल मीन
जान थे मारक उनको जान!

हुए पंडित जी बड़े प्रसन्न
सुनाया भावपूर्ण का श्लोक
तीन पद थे जिसके सामान्य
पद — गुरु-पंडित का रोक —
कहा गुरु ने — कवि गुरु को छोड़
अन्य की सत्ता न यह परिणाम —
साम्य रस सृष्टि न बुद्धि विधान
करें सुखकर न रस व्यायाम!

कमला द्वार

कर्ण बलि स दानी थे भोज
एक कवि आया उनके द्वार,
नृपति को राज सभा में देख
वह बही नयनों से जल धार!
कहा राजा ने हो कस्मात्
बताएँ कविवर अपना क्लेश
छंद के उत्तम पदों में गूँथ
कहा कवि ने अपना उद्देश!

बेचने वाले की सुन हाँक—
साग लो साग! —चौंक अनजान
न अच्छी माँगे हठ वश साग
भूखी पत्नी उसके काम!
साधु तुम भार्या का अनुरोध
न सकता श्रीमन् कोई टाल
हृदय में छिपा दैन्य का शूल
आप ही सकते उसे निकाल!

स्तब्ध रह गए श्रवण कर भोज
मूर्त करुणा रस का आख्यान
कहा धिक काव्य रसिक नृप भोज
रहा न तुझे यथार्थ का ज्ञान!
काव्य में हो करुणा रस श्रेष्ठ
दैन्य-दुख भू जीवन अभिशाप
व्यथित कवि को दे अमित धन दान
हरा नृप ने उसका संताप!

सुनाते आत्म दर्प के साथ
भाट कवि का वैभव गुण गान—
कर्ण शिवि हरिश्चन्द्र की भाँति
याचकों को जो देते दान!
सभी स्वाहा कर सब संपत्ति
बने वह रिक्त कोष धन हीन
क्षुधा पीड़ित मन से संतुष्ट
कुटी में मरे रोग से क्षीण!

भाव में तीनों गुण थे साथ
अर्थ गौरव उपमा लालित्य
दुह गया हो प्रतिमा का वक्ष
कवि सब का अपूर्व साहित्य!
काव्य में भी कवि का व्यक्तित्व
जगत में रखता मूल्य महान्
हैं वे विभव भोग में भाव
त्याग में अमर दधीचि समान!

किंवदंती कहते गुरु धन्य —
सुकवि भारवि जब कला प्रवीण
किरातार्जुनीय में थे व्यस्त
अर्थ गौरव भरने में लीन!
भीम कृष्णा को करते शांत
युधिष्ठिर उचित रहे थे सोच,
हुआ सहसा कवि उर में दीप्त
अर्थ पद—हर भावना को सोच!

शीघ्र कुछ करना बिना विचार
विपद् को देना है आह्वान! —
सोच कर सहसा पद आवेश
सोच कर पुलकित थे कवि प्राण!
भारत युग में थे जब वह मग्न
सुनाई दी तब पिता गंभीर —
रुष्ट सुन कर पत्नी के वाक्य
हो उठा कवि का चित्त अधीर! —

काव्य रचने में तुम संलग्न
कुछ न सोचे वत्स धीर
न घर में बचा अन्न कण शेष
कारण तुम थे मौन भीरु?
भला आशीष से हो दुख रूप
क्यों करता मैं अभी प्रयत्न
मैं हूँ न पर उदर रस रसाल
देख माता सुत मणि रत्न!

सेठि चल दिया सिन्धु के पार
खोजने फिर व्यवसाय नवीन
न लौटा गए वर्ष पर वर्ष
हुई थी सन्तति गर्भ में लीन!
किन्तु सोलह वर्षों के बाद
वणिक जब लौटा अपने देश
तल्प पर देखा घर में एक
युवक सोया रम्य सैनिक वेश!

सेठ का सूना जब धन कोष
बच गया था वह किसी प्रकार,
पुन संचित कर बहु संपत्ति
मुदित लौटा था वह निज द्वार!
दिया उसने स्त्री को धिक्कार
पर सकी धैर्य न वह कुछ वर्ष
और मैंने विदेश में घूम
व्यर्थ ही सहा अर्थ संघर्ष!

युवक पर तीव्र म्यान से खड्ग
हुआ उद्यत वह करने घात
भित्ति पर टँगा अर्थ का श्लोक
रुक गई उस पर दृष्टि हठात्!
'शीघ्र कुछ करना बिना विचार
विपद् को देना मुख आह्वान!' —
ठिठक रुक गया वणिक् का हाथ
जगा द्रुत उसका आत्मज्ञान!

किया संवरण सेठि ने क्रोध
दिया सैनिक के मुख पर ध्यान —
सती पत्नी का आनन देख
लिया अपने सुत को पहचान!
हुआ कुछ ऐसा तब संयोग
सामने आया कवि निज श्लोक
झट बोला — कवि मित्र अमूल्य
हरे बहु मर्म लोक का शोक!

कथा प्रचलित — थी मदन मिश्र
बने मीमांसक वर उन्मेष
यही पीछे बन कवि भवभूति
भर गए करुणा रस अभिषेक !
किन्तु तब कालिदास कवि नाम
राज सभा पर थे आरूढ़
मान्यता पा न सके भवभूति
राज गति होती भाव विमूढ़ !

किया विद्वज्जन ने भी व्यंग्य
आप दार्शनिक प्रवर आचार्य
काव्य मर्मज्ञ भी हों रस सिद्ध
न बुधवर के हित यह अनिवार्य !
किन्तु उत्तर कवि हुए न क्षुब्ध
उन्हें निज कृति पर था विश्वास
गम्य आशय से विमुख विरक्त
गए सीधे जनता के पास !

बना रेती पर जन हित मंच
काष्ठ कलशों बांसों को जोड़ —
चयन कर जनगण से निज पात्र
नागरिक संघ से ले होड़ —
स्वयं निर्देशन कर कुछ काम
करा ग्रामीणों को अभ्यास —
उतारा उत्तर चरित — स्वरूप
दिया निज प्रतिभा रंग विलास !

हुआ आरम्भ तीसरा दृश्य
मंच पर ज्यों ही भाव समास
दग्ध छाया सीता की मूर्ति
विरह मूर्छा में आये राम !
सभी सुन उनका करुण पुकार
हुआ जन हृदय व्यथा से भग्न
उठा करुणा सर्ग-नदि में ज्वार
हुए सब आप्लावित रस मग्न !

क्रमशः

सृजन श्रम कवि का हुआ कृतार्थ
दर्शकों से सुन जय जयकार
निखिल उज्जयिनी भर में शीघ्र
हुआ शतमुख कवि कीर्ति प्रसार !
यशोवर्मा नृप कृति पर मुग्ध
मिले कवि से ले मणि उपहार,
किन्तु भूपति की पुष्कल भेंट
नहीं की जन कवि ने स्वीकार !

मधुर स्वर में बोले भवभूति —
लोक कवि जन मन का सम्राट्
उसे राज्याश्रय बंधन तुच्छ
कल्पना उसकी मुक्त विराट् !
लोक रंजन में जो निष्काम
उसी शिल्पी की कला कृतार्थ
स्वर्ण पिंजर में सुखी न रंच
हरित वन में गा पिक चरितार्थ !

प्रकृति से गुरु निर्भय स्वच्छंद
हँसे कुछ सोच ठहाका मार, —
कहा कवियों की स्पर्धा ठीक
भूप कवि स्पर्धा में क्या सार ?
गीत गोविन्द भजन गा लोग
नाचते पुर पथ में दिन रात
संग नृप उर में जागा द्वेष
तुच्छ कवि भूपति से विख्यात !

प्राज्ञ पूजे जाते सर्वत्र —
भूपति के मन में उठा विचार —
गीत गोविन्द काव्य रच भव्य
प्रजा में उसका किया प्रचार !
न भाते जन को नृप के गीत
किया राजा ने शक्ति प्रयोग
राज भय से रवि के प्रतिकूल
गए नीरस पद गाते लोग !

भंग कर राजाज्ञा प्रतिबंध
हाथ में ले मुखरित मंजीर,
भक्त जयदेव स्वयं निज छंद
नित्य गाते प्रभु भक्ति अधीर।
हुए राजा यह सुन अति क्रुद्ध
कहा कवि को करके भयभीत
राज्य अनुशासन को तुम भूल
भ्रष्ट गाते क्यों वर्जित गीत?

नम्र स्वर में बोला जयदेव
कौन है श्रेष्ठ कौन पद भ्रष्ट—
चलें मंदिर प्रांगण में देव
स्वयं प्रभु बतला देंगे स्पष्ट।
चले विस्मित नृप कवि के साथ
भरा था भक्त जनों से पथ
देव गृह सीढ़ी पर चुपचाप
रख दिए कवि ने दोनों ग्रंथ।

जगा जगदीश हुई जय नाद
मूर्ति ने हट कर मृदु मुस्कान
गीत गोविन्द उठा कर चूम
लिया सब भक्त जना भंग मान।
गिरा कवि के चरणों पर भूप
भूल हुई अपनी कर स्वीकार—
न उपने गाव दल से गीत,
हृदय भी दे नमन संसार।

मुगल दुर्गम युग का इतिहास
भारती पुत्रों को ललकार
भाव घाटी कृपा पर गुरु
छोड़ जाता है निर्मम छन्द!
मन्दिर माथा पे मात्र नवीन
नाम दुख दंपगार के गूंथ
उठा कर दी मा दे जिन का
जिसे हो भाषा का निर्मल!

रम्भा हार

प्रथमतम प्राण शक्ति के पुंज —
गई जग जगा ज्ञान का स्पर्श —
भाव तन्मय थे युग कवि प्राण
समर्पण था जीवन आदर्श !
ज्ञात थी उसे असद् की शक्ति
मार मरना जिसका प्रारब्ध
सत्य को कभी बना निज त्राण
असत् में रहना — कर जग स्तब्ध !

नए युग का वही प्रतिरूप
चेतना का फहरा नव केतु —
पार करता भू मन का सिन्धु
लोक मंगल हित रच दृढ़ सेतु !
आसता सम्मुख दारुण युद्ध
खड़ा प्रतिरोधी दल दुर्धर्ष
ज्योति को दे नव जीवन मूल्य
क्षीण होता तम का संघर्ष !

अक्षमता गत भू जीवन मूल्य
अवतरित होता नव चैतन्य
देवता नभी संतृप्ति
शाश्वत मानव था उसे अनन्य !
ज्योति था अंधकार के सम
विविध स्त्री नर थे व्यक्ति प्रतीक
स्वस्थ थे नव प्रकाश के साथ
पीटते अधिक पुरानी लीक !

भिन्न मति बौद्धिक थे युग भ्रांत
कलाविद कुंठित अहमारूढ़
शून्य थे मूढ़ स्वार्थ अनुरक्त
सर्व साधारण धाम विमूढ़ !
धनी शोषक — निष्ठुर सातंक
दलित शोषित — सहस्रफन मूक
धर्म प्रिय ढोंगी जीवन भीरु
विश्व विज्ञानपर मस्त प्रबुद्ध !

स्का था भू मन का भूकंप
स्तब्ध प्रम ज्वालामुखी प्रचंड
क्षितिज मुख धूमावृत घनघोर
काम धामे गरमुए फोड़ड।
भयानक बाह्य पटी का रूप
विपर्यय भरता भीतर शांत
उदित होता नव चिन्मणि-सूर्य
गहनतम लगता जीवन प्रांत।

केन्द्र में दग्ध चतना मध्य
हो रही जीवन में साकार—
द्वैप दुग्ध म माया मे दग्ध
जीर्ण मृत्या का कर उद्धार
ममात्म मन का न द्रु पद
धर्म वंचित मर को ममकार
कर्म विधि का फिर किया प्रचार
माम कर प्रथम धम पाचार।

धर्म का पचास दिग् विस्तीर्ण
समाते जिसमें बहु विधि कर्म—
जगत में फिरते ही मर रत्न
जानते धर्म तत्व का मर्म।—
बन गए बुद्ध करुणा अवतार
पूजने पागम पीछे मोग
कथा भावक बन घन जन पूज
भोगते सभी सुलभ संभाग।

चेतना विघटन म जब मुक्त
हैन होता पनीति नम प्रस्त्र
पंगु निश्चित निरीह निरनाथ
मूर्छित दूबे जाते प्यासा!
न जिनग ज्ञा का दह भर हानि
उठे द गमवरना उत्तर
पुण्य करे मन महान्न मुनि
न मनिन का—मुग हो के प्यार।

प्रबलतम प्राण शक्ति के पुंज —
गई बन जगा ज्ञान का स्पर्श —
भाव संयम से युग कवि प्राण
समर्पण का जीवन आदर्श !
ज्ञात थी उसे असत् की शक्ति
मार मरना जिसका प्रारब्ध
सत्य को शर्त बना निज स्थान
असत् में रहना — कर अब लभ्य !

नए युग का गांधी प्रतिरूप
चेतना का प्रहरी नव केतु —
पार करता भू मन का सिन्धु
लोक मानस हित रच महत सेतु !
जागता सम्मुख वास्तव युद्ध
खड़ा प्रतिरोधी तम दुर्धर्ष
ज्योति को दे नव जीवन मूल्य
लीन होगा तम का संघर्ष !

अचलता गत भू जीवन वृत्त
अवतरित होता नव चैतन्य
देवता गांधी संतवृत्ति
बाह्य मानव था उसे नगण्य !
ज्योति या अंधकार के रूप
विविध स्त्री नर दो शक्ति प्रतीक
स्वस्थ थे नव प्रकाश के साथ
पीटते पथिक पुरानी लीक !

भिन्न मति बौद्धिक थे युग भ्रात
कलाविद् कुंठित अहमारूढ़
क्षुब्ध थे क्षुद्र स्वार्थ अनुरक्त
सर्व साधारण आत्म विमूढ़ !
धनी शोषक — निष्ठुर, मार्यक
दमित शोषित — सहृदयजन मूढ़
धर्म - प्रिय ढोंगी जीवन भीरु
विरत चिन्तनपर अल्प प्रबुद्ध !

क्या था भू मन का भूकंप
स्वप्न घन ज्वालामुखी प्रचंड
क्षितिज मुख धूमावृत घनघोर,
काल बाँधे गरमृत् कोदंड!
भयानक बाह्य पटी का रूप
विपर्यय घटता भीतर शांत
उदित होता नव चिन्मणि- सूर्य
गहनतम ममता जीवन ध्वांत!

केन्द्र में देख चेतना मग्न
हो रही जीवन में साकार—
द्वेष दुख न माया में लग्न
जीर्ण मृत्यु का कर उद्धार
सनातन मत का ले दृढ़ पक्ष
धर्म वंचित नर को नमस्कार
कर्म विधि का फिर किया प्रचार
मान कर प्रथम धर्म आधार!

धर्म का प्रथम दिग् विस्तीर्ण
समाते जिसमें बहु विधि कर्म—
जगत में विरले ही नर रत्न
जानते धर्म तत्व का मर्म!—
बन गए गुरु करुणा अवतार
घूमते पागल पीछे लोग
कथा नाटक बन कर जन गूढ़
भोगते सभी सुगम संयोग!

चेतना विघटन में जब मूढ़
देख हारा अनीति तम व्यस्त
पंगु निश्चिर निरीह निरुपाय
मूर्तियाँ पूरे जाते ध्वस्त!
न विनस जग का सब भय हानि
उन्हें दे सदवेदना उदार
गुरु करते जन महत्त्व अंत
न नीतियाँ का—गुरु का दे प्यार!

प्रबलतम प्राण शक्ति के पुंज —
मर्त्य मन बना ज्ञान का स्पर्श —
भाव तन्मय थे युग कवि प्राण
समर्पण था जीवन आदर्श !
ज्ञात थी उस असत् की शक्ति
मार मरना जिसका प्रारब्ध
सत्य को शनैः बना निज स्थान
जगत् में रहना — कर श्रम लब्ध !

नए युग का गांधी प्रतिरूप
चेतना का प्रहरी नव केतु —
पार करता भू मन का सिन्धु
लोक मंगल हित रच श्रुत सेतु !
जागता सम्मुख दारुण युद्ध
महा प्रतिरोधी दस दुर्धर्ष
ज्योति को दे नव जीवन मूल्य
लीन होगा तम का संघर्ष !

बरसता गत भू जीवन मृत
अवतरित होता नव चैतन्य
देखता गांधी संतत् सि
बाह्य मानव था उस नगण्य !
ज्योति या अंधकार के रूप
विविध स्त्री नर थे शक्ति प्रतीक
स्वस्थ थे नव प्रकाश के साथ
पीटते अधिक पुरानी लीक !

भिन्न मति बौद्धिक थे युग भ्रांत
कलाविद कुंठित अहम्मानक
पुण्य थे क्षुद्र स्वार्थ अनुरक्त
सर्व साधारण आत्म-विमुख !
धनी शासक — निष्ठुर सातंक
दलित शोषित — सहमस्तम मूढ
धर्म प्रिय ढोंगी जीवन भीरु
विषम भिन्नमपर मन्य प्रबुद्ध !

रुका था भू मन का भूकंप
स्तब्ध घन ज्वालामुखी प्रचंड
क्षितिज धुम धूमावृत घनघोर
काल थामे शरभृत् कोदंड!
भयानक बाह्य पटी का रूप
विपर्यय घटता भीतर शांत
उदित होता नव चिन्मणि सूर्य
महत्तम जगता जीवन प्रांत!

केन्द्र में देख पतन गम्य
हो रही जीवन में साकार —
द्वेष दुख भ माया में रुग्ण
जीर्ण मूल्यों का कर उद्धार,
सनातन मत का ले शुभ पक्ष
धर्म वंचित नर का सत्कार
कर्म विधि का फिर किया प्रचार
धाम कर प्रथम धर्म आधार!

धर्म का पथस रिपु विस्तीर्ण
समाने जिसमें बहु विधि कर्म —
जगत में विरले ही नर रत्न
जानते धर्म तत्व का मर्म! —
बन गए गुरु करुणा अवतार
घूमते पागल पीछे लोग
स्वयं साधक बन पट मन मूढ़
भोगते सभी सुगम संयोग!

वासना विघटन न जब मूढ़
देह होता धर्मीनि तन ध्वस्त
पंगु निष्क्रिय निरीह निष्काम
मुर्दा सा पूजे जाते व्यस्त!
न विनय जग को पद भर हानि
उन्हें है सदकामना उपार,
गुरु करते जब सद्गुण बलि
न शोषित का — गुरु को है प्यार!

कोटि मुख से गत युग अवरोध
लभ्य प्रतिनिधि युग कवि को प्राप्त
बढ़ाता उसकी अंत शक्ति —
वायु मंडल में गत युग व्याप्त !
एक ही था तब का पढ़ तत्व
इधर मासो में स्पर्धा वृत्ति
उधर जन मन में पुंजीभूत
यहाँ कुंठित कटु ईर्ष्या भित्ति !

वर्णों को करते गुरु संकेत
न बंशी को है सूझी स्याम
मुक्त बहुजन मुख चर्चित गूढ़
स्वयं बन जाती सत्य प्रमाण !
आधुनिक युग की यह अनुभूति
शक्ति ही सत्य संघ ही प्राण
महत्मति मुझे न यह युग बोध
धृष्टता सही न छूटे प्राण !

ठहाका लगा घूमते शिष्य
समक्ष उच्छृंखलता को शक्ति
वृद्धि का देते गुरु अभिमान
सत्य के प्रति है ढीठ विरक्ति !
अस्मिता परिधि अस्मिता केन्द्र
अस्मिता से प्रेरित हो ज्ञान —
सत्य मुख कर लेता आच्छन्न
शुष्क तथ्यों का अनुसंधान !

सूक्ष्म बंशी था अंतर्मुक्त
मनोगति बहिर्जगत् प्रति रुद्ध
आत्मस्थित शिक्षा ज्ञान से शून्य
काम के प्रति था गूढ़ प्रबुद्ध !
व्यस्त रखती अंतर अनुभूति
न है पाता सब के मन मोम
द्वेष रखते उससे प्रच्छन्न
हीनता स्पर्धी कुंठित लाग !

सतत उन पर कर कटु आक्षेप
क्षुद्र जन पाते क्षण संतोष,
अस्त मति बनते रत मर्मज्ञ
घृणा में दब शाश्वत पाप !
भाव के नीच उसके नित्य
युवक रखते उद्धत षड्यंत्र
छोड़ दी थी उसने यम श्रुति
शठ प्रति शाठ्य का कट मंत्र !

सभी ने छेड़ा जब अपराध
सौंप ने सौंपा दुख बरदान
मुझे फिर लौटा दे विष दंड
आत्म रक्षा के हित भगवान् !
रज्जु अहि भ्रम से बनी मुक्त
स्वय देकर भी निज बलिदान
प्रार्थना करता प्रभु से मौन –
अमृत बन जाए सुप विष पान !

राग हो द्वेष मुक्त – चरितार्थ
प्रेम ही आदि – पूजा का मंत्र –
तिमिर उसको था ज्योति प्रभाव
भाव ही शाश्वत सत्य अनंत !
न द्वन्द्वों में सीमित आगम
न जीवन जन्म मृत्यु की हार
परात्पर रम मन द्वन्द्वातीत
स्वर्ग में सुख न उसका मोह !

प्रतिदिन जन पद नगर प्रभाति
धाम ग्राम में पुण्य महान
मुखरित गुरुद्वार जन धाम
प्रेम मिल करते कीर्तन गान !
दया कर बरसी धूसर नीर
तीर पर लगा भला सम्पूर्ण –
धवल पखी कर कट विभोर
स्वागत करित मंदिर विमान !

पर्व शोभा हित जन सँवार
स्त्रियाँ गातीं बजते करताल
बाँसुरी के संग ढोल मँजीर —
स्वरों में उर की मधा काम !
सुगँध वस्त्रों में लोक समूह
पुष्प बन सा चलता हँस झूम
दिशा कलरव से उठतीं गूँज
पथों पर चहल पहल कल धूम !

बने मधु फूस टाट के वास
तने बहु खेमे वेश्म वितान
झोपड़े कल्पवास मधाम
न तट पर तिल रखने को स्थान !
साधुओं के बहु रूप समाज
अखाड़ों पर फहराते केतु,
ऊँट हाथी नृप रथ गज बाज —
स्वर्ग के लिए धर्म ही सेतु !

पाँव पैदल चल कोसों पार
खिंचे आस्था बल पर जन प्राण
जगत के मलिन पंक से मुक्त
खोजते शांति मुक्ति कल्याण !
स्वर्ग के प्रहरी पड़े टूट
लूटते जन का तन धन धर्म
आस्था उन्हें अंध विश्वास
रूढ़ियों का पहले पड़ धर्म !

भागवत रामायण सप्ताह
मनाते जन कर जप तप ध्यान
भजन कीर्तन कर, व्रत उपवास
त्रिसंध्या कर गंगा में स्नान !
भावक भाषण देते बहु मंच
ब्रह्म क्या माया क्या संसार ?
स्वर्ग क्या पाप पुण्य अपवर्ग —
ज्ञान वैराग्य मोक्ष के द्वार !

भावना जन्म मृत्यु भव बंध
वासना जग-जीवन का पाश —
त्याग से बना स्वर्ग हित सेतु
विरति से कर तृष्णा का नाश
काम औ कर्म बंध कर दग्ध
मुक्ति का धाम भक्ति का द्वार
यम नियम तप संयम से शुद्ध
जीव होता भव सागर पार!

साधुओं के थे पंथ विचित्र
ब्रह्मचारी दंडी संन्यस्त
कनफटे गोरखपंथी शैव
अघोरी मूंड़े नागे मस्त!
मतमतांतर संप्रदाय में मग्न
यती योगी [illegible] अवधूत
धूर्त करते जन मन की साध
ढोंग धूनी भी सिद्ध भभूत!

भांग गांजा मद पी ध्यानस्थ
निम्न बहु प्राण क्रियाएं साध
दिखाते चमत्कार औ गुह्य
मूढ़ जन श्रद्धा भक्ति अगाध!
बताते मन की गोरख बात
देखकर संध्याभा के हाथ
सिद्धि रम है पर जो गो —
नवाता जन करुणा पर माथ!

मध्य युग के पंडित से जाग
यहां पाकर [illegible] शील - बन
रूढ़ि जर्जर जीवन संग्राम
भय प्यासा का आदर्श!
मूढ़ [illegible] भव व्याधि विमीत
विमुख जीवन से मोह विरक्त
स्वर्ग परलोकमुखी विधि बद्ध
मुस्काता में मर [illegible]! —

यहाँ जुट गत सदियों के प्रेत
मुग्ध सुनते मृतकों का नाद
दिव्य पा संयम की शम वृष्टि
स्मरण करते अतीत संवाद !
भूत के पुण्य पंक में डूब
लोक जीवन का कर बलिदान
बनाते स्वर्ग मोक्ष सोपान
नरक का कर भू पर आह्वान !

माघ का सिसकाता कर शीत
अस्थि पंजर कँपते तरु गात
कुहासे सा छाया भ्रम धूम
पाप से डरते पीले पात !
चीरती वन को तुहिन समीर
शिशिर भरती शतमुख सीत्कार,
स्वर्ग के दूत नदी में डूब
पुण्य मुख से करते धिक्कार !

राज्य प्रतिनिधि मेले में व्याप्त
व्यवस्था रखते कुशल प्रबंध
क्षेत्र जन की सुख सुविधा देख
बढ़ाता मानवीय संबंध !
स्वयं सेवक सेवा में व्यस्त
नम्रता से करते व्यवहार,
शांति आश्रम के मौन सदस्य
धर्म का करते मुक्त प्रचार !

शिविर के छात्र रात दिन घूम
स्वास्थ्य सुविधा का रखते ध्यान
रुग्ण पीड़ित के बन साहाय्य
सांत्वना करते सहज प्रदान !
समझते जिसको सम्यक् पात्र
उसी के मन को करते स्पर्श
मर्म हित देश काल अनुकूल
सामने रखते युग आदर्श !

कलात्मक छँटो सांस्कृतिक पर्व
विविध रंग मोद नृत्य गन गीत
रूढ़ियों का जड़ गुंठन खोल
सत्य की झाँकी दिया पुनीत—
मंच पर प्रस्तुत करते दृश्य
पुराणों से चुन प्रिय आख्यान
उन्हें गढ़ नवयुग के अनुरूप
जगा के छूते तन मन प्राण।

सिखाया बच्चा को देख सँभाल
युवतियाँ करतीं उनमें काम
मन्त्र था या यांत्रिक आरम्भ—
मानव जीवन के प्रति सौन्दर्य!
देख गत भू जीवन का वृत्त
भव्य के प्रति बढ़ता विश्वास
बनना ही था नव उन्मेष
मिटा सकता भू का तम त्रास!

मिरोद्वा में बँट गुरु के शिष्य
सभा में ढँकाते परिवार—
शिविर के संरक्षा छात्रा छात्र
बनाते सक्रिय चार विचार!
केन्द्र के प्रति कर पुष्पित पंथ
समस्यों का सुनते वे पास
सन्ध्या पर करते मार्थेर—
कोटि जन हो सुस्ता विश्व श्याम!

तरुण स्वर में कर व प्रतिवाद
डालते बातों में व्यवधान
सांस्कृतिक पर्वों को कर नष्ट
भेद कर दास्तान का ध्यान!
तूने युग करत व अनुपात
रोकना इनको अनाचार
संस्कार। का हो क्यों परिहार
पर्व गीतों में करे प्रचार!

जहाँ सद्धर्म अंध विश्वास,
सत्य यद्यपि वाणी वेद प्रमाण —
धर्म यद्यपि, वेदों का सुन नाम
भीरु जन मन होता भय म्लान !
नरक का दिखलाते वे त्रास
धर्म निन्दक का कर अपमान
धर्म क्या ? जान न पाते लोग
आर्य वाक्यों को सुन हत ज्ञान !

क्षुब्ध हरि शंकर ने आ साथ
किया गुरु से विनम्र अनुरोध —
धृष्ट शिष्यों को दें आदेश
वेद का करें न व्यर्थ विरोध !
हृदय में हो गुरु ने संतुष्ट
दिखाया बाहर झूठा क्रोध —
अरे, अब शांत करो दुष्क्रोध —
युवक अक्सर होते निर्बोध !

तृप्त नयनों में झलका स्नेह
कुशल मंत्री को पूछ प्रसन्न —
देख सहसा शंकर की ओर
रहे क्षण भर गुरु फिर अवसन्न !
कहा तुम समझदार बेजोड़
परिन्दों पशुओं की यह होड़ —
न जाने तुम हो किसकी ओर ? —
उठा गुरु हँस — नाक भौं मोड़ !

बुलाया बातृविलास प्रिय शिष्य
पठाया गुरु ने निज संदेश —
न दिखलाएँ मेले में छद्म
वैदिक कृत्यों के प्रति आवेश !
असत् सत् का अति सूक्ष्म विधान
कर्म फल करने पड़ते भोग
धर्म की होती निश्चित जीत
पाप का कृमि आत्मा का रोग !

मन

शीघ्र आऊँगा मैं उस ओर —
कहा गुरु ने कुछ सोच विचार —
केन्द्र का जानूँगा उद्देश्य
भेंट कर सभी से इस बार! —
न जाने दूँगा तुम्हें तथापि
बिना आश्रम का लिए प्रसाद
मँगाए गुरु ने फल मिष्ठान्न
खिलाया दोनों को आह्लाद!

केन्द्र की सीढ़ी पर हरि गात
डूबता गगा को रँग सूर्य
स्नान से चंचल पंकिल वर्ण
सलिल जल में कँपता वैदूर्य!
चमकती शकर उर में मौन
तीक्ष्ण गुरु शब्द रण की ओर
रच रहे थे गुरु भीषण चोट
दारुण मैत्री के तृण की ओर!

महाराष्ट्र से जब शिशिर निर्धूम
हुआ प्रारंभ नव ऋतु का गात
ताम्र तरु शिथिल हुआ हिम दग्ध
घ्राण रोमिल मृदु सौंधी वात!
गुनगुने मौमाखी न करत
गूँजता स्निग्ध नील मधु छत्र
हुआ नव आशा का संचार
प्रकृति जीवन में था सर्वत्र!

बिना सूचना एक दिन प्रात
केन्द्र में पहुँच गए चुपचाप
कुछ भक्तों का बस तुरंत
धुन लगे भीतर पावे भाव!
ताप में था गुरु का चिर शिष्य —
देख भक्तों को विस्मय-मौन
रह गया रह कोने स्नेहार्द्र —
जानते सभी था ... कौन?

खोल बंसी ने नेत्र तुरत
किया गुरु का स्वागत सत्कार,
खड़े हो कुशल प्रश्न हँस पूछ
बैठने की फिर की मनुहार।
खड़े ही रहे वहाँ गुरु स्वस्थ
कहा मुझको जाना तत्काल,
कभी से नहीं हुई थी भेंट
पा गया इससे समय निकाल।

कहो कैसे हो? — गत सप्ताह
दिया होगा हरि ने संदेश —
तुम्हें मित्र जी को मिलती शांति
अकेले घूम देखता क्लेश।
दीखते थे गुरु निःस्पृह, सौम्य
हुआ बंसी का मन आश्वस्त
कहा गुरु ने मुझको संतोष
केन्द्र में रहते अब तुम व्यस्त।

कभी पूछूँगा पा अवकाश
केन्द्र के जीवन का क्या ध्येय? —
बता अब मैं — तुम स्नेही मित्र
वही करना जिसमें हो श्रेय।
बरत फिर, बंसी का कर थाम
विदा होने का शिष्टाचार,
किया प्रेषित गुरु ने कवि चित्त
शिष्य को भेंटे इसी प्रकार।

आत्म विस्मृत कवि ने विधि मूढ़
मिलाया वाग्विलास से हाथ —
न्याय पर करता था जो क्रोध
जिसे लाए थे गुरु निज साथ।
साथ गुरु ने कुत्सित अभिचार
किया घर में मोहन आघात
लगा कवि को उसका वैराग्य
भ्रम सा टूट हुआ भू पात।

शिष्य का बना अपगय निमित्त
किया गुरु ने कवि पदम् ध्वस्त
ममम में माबृत हो तराम
हुआ प्रतिमा गति मडम मम्न।
पाती हो फिर मममण की शक्ति
मर्मभिद् बिद्ध मंत्र का मन
तब क्षण कवि का हुआ प्रतीत
ज्याति हो गई पिनष्ट ममस।

टाक ना हो मान की मग्न
मित्र के ममम्यम का ढेर
शिष्य का कवि बिनि के बिराग
बिमाता गुरु के – दगम भेद।
जिम क्रमे में जग की नाम
दिया उसको पनुगत में पूर्ण
मुधर कर स्वर बिराध का नीव
उगमता नामि कीर पम्पूर्ण।

पहम्मन मद ने जग का भाग
पन की गम्मति पशु विस्फोट –
पद मर्गत हो म्पर्धा द्वेष
बिरत रम मद पद का पाट।
पुष्पा बड़ी में ना प्रतिराध
जगे कर स्वर मर कर पनेक
रिप्ता में गम्मे निदान –
द्वेष का पुगगत मिग भेद।

विजय में शोज पतिमय नर
बिना बाले को गुरु शिष्य
पान कवि पंतम का निर्वाह
दीप्ता मरा मन्दर दास।
कल्पना का ममम्त को न्द
बात न्या बना बिग नम कर
दबुर पद्म पैग बगार
ममा मन में — पावन।

पटक कवि बंदी को पाताल
शिखर पर पहुँचे गुरु सोत्कर्ष
श्रेष्ठतम कृतियाँ को दे जन्म
बिताए कुछ हमत महर्ष !
गुप्त युग कवि उर का संघर्ष
न इसका साक्षी — बाह्य प्रमाण —
न दिखता मोहित जग का चाव
सत्य भी उठता हो बलिदान !

तर्क पंजर गुरु का व्यक्तित्व
भाव सुषमा से भरा पवित्र
चुरा बंदी की मानस कांति
चित्राए गुरु ने शुभ प्रिय चित्र !
दीप नासिका नयन भुज वक्ष —
मिटा कुंठित हिम दैन्य तुरत
किसी सूखी पतझर की डाल
हँस उठा मांसल रंग वसंत !

मनुज आत्मा के प्रति अक्षम्य
घोर पातक होता — अन्याय
वासना कवि न मुक्त जो भेद
असत् अथवा सत् का पर्याय !
सुकवि कहलाते चिद् निधि चोर
अविचाराचारी प्रतिभा सिद्ध
मनुजता का होना अपकार
गुरुवत् पूजे जाते सिद्ध !

आगत भग्न घाटा याम
कसकती उर में पीड़ा मूक
चित्त रहता विपण्ण उद्भ्रांत
चलता कवि स्वप्न को टूक !
विषम छाया रहता नैराश्य
न अब हँसने भाता उत्साह
मग्न हो गया ज्योति का सूर्य
हृदय पारावार अमद प्रवाह !

राग भय द्वेष काम मद क्रोध
देह पंजर का करते शोध
सिमट सा गया क्षितिज विस्तीर्ण
ऐंठ बन गया हृदय संकीर्ण।
चित्त पट में चमकता ममांत
ज्योति तम का दारुण संघर्ष
अनास्था अविश्वास अभिशप्त
बीतते गत वय पर वर्ष।

उचटती भय से निशि में नींद
सिमट जाते तन से तम श्याम
भीम कौओं के मँडरा मय
टूट पड़ते कवि पर विकराल।
खींचते खींच स्वप्न में काढ़
हड्डियों के भूखे कंकाल
छिपकली सी लगती निज देह
चौंक जग पड़ता वह तत्काल।

अद्रि में घुस ज्यों सरमा दिव्य
खोजती निष्पन्दन का भेद
तमस की गुहा योनि में पैठ
जगा कवि के मन में निर्वेद।
दूर था अब वह हृदय प्रयाग
कभी जिसमें कवि करता याग —
गुहा पर ऊपर से भगवान
बुलाता आ फिर कवि को पास।

दैव निर्मम गुरु ने निज मित्र
क्रूर क्षण में पा दिया प्रकम्प
निरख माया कर भर भय मुग्ध
साम्य का कठिन इसको गौर।
नाम गुरु कन्या में हो मुग्ध
देख कवि का निश्छल सुकुमार
ध्यान निमग्न मार का हार
कर दिया उस मृत्यु के पार।

देख युग कवि को वांछित-स्वप्न
द्रवित थे हुए चिन्मयानंद
तिमिर हर लिया मर्म से खींच—
बचा अंतर में सोया छंद !
स्फुरित सुरधनु किरणों का चक्र
उगा नयनों के सम्मुख घूम
सँवारा जिसने फिर कवि चित्त—
पंथ तम को प्रकाश में चूम !

कहाँ वह तम का कर उपयोग
वस्तु जग का अवगाह्य रूप
फटक कूड़े कचरे का ढेर
हुआ स्थिर, मन का विकसित रूप !
जगत था कृमि युग पंजर मात्र
मनुज मृत आदर्शों का कीर,
रूढ़ियों के पिंजर में बद्ध
प्राण पंखों से हीन अधीर !

गुहा में भू की सुप्त कवि ज्योति
जगत् का पी विषाक्त तम तोम
बनी युग चिन्तन से गंभीर
देख जीवन का क्षोभ विक्षोभ !
सोचती नरक योनि से पंथ
मनुज का हो कैसे उद्धार,
धरा पर रच नव जीवन स्वर्ग
मर्त्य उतरे तम सागर पार !

ज्योति के ऊर्ध्व शृंग से कूद
अचेतन का मथ कर तम कूप
परात्पर के—स्थित धी से दीप
विश्व में सदसत्मय जो रूप
जानने को था कवि उत्कंठ
विश्व राष्ट्रों के तंत्र विधान
मोह मंथन हित क्या महनीय
भेंट लाया भौतिक विज्ञान !

और यह था सुखद संयोग
निमंत्रण आया उनके पास —
समाधि से उठा लहर के हाथ
किया कवि का स्वागत सोल्लास।
गगन में खोल शब्द मति पंख
अतिथि को पहुँचाया उस पार —
हुई लय भू की मरकत कान्ति
नील का छू असीम विस्तार।
और हरि की संध्या का भार
किया जब वंशी ने प्रस्थान
दृगों में थे विस्मय मुग्ध अश्रु
मौन अधरों पर मृदु मुसकान।
सोचता उनका जीवन स्वप्न
मिले भू देशों में साकार —
एक ही भू मानव सर्वत्र
एक उनके उर में प्रसार।

रूस सचराचरमय विधि सृष्टि
दस दशकों का नव निर्माण
विश्व का अद्भुत श्री सौन्दर्य
हुए पुलकित सुन कवि के प्राण।
धन्य जन जीवन का ऐश्वर्य
महत् सामाजिक पुनरुत्थान —
क्या कवि अपने मुग्ध दृग मूँद
भर मन का सुख नव आह्वान।

लगा देखने वह भू संस्कृति स्वप्न
बँधे हों वर्तित ज्ञान विज्ञान
मन मदान्वित हो मानव शिव
बने न काम विधान और अवसान।
शिखर शृंग हिमाचल से भू स्वर्ग
रूपा रचना गंगा से साकार
हृदय सागर में उतरी जन भू गौर
गया पर्वतम से प्रवार का [illegible]

विज्ञान

चमम भास्वर, रहस्यमय नील
निरंतर निःस्वर मुक्त दिगंत —
पंख फैला निःस्पंद — विराट्
से रहा हो ब्रह्मांड समंत !
शून्य मुख का हिम गुंठन खोल
झाँकता मन ममता के पार, —
खेलने को प्रकाश गति पंख
माप पर उड़ता तन मधु भार !

कौन यह निराकार निःसीम
निरामय पुरुष व्याप्त सर्वत्र ?
तारकों के मणि कण से दीप्त
नील का शिर पर चमचम छत्र !
समीरण जीवित श्वासोच्छ्वास
सूर्य शशि जाग्रत् अनिमिष नेत्र
क्षितिज तट प्रेम बाहु परिरंभ
धरा पद पीठ — कर्म गति क्षेत्र !

व्योम क्या नाद ब्रह्म निर्बोध
सृजन लय में प्रसन्न तल्लीन ? —
तैरते जिसमें बहु चित् बिन्दु
महत् आनंद सिन्धु के मीन !
ज्योति पिंडों पर पग धर सिद्ध
नाचता कौन दिशा का वश ?
चेतना का रोमांचित नृत्य
देखता क्या शाश्वत अस्पष्ट !

नील कंचुक क्या मधुर प्रसून ?
भरा ऊषा का स्वर्ण पराग —
चन्द्र के रजत कमल से दीप्त
प्रकृति का या मुक्ताभ तड़ाग ?
तारकों से गुंफित निःशब्द
सुनहला या पुष्पित मधु चक्र ?
धूम्र वपु ऐरावत या मत्त
पीत शशि कला दंत द्युति वक्र !

साँझ के झरते पीले पात —
शिशिर दिन वन यह धूसर भग्न
तारिकाएँ वैभव स्मृति चिह्न
स्वर्ण युग का हो खँडहर भग्न !
नयन नीरव विश्राम अनिमेष —
क्षितिज पश्चिम भ्रू रेख अराम —
देखता जो सब सृष्टि रहस्य
छिपाए क्षण भर उर में श्वास !

उठा जब शनैः शरद गति याम
भंग कर गगन मौन गंभीर,
सिमटने लगी धरा छायाभ
बरस से खिसका क्षीण समीर !
गगन पुलकित गंगा पर शुभ्र
तारक गण उठे सरित लहर हार
परीसों से बच्चों के गुट
लगे गृह पथ पथ नगर प्रसार !

रजत हिम गिरि शृंगों की ओर
उड़ा हुआ विहग पवन् विमान
चाँदनी के से चीड़ शैल
निखरे शिर करतल पर हिमवान् !
तीर पर पर्वतिका के शुभ्र
चाँदनी की शोभा के केर
सहसा मकरंद छायाभास
नीर — में से — कठोर !

क्षितिज तट पर समेट सित कोष
धूप सेते हों उजले शंख
उगलती हों या मुक्ता राशि
शुक्तियाँ झाड़ सुनहले पंख !
पवन ने दुह वाष्पों की धेनु
बिलोया हो तुषार नवनीत
रोम स्मित मेघों की सी पाँति
हुए भासे हिम शिखर प्रतीत !

पार कर देश काल की दृष्टि
जगा विस्मित मानस में चेत
धरा के ये जो कीर्ति स्तंभ
मास से सिन्धु फेन दिक श्वेत !
विगत मानवों के शुचि शृंग
हुए हों विधि गति से भूसात्
प्रसारों पर रुपहले धर्मध्य
उदित हो नव चैतन्य प्रभात !

क्षीर निधि हिल्लोलित हो स्फीत
नील वपु से शोभित निःशंक
भरा फैलाए गोरी बाँह
त्रिदिव गौरव को भरने अंक !
स्वर्ग शोभा हो मुग्ध स्मृति मग्न
झाँक धर भ जगती पर पीन
राजहंसों की तिरछी पाँति
क्षितिज में हो शोभा उड्डीन !

झलकते नील वारि सर स्वच्छ
स्वर्ग विगलित नभ मुकुर समान
गलित बहु ज्योति रेख सी सूक्ष्म
खिंची गिरि मस्तक पर अम्लान !
दंतभग्न कोनों में गिरि वायु
फुसलती शिशु हिम मेघ नवीन —
उच्चता का समतल विस्तार
हुई दिव् गरिमा से न विहीन !

गहनवामा में निज निःसीम
नीलिमा सान्द्र सी निःस्पंद
दिशावधि सीमाओं से मुक्त
व्याप्त हो घनीभूत आनंद !
अपरिमित नीहारों पर उच्च
फहर ध्वज सा रेशमी समीर
बढ़ाता निर्मलता में मग्न
गगन उर की गरिमा गंभीर !

गुहाओं में मेघों की गूढ़
धंसता धरती हँस अभिसार
घुली वेणी में सुरधनु घोल
अप्सरी सी उड़ फिर लघु भार !
रच कोमल मयूर सा मू,
श्याम बाष्पों का बर्ह उभार
चमत्कृत करता सहसा दृष्टि
शीश पर चित्रित सा साकार !

किरण तृण पुन पुन मणि रज दीप्त
इंद्रधनुषों के रच रच नीड़
कौन जाने अद्भुत स्वर्णिम
बना नभ का लीला आनीड़ —
खेलते आँख मिचौनी मौन
लपेटे धूपछाँह में मग
दृष्टि कर नाना विस्मय मुग्ध
ऐन्द्रजालिक कर अगणित रंग !

देख नभ का प्रसार नीरन्ध्र
नीलिमा का उन्मुक्त अगार
कल्पना का ले निज लघु यान
उड़ा कवि मर्यादा के पार !
छिन्न निर्बंध छिन्न निर्बंध —
दृष्टि खो गई जागी दिग्भ्रम
मौन छाया मन विस्मय मूढ़
शून्य का था निपट [illegible] धाम !

जुगनुओं से जगमग उड़ कीट
ज्योति के ये बहु भुवन विशाल
नाच धुरियों पर गति सम बद्ध
दीप्त रखते भूमा का भाल!
नील केवल अकूल अति नील
निभृत निस्तल निःसीम विराट्—
क्षीर चक्रों का दिव्य किरीट
धरे था सिर पर दिक् सम्राट्!

उड़न थे कुछ ग्रह, ज्यों बुध शुक्र
वाष्प मेघों से घन आच्छन्न
शीत लगते दुर्दम गुरु मंद
भौम लोहित-भू से उत्पन्न!
शौरि घिर रजत वृत्त से रम्य
खेलता भी चाँदों के संग
बनाए आठ चाँद था पीन
दुग्ध पथ था स्मित ज्योति तरंग!

पार कर वायु वलय पथ स्थूल
पान कर सूक्ष्म नभस्वत् श्वास
हुई द्विप् विस्तृत जीवन दृष्टि
हृदय में उमड़ा दिव उल्लास!
अनाहत झरता मंगल नाद
पवन हो विश्व पुरुष की वेणु,
बरसती दुग्ध धार सी ज्योति
निखिल ग्रह हों विराट् की धेनु!

मिले ग्रह प्रांगण में पद चिह्न
गुणी कवि ने गोपन पथ नाप
मर्त्य गोचर छायाकृति चारु
विचरती नभ पथ में चुपचाप!
लिया ऊपर स्वर्णिम धी साध
निर्निमिष अंतरिक्ष के पार
प्रभा पंखों पर उड़ स्वर्पूत
स्वप्न मधु करते मधुर विहार!

रहा विस्मय स्तंभित कवि चित्त
कौन यह शक्ति दीप्त सर्वत्र ?
प्राप्त कर जिसका इंगित गूढ़
टँगे से नभ में ग्रह नक्षत्र —
नाचते स्वर संगति में मुग्ध
मधुर दृग बरसा अमित प्रकाश
सृजन मर्दन का क्या उद्देश ?
दशन-स्मित किसका शून्य आकाश ?

त्रिपद् गंगा स्मित जटा कलाप
चंद्र शशि लेखा दीपित भाल
कुहासा व्योमकेश सा व्योम
लपेटे चितकबरा तम व्याल !
स्वर्ण लट्टू सी पृथ्वी घूम
शून्य दिक् अंचल में अविराम
सँभाले जग का पोषण भीम
वेग निश्वस नपती अभिराम !

धरा की परिक्रमा कर मात
भौम से छूट कर भू संबंध
मुक्त बुध से मिल हुआ प्रमत्त
प्राप्त कर कवि गुरु प्रतिमा पंथ !
गूँजता स्वर्णिम दिव संगीत
रजत वीणा के कँपते तार,
मूर्त हो उठती महिमा सूक्ष्म
अतीन्द्रिय सुषमाएँ सुकुमार !

इन्द्रजाला के पापुट रंग
विराट गात पर मांसल देह
घेरतीं सुकाछिनी सौन्दाम
चमकतीं पा कवि का स्नेह !
बिछाते छाया पद पर मौन
प्रभु गंधर्व विपुल साभार
देखतीं देवगान म मग्न
देव बाला दौड़ें कर बार !

देख रवि शशि का महिमा कक्ष
उड़ा कवि आकाशों में धन्य
और चमकों से अगणित दीप्त
निविड़ था घन नीहार अरण्य!
तारकों के असंख्य वे मेघ—
न मिलता महाकाश का पार—
अयुत वर्षों में होती प्राप्त
दृष्टि को जिनकी ज्योतिर्धार!

अपरिमित महा शून्य में स्तब्ध
सोचता कवि कैसे नीहार
कोटि शत शशियों तक घूम
बना ग्रह उपग्रह स्मित संसार!
कौन वह, जिसने भरा स्व वेग
ग्रह कणों का कर पथ निर्देश
दृष्टि हत महाकाश में खोल
अमित घूम तारायें अनिमेष!

महत् किस आकर्षण से खींच
सँजो किसने अखंड ब्रह्मांड
असंख्यों लोकों से कर पूर्ण
भर दिया महा काल का भांड!
परम ज्योतिर्मय का क्या ध्येय?
विश्व संपति का क्या उद्देश?—
विहँसता महा शून्य निःशब्द—
सृष्टि में निहित स्वतः संदेश!

रंग छायाओं के अणु वाष्प
छिपाए तारों को सर्वत्र
शून्य में उड़ते—अति सपंख
पाँखें जिनसे शिशु मराल!
भयंकर धूमकेतु की पूँछ
दीखती फैली कहीं विशाल
रश्मि पति स स्पंदित था नील
खोल लेते हों जग दिक् काल!

पथ विरचित तारा के मग
दीप्त कर छाया पथ का छग
यहाँ का धरने को नव मग
घूमता इन गति हो एकत्र।
कोटि वर्षों तक अणु अणु साथ
बने नक्षत्र ज्योति विस्तीर्ण —
किन्तु धरती प्रथम के साथ
हो गया नर भू पर अवतीर्ण।

गुहर वे ज्योति वाष्प के पुंज
वह मर्षित गिरता में भीम
शून्य हो यह नभ का मधु चक्र
ज्योति रज घन में देखा असीम।
जन्म लेते शिशु यह नवजात —
अमित भास्वत पोद्भीम विधान
कभी स्पर्शों में कुसुम मनुष्य
कौन जाने करता निर्माण।

रात्रि पर उपर उड़ नक्षत्र
शून्य में [illegible] मोनामार —
रचा हो मदा [illegible] से चार
भास्वित में सब भीम अपार।
टटन तार ज्योति [illegible]
[illegible] हो स्वम में मणि हार
ध्यान की भरा ध्यान के दिव्य
उन्मिति निराकार साकार।

[illegible] में [illegible]
[illegible] उर्मी मौन —
[illegible] में निर्जन —
शून्य —पथ शून्य का कौन?
गर्भित यह [illegible] का भेद
[illegible] में [illegible] कुछ काम
जाने [illegible] विराट् विश्व
[illegible] मन का [illegible] संसार।

साहसिक विस्मय युग नर कार्य
नाप कर अंतरिक्ष विस्तार
खोजता वह ब्रह्मांड रहस्य
अगम उच्चायों में जा भार !
किन्तु, जब भू जीवन का प्राण
वर्तुलिक घेरे संकट घोर,
कौन जाने यह भीषण रात्रि
नहीं आने दे नव युग भोर !

साथ क्या बहिर्मुख्य में घूम
पुन नभ युग त्रिशंकु सपाति
रिक्त करतल ला फेंका पंख
श्वेत चीलों सी उडुगण पाँति !
धरा के प्रति अपना दायित्व
निभा क्या चुका मनुष्य समग्र ?
ग्रहों पर जो अब मर्त्य प्रभुत्व
प्रतिष्ठित करने को यह व्यग्र !

शमन की या यह मृत्यु उड़ान ?
प्रलयंकर रच बहु प्रक्षेपास्त्र
सान पर चढ़ा रहा गढ़ मर्त्य
आणविक युग का सैनिक शास्त्र !
घृणा स्पर्धा हिंसा के बीज
ज्योति पिंडों में बोने हेतु
भीम फैलाए काले पंख
खींचने युग रवि को नर केतु !!

क्या उसके स्मृति पट पर मौन
स्वर्ण भारत का युग प्राचीन
रहे द्रष्टा ऋषि मुनि जब गुह्य
मनोनभ अन्वेषण में लीन !
भेद अंतर्मानस का नील
ध्यान का निर्मित कर दिव्ययान
प्राण पथ में रोहण कर ऊर्ध्व
दे गए जग समाधिज ज्ञान !

प्रथम तदुगत उत्तुंग हृत् श्याम
प्राण के घन मरकत सोपान
पार कर मन के स्वर्ण प्रसार
पहन प्रतिमन आभा कर पान
मद का धूम गुनहला भास
दिव्य अभय में प्रोत प्राण
शांति सौन्दर्य प्रीति आनन्द
ज्ञान गाग-प्रकाश के मान !

चेतना के सिन्धु स्वर्णिम शृंग
शीर्ष पर तन्मय हो प्रच ध्यान
एक पल में पग बढ़ाकर
देखकर विस्मय हुआ महान् !
दीप्त आगार में उन्मुक्त
प्रेमपावन थे सूक्ष्माकाश —
विश्व पर्यावरण था दिव्य
हिरण्यात्मा का स्वप्न प्रकाश !

एक स्वर भासित कर मानस
मनुज आत्मा का मिल समरूप
बना मान्दिर का स्वरूप
उसमें थे पर सत्य का तत्व —
मृण्मय शिखा परम्परा पूर
मनुज को इ असीम का रतन
सुगन्ध स्वप्न हृदय में उतर
धरा पर स्वर्ग धन का हूँ !

आ मन की अंतिम कर प्रीति
रूप प्रकाश फूलों का धूप
भू नभ पर प्रकाश प्रकाश
विश्व का पंथ पवन स्वर हुई !
ज्ञान विश्व विराग का छोर
स्वप्न व रूप का कट पवन
पथ का रूप धरा में प्रपन्न
अंतःपावन रूप प्रणय ! —

प्राप्त कर भू सृष्टि का सत्य
विश्व आत्मा का दिव्य स्वरूप
प्रेम प्रज्ञामृत से कर पूर्ण
जीव मानस का तामस कूप —
महत्तर स्वर संगति में बाँध
मनुज जीवन का धार्मिक श्रेय
बसाना चाहा जीवन स्वर्ग
गूँथ नित आत्म प्रेम मय श्रेय !

चेतना की वह अक्षय ज्योति
कर सकी भू पथ नहीं प्रशस्त
हिंस्र बर्बर अब भी नर जंतु, —
युग होने को युग रवि अस्त !
युद्ध तत्पर जन भू के राष्ट्र
जूझता जाता नर निज साथ
सृजन की शक्ति भूत विज्ञान
ध्वंस का बन न जाय पर्याय !

तरुण भारत भी अब हतबुद्धि —
सूझता उसे न पंथ प्रकाश
पुनर्जागरण नहीं पर्याप्त
न उसका समग्र प्रगति विकास !
ज्ञान विज्ञान अर्थ युग सत्य
समन्वित बन सकते वे पूर्ण
पृथक रह उभय रहे वे व्यर्थ
नाभि से नाल वस्तुगत ऊर्ण !

ज्ञान आत्मा विज्ञान शरीर
अर्थ वाणी स जगत अभिन्न
पंथ विज्ञान ज्ञान चिर पंगु
रहे जग में यदि वे विच्छिन्न !
हुआ कवि मन चिन्तन गंभीर
विवश स्थिति पर कर मौन विमर्श
ध्यान जब उतरा — उभरा हृत
भव्य पश्चिम भू का था स्वर्ग !

गौर देशों में विस्तृत घूम
हुआ संवर्धित कवि का ज्ञान
जगत जीवन को मधु रस छत्र—
कर्म गुंजित वे जन मन प्राण।
ग्राम पुरी का उन्नत हर्म्य
इंद्रपुर स्पर्धी नगर वितान
विपुल वैभव गौरव पर मुग्ध
विजित स्तंभित था लगता काम।

स्वच्छ स्मित हाट घाट उद्यान
भव्य रम्य भाव भवन वन बाग
विपुल जीवन उपकरणा बीच
मर्त्य सुख करता विविध विलास।
यंत्र युग का ह भू पर जन्म
मानुषी जन ने पथ प्रयाग
एक निज का पौर्वापर शान्ति
सभ्यता का पथ दिया विराम।

जगत का है भौतिक विज्ञान
निज का प्रभुता अनुगधाम
पृष्ठ उसी का स्व संवार
उस ह सब [illegible] परिणाम —
बाण विद्युत् ग से जन शक्ति
लिया जन ने जीवन निर्माण
साम्य मन म भू धन का मुक्त
मानविकता का [illegible] वरदान।

परिस्थितियों की सीमा माप
निज पाल पृथ्वी व छोर
[illegible] का है [illegible] व [illegible]
देखा दर का सारा छोर।
[illegible] वर्षों में विविध विषमता
[illegible] मन में [illegible] गाए—
[illegible] मानवता [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

राजनीतिक सामाजिक क्रांति
हटी बहु – राज्य तंत्र कर भग्न
धँसा निष्क्रिय सामंती युग
घुसा मानस में नया दिगंत !
मिटा जीवन का जीर्ण विषाद
किया नव युग ने स्वर्ण प्रवेश
रुपहले बने लोक संबंध
प्रजातांत्रिक नव भू के देश !

जगत को दे वैज्ञानिक दृष्टि
मनुज को नव यथार्थ का बोध
वस्तु विश्लेषण कर बुध सूक्ष्म
तोड़ प्राकृतिक लौह अवरोध –
भौतिकी के कर रहस प्रयोग
रसायन संबंधी नव शोध
पराजित किया शनै दुर्जेय
भूत तत्वों का अंध विरोध !

उखाड़े बौद्धिकता ने बोध
मध्य युग के अंधे विश्वास
प्रकृति मुख से पट गुंठन खोल
समाया उर में नव उल्लास !
बढ़ा नव भावों में अनिवार्य
वास्तविकता के प्रति अनुराग
जगा प्राणों में नव ऐश्वर्य
नए सौन्दर्य बोध की आग !

धर्मों में आ नव युग उन्मेष
नपा सागर का वक्ष गभीर
अनावृत किए छिपे भू अंग
वारि का फेनिल संभ्रम चीर !
वनस्पति जग जीवों के भाग
सूक्ष्म अनुवीक्षण दृग से छान
परख कर महाभुवन के भेद
शिखर पर पहुँचा मानव ज्ञान !

हुआ विकसित उत्पादन यंत्र
बने इन उपनिवेश भू दास
बढ़ी सम्पद तृष्णा की भूख
सब स्वार्थों ने किया प्रवास।
प्रखर साम्राज्यवाद के स्वप्न
सजग लगे नवाग्नि साध्य
धधक पैनी स्पर्धा की वह्नि
लगे भू जन बन ईंधन काष्ठ।

सभ्य पर उन्नत पूँजीवाद
विजित कर कर निरीह भू भाग
मार श्रम का शोषण कर रक्त
लूट जन भू का स्वत्व सुहाग।
साथ आया अधिनायकवाद
विश्व युद्धों की भड़का आग —
हास विघटन के गत धन धाम
बना युग प्रहरी मणिधर नाग।

प्रेरणा के हित सब रस भाव
लिया युग में तिरस्कृत साहित्य
शिल्प ने सब सौन्दर्य निखार
किया मन भाव बोध कृतकृत्य।
कला ने रुचि का रंग सँवार
बढ़ाई सूक्ष्मगामी उर वृत्ति
चेतना का उभार ऐश्वर्य
चित्र कर जीर्ण भावना भित्ति!

जगी युग नारी बंधन मुक्त
पुरुष के संग मधुर समकक्ष
सत्य माता के गौरव युक्त
हुआ ढाँचा सामा का वक्ष।
लोभ जीवन पर विकसित दृष्टि
पड़ी बढ़ते मालिन्य मनवार
हृदय का स्वर्णिम निखर सुधन
हुई स्वर्गा स्वार स्वार।

रोग सजीवन रूप कीटाणु,
समुद्भव बना चिकित्सा शास्त्र
शस्य पद्धति का हुआ विकास
युद्ध के लिए नए शस्त्रास्त्र !
सौर मंडल का गाढ़ रहस्य
हुआ ज्योतिष्मत् गणित दिगंत
मनो विश्लेषण कर, अति गुह्य
दिखा निश्चेतन भुवन अनंत !

जीव उद्भिद शास्त्रों ने गूढ़
चराचर जग के खोले द्वार
डारविन का विकास सिद्धांत
बना युग चिन्तन का आधार !
मार्क्स ने स्वच्छ दृष्टि से तीक्ष्ण
पलट डाला जन का संसार
विविध विज्ञानों ने ले जन्म
ज्ञान का किया क्षितिज विस्तार !

रेडियो व विद्युत् ध्वनि ऊर्मि
विश्व भ्रमण करती मुक्त प्रसार,
दूर दर्शन दिग् प्रतर लोक
रूप करता परोक्ष साकार !
निखिल विकिरण से विरचित सृष्टि
दे रहा अब विज्ञान प्रमाण
प्रयोगों में संभव अब नव्य
वनस्पति पशु जग का निर्माण !

ज्ञान संपद् अक्षय यह बाह्य
रिक्त मृत तथ्यों का जड़ ढेर
सत्य दीपित हो अंतश्चेतन
अभी युग संयोजन में देर !
तल पर्वत बाहर से सभ्य
मनुज भीतर से आदिम खर्व
आज भी वह दिन काफ़ी दूर
एक हो भू मानवता सर्व !

यान पर उड़ती गगन में वह,
रेंगता मन भू गम में मग्न
पथ का कुष्ठ घिनौना कीट
पड़ा ही न रहता युग मग्न।
शक्ति लिप्सा मानव की पथ
विकट पशु प्रस्था का पर रव
सभ्यता के विराम का माज
बना न नहीं भंग स्मृति स्तूप।

विन्दु वर्षि मन में पुष विराम
हृदय में आस्था अटल अगाध
प्रकृति की गुम्फन शक्ति विज्ञान
बनेगी सिद्ध गूढ़ विधि साध।
मनुज में हो परिणाम विराग
सृष्टि में पर्यन्त मित प्रेय
बने हो दुर्धर न सपर्व
मनुज आस्था दुर्धर्ष प्रमेय।

श्रम रत युग परिश्रम धन
सुरसन गिलागन मणि छत्र
दूरबी हो नारो की पाति
उड़ रह पारखी व मंत्र।
बौना जन मन में भूरत
छिद्र पुष शून्या में सपर्व
निगलता मन पाषाण विचार
पाना का न पावन गया।

एकिशा पराता पू गुरु
धूम हाथ जाय स्वार्थीम
बना वा वय दृष्टि सरल
निष्ठुर पद व गहन अंत।
धन मद मानवता व नार
गरर प वर्षी धारा स्नान
उत्तरण गाम दर्प वो उगाम
गर्व न — पद जन — ।

धरा के ओर छोर हों दीप्त
युगों का मिटे विपन्न विषाद
दैन्य जर्जर हो ग्राम प्रसन्न
शमित युग का पा विभव प्रसाद !
धर्मपरता हो भू में लुप्त
दलित दमितों का अभ्युत्थान
विषमताएँ हों जग की दूर
शोध समता प्रतिनिधि विज्ञान !

जगत् में उपल पुलक हो व्याप्त
महत् पर युग की प्रतिष्ठि
शक्ति सक्रिय भौतिक जड़ तत्व
बढ़ाता जग की अतुल समृद्धि !
ज्ञान की खुली वीथियाँ दीप्त
विश्व के प्रति बदली जन दृष्टि
मुक्त नभचारी भूधर भाव
खोजता दिग् प्रथम में सृष्टि !

बदल सब गए चतुर्दिक पार्श्व
सिमट अब गया काल संग देश
समापन प्रस्तर युग के चिह्न
तड़ित् युग करता रजत प्रवेश !
युगों में लेगी जन्म अनेक
तब पीढ़ी-पा नव उन्मेष
चिरंतन का जो युग पथ व्याप्त
बाष्प घन सा उड़ना निःशेष !

बदलते सामाजिक संबंध
बदलते मन आस्था विश्वास
गए मूल्यों के स्वप्न प्रयास
टूटते मानस में आश्वास !
मनुज के प्रति जग के प्रति क्षीण
बदलते दृष्टिकोण प्राचीन —
धन भू मन दोनों का दैन्य
दीप्त करती युग किरण नवीन !

विगत निर्मितियाँ जिनकी आधार
युग जग के नैतिक मान्य
मध्ययुग उनके हतप्रभ मन
सक्षम युग गति का पा स्पर्श।
नहीं स्थायी बहिरंतर बोध —
मध्य मूल्यों का दृढ़ आधार
उदय युग मानव को ले जन्म
युग का देना नव सम्भार।

नित्य गतिमय जग रूप गुण भीड़ —
मनुज पावन वैज्ञानिक दृष्टि
भिन्न बहिरंतर के व्यवधान
त्याग भी कर सकता नव सृष्टि।
प्रतीक्षित भौतिक जैविक शक्ति
चरम देगा भू जीवन रूप
उग उठेगा मनन गाम्भीर्य
बनेगा मनुज नव भव रूप।

ध्वनि में भर भर अपनी भूख
सामना युग कवि हरित प्राण —
स्फीत रस में माया वैराग्य
जगाता विमल अह विज्ञान।
और भी किंतु क्षण में भिन्न रूप
प्राण मन भावों में जो व्यक्त
गगनान्तर किंतु भी किंतु परमात्म
रच दिया स्फटिकाच्छादित अमरत।

इधर कुछ दिन रचना में स्थिर
भटकता मन कब बना भार
और कुछ रचना में विश्राम
गया दर्शन का वह — आधार।
मनु रचनामय मनु की वाणी
बना देगा सम्भव समाज
बना था देगा अभिनव सिद्धि
विदग्ध का उच्च व्यापार।

असंगति पीड़ित थे भू देश
विषमताएँ थीं विकृति विरोध
न उन पर था मंत्री का ध्यान
उसे थी नव जीवन की शोध ।
चाहता यह भौतिक विज्ञान
बन सके जन भू हित वरदान —
मनुज का भीतर बर्बर हिंस्र
मूक पीछे — दुर्धर था त्रास !

बदल द्रुत रहा बहिर्गत विश्व
न गत भू मन करता स्वीकार
सत्य के प्रति नर आँखें मूँद
कर रहा निज पर अत्याचार !
प्राप्त कर सृजन शक्ति नव शक्ति
न बदलें यदि हम जीर्ण विचार
रहेगा वर्तमान गति रुद्ध
मचेगा भावी हाहाकार !

धार्मिक साधन मंथित कर भव्य
पाप यह रहे पुरातन ध्येय
सदाशया मानवता का आज
इसी में भू जीवन का श्रेय !
राजनीतिक स्वार्थों से मुक्त
कुत्सित आर्थिक स्पर्धाएँ त्याग
जाति वर्णों के बंधन ग्राम
मिट जाएँ खंडित भू भाग !

चाँद पैदल भू पर अभिसार ?
क्षीण हो कुछ वायु जल यान
रश्मि पंखी उड़ते दिग् अश्व
गगन नर अंतरिक्ष अभियान ।
ज्योति सुषमा में संभव आज
मनुज संस्कृति का सुन्दर प्रसार
मर्म ही न हो मनुज को ज्ञान
धरा पर संस्कृति का क्या सार !

शिल्पी मम ग ते विश्व पद्म—
अपरिमित हरित नील दल शक्ति
बरसाएगा मर म पर स्वर्ण
धग जीवन प्रति है अमूर्तिमत।
सुमा पलना म श्यामल पथ
सुमम कर हरित हित कृत्रिम सृष्टि
धमा मध्यम का उच्च भूमि
संवारता निगम की सृष्टि।

अपने ही मंदिर पथ जगु शक्ति
कर सकें परिवर्तन निर्माण
साधना प्रेम कौन भी शक्ति
करती मानव का कल्याण।
बाह्य स्थिति का विपुल आकार
प्रकाशित कर अपने अनिमय
हृदय के अधकार का भार
करता कौन ग्लानि नित्य?

हा मन के जीवन का स्वप्न?
करता मानव स्वप्न मधुर—
उग जनपगन का आवन
पूर्ण भी हो—कर दगा पूर्ण।
म हा जब तक आन्तर अन्तर
मुग्ध का तन बाह्य सगार
साधना मानव का अमरत्व
नहीं उसका भाषा का भार।

[illegible] हा है [illegible] स्पष्ट—
[illegible] [illegible] बाह्य [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] के [illegible]—
[illegible] [illegible] म उसका [illegible]।
बाह्य ग [illegible] [illegible]
मनुज का [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] का [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible]।

अर्थगति पीड़ित थे भू देश
विषमताएँ थीं विकृति विशेष
न उन पर था मंत्री का ध्यान
उसे थी सब जीवन की खोज!
चाहता वह भौतिक विज्ञान
बन सके जग भू हित वरदान —
मनुज का भीतर बर्बर हिंस्र
मूक पीड़ा — दुष्कर था त्राण!

बदल द्रुत रहा बहिर्गत विश्व
न गत भू मन करता स्वीकार
सत्य के प्रति नर आँखें मूँद
कर रहा निज पर अत्याचार!
प्राप्त कर नूतन शक्ति अब चकित
न बदल यदि हम जीर्ण विचार
रहेगा वर्तमान गति रुद्ध
मचेगा भावी हाहाकार!

शक्ति साधन अर्जित कर नव्य
पाप यह रहें पुरातन ध्येय
बदलना मानवता को आज
इसी में भू जीवन का श्रेय!
राजनीतिक स्वार्थों से मुक्त
घृणित आर्थिक स्पर्धाएँ त्याग
जाति वर्णों के बंधन ग्रास
सिमट आएँ खंडित भू भाग!

पीय वैभव भू पर अभिसार?
जीर्ण हो चुका आयु जग यान
रश्मि पंखी उड़न विधु यान
गह्वर भर अंतरिक्ष अभियान!
ज्योति भुवनों में संभव आज
मनुज संस्कृति का सुन्दर प्रसार
भले ही न हो मर्त्य का ज्ञान
अमृत पर संस्कृति का क्या सार!

सिन्धु मथ सं से विद्युत् पद्य —
अपरिमित हरित नील जब शक्ति
बसाएगा नर भू पर स्वर्ग
धरा जीवन प्रति हो अनुरक्ति !
झुला पवनों में श्यामल मेघ
सुगम कर कृषि हित कृत्रिम वृष्टि
बना मरुस्थल को उर्वर भूमि
सँवारेगा निसर्ग की सृष्टि !

भले ही तड़ित् वेग अणु शक्ति
कर सकें बहिर्जगत निर्माण
सोचता प्रेम कौन सी शक्ति
करेगी मानव का कल्याण !
बाह्य भित्ति को विद्युत् आलोक
प्रकाशित करे भले अनिमेष
हृदय के अंधकार का भार
करेगी कौन ज्योति निःशेष ?

देह मन के जीवन का स्वर्ग
रहेगा मानव स्वप्न अपूर्ण —
उसे अवचेतन का आवेग
पूर्ण भी हो — कर सका न पूर्ण !
न हो जब तक आत्मिक अनुभव
मृत्यु का तथ्य बाह्य संसार,
कामना मानव की अमरत्व
वही उसकी आत्मा का सार !

आंतरिक ही रे शांति समग्र —
अपूर निष्फल बाह्य प्रयास
प्रीति आनंद ज्योति के स्रोत —
हृदय सत्ता में उनका वास !
बाह्य उपादान निःसंदेह
मनुज को देगा सौख्य समृद्धि
पूर्णता का स्वभाव स्थित ऊर्ध्व
विरति भंगुर समतल अभिवृद्धि !

मनुज आत्मा ही यह चिर शक्ति
पूर्ण कर सकती नव संसार
सांस्कृतिक ऐश्वर्यों का स्वर्ग
शांति शोभा प्रकाश का द्वार!
बनाए जो भौतिक विज्ञान
जगत् को आत्म ज्योति की पीठ
धरा पर बिखरे स्वर्गिक शांति
लगे मन को न अंध तम दीठ!

स्थूल भौतिकता का आधिक्य
विपद् भय का सूचक अविवाद
छा रहा मानव जग में गूढ़
मनोवैज्ञानिक जड़ अवसाद!
गलित जग से अपने को बाँध
प्रगति के पीछे पागल देश
शांति के अपने अपने अर्थ —
लोभ बंदी को होता क्लेश!

मध्य ममताओं का क्या अर्थ
मिटे जो नहीं लोभ युग दैन्य?
लौह पद स्वार्थों से उन्मत्त
धरा उर कुचलें बढ़ती सैन्य!
स्वाभाविक विक्षेपों की सत्य
सभ्यता भू की रण विदीर्ण
भीत युद्धों से जन मन त्रस्त
हो रहा संस्कृति हृदय विशीर्ण!

शांति का हल्ला मन में व्यग्र —
विजित हो रहा अमित मद मोह
रुद्ध युग मन में उठता ज्वार
दमित जग में भीषण विद्रोह!
न हम यदि बदलेंगे इतिहास
हमें बदलेगा वह इतिहास
शक्ति का भू वितरण अनिवार्य
राशि गुण की सम वृद्धि विराग!

बाह्य विस्फोट युग जन क्रांति
मानसिक सामाजिक संघर्ष
गूढ़ अंतर्विकास के चिह्न —
बरसता नव ब्रह्मा का वर्ष !
मान न मत युग काल गवाक्ष
छोड़ जीवन का विगत अरण्य
क्षीण भू मन की केंचुल त्याग
प्रगति पथ पर नवम चैतन्य !

राजनीतिक आर्थिक उत्थान
न केवल मानवता का ध्येय
पूर्ण हो नैतिक बाह्य विधान —
चेतनात्मक आंतरिक विधेय !
युगों को अतिक्रम कर युग शीघ्र
वय का बदल दस परिवेश
दे रहे मानव को चिर शांत
आत्मस्थित रहने का संदेश !

विपुल वैज्ञानिक आविष्कार
दार्शनिक सामाजिक सिद्धांत
समन्वय के सांस्कृतिक प्रयत्न
मिटा सकते न जगत का ध्वांत !
दौड़ता चेतन में भूकंप
उमड़ता अवचेतन में ज्वार,
प्रथम बदले भीतरी मनुष्य
बाहरी बदले तब संसार !

प्रतीक्षा करता विश्व विकास —
पार युग के सम्मुख संघर्ष
परिस्थिति इधर उधर भिन्न मूल्य
उन्मन युग यथार्थ आदर्श !
व्यक्ति नर इधर उधर जड़ तंत्र —
वृहत् सामूहिक युग संकल्प
उभय शिविरों में शक्ति विभक्त
ह्रास का क्रम न आज जन तल्प !

विकट युग भू मानस में भ्रांति
उभड़ते अभिमुखी भावन
स्नायु भय संशय से क्षुब्ध
सुलग सब रहे धरा के देश!
चाहिए युग को अंतर्दृष्टि
धैर्य सहृदयता साहस त्याग
मनुज के चेतन उच्च प्रयत्न
बुझा सकते विनाश की आग!

व्यक्ति कर सके समग्र विकास
चाहिए सामूहिक आधार
मूर्त हो जीवन में आदर्श
परिस्थिति का करना संस्कार!
विरोधी यदि आदर्श यथार्थ
व्यर्थ दोनों तब — अयुग अपूर्ण
उभय को विकसित होना आज
मध्य अवरोधों का कर चूर्ण!

देखता मात दृष्टि कवि स्पष्ट
बहिर्मुख लुप्त मनुज का ध्यान
वस्तु वैभव से जीवन पूर्ण
शून्य आंतरिक गुणों से प्राण!
चेतनात्मक संकट दुर्जेय
घिर रहा मानव जग में घोर
अंध जड़ वस्तु तिमिर का सिन्धु
लील जाए न कहीं युग भोर!

दास कर निर्मम भौतिक शक्ति
मुक्ति देता जड़ को विज्ञान
और जड़ निज रहस्यमय शक्ति
मनुज को करता मुक्त प्रदान!
लेकिन मन अंध ज्ञान ही वायु
ज्ञान न बने चिद् दृष्टि महान्
मनुज कर युग मन का संस्कार
करे नव भू जीवन निर्माण!

प्रणत कवि मन करता आह्वान
चेतना का हो पुनरुत्थान
ध्वंस कर भू पर अखिल असत्य
करे नव युग रचना विज्ञान !
रूढ़ि मत तर्कों से हो मुक्त
समन्वित हो जन भू का ज्ञान –
सत्य – विज्ञानी का विज्ञान
मनुज जन को दे नव वरदान !

बन रहा नव नव नव इतिहास
बन रहा वैज्ञानिक युग पूर्ण
मनुज अतर्मन का तम भेद
प्रकट क्या हुआ सत्य का सूर्य ?
चेतना स्वर्णिम कवि आलोक
जगत जीवन विकास हित काम्य
पूर्ण संयोजित जिसमें सत्य –
भीतरी ऐक्य बाहरी साम्य !

महत् संकल्प बनाए मार्ग
विजय पाए विकास पर भ्रांति
सफल हो मानव जीवन ध्येय
सृजन अनुकूल समन्वित शांति !
लौह स्थितियों के शृंखल तोड़
प्रकट हो मुक्त ऊर्ध्व चैतन्य
विगत युग कपि से ले फिर जन्म
विश्व मानव – जन भू हो धन्य !

सुलभ मानव को उन्नत मूल्य
शक्ति साधन उपलब्ध अपार
नहीं क्यों मानव जीवन स्वर्ग
धरा पर होता फिर साकार ?
सोचता कवि निश्चय ही राम
चेतना भू पथ की अवरोध
मुक्त हो भाव जगत की शक्ति
मनुज को दे नव जीवन बोध !

कुरेदा विस्मयायत गूढ़
सभ्य गोरी का कवि ने मर्म
वही सामंती स्त्री की वर्ग
रिक्त था हृदय सँवारा चर्म!
प्रेम का पर्व द्वन्द्वमय प्रेम
चेतना? — मूर्तिमती की देह,
भाव से अधिक त्वचा का मूल्य
रूप छवि लिप्सा — न उर में स्नेह!

छोड़ बर्बर विध्वंसक रूप
बन सके सृजनशील जो काम
मनुज को मर्यादा में बाँध
बनाए जग को शोभा धाम!
ऊर्ध्वमुख हो प्राणों की ज्योति
रूपगत राग द्वेष से हीन
भावना का बरसा सौन्दर्य
रचे भू जीवन स्वर्ग नवीन!

भट पश्चिम की वैभव भूमि
हुआ कवि मन में बन आह्लाद
विपुल जीवन शोभा से पूर्ण
सभ्यता का विलोक प्रासाद!
रम्य गृह वीथि मार्ग उद्यान
धरा के प्रति सजीव अनुराग
गौर देशों का था स्पृहणीय
संगठित जीवन का सहयोग!

रोम यूनान मिस्र की स्वर्ण
सांस्कृतिक निधि का पा कर दाय
हुआ जिसका अंतर्निर्माण
सभ्यता का बन भव पर्याय!
विविध विद्याओं की था भूमि
विश्व बौद्धिक विकास सोपान —
चार शतियों से अविरत मंच
प्रगति का प्राप्य रहा महान्!

प्रकृतिप्रिय कवि ने जब से पूर्व
आल्पस् शृंगों का देखा देश
स्मरण कर जन्म भूमि का दृश्य
हुआ तन पुलकित युग अनिमेष !
शुभ्र हिम शिखर किरीटित ग्राम
हरित फर तरु रोमांचित ढाल
घाटियाँ मखमल की मृदु घास
नील दर्पण से निर्मल ताल !

मोहते फ़ासर्स हिम शृंग
लोल निर्झर करते स्मित नाद
सुषम तलहटियाँ शिखर, पठार
हृदय में भरते स्वप्न आह्लाद !
पीत वाष्पों की चूनर ओढ़
बदलती प्रकृति चमत्कृत वेश
सरकती निःस्वर पग हिम राशि
दौड़ती फेन धरित सावेश !

जिनेवा सर में तिरती मीन
धूप छाया-चित्रित साकार
ढाल पर आशा के प्रिय वेश
हृदय पट का करते शृंगार !
श्रमों को बाँध बीच कर बीड़
मर्मरित रखते वन प्रच्छाय
मालिया की स्विस भू शुभ स्वर्ग —
उन्हीं पर निहित प्रमुख व्यवसाय !

स्वच्छ पश्चिम का यह कश्मीर
शिखर पर योरप के आसीन
खिलाड़ी जगत पर्यटक विश्व
इसे रखता आमोद नवीन !
उच्च भूमिका कक्षा में बस
शृंग सोमी दिगंत अभिराम
मनुज कर कौशल से संपन्न
निभृत नैसर्गिक सुषमा धाम !

फ्रांस में कर सोत्कंठ प्रवेश
हुआ कवि मन में भावोन्मेष
कला संस्कृति का यह भू स्वर्ग
कीर्ति पश्चिम की रहा विशेष ।
स्वर्ग भू मों की सी गुंजार
मधुर भाषा हरती मन प्राण
शिष्ट सौष्ठव विनम्र व्यवहार
सहज आकर्षित करता ध्यान ।

क्रांति के पलने में भर पैंग
हुआ उद्बुद्ध यहाँ चैतन्य
विश्व बंधुत्व साम्य स्वातंत्र्य,
भरे जन ने आदर्श अनन्य ।
क्षेम वह झंझा झड़ भूकंप
बना संगठित साहसी देश
रहा पश्चिम की मानस भूमि
कला चिन्तन ऐश्वर्य निवेश ।

दिव्य गिरजों का गोथिक शिल्प
शांति सम्मोहित करता प्राण
निर्धनों की बाइबिल जो मूर्त
वास्तु प्रतिमा के विशद प्रमाण ।
शिल्प प्रतिमाला का दिग् व्याप्त
शिष्ट सौन्दर्य सृष्ट परिवेश —
कला चिर् वैभव प्रभु परिमित
फ्रांस भू जीवन स्वप्न अशेष ।

भाव आलोकित जन भू प्राण
नित्य नव उन्मेषों के स्नात
विश्व प्रिय रुचिकर षड्रस खाद्य
रूप सज्जा से ओत प्रोत —
सुमन सौरभ आशा रस भूमि
सुघर, मधु प्रिय जीवन रत लोग
कला वाङ्मय हो शोभा साज
ग्राम में सुलभ सुख के भोग ।

जहाँ नयनों में शोभा स्वप्न
हृदय में नित नव भावोच्छ्वास
प्राण में सुख जीवन उन्मेष
बुद्धि में नव चिन्तन उल्लास —
नवमती हों रुचि सज्जा वेश
कला विधियों पा नित्य विकास
यही है गौरव देश प्रिय फ्रांस
जहाँ निमि जीवन मुक्त विलास !

सद्य स्फुट सुंदरता का पद्म
युगों के सम्मुख खुल अम्लान
मुग्ध कर देता पेरिस दृष्टि
शिल्प स्वर संपति का हो धाम !
जनों के प्राणों का हृत्स्पंद
कलाकारों का स्वप्नागार,
सतत जो नव थी सुषमा रचित
शिराओं में करता संचार !

वास्तु कौशल का अपलक स्वप्न
अमर प्रस्तर छेनी का काव्य
स्वर्ग का बिम्बित भू पर चित्र
शिल्प से अणुओं के संभाव्य —
विश्व सम्मोहन कला प्रतीक
स्वयं में पूर्ण मधुरिमा लोक
रूप मार्मद प्रेम का कुंज
सफल दृग पेरिस को अवलोक !

भव्य प्रतिमाओं से संपन्न
विविध सौन्दर्यस्थल उद्यान
राजपथ वीथि वीथि प्रच्छाय
नगर निज शोभा का उपमान !
भेदता ऊर्ध्व दृष्टि से नील
दीर्घ धान्द्रिम टावर का शृंग
नागरिक गरिमा का दिङ्मुग्ध
प्रदर्शित यहाँ अनिन्द्य भविष्य !

कल्पना नयनों में चुपचाप
घूम उठा पुरातन रोम
खँडहरों से सदियों के शीर्ष
जग उठे स्तूप कोण बहु व्योम!
राम की शक्ति रोम की कीर्ति
विश्व उर पर करता जो राज —
वास्तु चित्रों शिल्पों में शेष
मग्न वह गौरव गरिमा आज!

श्वेत स्तंभों की शोभा श्रेणि
उच्च सौधों गिरियों की सृष्टि
शिल्प कृति चतुष्कोण उद्यान
कला रुचि अपलक रखती दृष्टि!
सग्रहालय विगत स्मित रोम
संचित वैभव का अक्षय कोष
भास जगता स्तंभित विस्मूढ़
देख सौन्दर्य स्वप्न निर्दोष!

पोप का नगर विश्व विख्यात
हृदय ही जिसका स्वर्गिक राज्य
रोम का बहिरंतर ऐश्वर्य! —
और सब वैभव लगते त्याज्य!
पाप भी कला शिल्प अवशेष
स्वप्न वीथी में भरते स्फूर्ति
सभ्यता संस्कृति का यह केन्द्र
ध्वंस में गत गौरव की मूर्ति!

कला प्रेमी इटली के लोग
मुक्त मन स भरता संगीत
अमर गाते वर्जिल की कीर्ति —
भूमि में स्मृतियाँ बिछी पुनीत!
नील झीलों के जल में मौन
सुनहली शोभा सी निर धूप
रश्मियों की पलका पर मुग्ध
ग्यूनिमट का सँवारती रूप!

यहीं पाया मीरो ने मत्त
श्याम पंछी निज दीपक राग
गायकों चित्रकरों की भूमि
निपुण संचित शोभा की धाम!
मध्य युग से ही रहा मशाल
यहाँ राज्यों में कटु संघर्ष
मिले सीज़र को उसका दाय —
श्याम का रहा लौह शासन!

यहाँ का पुष्प नगर फ्लोरेंस
कलात्मक बौद्धिक केन्द्र समृद्ध
मधु सागर की वेनिस चारु
नहर द्वीपों की पुरी प्रसिद्ध!
संगमरमर शीशों का शुभ
रेशमी भी शोभा का देश
रिनेसाँ से पश्चिम को भव्य
दिया जिसने जीवन संदेश!

रोम के सँग ही स्मृति में ग्रीस
बना पोंपेई ध्वंसों में मग्न
देवप्रिय यह पौराणिक भूमि
खड़ी अपरूप शोभा में मग्न!
खंडहरों में शोभा सौन्दर्य
काल के उर पर करता राज
स्वप्न शुभ महत् शिल्प ऐश्वर्य
प्रेरणा देता जग को आज!

दिया होमर को जिसने जन्म
जहाँ बिखरे प्लेटो सुकरात
सभ्यता संस्कृति का जो देश
जगत में भाया स्वर्ण प्रभात!
प्रथित थी डेल्फी की दैवज्ञ
गूँजती अब भी गिरा गभीर —
गीत प्रिय फिरता वन में पैन
शौर्य प्रतिमा थे स्पार्टन वीर!

मातृ नगरी प्यारी एथेंस —
ध्वस्त खेपों से उठ इतिहास
जहाँ अब स्वप्न मूर्त अनिमेष
स्वर्ण युग का देता आभास !
शिल्प सौष्ठव के सुघर प्रतीक
स्तम्भ डारिक शैली के भव्य
मंदिरों हर्म्यों का सौन्दर्य
जगाता कला प्रेरणा नव्य !

रूप गरिमा प्रेमी वे ग्रीक —
स्वप्न सुषमा से कल्पित मूर्ति
अंग संगति में ढली अनिन्द्य
स्वर्ग शोभा की करती पूर्ति !
काव्य संगीत कला विज्ञान —
देवियों की छवि में अवतीर्ण —
वृहद् क्रीड़ा प्रांगण अब दूह
रम्य रसस्नात स्मृति भर जीर्ण !!

काल का ध्वंस लांघ — अविजेय
बढ़ रहा मानवता का यान
नव युग करता नव निर्माण
नहीं पीछे जग से यूनान !
जर्मनी में रुक कर कुछ काल
रहा युग कवि मन चिन्तन मग्न
महत् प्रतिभाओं का यह देश
जहाँ गांधी युग संगी मग्न !

यहीं शाकुंतल शोभा मुग्ध
फास्ट का कवि ऋषि हुआ प्रसिद्ध
स्वर्ग भू भी जिसको एकत्र
मिली कवि गुरु कृति में रस सिद्ध !
युगल चिन्तक वैज्ञानिक साथ
विविध रंगों पर जिनकी छाप —
नियारा सार्वभौमिक है तत्व
यहीं वेगनर ने स्वर मय बोध !

दार्शनिक वैज्ञानिक जन भूमि
यहाँ के कवि गायक विख्यात
यमी सापेक्षवाद का बोध
किया जिसने — जगती को ज्ञात !
युद्ध में विजित शौर्य प्रिय लोग
खोजते नव प्रेरणा प्रकाश
नाटय मचों संग यहाँ प्रभूत
नीति बाधो का मात्र विकास !

बृहद् उद्योगों का गढ केन्द्र
मंत्र यंत्र कौशल में निष्णात —
मिल सकें पूर्व पश्चिमी याम
धरा पर बिखरे नव युग प्रात !
उष्ण फिर शीत युद्ध से त्रस्त
ग्रथित बर्लिन नगरी आक्रांत
यहाँ अब साम्यवाद जन तंत्र
सामने खड़े सशंक प्रशांत !

जोगनी नैसर्गिक सौन्दर्य
न जाने कब पहुँचे अनजान
नॉरवे स्वीडन में कवि प्राण —
प्रकृति क जो शोभा संस्थान !
इंद्र ने वज्र मुष्टि से कूट
किया हो नॉरवे का निर्माण
घाटियों शृंगों का यह प्रांत
वन्य थी शोभा में असमान !

खाड़ियों से घुस गतमुख सिन्धु
घुँघुलियों से पकड़े हो केश
सहस्रों सुरधनुओं से दीप्त
फेन झरनों का यह प्रिय देश !
गुम्फित इंद्रचाप के सेतु
अप्सरा नमती जब मधु चाप
निभृत वन गिरि शिखरों पर उष्ण
रेशमी उड़ते वाष्प कलाप !

घाटियों से गर्तों में कूद
भागती नदियों की सित धार
चीड़ के वृक्षों की वन भूमि
सिहरती रहती सिसक अपार!
उच्च गिरि चट्टानों के श्याम
हरे गहरे सागर से ताम
सैकड़ों मधु मक्खी से द्वीप —
नॉरवे का वैचित्र्य विधान!

दृष्टि विस्मय स्वीडन की भूमि
क्षिप्र नद वनों सरों का देश
ग्रीष्म में अर्द्ध रात्रि का सूर्य
जहाँ भर नव सौन्दर्योन्मेष
सिन्धु नभ पर बरसा चिर पीत
उषा मुख का थी बिम्बित स्वर्ण
स्वप्न भूमी से रँगता मौन
घाटियों शिखरों को शत वर्ण!

स्फटिक शृंगों के तीव्र प्रपात
गलित हिम जल के मुकुर उदात्त
घाटियाँ ज्यों प्रशम चिर शांत
प्रकृति सुषमा का धवल सुहाग —
सुरंग पुष्पों के हँसमुख लास्य
गाउनों का करते शृंगार
रंग वस्त्रों में सज धज लोग
मनाते गीत नृत्य त्योहार!

दीर्घजीवी जन दीर्घाकार
विमल अपभ्र श्वेत अति गौर
स्वस्थ बहु कर्म कुशल अभिजात
भव्य संस्कृत शासन प्रिय धीर!
प्रकृति की यौवन श्री का स्वर्ग
अतिथि निधि गृह में जहाँ प्रभात —
क्षमा का स्वागत हास्य प्रिय नम्र
सुघर उत्तर का अमिय प्रात!

आंग्ल धरती पर धर निज पाँव
हुआ कवि को गोपन आह्लाद
विश्व में रहा एक स्वर व्याप्त
सिंह सा जिसका पौरुष नाद।
ससागर रहा विजय साम्राज्य
अस्त होता था जहाँ न सूर्य
आज युग जीवन के अनुकूल
बन रहा वहाँ प्रगति का तूर्य।

सत्य बनता रहता जब स्वप्न
चतुर्दिक फहराता जय केतु, —
युद्ध के स्पर्शों से जग आज
बनाते बन नव जीवन सेतु।
स्वाभिमानी निर्मम अंग्रेज
संतुलित सभ्य सौम्य सविवेक
मत्त संकल्प — न हृदय विहीन
आज के विपन्न युग के टेक!

अथक पौरुष से यह लघु द्वीप
विश्व मन पर रखता अधिकार
शांति संयम से बढ़ पथ दुर्ग
दुस्सह संकट क्षण करता पार।
प्रगति से परंपरा का मेल
रहा भू का विकास इतिहास
राज्य के साथ यहाँ जन तंत्र
हो सका विकसित बिना प्रयास!

लोक पूजित स्वर्णिम मधु छत्र
गूँजते यहाँ कर्म परिहास
स्वर्ग सुख दर्पण ग्राम प्रशांत
प्रकृति शोभा के मुग्ध विलास!
स्कॉटिश बॉयसट सिन होवोनें
पोखरों का रचते शृंगार,
चपल भू पाते फेनिल उरस
धूम बाला करती अभिसार!

सिन्धु गामी प्रसिद्ध यह देश
मिलाए जिसने बहु भू भाग
विश्व को दिया महत् साहित्य
सभ्यता संस्कृति का अनुराग !
आज भी जिसकी भाषा अमित
जनों के उर पर करती राज
संग्रहालय में यश के आज
कला वैभव के संचित साज !

यहाँ सामाजिक सेवा केन्द्र
लोक हित का नित रखते ध्यान
व्यक्ति को जन्म मृत्यु पर्यंत
मिले सुख सुविधा सुख से त्राण !
अभावों की निसर्ग मत पूर्ति
सतत श्रम बल से करते शोध
खोल नित नव उर्वर उद्योग
संगठित है सक्रिय सहयोग !

गृहों सौधों का सघन पुंज
मोहते दृष्टि झूमे उद्यान
यहाँ जीवन वैविध्य विशाल
सौम्य शिक्षित जन सहृदय प्राण !
अध्ययन गृह यह क्रीड़ा क्षेत्र
कौतुकामय उत्सव स्थल रम्य
व्यावसायिक जगती का केन्द्र
बहुमुखी श्रोमाग्र वैषम्य !

भले ही कल्मस का आकाश
धुँए से रँगता हो पट वात
तुहिन कण गामी धूप पर शाम
सुहाती मुग्ध रश्मि स्मित प्रात !
यहाँ बैठे संसद में जन्म
युगांतरकारी निर्णय मूक —
मांग जन छूट नीति में बस —
विश्व रटता हम विस्मय मग्न !

राजधानी यह नगर प्रसिद्ध
पूर्ण अपने में नव यह लोक
भव्य भित्तियों हर्म्यों की पाँति
दृष्टि को लेती बरबस रोक !
देखने में छोटा यह द्वीप
महत् इसका मानस चैतन्य
लोकप्रिय शेक्सपियर को जन्म
दिया जिसने उस भू को धन्य !

यहाँ का जीवन गौरव देख
सहज जगता मन मे सम्मान
हृदय में युग कवि के विश्वास
सुनेंगे धारम समय आह्वान !
इन्हें संसद् पद्धति का श्रेय —
प्रजा युग के हित को वरदान
इन्हीं का पा चेतन स्पर्श
हुआ भारत का पुनरुत्थान !

देख पश्चिम की श्रम तप वृत्ति
स्वर्ग भारत की आई याद
दैन्य दुख कर्दम का कर ध्यान
घिरा कवि मन मे मौन विषाद !
स्वर्ग को बना नरक का कुंड
यह धार्मिकता का अभिमान
बनाए जन को कर्म विरक्त
रिक्त निष्क्रिय आध्यात्मिक ज्ञान !!

जहाँ भू जीवन प्रति औदास्य
मूर्त दारिद्र्य दुख घन घोर,
रेंगता मनुज कीट सा तुच्छ
अविद्या का तम-घोर न छोर !
रूढ़ि कृमि जर्जर रुग्ण समाज
व्यक्ति बहुमत विदीर्ण निष्प्राण —
सोच पाया न क्षुब्ध मन और —
लोकमत भू में पहुँचा यान !

मित्र भारत के सब भू देश
रूस का उनमें अपना स्थान
दमित भू श्रम को जिसने भव्य
स्वप्न जीवन का दिया महान् !
प्राप्त कर जन का निश्छल स्नेह
सहज भारत के प्रति सम्मान
हुआ कवि का मन स्नेह द्रवार्द्र
हृदय का कर आदान प्रदान !

भव्य जाग्रत् यह जन भू भाग
धरा की नव समृद्ध श्रम शक्ति
महत् सामाजिकता का अंग
यहाँ का जीवन सक्रिय व्यक्ति !
पूजित शोषण पीड़न से मुक्त
मनुजता पाती शुभ अभिव्यक्ति
लोक मंगल सामूहिक ध्येय
क्षेम के प्रति अखंड अनुरक्ति !

बना दृढ़ सामूहिक संकल्प
प्रेरणा का अदम्य सित स्रोत
मनुज समता रस से अभिषिक्त
प्राण श्रम से जन ओत प्रोत !
पूर्ण करते क्षण में युग कर्म
सहस्रों कर पद मन संयुक्त
बना नारी का यहाँ स्वतंत्र
शक्ति का महत् स्रोत उन्मुक्त !

उठा रण से हो जन मन मुक्त
कर रहा नित सांस्कृतिक विकास —
हृदय में आध्यात्मिक सौन्दर्य
प्राण में हो चैतन्य प्रकाश !
आज अतर्कमय से शून्य
मुक्त सा पथ अनामय द्वार
मनुज बन रहा दनुज सा हिम
धरा जीवन दुख कम्पन भार !

यहाँ सह कृषि से श्यामल खेत
प्ररोहित शतमुख धन भू शक्ति
वृहद् सह उद्योगों का लाभ
भोगते सम वितरण प्रिय व्यक्ति!
सभी को स्वोचित अवसर प्राप्त
करें निज क्षमता का उपयोग
न्यून श्रम अवधि यहाँ श्रम स्वास्थ्य –
कला संस्कृति साधक हों लोग!

स्वस्थ शिक्षितों का यह भू स्वर्ग
देश की जो भविष्य संपत्ति
संगठित जहाँ सर्व श्रम कर्म
टूट सकती क्या वहाँ विपत्ति?
शांति कामी यह जनप्रिय भूमि
वृहद् हो रहा लोक निर्माण
मिटा जन का दुख दैन्य तमिस्र
दे रही भू नव युग आह्वान!

पृथक भौतिक साधन से सक्ष
चेतना का हो रहा विकास
मानना जड़ चेतन को भिन्न
भेद मति का भ्रम द्वन्द्वाभास!
रक्त बलि दे जन ने अन्याय
मिटाया भू से अत्याचार,
अग्नि ज्वालाओं में कर स्नान
हुआ वैषम्यों का क्षार!

जगा हो जन समुद्र में ज्वार
झुका युग भू तट उमड़ी क्रांति
प्रलय मथों से नव युग ज्योति
धरा पर उतरी – समता शांति!
प्रथम था जन मन का आवेश
निमिष में बदल गया परिवेश
विषमता दैन्य दुख तम चीर
स्वर्ग रूपांतर हुआ अशेष!

प्राप्त कर नर को भौतिक शक्ति
सक्षम रचना साधन नव यंत्र
विश्व जीवन का गढ़ना रूप
नव्य रच वैज्ञानिक भू तंत्र!
विविध भू भागों के अनुरूप
पूर्ण होगा निश्चय युग कार्य
ज्वार से शोषित था जन सिन्धु
यहाँ भी रक्त क्रांति अनिवार्य!

मानसिक भौतिक था भूकंप
रुद्ध अवचेतन पावक पूर,—
कष्ट श्रम तप यम त्रास तुरत—
ध्वंस परिवर्तन हुए क्रूर!
ध्येय था निश्चित लोकमय श्रेय—
रुधिर कर्दम सागर कर पार
लाँघ विघ्नों के शृंग असंख्य
विहँसता नव मानव परिवार!

प्रथम इसने ही स्पुटनिक छोड़
शून्य उर का मापा विस्तार
गुह्य नभ के अनुग्र को जीत
मौन ग्रह पथ का खोला द्वार!
प्रतीक्षा में भू की शशि लोक
अप्सरा लिए रश्मि जय हार,—
शिखरों पर ले युग अभियान
धरा जीवन करता अभिसार!

संग्रहालय जन शिक्षा केन्द्र
वहाँ रक्षित युग भू इतिहास
युगों के वसन विभूषण शस्त्र
चित्र संपद उद्योग विकास!
हर्मिटेज् लेनिन ग्राड में मुख्य
कला इति वास्तु शिल्प का कोष
प्रदर्शक है विस्तृत वृत्तांत
दर्शकों को दे संतोष!

कीव प्रिय मॉस्को लेनिनग्रा—
नगर वर यहाँ अनेक प्रसिद्ध
मातृ नगरी नव निर्मित कीव
नेपियर तट पर सुषम समृद्ध !
क्रांति का गढ़ था लेनिनग्राड
बड़े ज़ारों के हर्म्य अवाक
राजधानी मॉस्को प्रख्यात
दुर्ग क्रेम्लिन बन भू पर धाक !

लाल काले स्फटिकों का सौम्य
यहाँ लेनिन का स्तूप पवित्र
पारदर्शी बक्स में भव्य
सुरक्षित हाड़ मांस का चित्र !
लौह दृढ़ निष्ठा वज्र संकल्प
हृदय हो विगलित करुणा स्वर्ण
धरा पर बिखरा नव युग कल्प
दमित को करने मुक्त सवर्ण !

उमड़ रेड स्क्वायर मनाता हर्ष—
क्रांति का जन्म दिवस त्योहार—
परवती पद चापों से भूमि
लाल सेना में उठता ज्वार !
विश्व की एक महत्तम शक्ति
सोवियत भू का यह जन राज
अमित सामूहिक श्रम का सिन्धु
धरा पर वर्ग विहीन समाज !

महत् था वैज्ञानिक यम सिद्धि
सर्वहित कर उसका उपयोग
ग्राम को भी पुर के समकक्ष
श्रम कर रहा विराट् प्रयाग !
वज्र दृढ़ जनगण मन संकल्प
समुन्नत मनुष्यत्व का ध्येय
सांस्कृतिक रच जीवन प्रासा—
बने जन मन संघ अविजेय !

भीत गगन भीत धरा जब प्राण
गरजता सिर पर विश्व विनाश
शांति रक्षक होगा यह देश
हृदय में युग कवि के विश्वास!
शांति के बिना मधुरी शांति—
मिल गढ़े शक्ति शिखर भू भाग
सोवियत का भू प्रति शिव वाम
दिखाए मद् विवेक सद् त्याग!

भाव जीवन की भावी ज्योति
प्रसाय भाव रूस के पास
स्वस्थ स्पर्धा से हो चरितार्थ
साम्य का भू पर भव्य विकास!
धर्म मानव बुद्धत्व हो नींव
भाव सागर उर में दिग् व्याप्त
क्षीण प्रस्तर युग का चैतन्य
सब बर्बर हो स्वत समाप्त!

देख जनप्रिय आस्था की भूमि
गया कवि की यात्रा में घूम
कुबेरों का वह देश विलास
शासरों की विस्मय भव घूम!
गगन भेदी अट्टों की पंक्ति
दर्शकों का रजनी धनिमय
त्रि भुवनों के वैभव से पूर्ण
स्वर्ग थी आभा मुकुर अशेष!

मग्न उन्मुक्त हृदय के साथ
अतिथि जन का करते सत्कार
सभ्यता संस्कृति पर अनुरक्त
विचारों के प्रति चित्त उदार!
सुरभि थी सुषमा प्रतिमा मुग्ध
अप्सरा करती यहाँ विहार
वधुओं का यह प्रिय देश
मार्दनिर भौतिक विभव अपार!

भूमि कण कण में यहाँ अनंत
बिछा वैभव उर्वर विस्तार,
विधाता ने इसका निर्माण
किया निज महिमा से साकार।
शिखर हो घाटी मरु तड़ाग
गहन वन हों कि श्यामल खेत
प्रकृति सौन्दर्य धरा ऐश्वर्य–
यहाँ सब ऋद्धि सिद्धि समवेत!

निरख नैसर्गिक छटा विराट्
हृदय निस्तब्ध निर्निमिष दृष्टि
छाँह गुम्फित वन शृंग प्रखर
भावि विस्मय की करते सृष्टि!
तरुण भू का बहुमुख वैचित्र्य
तरंगित यम सा वक्ष उभार
देख स्तंभित रहता आश्चर्य
प्रकृति का वन्य भीम शृंगार!

धूम श्यामाभ्रों की घन कांति
सँजोती रंग नभ शरद दिगंत
इंद्र धन से प्रतिबिम्ब उद्यान
सहस्रों हँसते जहाँ वसंत!
स्फटिक निर्झर नैसर्गिक सेतु,
मुखर सरिता मरकत वन ताल
इंद्रधनु वेणी बाँधे मेघ –
दिशा मुग्ध थी पर मोहित काल!

विपुल कृषि वाणिज्य भव्य संपत्ति
अमित वैभव सौष्ठव धन सिद्धि
सुहृद् उद्योगों का यह देश
रत्नमती धरती मनुज समृद्धि!
कुशल कर्मठ कौशल प्रिय व्यक्ति
विभव की होती प्रतिपल वृष्टि
मनुज निर्मित स्वर्गों का स्वर्ग–
चमत्कृत रहती मोहित दृष्टि!

साहसी अमरीकी निर्भीक
मुक्त युग स्थिति प्रबुद्ध स्वच्छंद
वायु जल स्थल वश कंपित विश्व
गरजते सिन्धु व्योम निर्द्वन्द्व!
नगर ऊँचे अट्टा के पुञ्ज
स्वर्ग स्पर्शी असंख्य सोपान —
विपुल औद्योगिक वैभव सत्र
कला शिक्षा के केन्द्र प्रधान!

देव दुर्लभ प्रभूत रस भाव
रात्रि विद्युत द्युति के दिनमान
चूमती घन चरणों को ऋद्धि
विभव में करती शोभा स्नान!
साधते यंत्र मनुज का कार्य
सीढ़ियाँ चलती स्वयं प्रयाण
कोटि मस्तिष्कों से भी सूक्ष्म
कुशल गणितज्ञ यंत्र निष्प्राण!

नहीं आश्चर्य यंत्र युग तंत्र
बाँध दिग् छोरों में गति सेतु
ब्रह्म के प्रांगण में भू पुत्र
गाड़ने को अब निज जय केतु!
अभी यह प्रथम चरण ही मात्र
मूर्ति युग स्रष्टा यह विज्ञान
मनुज को सौंप विगत इतिहास
स्वर्ग का पाया अब वरदान!

व्यक्ति में यहाँ प्रेरणा मौन
जन में सामूहिक उन्मेष
सर्व वैभव साधन संपन्न
शक्ति भू पर शोभा ही देश!
यन्त्र बल से ज्यों घट बढ़ सिन्धु
मारता सागर उर में ज्वार
निर्यंत्रित करते वे भू भाग
धरा जीवन पर सब व्यापार!

परिस्थिति ! संकट स्थिति भी घोर—
विपक्षों में अब उभय विभक्त
विश्व ध्वंसक अस्त्रों से सद्य
प्रलयंकर हों जो अद्र समस्त !
व्यक्तिगत हो सामूहिक मार्ग
नहीं यह मानव जीवन ध्येय
मनुज मूल्यों को कर स्वीकार
उभय पथ से ही संभव श्रेय !

नए युग की हो वैभव सिद्धि
धरा के ओर छोर में व्याप्त
लोक जन हों संपन्न प्रबुद्ध—
न वर्गों के उपवन पर्याप्त !
सभी कुछ नहीं शुभंकर आज
विश्व रण हो सकता भू नाश
जनों का रहना सजग सचेत
नष्ट हो जाय न मानव वंश !

रोकती प्रकृति न अशुभ असत्य
असत् सत् से बढ़ परे, अनंत
चेतना में पनपाया पथ
छँटे जब निखरे नया दिगंत !
असत् हो महत् महत्तम सत्य
असत् पर सत् की जय अनिवार्य
हिरण्यात्मा का यही विधान
सत्य हित निखिल सृष्टि का कार्य !

व्यक्ति मन के समूह के मूल्य
मिलेंगे—या गति प्रगति विकास
मनुज युग ही दोनों का केन्द्र
मनुज पथ परिधि—मत्य अधिवास !
गढ़े विज्ञान बाह्य युग पीठ
तंत्र है अन्न वस्त्र श्रम धाम
सँजोए मनुष्यत्व का स्वर्ग
मनुज बनता निखर अविराम !

देखता मनश्चक्षु से प्रेम —
तड़ित् मधु से भी महत् समस्त
ज्योति मानव प्रीति की शक्ति
हो रही जग भू पर अभिव्यक्त !
स्पर्श से जिसके हर्षोन्मत्त
सिन्धु कर कोटि फणा में नृत्य
आत्म मंथन शोभा पर मुग्ध
नव्य मणि रत्नों से कृतकृत्य !

हृदय में छिपे शुभ्र मैनाक
क्षितिज धूमिल मेघों का चीर
उठाते धरा गर्भ से नील
नील का भेद श्याम गंभीर !
गंध से रोम प्रहर्षित वायु,
भृंग भरते वसंत गुंजार
कंठ में कोकिल के नव गीत
विश्व थी शोभा से साभार !

जन्म ले भू पर अमर प्रेम
जाति वर्गों के बंधन खोल
प्राण मन जीवन की उन्मुक्ति
मनुज को सौंप रहा अनमोल !
शुभ्र गरिमा का शोभा वक्ष
कामना संस्कृत अकलुष प्रीति —
प्रतिष्ठित मन में संत शांति
मनुजता में सित स्वर्ग प्रतीति !

मोर मन नव प्रकाश में स्नात
मुखर भू रचना में रत गात्र
उच्च प्रेरणा रश्मि से दीप्त
हृदय सौन्दर्य बोध रस मग्न !
साधना बनी भाव विमुग्ध
उगे चिर भू जीवन म भिन्न
मानव का मानस ऐश्वर्य
रूप गुण चिति का कर विच्छिन्न !

शांति से प्रिय न जिन्हें श्रम क्रांति
मूल्य से प्रिय न मूल्य की सृष्टि
नाम से गौण जिन्हें प्रिय रूप
सत्य जीवन से प्रिय सद् दृष्टि!
उन्हें प्रिय, जिन्हें न प्रिय संघर्ष
राग मद द्वेष रोष स भीत
विश्व रचना से विमुख विरक्त
आत्मरत जिन्हें पलायन गीत!

सुहाता जिन्हें मधुर ही स्वाद
सालता अम्ल लवण कटु तिक्त
जानते वे न विश्व वैचित्र्य
चेतना जिससे रस अभिषिक्त!
चयन कर रिक्त आत्म चैतन्य
विश्वमय की महिमा से दूर
शून्य रत वे — ईश्वर चिद् सिन्धु
जगत जीवन जिसका प्रिय पूर!

देख भू जीवन का वैचित्र्य
हो उठी व्याप्त सजग कवि दृष्टि
प्रकृति सुषमा भू — इसे मनुष्य
बनाएगा कब स्वर्गिक सृष्टि!
मनुज से पृथक परम चैतन्य
नहीं भू पर लेता अवतार
कोटि कर पद जो मर्त्य अमर्त्य
उसी पर क्रम विकास गति भार!

विश्व को होना अब संयुक्त —
मनुजता के हित उसे विधान
योजनाएँ रचनी बहुरूप
क्रम परिमा में जीवन हास!
सांस्कृतिक जैविक भौतिक मूल्य
समन्वित कर हर दैन्य विषाद
मूर्त कर आत्मा का तेजस
सँजोना भू जीवन आह्लाद!

देख पश्चिम भू सौष्ठव चित्र
हुआ कवि के मन में आभास —
बहिर्मुख जीवन में जन मग्न
न अंतर्जीवन पर विश्वास !
विषय संभ्रम हित यह दुर्भाग्य
कि पश्चिम बहिर्जगत में लीन
भाव जीवी भारत जन भूमि
वस्तु जीवन महत्व न हीन !

ह्रास तम का — भारत में रूप
पलायन पाप पुण्य की भीति
पारलौकिकता धर्म विरक्ति
अंध विश्वास रूढ़ि जड़ रीति !
सभ्य पश्चिम में स्थापित स्वार्थ
अनास्था रण भय कटु संदेह
शक्ति का मोह राष्ट्र का दर्प
बहिर्मुख भौतिक आग्रह सदेह !

राष्ट्र जीवन का निर्मम प्रेम
बन गया मन की सीमा घोर
विश्व मंगल का इतना स्वप्न
भंग — जिसमें न प्रेरणा डोर !
कभी मज्जित थी जैसे भूमि
सिन्धु जल प्लावन में भगवान
तथा अब मनुष्यत्व का तत्व
न्यून भौतिकता में निष्प्राण !

कला दर्शन से अधिक महत्व
जहाँ रखता सशस्त्र रण यान
हृदय में हिंसा चिर आराध्य
मनुजता पर शासन का ध्यान !
स्वतन्त्र हों संस्कृत गुणी समृद्ध
धर्मभिन्न दैन्य ग्रस्त म्रियमाण —
सभ्यता अब न जगत दे ध्वंस
बनी वह ज्वालामुखी समान !

दुख से कैसे हो जन मुक्ति
धर्म ने दिया त्याग विश्वास
भूत क्रम से बूझा विज्ञान
परिस्थितियों का किया विकास!
उभय पथ ही एकांगी सत्य
व्यक्त उनमें न समग्र प्रकाश
मिलें जब तक न ज्ञान विज्ञान
सभ्यता का रे निश्चित विनाश!

महत्ता संग जो हो सौजन्य
शक्तिमत्ता के संग कारुण्य
विभव के संग हो धार्मिक त्याग
न समय हत का भू तारुण्य!
राष्ट्र के संग जो प्रिय हो विश्व
सभ्य पश्चिम की भू हो धन्य —
बुद्धि संग हो जो श्रद्धा भाव
बहिर्जय संग अंतश्चैतन्य!

धरा धन में हो आर्थिक साम्य
दूषित ध्वंसास्त्रों का हो त्याग
विश्व शासन हो जन संयुक्त
शांति भू रचना प्रति अनुराग!
विजित हो क्षुधा विजित जल-वायु
समन्वित संस्कृत मनुज विचार, —
न बदले यदि अंतश्चैतन्य
मात्र वे बाह्य अंग उपचार!

मात्र मानवता रे धन देश
और सब देश प्रगति पथ शेष
निखिल संस्कृतियों का नवनीत
शुभ्र नव मनुष्यत्व का बोध!
सभ्यता को करना संघर्ष
मिटें राष्ट्रों की रेखा स्थूल
मर्त्य जन गत इतिहास समूल
खिले नव मानवता का फूल!

किया पश्चिम जग ने हो प्रश्न
जभी कवि उर में गिरा गंभीर —
शांति कामी स्थित भारत वर्ष
अहिंसा प्रिय प्रबुद्ध तप धीर !
किन्तु भू मन की प्रगति विकास
विरोधों में गतिरुद्ध — विभक्त
आक्रमण कर दे यदि आ शत्रु
करेगा क्या भारत ? — निःशस्त्र !

सहेगा भारत — मंत्र शक्त
दिया मन ने उत्तर सावेग
आत्म रक्षा हित दृढ़ संकल्प
एक हो युद्ध करेगा वेग !
भगा वन पशुओं के भय द्वंद्व
लौह के हाथ पैर विकराल
रक्त तृषितार्त धरा में घूम
न ठेलेगा प्रमत्त वह काल !

वीर भोग्या वसुधा — यह सत्य
वीरता के पर रूप अनेक
आज जन मानस भू रण क्षेत्र
विजय नित पाता जहाँ विवेक !
राष्ट्र सेवा में धरा विदीर्ण
मनुज जग का होगा जब एक
बहिर्मुख प्राण मन में मग्न
चेतना का नव मित अभिषेक !

रँगा रमणिया धामा मम
रक्त रोली से रच जन मांग
गरजती रही यहाँ रण भूमि
पहन पग अरि मुंडों की माल !
आज अणु अस्त्रों से अभिभूत
प्रकृति का आदि शक्ति का दर्प —
गागता पुण्य शान्तप्रभ वधु
विनत पल तमस गहिर मन गए !

रक्त पद्मासन पर आसीन
विश्व भू पर फिर नवी वेश
किरण के कर पद बढ़ा सहस
अग्नि बरसाएगी सोन्मेष!
सत्य हित होगा यह युग मुक्त
विश्व जन मंगल होगा ध्येय
मनुजता के विकास का द्वार
मुक्त कर देगी ज्योति अमेय!

शक्ति का दर्प मनुज को हिंस्र
दनुज का बना रहा प्रतिरूप
ध्वंस के लिए नव नर प्राण
खोदता निज विनाश का कूप!
शक्ति मद हो जब युग का शांत
खुले तब रचना दीप्त दिगंत
जगत की भूत शिखा का दैन्य
हरे चेतना प्रभात तुरंत!

पथ भय से जर्जर भव विश्व
चाहिए देश एक स्थित प्रज्ञ
जिए जो मरे सत्य के हेतु
निखिल जीवन हो जग हित यज्ञ!
जिए, हाँ जो ईश्वर के हेतु,
अनास्था का जड़ तम कर दूर
देह मन से पर जो चिद् ज्योति
हृदय म उमड़े उसका पूर!

मनुजता का मे दिग् अभियान
करे शुभ अंतरिक्ष का पार,
ऊर्ध्व ज्योतिर्मंडल का बोध
समाहित भू पर सहज उतार,
रहस् अन्तर्नभ स संकेत
भेज — दे पुन भव्य संदेश
भेद जड़ भौतिकता का ध्वांत
भरे भू मन में नव उन्मेष!

मनुज को अर्जित करनी आज
धरा पर ईश्वरत्व की शक्ति,
लोक अंतर्मन का निर्माण
कर सके जो — संस्कृत हो व्यक्ति!
वृहद् अणु बम हो रचनाधीन
सँवारे बहिर्जगत का वेश
सँजोए अंतर्जग का सत्य
आत्म बम — भू हो स्वर्ग अशेष!

सत्य? ईश्वर? — शब्दों में बाँध
उन्हें विबुधों में बनना मूक —
न हो यदि ईश्वर पर विश्वास
(शुभ्र श्रद्धा आस्था प्रति मूक!)
लोक मंगल भू रचना शांति
सत्य ईश्वर के शुभ प्रतिरूप
इन्हीं मूल्यों की रक्षा हेतु
लड़े भारत — सह झंझा धूप!

युद्ध यदि युग भू पर अनिवार्य
मनुजता हित दे निज बलिदान
पथ भू तम का मुख कर दीप्त
करे भारत जन भू कल्याण!
हृदय लेगा दानव में जन्म
हिम वन को बाँधेगा प्रेम
सत्य के हित अर्पित कर रक्त
बढ़ेगा भू का योग क्षेम!

शांति के हित हो जग में शांत
दैत्य भाग इसमें मानव
नाश से हो नूतन निर्माण —
सृजन ही नित्य विराम का छंद!
मग्न हो मानुषिक जन मृत्यु
नयी भू निखरे नूतन स्वर्ग
ध्वंस नव जीवन का हो द्वार
मिलें मानवता में गत वर्ग!

युद्ध यदि दुर्निवार युग सत्य —
रक्त बह धोए धरा कलंक
जिसे नव जीवन शोभा पद्म
जन्म दे नव युग को भू पंक !
हिंस्र जड़ भौतिकता को भेद
ऊर्ध्वमुख पाता सौम्य विकास
यही क्रम नियति सृष्टि का ध्येय
मृत्यु तम से अमृतत्व प्रकाश !

भागवत सत् पर ही विश्वास
लोक संयम की करता वृद्धि
असत् दानवता की उपलब्धि
शुभ्र सत् मानवता की सिद्धि !
असत् से महत् सृजन रत सत्य
अचित् पर चित् की जय अनिवार्य
तमस से नव प्रकाश की ओर
सृष्टि जाए — विधि से निर्धार्य !

साम्य जय में अर्जित कर ज्ञान
प्रौढ़ कवि लौटा अपने देश
मार्ग में सूर्योदय की भूमि
प्रतीक्षा करती थी अनिमेष !
चंपई आतप की मृदु देह,
झुके स्मित द्रुम रवि मंडित केश
गंध फूलों में लिपटे अंग
सहज था शील सुघर प्रिय वेश !

देख भू का अनिन्द्य सौन्दर्य
किया कवि के मन ने स्वीकार
सूर्य देवी की यह प्रिय भूमि
धरा जन को स्वर्गिक उपहार !
चुका कर चार घास की बूँद
भिक्षु बन करतल में साकार
दिया जिसने दीपा को जन्म
धरित्री को पहना मणि हार!

सूर्य पौत्रों का प्रिय नृप वंश
स्वर्ग सी भू पर करता राज
देवता की सेवा के काज
प्रजा बन उतरा देव समाज!
अलौकिक थी शोभा का देश
हँस रहा नभ शिशु अकलुष,
युवति वन-स्वप्न वेणी वस्त्र –
भूमि चित्रित प्रिय मुख मृदु फूल!

सहसा वर्षा से दिग् व्याप्त
सौमनस सुषमा का भू प्रांत –
उच्च फ्यूजी का गौरव शृंग
वंदित करता शुभ्र – शुभ्र प्रभात!
सँजा फूलों के हँसमुख पर्व
प्रकृति करती मंगल अभिसार,
झील सलिला पर सतरँग छाँह
बन अपलक वन प्रिय शृंगार!

तने मृदु गाध फेन मरकताभ
चेरी पुष्पों के शुभ्र वितान –
बैंगनी फूलों की तरु बेलि
नील दृग आइरिस हरती ध्यान!
शिखर वन भर खोहों की भूमि
घाटियाँ पाती कल कल गान
धरा सौन्दर्य स्वप्न छवि नीर,
जुड़ाती चंद्रमल्लिका प्राण!

प्रकृति मुग्ध मामा प्रेमी भाग –
फूल का नागसपन प्रख्यात –
दूर शोभा यात्रा के हेतु
प्रकृति पूजन जात दिन रात!
भावनी अप्सरियों सी चारु
सुघर गेशाएँ उत्सव नृत्य
मधुरिमा शील स्नेह की मूर्ति
अतिथियों का करती कृतकृत्य!

वाटिकाओं में हो समवेत
बाल संग आरम शांति कर पान
मुग्ध सौरे के प्रेमी भक्त
प्रकृति शोभा का करते ध्यान !
टोकियो राज्य नगर विख्यात
जन्म में बचा अनेकों बार –
हिरोसे सा भू को भू डाम
मुस्काता – बने नया संसार !

सरस कौशल प्रिय कमठ नम्र
यहाँ नारी रंग स्मित वेश
स्नेह मय सहृदयता की मूर्ति
मरम विरचित जिनके मृदु कर्म !
कलात्मक नमरत कर सुकुमार,
सूक्ष्म सौन्दर्य बोधमय दृष्टि
चित्र हो काव्य नृत्य हो नाट्य
भाव रुचि संस्कृत उनकी सृष्टि !

किमोनो में चित्रित सी नार
यौवना चपल तन मन फूल
कर्म उर्वर लिए सुघर भूमि –
दैव इसके प्रति हो अनुकूल !
अंध भौतिकता का उन्माद
इन्हें दे पुन न सेनाबाद
सतुसम बहिरतर का सौम्य
सभ्यता का सर्वोच्च प्रसाद !

स्मरण कर हिरोशिमा का काठ
हरा हो उठा मनुज का भाव
पुरेया कब संस्कृति का मर्म
रुकमा कब उर रक्त स्राव !
पाप की स्माति नियम कर आज
रच रहा मानव सर्व विनाश
दीनता – भभक उठे भू सिन्धु
मूषा से ढँकता भुव आकाश !

विश्व स्थिति से मन में अवसन्न
पहुँच फिर तपोभूमि में प्रेम
गया दक्षिण सागर के तीर
खोजने जन भू योग क्षेम !
प्रथम ही मिला उसे संयोग —
खोजने संत सत्य प्रमाण
गया कवि दिव्य प्रीति के द्वार
ज्योति का पाने नव वरदान !

निभृत आश्रम में आत्म प्रशांत
योग रत थे श्री गुरु अरविन्द
दिव्य मानस के स्वर्ण प्रतीक
विजय मन पर हों स्थित सित इंदु !
वहाँ देखा कवि ने दृग खोल
शुभ्र चैतन्य सूर्य आलोक —
प्राण जीवन मन से बहु सूक्ष्म
तप संस्कृत हो नव चिद् लोक !

दृष्टि जो कवि के ईश्वर दत्त
उतर आया उर में अज्ञात —
खुला कर दिव्य बोध का शृंग —
चेतना का नव स्वर्ण प्रभात !
ज्ञान विज्ञान अरूप का सत्य
न तप मेधा दर्शन से प्राप्य
अनिर्वचनीय तत्व का मूर्त
बुद्धि भावातीत सर्व में व्याप्त !

त्रिविध लोकों का अक्षय बोध
बिना जिसके जग भूत विनाश
स्पर्श मणि — जड़ जिसमें चैतन्य
ज्योति तम में पर स्वयं प्रकाश !
अतल मय अथम मिला का सिन्धु
व्यक्त हो सका न जिसका अर्थ
मूर्त देखा कवि ने वह सत्य
सूक्ष्म दर्शन में — नव समर्थ !

गुह्य निश्चेतन से नभ व्याप्त
दिव्य अतिचेतन तक सोपान
याग सक्रिय था — दिखा निगूढ़
विश्व का अन्तर्दीप्त विधान!
कोटि सूर्यों सा हो आकस्म
ऊर्ध्व चिद् विद्युत्स्फोट विभास —
एक आश्चर्य चकित हग वाक्
ज्योति तन्मय कवि उर कुछ काम!

दिखा कवि को विभुत चित् तत्त्व
सच्चिदानंद अनिर्वचनीय
आदि जो सत रूप का रूप
शुभ सौन्दर्य परम रमणीय!
प्रीति आनन्द शांति नीरोग
ज्योति रस थी शोभा का धाम
जगा कवि उर में नव उन्मेष
हुए विस्मय रोमांचित प्राण!

जगत जीवन में जो कुछ व्यक्त
मात्र उसका धूमिल आभास —
शक्ति को होना था अवतीर्ण
मनुज का करने ऊर्ध्व विकास!
जगा क्षण भर में गुप्त प्रबोध
विश्व जीवन का क्या शुभ ध्येय?
कौन सा युग विकास का द्वार,
निखिल मानवता हित क्या श्रेय?

मिटा माया के क्षण का चित्र
निखर फिर उठा मनोमय लोक
दीप्त क्षण में भर ग्लानि श्याम
प्राण हो उठे कृतार्थ अशोक!
क्षमा युग कवि का अतिचित्त
चेतना भाषा में साकार,
प्रेम का तद्गत पावन स्पर्श
खोल देता शाश्वत के द्वार!

अर्थ धार्मिक सामाजिक शास्त्र
ज्ञान विज्ञान बोध का सार—
समन्वय से वह सत्य विराट्
मूर्त था—शब्द अर्थ के पार!
नाद का था कवि को अवलंब—
चेतना का पा अब नव लोक
उठ रहे थे जब भू से पाँव
लिया उसको वाणी ने रोक!

शुभ्र पद्मासन पर ध्यानस्थ
स्वर्ण प्रतिमा ने अपलक देख
जगा कवि तंत्री में झंकार
खींच दी सम्मुख भावी रेख!
हरित अप्सरी समान अनिन्द्य
प्राण यौवन से भरी अनन्त
धरा फहरा घन सुरभि दुकूल
खोल उर में सौन्दर्य दिगंत—

विहँस बोली—प्रभाव का वीर्य
किसे सौंपोगे कवि अधिकार?
धरा ही की वह उर्वर योनि
उगाने का जिसको अधिकार!
बिना धरणी का ले आधार
शून्य में होगी ज्योति विलीन—
व्योम से पिघल अग्नि के बीज
व्योम विरहित—होंगे बलहीन!

मनुज दो तत्वों का एकात्म्य—
प्रेम जिसका स्व रूप शिव नाम
इधर जड़ उधर वही चैतन्य
सृष्टि श्रेणी जिसका परिणाम!
धरा जीवन के संभव योग
नयी चेतना करो संचार
दूँगी मैं तुमको चरम अनंत
स्वर्ग का मिला अमर उपहार!

छिपा था भू प्राणों में सूर्य
फूटती स्वर्ण हरित श्री श्याम
चकित देखा कवि ने — मूर्तित
चेतना का नीराजन धाम !
निरख भू का चैतन्य स्वरूप —
बढ़ी मृद् प्रतिमा प्रति अनुरक्ति
पुष्ट करता था वह विश्राम
सक्षम जड़ सत्ता सक्रिय शक्ति !

मग्न ग्राही कवि मधुकर मर्म
जगी वृंतों में गुंजार
कल्पना के फड़के सित पंख
चुना कवि ने भू मधु रस सार !
कला रुचि प्रतिभा भगवत् वेश
झूम वन शोभा उपवन फूल
मोम सी भाव बुद्धि से नम्र
रचा विच्छिन्न लोक अनुकूल !

अपहृती थी प्रायम में शांति
सिन्धु सी निस्तरंग गंभीर
सुनहला प्रति मानस आलोक —
ज्योति के हो सहस्र सित तीर —
व्याप्त था आर पार, — नीरंध्र
संगठित था जीवन चैतन्य
लोटता प्राणों में आनंद
भरा था स्वर्ग स्पर्श सी धन्य !

दिव्य भावों के स्वर्ण मरंद
लिपट रोमांचित करते प्राण
ज्योति निर्झर सी झर सित-धार
प्रेरणा गाती मन में गान !
बिखरती सुंदरता सी मूर्ति
झूम नम जाते पद छू फूल
प्रीति सी बाहर भीतर मुक्त —
प्रीति सरिता भव सिन्धु अकूल !

घुल रहे थे सब शोभा शोक
मनो नयनों में छवि अनिमेष
चेतना आभा से था पूर्ण
स्वप्न सौरभ मधु का परिवेश !
सिहर उठता था सुख से गुह्य
शिराओं में था स्वर्णिम रक्त
अलौकिक आकर्षण था व्याप्त
अभीप्सा प्राणों में अव्यक्त !

शांति सी अनुभव करती शांति
प्रीति की निःस्वर चिद् झंकार, —
शुभ्र शतमुख मणि सोपान,
स्निग्ध आत्मा की हा शिव द्वार !
ज्योति आनंद मधुरिमा पर्व
मनाती प्रकृति भेद भय त्याग
बरसती स्वर्गिक भूति असीम
समर्पण — श्रद्धामय अनुराग !

देख आसन्न अधर में दीप्त
औपनिषदिक चित् सूर्य प्रकाश
सभ्यता क्या अब रिक्त अपूर्ण —
हुआ कवि के मन में विश्वास !
बढ़े कर भौतिक पसार भव्य
आज पश्चिम जग में विज्ञान
किन्तु आत्मिक आभा से शून्य
हृदय *स्पंदन विहीन निष्प्राण !*

चिरम आध्यात्मिकता में मग्न
भग्न भारत में जीवन दैन्य
अचिर भौतिक वैभव में मत्त
दंभ पश्चिम में हिंसा भीष्म !
समन्वित कर्म रस अध्यात्म
धरा जीवन में करे विकास
हृदयों के मन्दिर में शुभ्र
देवता करें पवित्र निवास !

व्यक्ति उन्नमन मान माधार
मही समक्ष जन भू उद्धार
साधना बनी — भगवत् ज्योति
धरा पर हो कैसे साकार!
ऊर्ध्व जीवन — इसका क्या पथ?
कहाँ समदिक पथ में अवरोध?
जगा मध्यम कवि उर में बोध
कुसुम नभ का हो क्या प्रतिमाध?

व्यक्ति हो देह प्राण रज मुक्त
धरा पर माए ऊर्ध्व प्रकाश —
सिद्ध हो सके न पूर्ण प्रयत्न
पूर्ण हो सका न मनोविकास!
मस्वपन कहीं दृष्टि का दोष
कहा भगवत् जीवन प्रति भ्रांति
जगत ही में ईश्वर का वास
प्रकृति पथ ही में स्वर्णिम क्रांति!

प्रकृति गुण हों आत्मा हित पाश —
कर्म गति विधि पर माया छाप —
खुले सहसा तम मोह कपाट
हृदय में उतरा स्वर्णिम बोध! —
दिखा जग जग में ईश्वर व्याप्त
जीवना था न उस प्रच्छन्न —
नुज सबका का कर मुक्त
र्म को रचना था सवत्र!

ईश्वर के हित था अभिप्रेत
र का निज आत्मा की शुद्धि
प्रति बने मनुज-उर मुक्त —
मंगच में भी कवि बुद्धि!
में वे कितने ही सिद्ध
कर चुके अनाहत नाद
हो सका न सहृदय नीस
जन मरणा का न विषाद!

नहीं जब तक होगा परिणाम
ताम का जग में मुक्त विकास
प संगठित भू पर विप विकत—
संभव सित भगवत् उल्लास !
ही स्वर्णिम सामूहिक द्वार
चेतना का सुरधनु स्मित सेतु,
मुक्त उर नारी नर हों पार
प्रीति का फहरा ऊर्ध्वग केतु !

ही सामूहिक भगवत् मार्ग
गग का सित आदान प्रदान
राम का मुख हो रश्मि प्रदीप्त
भाव गुंफित नर नारी प्राण !
ऊर्ध्व प्रेरित हों जीवन मूल्य
प्रेम की हों सब जन संतान —
चाहिए जीव जगत् को प्राप्त
ज्ञान से आलोकित विज्ञान !

भावना ही वह स्वर्णिम रज्जु
जनों को करती भगवत् युक्त
मनुज उर में ईश्वर का वास
मनुज के प्रति हो उर उन्मुक्त !
सदाशय हों व्यक्तिगत प्रयत्न
न संभव उनमें भू कल्याण
पलायन मुक्त भाव भू प्रीति
करे जन धरा स्वर्ग निर्माण !

मनुज मन् पर करता संदेह
जगन्मिथ्या का होता भान
जीव को कहता मनुज स्वभाव
भेद मति का निर्मम परिणाम !
गम्य ही की है ममता एक
वही पर धर्मों का संस्थान
मनुज निश्चय ईश्वर का अंश
भले जाने न मनोविज्ञान !

न जब तक सामाजिक परिवेश
बनेगा ईश्वर के अनुकूल —
न होगा प्राण भुवन छवि दीप्त
न डूबेंगे गत नैतिक कूल।
जाति वर्णों में शून्य विभक्त
रहेंगे मनुज ऊँच या नीच
मतों धर्मों में जग विदीर्ण
स्वार्थगत स्पर्धाओं के बीच।

न जप तप संयम त्याग विराग
मुक्ति या इष्ट सिद्धि के द्वार
राग चेतना शुद्धि ही पूर्ण
भागवत भक्ति मुक्ति का सार।
शांति सौन्दर्य प्रीति आनंद
धरा पर करें सतत अभिसार
राम हो कृष्ण बुद्ध या मुक्त
हिरण्यात्मा हो भी साकार।

मंदिरों में बन प्रस्तर मूर्ति
हो गया ईश्वर निष्क्रिय मात्र
नाम आस्था का पथ प्रतीक
संप्रदायों में छिन्न समाज।
मनुज संबंधों में धर रूप
विश्व को करना भाव प्रवण
हृदय हो उसका पुण्य का धाम
दृगों में उसका रूपोन्मद।

काम बन मानवीय रस शुद्ध
रच नव शोभा का संसार
प्राण सुख वैभव में महिमाभ
धरा जीवन का कर शृंगार।
न आध्यात्मिक सांस्कृतिक विकास
मनुज जग में संभव निर्बाध —
तीर सी चुभे फूल छवि देह,
प्रेम यदि रहे पुण्यतनु व्याप्त।

खुलेगी यदि न काम की ग्रंथि
रहेगी बुद्धि धूम आच्छन्न
अन्य नर देश जाति कुल भक्त
रहेगा षड्रिपु खड्ग विपन्न !
खोल उन्मुक्त हृदय के द्वार
प्रीति शोभा जग में विस्तीर्ण
पिए मानव शाश्वत सुख हर्ष
अग्नि दीक्षा में हो उत्तीर्ण !

राम चेतना स्वर्ग सिद्ध वह्नि
शुद्ध भगवत् आनंद स्वरूप
तपे इसमें निखरे उर स्वर्ण
मनुज हो ईश्वर के अनुरूप !
इन्हें अंतर्मुख यह प्रभु भक्ति
बहिर्मुख जन भू जीवन शक्ति
बहे भ प्राणों में चिन्मुक्त
प्रेम को मिले पूर्ण अभिव्यक्ति !

मोह रहा था प्रेम
मैंने तुमसे हृदय की ग्रंथि कठोर
गाथा उसमें गुह्य
प्राण भवन — जिसका था आर न छोर !

अवचेतन तम पंक —
जब तक उसका करे न नर संस्कार,
राम भक्ति प्रभु ध्येय —
नहीं करेगी मनुज बुद्धि स्वीकार !

रुद्ध राग ही बन भीषण पशु मग्न
जग जीवन का करने का सगर
पशु शक्ति सम करता नर हुंकार —
खोलो नर आत्मा निरुद्ध उर द्वार !

व्याप्ति द्वार

१ अतर्विकास
२ अंतर्विरोध
३ उत्क्रान्ति

अंतर्विकास

खोलो बुद्धि कपाट
भरती ज्योतिर्धार
जग हो विकास क्रम क्षेत्र
निराकार साकार
हो मत रस सृष्टि
बहिर्गत व्यापार
भू हो संस्कृति केन्द्र
स्वर्ग करे अभिसार!

निभृत कौन बस रहा मनोभू पर
स्वप्न सुभग चेतना सजग पग धर
खोल सुनहले गोपन वातायन
बरसा रस शोभा प्रकाश निर्झर!
अंतर्जीवन का स्वर्गिक प्लावन
तन मन प्राणों को करता मज्जित
आत्मा के अंतर्मुख यौवन से
हृद् तंत्री मादक छंद झंकृत!
मुक्त प्रीति के अस्पृष्ट स्पर्शों स
स्वर्णिम संगति में बँधता जीवन
नव मानव की अस्फुट भावों से
मर्म गूँजता क्षमा शिशिर प्रांगण!
झूमते सित लावण्य लोक उर में
नव भावों का भर रस सम्मोहन
उपचेतन इच्छा पावक में तप
कांचन बनता प्राणों का यौवन!

सपनों की मांसल जग सरसी में
रूप चेतना तिरती स्वप्नप्रभ
मदस्फुट पंखों से मांसल तन
स्नेह मधुर बरसाता उर सौरभ!

राग चेतना की आभा सद्
नव यौवन उर में होती जागृत
अननुभूत सौन्दर्य बोध से फिर
जीवन मुग्ध होता अभिनव भासित!

उषा लाज लोहित मुस्काती सी
मोहित मानस क्षितिजों पर आती
षड्ऋतुओं की धूपछाँह भाते
मधु मदन यौवन छग लाती!

स्वप्न मंजरित से लगते मृदु वन
सुन मधु प्रेरित कल पिक कूजन
कलियों की पंखड़ियाँ रंग उठतीं
गंध मदिर स्वर की मधुकर गुंजन!

वन धरणी की हरीतिमा अपनी
मखमल ज्वाला सी जीवन मांसल
भावों की कलिका उर में अपलक
पैमानी स्वप्नों के रेशम दल!

उस सम्मृति के नभ सावन की
परिक्रमा करती षड्ऋतु छवि
जहाँ चेतना मन का रस वैभव
जीवन मधुप में हँसता मंजित!

ग्रीष्म तड़पता मनग्र्वीमा का
पावस शांति सुख में करते मज्जित
सपनों से उठ प्रथम अंबर
घन से मानस को करुण व्यथित!

शीता से बन गा जगता मग मन
धन शिशिरा का विहाग सौरभ
जहाँ छायता भास्कर पुञ्ज सम्भव
अंतर पुन्ना म भागा के राग!

पावस भरता रस उभर बनमे
तड़ित् स्फुरण से होने उन्मथित
श्री सुषमा की रस फुहार बरसा
मरकत भू पर बिछते हृत हरित ।

इन्द्रधनुष प्रभ स्वप्न मनु रचकर
भू जीवन हित बनते आरोहण
भाव बोध का नई व्योम छोते
पी खग स्वर में बहु नव प्रणय वचन ।

स्निग्ध शरद् मुसकाती आँगन में
निज शशि मुख से उठा बाष्प गुंठन
धूपछाँह आँचल सी बन ज्योत्स्ना
हो प्रखर आभा प्रतीक चेतन ।

काँस फेन की फूल सेज में नव
नव घन पंथ दुकूल धरे तन पर
कमल मुखी फेरती हंस ग्रीवा
चंचल खंजन चितवन से मन हर ।

हरसिंगार शोभा पड़ती झर झर
स्वच्छ चन्द्रमा दर्पण से सरि सर,
कुंद स्मिति मालती मुकुल पुलकित
पद्म शशि तन की शारद सुंदर ।

हिम आती धूम के पटभारों का
नग्न देह पंजर से लज्जाप्लुत
शिशिर ओढ़ती धूम भरे मुख का
जीवन गरिमा से करते मंडित ।

कैसे हो विवसन जन मन कानन
विजन चन्द्रमा थी में विद मुकुलित
अंध कुहासों से धूमिल भासी
जावन जागी मधु तुहिन विजड़ित ।

सूने आसन विरथी मुख सरसिज
दुःसह हैम्प समीर सर्प दशन
की गेहूँ में रोम हरित बन भू
प्रीति स्वप्न जागती नाग्र मोहन ।

नव वसंत हेमंती रस प्लावन में
चिर किशोर मन से अनंत यौवन
स्वर्णिम केसर की अलकें मुख पर,
घनीभूत सौरभ से विरचित तन !

पाटल ज्वालाओं के झुलसे वन
मृदुल प्रवाल क्षितिज भरते मर्मर,
मधु मरंद मथित समीर चंचल
नील रेशमी रश्मि छत्र अंबर !

फालसई धूली व स्वर्ण किरण
चित्रित करती गृह पथ पुर कानन
बहुरंगी छायाओं में लिपटे
श्याम स्नात से लगते भू रज कण !

घुस पड़ते कलियों के द्वारे भृंग
गुन मधु गुंजन कर रज गंध सघन
ज्वाल पथ फूलों में खिल उठतीं
धरा योनि की कामनाएँ मादन !

महके हुलस पीले चंपक वन
माते ताम्र क्षितिज पल्लव चंचल
जगीं आम्र मंजरियाँ रोमांचित
ज्वलित पलाश शिखा के विद्रुमदल !

कोकिल आशा का संदेश देती
धीर प्राण मन का विषण्ण मधुर,
सौरभ निःस्वर रस तन्मय करती
छू पराग की लपटों से अंतर !

चिर यौवना प्रकृति के अंगों में
फूट पड़ती सौन्दर्य कांति नूतन
नव वसंत की आत्मा पग पग में
भर दृष्टि को करती सम्मोहन !

पूत मानवीकृत भांति हृदय भीतर
चमकी ज्वाला गिरिवर भू रस मथित
नव प्रकाश के अंतरित झूमते
बाहर विश्व में भर उर को विस्मित !

रजत दीपनी अधिसम भृंगों स
दीप्त प्रेरणाओं के झर निर्झर,
सूक्ष्म प्राण वीणाएँ झंकृत कर
भरते अंतस् में स्वर्णिम मर्मर!
मुक्त युवक युवती जन निज मन में
गाढ़ एकता का करते अनुभव
देह भाव की रज को अतिक्रम कर
कुण्ठ जन्म लेता समग्र मानव!
एक सुरभि जाने किन सुमनों की
अंतर मुकुलों से उड़ कर आती
अमृत चेतना के रस स्पर्शों से
प्राणों को आलोकित कर जाती!
विस्मित लगती भू प्रहसित अंबर
रस क्षितिजों में उड़ता प्रेरित मन
अहं बोध से निखर सर्व स्त्री नर
मुक्त भोगते आत्मा का यौवन!

विश्व भ्रमण से लौट अंत कवि ने
देखा केन्द्र अभीप्सा का अनुक्षण
अपलक जन लोचन पुलक स्मित मधु,
हृदय प्रदीप सँजोए नीराजन!
शंख ध्वनि से कर सित अभिवादन
गाया स्त्री नर ने स्वागत गायन
कुसुमित वंदनवारों से रच पथ
मंगल घट से सँजो शिविर प्रांगण!
शुभ हर्ष वह ध्वनित हुआ दिशि में
मुक्त भावना पंखों पर उड़ कर
अपने ही घर में अभिनंदित हो
शीश संकुचित हुआ सुकवि प्रवर!
भाव लास्य कर नव युवती जन से
मुद्राओं के बाँधे आलिंगन
नूपुर ध्वनि झंकृत कर जीवन क्षण
अंग भुजों के रचे दीर्घ तोरण!

युवकों ने बन मार्ग बीथि युग स्मित
युग कवि का सम्मान किया शाश्वत
कला प्रयोगों क्रीड़ा नाट्यों से
सस्मित शुभ नर का कर वर स्वागत!

पुष्पहार में छाया में कवि ने
हरि को पहनाया द्रुत उपकृत मन
उसे हृदय से लगा हर्ष विह्वल
स्नेह उच्छ्वसित बाष्प द्रवित लोचन!

देखा हरि ने सिंधु पार आ नर
लोग संस्कृति पिक प्रबुद्ध विकसित
मत दृष्टि का स्वप्न विश्व स्थिति में
वस्तु बोध में हुआ ललित मंडित!

बनी हरि का निश्छल प्रेम मिलन
हो संबंध समागम युग कांक्षित
मिले प्रेरणा क्रम भाव तन्मय
हुए चेतना प्राण प्रीति अर्पित!

हरि के रूप से युवकों के भीतर
जन्म ले रहा था नव मनोभुवन
विश्व शांति का वीर युगांत तमस
हँसता हो चित् स्वर्णिम नव पूषण!

देखा कवि ने संस्कृति मंदिर में
रम प्रकाश गवाक्षे शिखर जीवन
सूक्ष्म राग चढ़ता तरल उर के
रस सुषमा में भरती संवासन!

भावोद्वेग में सपनों हलचल
मन का मथता पावन संवेदन
प्राणों के शोभा पावक में तप
घटने उर में प्रत्यक्ष परिवर्तन!

ज्ञान प्रवचन मन के बढ़ शुभतम
नयन मुक्ति चमचम करना उठ मन
देह कामना बनती स्वर्गोपम
मर्त्यजीवन था पा फिर यशागम!

अनुशासन अनुशासन कहता हरि
अनुशासन ही जन भू का जीवन
अनुशासन की बध्य रश्मि से बिंध
संभव सामूहिक जन संवर्धन !

उपचेतन छायाभ्रम माटी में
बहता मोहित सुषमा का प्लावन
पाँव मिचौनी खेल मुग्ध जगता
रश्मि प्रेरणाऽऽकांक्षों में यौवन !

इंद्रिय द्वारों से आ आ बाहर
मन सित जीवन मधु करता संचय
भू इच्छाओं का मुख दीपित कर
आत्मा के स्वर्णिम कर से अक्षय !

भावों की हीरक सरसी म तिर
संवेगों के हरित पुलिन छू कर
रसोन्मुक्ति में मज्जित होता उर
चिन्मूर्त्यों के मुक्ता चुन भास्वर !

मनु का सुत जन आत्मा का मनसिज
मुक्त विचरता मानस रस ईश्वर
जन भू को कर जीवन श्री उपकृत
भू रज में रत भू रज से ऊपर !

सिन्धु मत मूँगे निश्चेतन के
हो उठते नव इच्छा स संचित
सित सामाजिक प्रीति सेतु बनकर
अंध वासना होती रस दीपित !

श्वसित प्रवालों के गिरि शिखरों पर
इंद्रनील घन आभाएँ तिरतीं
फीरोजी मरकत तलहटियों में
मन स्पृहा की मदिर घटा घिरती !

निश्चेतन उपचेतन अतलों स
अतिचेतन आकाशों तक प्रसरित
गुंजन रही थी पावक सागर सी
प्राण भूमि आनंद ज्वार स्पंदित !

कवि मानस शिखरों पर था उमड़ा
जो श्रद्धा आस्था प्रकाश का घन
सत रज छायाओं में वह झरता
क्षमा पीठ का कर शोभा वेष्टन!

कहता कवि मन ईश्वर का होगा
भू संस्कृति में रस वैभव मूर्तित
शिव समिधि की चंदन सौरभ से
जग का कर पावनता में मज्जित!

यह यदि न पड़ भू स्थितियों के
निम्न व्यवधानों को कर कुंठित
मनुज श्रेयस की सघन गरिमा से
जन मन का होगा श्रद्धा मंडित!

शिखर मानस मेघ भू पर ईश्वर
शिखि दान हो चिर सम्पद् में कुसुमित
बुद्धि भावना श्रम काम वह पर
भू मानस में हो सब संयोजित!

जीवन शोभा हो नव प्रभु प्रतिमा
जन प्रांगण वैभवमय सदा स्मित
मानव हृदय मिलन ही तीर्थंस्थल
भू मंगल प्रति हो रति धृति अर्पित!

ध्यान धारणा प्रणति साधना में
सीमित हो क्या सत्य का पूजन?
श्रद्धा भक्ति कृतार्थ न हो सकती
पत्र पुष्प भर कर प्रभु को अर्पण!

रचना सक्रिय श्रम में ही जग के
मानव जीवन ईश्वर का दर्शन
जन मन की उन्नत भावना ही
श्रम पद पूजन की पवित्र साधन!

निश्छल उर नैवेद्य समय निश्चय
सत्य दृष्टि ही सार्थक आराधन
शान्ति सदन की स्वच्छ दर मंदिर
जन जीवन गरिमा ईश्वर दर्शन!

नव संघर्षों मूल्यों में विकसित
प्रेम मूर्त होगा प्रभु को भू पर
ज्योति क्षितिजों में शुभ अन्तर्मुख
बने नाम साकार रूप नव घर!
जीवन की रस संस्कृत भी सुषमा
सृजन प्राण ईश्वर को हो अर्पित
यौवन मांसल अवयव संगति ही
आराधन उपकरण भाव सुरभित!
चिन्मय में तन्मय जीवन इच्छा
ऊर्ध्व स्पर्श पा हो उठती ज्योतित
भेद बुद्धि अतःस्थिति ही रे अब
प्रेम सृष्टि मह,—पाप पुण्य विरहित!
हुआ गूढ़ अनुभव कवि के उर में
स्वर्ग धरा हो संस्कृति केन्द्र सुघर
मनोभुवन भव—जगती में उसको
मिला न ऐसा भावैश्वर्य अमर!
एक सिन्धु निर्झर था उमड़ रहा
थी शोभा रस स्वप्नों से गुंजरित
नहीं व्यक्ति हित सभव सामूहिक
रस असीम संपद् करना संचित!
फिर भी ममता धरा स्वर्ग कवि को
जन्म नहीं दे सका प्रेम भू पर,
जिस न पंक में सका ऊर्ध्व सरसिज
उभर गए निखिल भमकों में खिल कर!
मनस राग चेतना भाव नभ में
सुरधनु रस वैभव भरती वितरित—
प्राण कामना का पावक रखता
उपचेतन धनियों को समुच्छ्वसित!

भूली मनोद्रुमों में युग छाया
कवि की दृष्टि गई बाहर भीतर,
जीवन आकांक्षा का वारि अभय
लिए हुए था स्वर्ग चेतना वर!

कवि मानस शिखरों पर था उमड़ा
जो श्रद्धा आस्था प्रकाश का घन
बन रस धाराओं में बह झरता
कण्वा पीठ को कर शोभा चेतन!

कहता कवि मन ईश्वर को होना
भू संस्कृति में रस वैभव मूर्तित
निज सन्निधि की पावन सौरभ से
जग को कर पावनता में मज्जित!

मनु वृद्धि के जड़ भू स्थितियों के
निर्मम व्यवधानों को कर सुठित
मनुज ऐश्वर्य की सगुण गरिमा से
जन मन को होना श्रद्धा मंडित!

विचर मानव संग भू पर ईश्वर
दिशि क्षण हो चिर् सपद् में कुसुमित
बुद्धि भावना धर्म काम इह पर
भू मानस में हों सब संचालित!

जीवन शोभा हो नव प्रभु प्रतिमा
जन प्रांगण देवालय श्रद्धा स्मित
मानव हृदय मिलन ही नैवेद्यम
भू मगम प्रति हो रति हृति अर्पित!

ध्यान आरती प्रणति भावना में
सीमित हो क्या स्रष्टा का पूजन?
श्रद्धा भक्ति कृतार्थ न हो सकती
पत्र पुष्प भर कर प्रभु को अर्पण!

रचना मगन श्रम में ही जग के
सफल जीवन ईश्वर का दर्शन
जग मन की उन्नत आराधना ही
प्रभु पद पूजन का पवित्र साधन!

निरन्तर उर मैत्री ममता निरपत्र
मानव दृष्टि ही प्रामार मीगाशम
शान्ति भाव की स्वप्न दृश मंदिर
जन जीवन गरिमा ईश्वर दर्शन!

नव संबंधों मूल्यों में विकसित
प्रेम मूर्त होगा प्रभु की भू पर,
ज्योति क्षितिजों में खुल अंतर्मुख
बने नाम साकार रूप नव घर !

जीवन की रस संस्कृत भी सुषमा
सृजन प्राण ईश्वर को हो अर्पित
यौवन मांसल अवयव संगति ही
आराधन उपकरण भाव सुरभित !

चिन्मय में तन्मय जीवन इच्छा
ऊर्ध्व स्पर्श पा हो उठती ज्योतित
भेद बुद्धि अधश्च्युति ही रे घन
प्रेम सृष्टि मह, — पाप पुण्य विरहित !

हुआ गूढ़ अनुभव कवि के उर में
स्वर्ग खंड हो संस्कृति केन्द्र सुघर,
मनोभुवन नव — जगती में उसको
मिला न ऐसा भावैश्वर्य अमर !

एक सिन्धु निर्झर था उतर रहा
भी शोभा रस स्वप्नों से मुखरित
नहीं व्यक्ति हित संभव सामूहिक
रस असीम संपद् करना संचित !

फिर भी ममता वश स्वर्ग कवि को
मग्न नहीं ले सका प्रेम भू पर
खिल न पंक में सका ऊर्ध्व सरसिज
उलझ गए मिलि अलकों में अलि कर !

नवल राग चेतना भाव नभ में
सुरधनु रस वैभव करती वितरित —
प्राण कामना का पावक रचता
उपचेतन सलिलों को समुच्छ्वसित !

भूली मनोदृश्यों में धुप छाया
कवि की दृष्टि गई बाहर भीतर,
जीवन आकांक्षा का वारि प्रणय
लिए हुए था स्वर्ग घटना भर !

नव वसंत के क्रीड़ा उपवन में
सौन्दर्योत्सव मना रहे थे जन
रूप रंग मधु रसमय विश्व प्रकृति
भावमग्न करती मन को प्रतिक्षण !

श्याम पल्लवों के नव वातायन
उषा दिखाती शील सलज आनन
पावक क्षितिजों से झर रजत किरण
धोती जग रज पावन भू प्रांगण !

रंग शिखा फूलों के दीप जला
उपचेतन की झाँकी दे कुसुमित
पर्व मनाता वन भू का यौवन
रज के तम को कर दिगंत दीपित !

सुंदरता — गाते फूलों के क्षण
सुंदरता ही धरती का जीवन
सुंदरता ! — भू का मुख निर्गुण मन
मुग्ध देखता अपलक नील नयन !

मुक्त समीरण कहता कंप पर धर —
महानंद ही आत्मा का जीवन
स्नेह श्वास सा लिपट चराचर से
करता भू पर उर सौरभ वर्षण !

गा उठता पिक मद मुग्ध विस्मृत
गंध स्फुरण पा भरते अलि गुंजन
जाने कैसी रहस् वृष्टि होती
रंग तन्मय हो उठता जीवन क्षण !

जाने कितने अगोचर चित्रित
पंखों में उड़ मधु स्वर गाता
प्राणों का आनंद मुखर रस घन
शत कंठों से समरस बरसाता !

ज्योति प्रीति सौन्दर्य सर्वात्मा मिल
भू पर मुग्ध मनाते स्वर्गोत्सव
कोमल रंग ध्वनि मद परिमल से
स्थूल इंद्रियों में भर सूक्ष्म विभव !

शोभा की ज्वाला अंगुलि से छू
जग भू का हिम जमर जड़ खँडहर
अगणित मांसल रंगों से भरती
नव अक्षत चेतना धरा पंजर !

चपल सरोवर जल से उठ ऊपर
नत स्मित खिलते अपलक पुष्कर
भूत अचेतन जड़ कर्दम में रत
दिव्य प्रकाश में लीन मगन प्रसार !

नव संस्कृति संदेशवाह बन कर
युवक युवति जन गाथा में गाते
नव युग का अभिमान कुटीरों में
कर्म वचन तन मन में पहुँचाते !

मानवता के दूत बना म दूग
भू मन की रचना करते नूतन
बीज स्वच्छता का बो जन भू में
शोभा का स्वर्णांकुर कर रोपण !

मनुज प्रेम में बाँध साथ मन को
दैन्य निराशा का हर दारुण तम
लोक प्रेरणा की किरणें बरसा
प्रोत्साहित करते सामूहिक श्रम !

स्फटिक स्वच्छ श्री सुन्दर हो भूतल
जीवन मूल्यों पर देते वे बल
श्रम की प्रति सब में निर्मित हो मन
जीवन रचना श्रम ही में संभव !

जाग रहा था धीरे ग्राम जन मन
ग्राम धरा का होता रूपांतर
जड़ अतीत से मूक अथक अविरत
अभिनव कर पाता भू मन में घर !

जन्म कर्म फल कर्दम में निष्क्रिय
रूढ़ि रीति कृमि से भू मन जर्जर—
भाव भूमि नव देती थी जन को
विधि निषेध तम नियमित नरक भय हर !

जाति वर्ण प्रेतों से जन पीड़ित
गत आदर्शों मानों से शासित,
थी समग्र जनता नव मानव को
बहु उर में हो युग एक स्थापित!

पथ नर हो न सका था परिमार्जित
अभी प्रेम का हृदय रुद्ध भू हित
काम तप्त कटु स्वार्थ लिप्त जग मग्न
शोभा भू पर भीत असंरक्षित!

गत भू जीवन वृत्त व्यक्ति केन्द्रिक
नव विकास क्रम न हुआ विघटित
राग द्वेष स्पर्धा पर निर्भर रत
जाति वर्ग कुल परिजन में सीमित!

प्रीति मुक्ति के साथ द्वेष कुंठा
दुराचार को करना उन्मूलित
पूर्ण प्रस्फुटित हो न प्रीति जब तक
नैतिक संयम अपरिहार्य निश्चित!

लघु आँगन वनियाम खेत पशु हम
शेष जीव सह लड़े युग, पर
निखर रहा था धीरे नव मानव
निकल घरौंदों विवरों से बाहर!

प्रथम शिविर का धन सुरभित धाम
नव जीवन में होता थी कुसुमित
मानव गरिमा के प्रतीक सपने
गोचा में स्त्री नर शोभा संस्कृत!

हाय मर्त्य हो गया प्रकाश तम में
हो सदी में थे जनता शासित
नर मध्य के प्रति जीवन पतित
प्राकृत मन से इतर धर्म वर्जित!

मन के धाम में हर्षित कुत्सित
दूध विकारों में थे जन ग्रसित
ज्योति तड़ित् न जाति पास न हम
धरा घनमा स्तर थे पाशविक!

कुछ दुर्मति ग्रामीणों के मन में
धधक रहा था गुप्त विरोधानल
कला शिविर सौष्ठव प्रति स्पर्धा रत
फुँकारते जन मन में घृणा गरल!

हीन भावना पीड़ित नव शिक्षित
मना द्वेष विष दंशन से कुंठित
स्वप्न पलायन कहते संस्कृति को
भौतिक वैभव मद से आकर्षित!

परंपरा प्रिय वृद्ध मौन रहते
नव जीवन के प्रति मन में शंकित
भोगी कामी रिक्त हाथ मलते
क्रीड़ा कंदुक नारी जिनके हित!

क्षणिक बहिर्जीवन गति का पूजक
जड़ यथार्थ हँसता अवहेला कर
अंतर्जीवन चिद् वैभव के प्रति
जाग्रत था न धरा जन का अंतर!

समझ न पाते कला पीठ आशय
मधु सामाजिकता में प्राण चयन
जनरव फैला भाषा के प्रभुवर
आग उगलते कवि के प्रति अनुक्षण!

द्वेष दग्ध कुंठित युवकों का मन
आत्म रिक्त वे प्रौढ़ पराजित पण
अहम्मन्य पाश्चात्य के पूजक —
विश्व ह्रास विघटन का था युग रण!

कहते संस्कृति दूत नम्र स्वर में
द्वेष प्रेम ही का शिशु भ्रांत चरण
छोड़ो घृणा विरोध — निशा का पथ
करो ज्योति रस का अभिषेक ग्रहण!

हम जग-भू प्रेमी मानव सहचर
जीवन शोभा शिल्पी श्रद्धामय
आत्म प्रकृति पर विजयी हो जन को
विश्व विकृतियों पर भी पानी जय!

उच्च धरातल पर अंतर्बोधित
कला शिखिर का जीवन रस-संस्कृत —
लोक प्रेरणा ग्रहण करें उससे
धरा स्वर्ग जग में बहु ज्योति गठित !

शुभ्र महत्ता स्पर्शों से उठ जन
नव प्रकाश का कर अब आवाहन
छोड़ें एकांगी भौतिक आग्रह
अध ऊर्ध्व में भर नव संयोजन !

ग्राम नहीं हों नगरों से दूषित
जीवन रचना हो अंतः संस्कृत
भौतिक विभव शिला पर हो स्थापित
मानव आत्मा लोक स्वर्ग चुम्बित !

त्यागो बुद्धि अहं पट रचि निर्मम
छोड़ो वस्तु विभव मद स्थिति पूजित
कवि से लो स्वर्णिम रस अमृत कलश
नव आस्था को कर तन मन अर्पित !

संप्रदाय मत धर्म न यह दर्शन
स्वप्न सत्य बनता जाता भूगत
अद्भुत पग धरता मानव ईश्वर
मूर्त बन रहा हो अमूर्त प्रतिक्षण !

ज्योति स्नात हो मिला तुम्हें गोपन
जन भू नाश करो ना निर्जन
भटक रहा यदि अंधकार में मन
रवि प्रकाश में छाना उर लोचन !

अंधकार भी अंधकार दुर्गम
भेद बुद्धि तम की ही अति पावन
जो प्रकाश का मार्ग न देंगे जन
पथ भ्रम ही बना रहेगा मन !

विश्व ह्रास के कर्दम सागर में
डूबेगा ना रहेगा जग जीवन
स्वर्ण कूट बिन्दु भी आहत और
पूर्ण हुए न अभी दिव स्वप्न !

ज्योतिर्वाह बनना अविरत अक्षमा
इष्ट ज्योति को पूर्ण समर्पण नित
कवि की हृदय शिखा से निज मन को
रस शोभा में करो स्वप्न दीपित !

इस प्रकार के भू जीवन प्रेमी
जन भू मन को करते संबोधित
सूक्ष्म चेतना के बहु पक्षों को
भाव श्रेणियों में कर उद्घाटित ।
आस्था प्राण अनेकों सरस हृदय
नव्य प्रेरणा किरणें कर संचित
घृणा द्वेष कल्मष से छन बाहर
नव भू रचना प्रति होते प्रेरित !
भव संस्कृति के स्वप्न सँजो उर में
क्षुद्र अहंता से कर संघर्षण
भू रज को शोभा उर्वर करने
जीवन का सित श्रम करते अर्पण !
उच्च धरातल पर रस भगत के
शुभ्र संगठित कर वे निज तन मन
युग कर्दम संस्कृत श्रम जल से धो
प्रसाद चिर संपद् करते वितरण !
रचना उन्मेषों के पावक से
मन स्वर्ण करते भू पर निर्मित
दीप्त चेतना नभ में रोहण कर
भाव विभव मन में भर रस संस्कृत !
क्षतियों से जीवन कुंठित स्मीमन
मर्म उच्चता का करती अनुभव
भव शिल्पियों की प्रिय वाणी में
मिलता उनको सत्य स्पर्श अभिनव !
काम दग्ध जग जीवन के मरु में
चातक सी प्यासी भूमवस सुख हित
स्वाति चेतनामृत पीकर, उर में
भरता वह अहृप भोव रस सित !

ज्योति

रूढ़ि ग्रस्त भय कल्मष गढ़ गत मम
स्वस्थ भाव पा रस स्थिति का भीतर
सुलग उठा नव शोभा लपटों में
ऊर्ध्व समीप्सा के नभ को छूकर !
रीढ़ हीन रेखा करती रच म
जीवन आकांक्षा सहसा जग कर
नव प्रतीति के शुभ पंख फड़का
उड़ी भावना का पा स्वत अंबर !
नव जीवन आशा गरिमा का जग
मनोदृगों म हुआ मौन आपूत
वह बोध की धूल झाड़ मन से
प्राणो में रम छद हुआ महत्व !
जीवन पृथिवी ने मानव भू पर
नयी दृष्टि डाली नम प्रीति द्रवित
उपयता का जग रम उपकृत हो
नव मुख म हो उठा भाव मुकुलित !
मन पुर म पैठ शांति सुपक
बरसाती आपूति बिजली प्रतिभाप
राग चेतना की सित ज्वाला में
काम द्वेष कल्मष बमने ईंधन !

विस्तृत पम पथ निमि विद्युद्दीपित
पुष्प वाटिकाएँ, विहार पुष्कर
उन्नत विद्या मंदिर भव भवन
नगरों मे लगते अजगर सुंदर !
पश्चिम मे मानव गम्य थे जन
कृषि बहु उद्योग यंत्र विकसित —
मध्य वर्ग की स्पर्धा जुटा थे
धन मुख जन आसन पद पीड़ित !
मौलिक परिवर्तन था आवश्यक
नव विज्ञान पद्धति पर आधारित
पार्थिव क्रांति समाज म थी साधन
भू का होना था पद मण्डन !

नहीं दिखाई पड़ा जनगण में
मनुष्यत्व का भी नव संवर्धन
एकांगी समविद् भौतिक जीवन
मनुज उन्नयन पथ हित था बंधन।

बाह्य धरा जीवन रचना के संग
अंत रचना होनी भी निश्चित
भू अंतर्दीपित हो रस संस्कृत
केन्द्र इन्हीं ध्येयों से था प्रेरित।

सृजन कर्म सहृदयता स्नेह ग्रथित
सुंदर स्वच्छ सरस हो भू जीवन
ऊर्ध्व ज्योति सौन्दर्य प्रीति वाहक
अंतर्वैभव प्रेमी हो' जन मन।

शत सहस्र रवियों के सुषम सा
मानस रस आनंद स्पर्श पुलकित
सूक्ष्म प्रेरणा से भर हृदय गुहा
आत्मा के क्षणों में हो आवृत।

सामूहिक भौतिक विकास तल पर
शिखिर चाहता था करना स्थापित
स्फटिक सौध नव मानव संस्कृति का
स्वर्णिम चिद् किरणों से आलोकित।

साम्य नहीं था बाह्य यत्न स ही
स्वर्ग पीठ भू पर करती निर्मित
इच्छु आंतरिक साधन तप से भी
मनुज जाति से रही धरा वंचित।

बहिरंतर गतियाँ संयोजित कर
बढ़ सकता मानव जीवन का रथ—
चेतन अविचलित प्राण मुण्डभट वह
सारथि मित रम ज्योति विपुल भू पथ।

मानव को अब निज प्रबुद्ध कर में
प्रगति रश्मि से करनी संचालित
चरम विकास सरणि भू जीवन की—
समतल को कर ऊर्ध्व धार प्रेरित।

भावों के संघर्षण ज्वल पावक में
गत पाहन मन को करता विगलित
बहिर्गत मद से मूर्छित मन को
अंतर्जीवन के प्रति कर जीवित !

पर्वत बाधाएँ सम्मुख दुर्धर
मन के प्रति चलना नहीं जागृत
बहिरंतर दुर्लंघ्य दैन्य दुख तम
गहन कूप में जन जीवन सीमित !

सत्यद्रष्टा था युग कवि का मन
देख रहा था वह भावी मानव
मन स्वप्न उसका — मैं उसे सकाम
जन का जीवन वस्तु सत्य नूतन !

जन जीवन के बहुमुख पक्षों को
छाया सँजोए मन चिद् स्पर्शों से
नव प्रकाश में उन्मेषित कर मन
अनुप्राणित हो नव आदर्शों से !

जीव वृत्त के जाने किस युग में
प्राणितिहास करों से संयुजित
हुआ संगठित मानव मनश्चेतन
निर्मम मर्माभियामा से निर्मित !

अब ऊर्ध्व मानव मन के स्तर छू
दृष्टि पथ खोला था कर ज्योतित
कटु कृपण ईर्ष्यालु भीरु पशु को
मनुज बनाया था नव रस संस्कृत !

जब धरणी के पार छोर का तम
आवेगा उडुगा मे मथित
त्रस्त पीड़ित था विक्षुब्ध सागर
ज्योति सेतु तब करता था निर्मित !

शांति वन युग के संस्कारों को
नव जीवन आस्था में कर विकसित
हर कोने से उबार जन को
मानवता में करता था मुकुलित !

भू पर था संप्रति काम भीषण
बँटते जाते देशों के जन मन
झुलसाते नर वही पशु दानव
भरता मन ही मन विनाश गर्जन!
रिक्त मनों जड़ जीवन मूल्यों में
पथरा से थे गए नागरिक जन
राजनयिक आर्थिक पद्धतियों के
पाटों में पिसता हत जन जीवन!
गोपन भावना भी जन मन म
यदि न आक्रमण कर दे फिर भू पर
अंतर्राष्ट्रीय स्थिति का भी अनवरत
आंदोलित रखता उनका अंतर!
बुद्धि प्राण नागरिक युग दर्पित
गत जीवन बोधों से जन पीड़ित —
कला मनोरति सुघरता मदिरा
भू विकास गति क्रम से उच्छेदित!
अंतर आस्था पथ से भू मन में
ज्योति नींव नव करती थी स्थापित
नयी दृष्टि दे जीवन प्रति जन को
शुभ्र चेतना रस से अनुप्राणित!
जन ग्रामों में जग भू जीवन की
स्वर्ण हरित चेतना प्रीति संस्कृत
शुभ्र बुद्धि तप से कल्पित मन को
करे हृदय की प्रतिकृति में निर्मित!

वासती सौन्दर्य पर्व में कवि
नव रस मूल्यों को करता वितरित
जीवन शोभा विकसित प्रांगण को
राग चेतना से कर सित सुरभित!
शोभा सज्जा में भूषित स्त्री नर
नव वसंत श्री का कर अभिनंदन
गीत नृत्य रस भाव व्यंजना से
सूक्ष्म चेतना का करते मंथन!

ज्योति द्वार

लोक नृत्य गीतों का रस उत्सव
जन संस्कृति में भरते वे नव स्वर,
मुखरित कर जन भू आशा का सुख
धरती माँ उठती उनके भीतर !

हाव भाव लय मधमय संगति में
जीवन शोभा होती रस कुसुमित,
उपवनन पावक लपटों से वे
गहरे रंगों में लगते शोभित !

जीवन लहर जीवन लहरों से
टकराती हो हर्ष ज्वार मज्जित
युवक युवतिजन भावों की लय में
तन्मय होते प्राण स्पर्श प्रेरित !

सौरभ में घुलती मिलती सौरभ
उर से मिल उर होते सुख पुलकित
सुनते भी सुषमा के ममणित स्वर
मधु आत्मा होती विगत मुकुलित !

नयनों के स्मित नील मुक्त नभ में
उड़ता मन फैला स्वप्नों के पर,
आत्मा का सुख छूता आत्मा को
स्वर्ग विभव में प्राण गुहा को भर !

देह प्राण के सुमन पट पर पट
अमर सुषमा में कर मन रोहण
रंग मिल शोभा सरसी में करता
चित् शोभा महिमा में अवगाहन !

स्वप्नों की सुरधनु सतह हँसता
मनाकृता का कर सौन्दर्य अंकित
भाव सानु पर मन क्षितिजों के
सुर बाला भाती नूपुर झंकन !

मानव शिखरों पर भर नील विभव
शांति करुणा श्रद्धा से पावन
सम प्रसार से भू विराग रथ में
विश्व ज्योति की कर निःस्वर पावन !

न

धर्म काम के उमड़ तृषातुर घन
धरा उदर में करते संवर्षण
सृजन कर्म — सामूहिक जीवन का
विश्व शांति हित करता आवाहन!
उठता क्षिति मुख से भू छाया पट
मन के पंखे स्वप्न भर आलोकित
धर्म मानसिकता से नव मानव
धरा स्वर्ग भुज तक ममता विस्तृत!
फेंक रूढ़ियां का कूबड़ भू पर
ऊर्ध्व रीढ़ चलता वह नत स्थित
गत जीवन के वीलैपम से मुक्त
देह भाव तज आत्म बोध दीपित!
युवति युवक रस स्मित नक्षत्रों से
यौवन शोभा सरसी में बिम्बित
आत्म मग्न विचरते स्थित संयम से
अंगों की इच्छा को कर शासित!
रचनात्मक बन राग सममन से
सृजन प्रेरणा में होता संचित
प्रीति सर्व गत सामूहिक रस बन
भाव मुक्त पथ फिरती मकरन्दित!
मुक्त प्रेम की नींव थाम गहरी
भू जीवन प्रासाद स्वर्ग सुचित
स्थापित करने को आतुर था कवि
शुभ रस संयम धर, — जन मंगल हित!

देखे कवि ने युवति युवक प्रमुदित
क्रीड़ा वन प्रांगण में एकत्रित
रूप रंग मय रुचिकर वेशों में
एक राग के स्वर से लय झंकृत!
हलके गहरे रंगों की मैत्री
नव मधु वैभव को करती सज्जित
फूलों से मृदु अंगों में उमड़ा
धरा चेतना अपनी निःसृत शोभित!

ज्योति

चटकीले रँग में भूषित दक्षिण
हीरक कनियों से हरता लोचन
फूल धँमूरी हुआ गुलाबी पट
समज उत्तरा के विमोहते मन !

स्वर्ण कांति रस स्वर्ण कलश लेकर
स्वर्णिम स्मिति किरणें बरसा भू पर
स्वर्ण द्वार खोलती स्वर्ग शोभा
स्वर्ग झलक से मुख दिखला सुंदर !

रंगों की सी छायाएँ बस फिर
श्री सुषमा का रचती सम्मोहन
भ्रम जग को कर छवि रहस्य मंडित
शशि किरणों का धर मुख पर गुंठन !

मखमल मार्दव ज्वाला में लिपटी
पंजाबी युवती श्री यौवन प्रिय
रक्त गौर पावक गुलाब सी स्मित
स्नेह मुखर सौन्दर्य शिखा सक्रिय !

जन उत्सव रत कमठ निमग्न कृषक
सबल सविचल पथ करती निर्मित
उजाली कामनी कुसुमी पर
पुष्प योजना पर करते निश्चित !

रूप गर्विता राजस्थान वधू
आभिजात्य गरिमा से मुग्ध मंडित
प्रीति दया मृदु स्मिता शांति मनिका
नारी गोरी सजी विभ्राजित !

सौंपे नूपुर की गाथा मद्री
मरकत उर रजनी पायल मुखरित
पीन बंगली सूनी धनधान्यी
निर्जन वन छाया में परिपालित !

प्रीति ग्राम गाथा भर रस सागर
जन शिल्पी सा स्नेह स्निग्ध विनयन
वन पूर्वांचली की वर कला कुसुम
भार सौरभ परिचित यौवन मन !

शीश मूर्ति लबे लहरे कुन्तल
स्वर्ण घंटियों-से श्रुति कोमल स्वर
पानसई अपई, सरदई छवि
धूपछाँह सी फिरती प्रिय तन पर !

गुजराती बाला भी थी निर्मल
सौम्य मुखर संस्कारों में कल्पित
कला रसिकी पति परिजन प्रीता
मार्दवता की लतिका सुख मुकुलित !

उनके निश्छल मंद सौष्ठव में
कला शिविर का जीवन था सुरभित
मोनपीत मूही धूमवाली रँग
गौर त्वचा पर सभत प्रतिबिम्बित !

ऊर्ध्व रीढ़ सी सुयोजित अवयव
महाराष्ट्र कन्या थी दीप्तानन
दीप शिखा सी तपस्वी तनिमा
कार्य रत कर्तव्य निष्ठ दृढ़ मन !

कला पीठ की संस्कृति में पालित
ऊषा सी लगती थे रस दीपित
सिन्दूरी सोनमी समाई थ्य
कण्ठ बाँधती मन यौवन दर्पित !

नीलारुण रवि किरणों में लालित
कश्मीरी मुग्धा शिशि कर विरचित
हिम शृंगों सी थी अनिन्द्य गरिमा
मणि निर्झर सी लीला गति संवृत !

मृदु चिर मुकुलों में से कोमलता
तारकासुमों से चंचल यौवन
वह निसर्ग प्रतिमा सी सद्य खिली—
स्वप्न नील अपलक रसमय चितवन !

नाम कमल सटक भव मुनियों म
हँसी मोतियों की लड़ सी मुखरित
कचनारी काढ़ी मूँगी मूँदी
मसृण रेशमी आभा में भूषित !

नृत्य भंगि निपुणा दक्षिण बाला
गीत कंठ में जलधि तरल लय स्वर,
धीर, पर्युंठित पट संस्कृति विरहित,
सरल हृदय जीवन पथ की सहचर !

सद्गृहिणी अनुभूतियों में पालित
पद् रज अंजन प्रिय सात्विक जीवन
हरे, मेंथीठी भरी गुमनारी
चटक कौशा मृदु वचन रत्न भूषण !

मथा स निकली शशि बाला सी
पवन नारियाँ भाती सद्य स्मित
बुलबुल गाती मुग्ध मदिर स्वर म
स्वप्न भरी चितवन मदभर विस्मित !
साथ लता सा खिला सपीला तन
शिष्ट शील प्रतिमा शोभा गुंठित
कशीदई पिस्तई मालवती
रंग मग छू हो उठते जीवित !

अन्य प्रदेशों की भी की नारी
यथा स्त्रीत्व सुषमा हो एकत्रित
कामस भगो का मुकुलित मधुवन
भू पथ भावा रा रखता सुरभित !
प्रिय सपन नव छवि कुसुमित तन मन
उराभार, अवयव संगठि शासम
भृकुटि नाम मधु स्मित पक्ष नील नयन
गुरुर, — रूप पुरस्कृत भू जीवन !
पृथु कटि शिखर उरोजों में उठ गिर
नव यौवन की रेखा छवि धनि
युवा हृष्ट लावण्य गिरा विगलित
ऊरु पीठिम पर शोभा अंगुलित !
शिष्ट युवक थे बन पौरुष प्रतिनिधि
बल प्रशस्त ग गुरु ऊर्ध्व धमप
पुष्ट पशियों भाग्न रजाय मृदु स्वच
न्यौछावर गरिमा रूप गौरव तत्पर !

सुंदर कला संस्कृत स्थितियाँ पाकर
युवति युवक मानस होता विकसित
काम द्वेष से मुक्त राग परिणति
सरसिज वन सी भाती सब स्मित।

नव भावों के सौष्ठव से वेष्टित
सुगम प्रेरणा अर्पित मंत्र स्थित
तन का यौवन अतिक्रम कर स्त्री नर
मन के यौवन से वे सुख पुलकित।

देश रूप वैभव कहता कवि मम
नारी तुम भू शोभा हो मलय
भू पर अभय फिरेगी जब शोभा
स्वर्ग उतर आएगा तब निश्चय।

विविध प्रदेशों के रस प्रश्नों के
प्रीति भोज से पुलकित था उपवन
भारत रचना संपद् पर विस्मित
छात्रों संग करते विनोद गुरुजन।

विविध विदेशों की किशोर तरुणी
कला शिविर संस्कृति में थी दीक्षित,
मुग्ध भाव सौम्य परिष्कृत छवि —
जीवन मधु रस वैभव में भासित।

बहिर्मुखी भौतिक संपद् स्तर पर
देह प्राण के मूल्यों में सीमित
सुख विलास के मधुर क्षणों में रत —
राग चेतना भी न ऊर्ध्व विकसित।

नवल जीव मूल्यों से परिभाषित
प्रीति तत्व से भी न पूर्ण परिचित
आशा के मरकत सागर तट पर
झुकता अंतस् में प्रकाश रस सित।

अंतर्जीवन के पथ से धीरे
कला पीठ में होतीं वे संस्कृत
अंतर्मुख भावों की चिद् स्वर्णिम
थी शोभा उर में करती संचित।

ज्योति द्वार

वायवीय मार्दव से तन निर्मित
मृदु कुसुमों सी सुरंग सुरुचि सज्जित
सहज स्नेह मधु सौरभ का संगम
मुक्त प्रकृति मानव - स्पर्श पुलकित !
भाव गौर पश्चिम की बालाएँ
नग्न पीठ को रखती भी स्पर्शित
उनके प्राणों में भू जीवन का
स्वर्ण छंद रहता यौवन झंकृत !

नत था कवि मन ईसा के सम्मुख
जिसने जीवन प्रेम दिया जग को
ममतामय मज्जित मानव करुणा
स्वर्ग राज्य भू स्वप्न दिया जग को !
दुखमय मिथ्या बतला भू जीवन
जिसने नहीं सिखाया भव वर्जन
पाप पुण्य भय त्रस्त मनुज उर को
निज शोणित से किया प्रीति पावन !
प्रेम प्रकाश धरा उर तम में भर
दिया चेतना का रंग रूपांतर
नव संस्कृति सौन्दर्य बोध देकर
ईश्वर की प्रतिछवि बतलाया नर !
पश्चिम का मन जीवन ईसा के
प्रभु के मुख का रहा न बन दर्पण
धर्म विभाजन ! राम कृष्ण गौतम
ईसा का बनता प्रकाश मूलन !
संस्कृति प्रांगण में मिल सारी नर
नव जीवन में करते पदार्पण
शिव भावना पथ में भर सुविधा
मग्न चलता स्वर्णिम पावक मन !
पश्चिम का मन बहु मत बाधाओं
मन रंग निखरा पर अब भारतीय
गरल स्वार्थ से मुक्त निखरता मन
रंग जाति के गांव हुए प्रांगण !

अंतरिक्ष युग का व्यापक चित्र पट
नयनों के सम्मुख होता अंकित
शिखरों से बढ़ पीढ़ों से लघु नर
मानव सागर बनते दिग् विस्तृत !

पंख खोल उड़ता जड़ भू मानस
नव्य चेतना नभ में ज्योति प्रथित
नक्षत्रों के हार गूँथ मानव
धन भू चरणों पर करता अर्पित !

बहती उर से उर में सहृदयता
मन को छूते मन के संवेदन
सहज उमड़ता स्नेह सत्य के प्रति
पुष्प हृदय से उड़ ज्यों सौरभ घन !

धर्म नीति पाशों को कर खंडित
लघु साधारणता से उठ ऊपर
जड़ यथार्थ की धूल पोंछ मुख से
आदर्शों का भेद रिक्त अंबर —

उभय भावना उठती हिल्लोलित
भू जीवन के कर विरोध मज्जित
सुषमा प्रीति रमने में मानव को
भू मन के कल्मष कर अवगाहित !

दीप्त चेतना नव जग गृहिणी सी
स्वत भू जीवन शोभा कर रोपित
उर्वर करती जीवन मन के स्तर
भावों के स्वर्णिम सुख से सिंचित !

इंद्रिय दर्पण में बिंबित प्रभु मुख
मनोगुहा ऊषा से आलोकित
अंतस् की पावक रस सरसी में
तिरती शोभा देह बोध विरहित !

अवचेतन के स्वर्ग नील में उड़
मनो भावना मधु पिक सी गाती
रजत धमनि कर साँसों से सुरभित
इच्छाएँ रस तन्मय हो जातीं !

ज्योति द्वार

राजनयिक भू जीवन संचपण
स्वर संगति में बँध जाते विस्तृत
ऊर्ध्व ज्योति से समदिक बढ़ सीमा
हो उठती चिद् स्वर्गों में विकसित!

द्वंद्व विरोधों में बन भू प्रांगण
द्वेष भक्त भव ध्वंस नग्न भीषण
समतल युग मन ऊर्ध्व बोध वंचित
जड़ीभूत गिनता निज अंतिम क्षण!

व्यक्ति साधना का हत पथ निष्फल
गत अमूर्त आस्था श्रद्धा कुंठित
भू विकास की पृष्ठ भूमि से च्युत
मानवों के शृंग धूलि लुंठित!

सामूहिक पथ भव भू मानव हित
शुभ्र भावना रस से अभिसिंचित
क्षमा शिविर रचता जीवन भव रत
स्वप्न प्रीति में नर स्त्री नर गुंफित!

भू रज से कर मुक्त भावना पग,
अमरचेतना साधनों से सित
हीरक शिखरों पर नव युवति युवक
विचर सकें — चिद् आभा में मज्जित!

घूमें प्रेरणा विविध मनोयुग में
सुर संपद् अंग शोभा दीपित
सूक्ष्म भावना स्वर्गों में उठ मन
भू को कर अमर गरिमा मंडित!

नव मूल्यांकन कर भू जीवन का
देखें नर ईश्वर महिमा जीवित
तन मन प्राणों के शुभ वैभव में
इंद्रिय द्वारा तद् आत्मा प्रसरित!

शृंगों से नव गंगा पर बिखरे
गत भू नव छाया से उग ऊपर
नव प्रकाश रस संगम प्रति चेतन
भावे अभिनव भावनाओं का घर!

मान चित्र बदले जग धरती का
नव जीवन पद्धतियाँ हों विकसित
देश जाति कारा से मुक्त पृथ्वी
मानवता की प्रतिमा हो जीवित !

मणिनीडों में जहाँ अरुणिमाएँ
रजत दीप्तिमाओं में प्रतिबिम्बित
झलमल आभा रस भुवनों में
कुसुम स्वर्णिमा में रहता मज्जित !

आत्मा के भी तरल प्रसारों में
भावों की नव आभा छहराती
सुषमा की स्मित रत्नच्छाएँ
प्राणों की सरसी में लहराती !

नव वसंत की क्रीड़ा उपवन में
फिरती भू तारुण्य मूर्ति कुसुमित
फूल श्वास रंगों में वेष्टित तन
मधमध गंध मरंदों से विरचित !

वर्ष छटाओं के सहस्र सीकर
फूट पड़े हों भू के अंतर से
नव यौवन आवेगों से पुलकित
प्राणों के रस पावक निर्झर से !

रंगों का प्रिय पर्व मनाती भू
सोन जुही कामिनी जपा फूलीं
चमकचकी तोबई पदमी दिशि
मारंगी माधवी लता झूली !

नील गगन के नीचे झलमल
गगन पुष्प छत्रों का कर निर्मित
कुसुम चौकरंडा – गुलमोरों की
रक्त पीत श्री से पथ पथ शोभित !

अमलतास के स्वर्णिम मुकुटों से
हरित वनानी लगती आभूषित
रंग स्पर्श से नव मधु पावक के
भू यौवन हो उठता रस पुलकित !

ज्योति

दृष्टि बंध करती पुष्पों की रज,
मदिर गंध से मलय प्रसक्त गुंफित
स्वच्छ रँग विस्मय से बिंधि पँग मांसल
शुंजित मन छाया करती मोहित !

नव कनेर टेसू अशोक के वन
यौवन अंगारों से दिप् दीपित
आम्र मौर, चंपक चंदन मुकुलित
वनमार्गों में हँस भू रोमांचित !

मध स्वप्नों स से शोभा मादन
रूप रंग रुचि सौष्ठव की प्रतिमा
नार भाव पुनती मर्मर प्रतिमा —
क्षमा दृष्टि मे रच जीवन प्रतिमा !

युवती युवक विचरते रस संचित
भाव मधुर्यों म अंतर अंकुर
राग चेतना करती आरोहण
नव श्री शोभा वैभव से दीपित !

निखर युवतियों की छवि से युवती
गूढ़ भावना सौरभ म कम्पित
नव श्री सुषमाओं में भी लिपटी
मन की आँखों का करती मोहित !

राग चेतना इधर नरम उर में
भाव स्वर्ग करती नव उद्घाटित
उधर रूप रंग पावक स्पर्शों में
उत्थान का करती प्रांगभित !

रूप मोह था शेष युवक मन में
मांगता उर में गूढ़ द्वेष दमन
कुछ विलगनी जब तक महुरी मँग
मद गर्वित गहरी भी प्रतीजन !

सर्दीर्ण शिला पर बैठ प्रीति तत्पर
मधु उर धारा का करत विनिमय
गोधूलि नव मृदुता में गुमती
प्राण भरती गुनती रंग उत्पन्न !

सागर लहरी रेशम में परिवृत
प्रीति कला शशि सी ममती शोभित
स्वच्छ केवड़ी कुरते में सकर
शीश नम्र निःस्वर संत संस्कृत !

प्रणय चंद्रिका व्याप्त हृदय भीतर
जिसकी स्थिति से प्राण न थे पथमत
लोक कर्म में रहते उभय निरत
मर्म चेतना स्मृति रस में तद्गत !

एक मधुर संस्कृति उनके उर में
सृजन प्रेरणा भरती जन भू हित
लोक ध्येय की आस्था से सुरभित
प्राण कामना को करती विकसित !

व्यक्ति प्रेम था या वह सार्वजनिक
सहज न संभव था इसका निर्णय
व्यक्ति केन्द्र था विश्व परिधि सुखमय
भू मंगल हित हृदयों का परिणय !

प्राणों से उठ कर उर में केन्द्रित
भोग न रह यह देह बोध सीमित
हृदय सुरभि का भरता भू प्लावन—
संस्कृति रस संपद् थे उर अर्पित !

सोच रहा था भाव मुग्ध शंकर
देव प्रीति का सुख — दुख से विस्मृत —
शुभ ऊषा हो या पवित्र ज्योत्स्ना
सब स्फुट सौरभ तन में मूर्छित !

सित शोभा सरसिज सी मंदस्मित
छू पाते जिसको न स्पर्श प्रिय कर,
भाव रूप परिमल पराग सी उड़
भरती मौन मधुरिमा से अंतर !

तुमको बिना छुए ही हो उठती
आत्मा आत्मा के सुख में मज्जित
थी सुषमा ऐश्वर्य फूट मन से
प्राणों को करता विस्मय मोहित !

क्या है प्रेम? अलौकिक रस पावक का
तन मन जीवन होते क्षण में लय
प्राणों की तृण इच्छा जल उठतीं
मनोगुहा में होता स्वर्णोदय!

मुग्ध स्पर्श पा जिसका पावन उर
क्षण जग पर हो उठता न्योछावर,
सुषमा रस पावनी के नभ में
कर्दम से उठ फैलाता मन पर!

तुम्हीं प्रेम हो क्या शोभा प्रतिमे
चिर रहस्यमयि खोला अवगुंठन
स्वप्नों की मधु रस निर्झरि तुमसे
मंत्र-मुग्ध में गुंजरित मेरा मन!

कितनी सुषमाओं में कितने कलि
तुम्हें देख उमग निरख मन में
रूपों की स्वर्णिम छाया छिटकी
निर्निमेष नयनों के दर्पण में!

गौर मराल मिथुन शोभा स्पंदित
चपल सरसी में आए जाते
प्रणय गान कंठ ध्वनि से प्रेरित
कितने पिक कितने ही खग गाते!

चमचम सीपों में उड़ आकुल मन
नीड़ खोजता मुग्धमु मुख निर्मित
हृदय भावना रस आभाभा में
भाव पद्म लिपटा आभा दीपित!

मधुर प्रीति मय श्री विकसित स्मिति से
ममता जीवन का दिगन्त प्रहसित
मधु स्मृति पुलकित प्रेम भावों में
निर्धन स्वर्ग का मुग्ध वैभव संचित!

प्राण गुंजार भाव गौर तन में
स्वर्ग उतरते हो गए थी मूर्तित
स्तनना पावन हो गरमा रज तन
मन नित जिन नयन तार पर झंकृत!

उच्च नीलिमा छिन्न नीहारों की
झाँक रही स्मित नयनों से निस्तम
पंख खोल उड़ता स्वप्नों का मन
छिन्न शोभा आकाशों में निर्मल !

मन उरोज छिन्न रस भावनों के
स्वर्ण हंस–चिद् नीर सलिल शोभित
प्रीति शृंखला सी अटूट बाँहें
जघन मुग्ध शोभा उर आत्मा हित !

मैं करता तुमको मन मंदिर में
नव श्रद्धा आस्था में कर स्थापित
स्मित रचना श्रम से नव भू जीवन
करूँ तुम्हारी शोभा में निर्मित !

तुम्हें समर्पित कर तन मन जीवन
शाश्वत यौवन के सुख में तन्मय
जन संस्कृति का स्वर्ग रचूँ भू पर
आत्मा इंद्रिय में भर रस चिन्मय !

मुझे तुम्हें सम्मुख पा मेरा मन
नव्य चेतना में करता रोहण
शुभ्र संतुलन की तुम स्मित प्रतिमा
स्वर्ग मर्त्य की स्वर संगति गुंजन !

स्वर्णिम नीडों से भर चिद् वैभव
हरित प्रसारों में हो मधु मुखरित
रस प्रतीति से अमृत प्रीति से तुम
जन भू को करने आई उपकृत !

प्रिय सन्निधि से होता मन पावन
तीर्थ कर्मों में कर ज्यों अवगाहन
सर्व प्रीति बनती तुममें आत्मिक
बिन्दु बिन्दु में तुम रस सिन्धु गहन !

तुम्हें बाहुओं में भरने को मन
सहसा हो उठता जब लालायित
सौ शोभाएँ तुमसे सूक्ष्म निखर
मधुर रूप धर करती उर विस्मित !

काम पंक से ऊपर उठ भू के
तुम अनिन्द्य सौन्दर्य पद्म सी स्थित
कौन सत्य का मूर्त तुम्हें करता
स्वर्गिक भाव परागों में विकसित!

शुभ्र प्रीति आनंद शांति शोभा
प्रथम बार नारी तन में मूर्तित
सुलभ हो सका आज धरा मन का
गोचर सूक्ष्म अगोचर रस मिश्रित!

फूट ज्योति रस निर्झर शोभा स—
उस कहूँ चैतन्य भाव गरिमा?—
पूर्ण गध स भरते तृप्त हृदय
बैठती मर्मों में न अतुल प्रतिमा!

प्रणय निवेदन कहूँ समर्पण या
मोह लोक कुंठा शंका विरहित
भर आशा नित आस्था स नत उर
प्रेम स्वर्ग भू पर करते अर्जित!

सुर वीणा सी वासी कलध्वनि भर
प्रीति–स्वर्ण किंकिणिया सी संधृत–
देख रूप में तुम अरूप शोभा
सार्थक करते कला दृष्टि निश्चित!

निज वैभव से रहा न उर परिचित
पहिले आनात्म्य हो तुम संकर
आत्मवाद वरुण जिसने सुगपका
दिया स्वर्ग जीवन का भू पर वर!

देख मूर्त ही न अमूर्त तुमने
रज में विरज क्षणिक भी में शाश्वत
दृष्टि मनुज को दी जीवन सूक्ष्म
काम वृत पर दिया रूप प्राण!

विश्व कवि मन निज प्रशमना स
दिखा दूर थे रज धर में शान्ति
भार दृष्टि के उग पूर्ण कर लिए
दिव्य राग का प्रेम स निर्जित!

राग मुक्ति ही सृष्टि ध्येय स्वर्णिम
विश्व समस्याएँ जिससे साधित
विस्तृत हों भू स्थिति विकसित जन मन
बदले जीवन परिभाषा निश्चित !

मुक्त सुरभि सा प्रेम बसे उर में
नर नारी जीवन भर रस संस्कृत
रचना शोभा में तन्मय हो मन
जीवन मधु बन मंगल हित संचित !

प्रीति मुक्ति स्थित हो सित संयम पर
उभय परस्पर हों रस संवर्धित
स्फटिक शिला पर उभर संयम की
हर्म्य प्रेम का उठे स्वर्ग चुम्बित !

अमृत प्रीति — आत्मा से अनुशासित
धरा स्वर्ग स्वप्नों से अनुप्राणित
भू रज पर लोटे — जीवन पावन
स्त्री नर उर कर स्वर्ण रश्मि मूर्छित !

ग्रहण शील हो तुम विनम्र संकर,
प्रेम शक्ति को करो मूर्त सार्थक
मधु सत्यों से शासित भू जीवन
साधो भू श्रम कर पुरुषार्थ अथक !

देखा सम्मुख ज्योति लोक शाश्वत
नव से मौन प्रतीक्षा रत अपलक
काम पंक से उठे धरा जीवन
राग बने प्रज्वलित प्रेम पावक !

भू जीवन हो श्री शोभा मण्डित
नव वसंत आत्मा से आलिंगित
जन के तन मन प्राणों का पतझर
प्रीति स्वर्ग में हो रिपत्र मुकुलित !

सुगम कर्म रत रहो वधू भू हित
हृदय ज्योति से कर उसको भूषित
रूप मोह हो भाव प्रीति विगलित
स्वय शांति उतरे भू पर मम सित !

व्यक्ति प्रेम सामूहिक सागर में
करे रजत धारा श्रद्धा अर्पित
घुले हृदय को राग ग्रंथि — श्यामा
माप करें नर नारी रस संस्कृत !

अंध धरा श्रम के व्यवधानों का
धैर्य शौर्य से करता पथ मुठित
गत भू मन से कर द्वन्द्व संघर्षण
अभिनव को करता जीवन मूर्तित !

मत पंथ संगठन वृत्त अवसित
बिखर रहा भू मन समदिक तट पर
एक शुभ्र शिखरा पर ऊर्ध्व शिखर
अधिक बहिर्मुख घुले मनुज अंतर !

प्रीति सुमन बरसे स्मित रस वैभव
श्री शोभा हो जन जीवन का धन
कृमि सा रेंग रहा भू कर्दम में
काम द्वेष से विजित मानव जीवन !

तन मन की ही गतियाँ जगती में
नहीं हो सकीं जीवन संयोजित
मनुज हृदय का स्वर्ग हमें भू पर
स्थापित करना आज विश्व मंगल !

पुण्य वीथिया में एकान्त विचर
युवति युवक करते पर्यालोचन
राग ग्रंथियाँ सुलझा मानस की
शुभ मन में उन्मुक्त गिरी बन्धन !

यौवन क्या ? करण विचार विनिमय
निश्चय ही पावन गुंजन का लय
संस्कृति ? पग पावक स्पर्शों से
थी शोभा कुसुमित हो जन आनन !

अंध प्रवृत्ति के स्वर्ण भुज में बन
स्वप्न मर्यादित पर धरा जीवन
प्रीति प्राण बिखरें निर्भय स्त्री नर
उत्सव हो रस गुंजित जन यौवन !

कल्मष के गत संस्कारों का मल
विजय मुक्ति के लिए लौह बंधन
अतिक्रम कर इतिहास नीति दर्शन
उठे चेतना में स्वर्गिक प्लावन !

तन को दे रस भोग स्नेह मित तम
शोभा स्वप्ना में हो तन्मय मन
हृदय सृजन मानव छंद संस्कृत
हो कृतार्थ प्राणों का भू जीवन !

मौन कर्म हो रस पवित्र संस्कृत
देह—प्रणय स्वप्ना की मुग्ध शयन
फूलों के मधु शोभा तल्पों पर
शुभ्र प्रीति से बने स्वर्ग पावन !

मानव रचना मनस में हो रत
आत्मा यंत्र संपद् से दीपित
प्रकृति वक्ष की मांसल शोभा में
ईश्वर ही हो स्वयं भाव मूर्तित !

सोन चमेली के निकुंज भीतर
बैठी थी आस्था ऊषा सी स्मित
सुंदर बैठा निकट भाव नत शिर
गात मुग्ध मधु पवन स्पर्श पुलकित !
करतल पर कर पल्लव धर आस्था—
कोमलता सा पुलिन भार रहित—
पीती पौरुष की शोभा गरिमा
नव रवि सी—पावक पराग विरचित !
शीश मण्डित तन संयम यौवन का
सूक्ष्म बोध छाया तिरती मुख पर—
पीन अंस विस्तीर्ण वक्ष सुंदर
आयत नील नयन प्रकाश के घर !
अपलक चितवन पैठ मर्म भीतर
उड़ नव शोभा क्षितिजों में निःस्वर—
मुग्ध खोजती आत्मा के मन में
सुरधनु पृथु स्मित प्रीति नीड़ सुखकर !

प्रेम समर्पण से प्रोद्दीपित उर
शोभा सुंदर दृष्टि गड़ा मुख पर
भाव यौवना हो तुम रस मुग्धे
मधु धारा की पावक निर्झर!

धरती सी भोगी तुम रज मुझमें
पीवर शोभा में अनन्य वेष्टित
प्राणों की आकांक्षा का सागर
नव यौवन पुलिनों पर समुच्छ्वसित!

तुम्हें देख रस की सुख आकांक्षा
फूलों की शय्या बनती पुलकित
भरती मधु सी सुषमा की कलियाँ
अंग स्पर्श से होते मृदु मर्दित!

तुमको छू आभा का मधु अनुभव
हृत्तंत्री को कर तन्मय झंकृत
भावों की स्वर्गिक संगति में बँध
आत्मा को करता विस्मय मोहित!

रज की सौंधी इच्छा सी उसमें
रहती मादक देह गंध मिश्रित
प्राणों के मधु में बाँध तड़ित्
अंतर्मन को करती दीप्ति चकित!

शशि स्पर्शों से कुमुदों के गण सी
खिल पड़तीं इंद्रियाँ रोम हर्षित
भाव वाहिनी मन शिराओं में
बहता शोभा पावक रस विमर्षित!

तारों से मुकुलित निशि नभ का सा
उन्मनन तुम हँसती छवि स्पंदित
अंगना स्वर्णिम और प्रभा गुण का
निरुपम मन का पथ कर दीपित!

भीता विभ्रम स्मृति गता दीप्त
नर्तन प्रणय भावों का मधु वैभव
मेरा गा उर गिर माथे सुमन
होता अद्भुत जग मानस में मग्न!

स्वप्न पुष्प तुम स्वर्गिक सौरभ से
ढँक लेती आत्मा का सित अंबर,
बनता रूप अरूप निखर प्रतिपल
इस अरूप छवि में हरता अंतर !

जाने कौन सुधा स्रोतों को छू
देह मांसला हो जाती प्रशमित
काम हृदय में बन संगीत मधुर
मधु भावों में हा उठता गुंजरित !

जाने कैसी प्रीति पुरुष स्त्री में
नया हृदय कर रही सृजन सर्जित
बाँध युग्म को नव मानवता में
श्रद्धा की कर स्वर्ण रज्जु निर्मित !

पावक समिधों में चिर नारी नर
रस ज्वाला में नहा होते शीतल
विष को अमृत तमस को कर ज्योतित
भू से स्वर्ग त्रिदिव से रच भूतल !

तुमने तुम रस योनि प्राण तन को
श्री शोभा में करती आलोकित
दृष्टि अंध था काम वाम संकुचित
किया भाव पथ तुमने निर्देशित !

जीवन के शोभा मानव शिखर
उभर अश्म में रहते चित स्पंदित
स्वर्ग मर्त्य में पूर्ण रूप धरने
दो भुवनों में हुआ मधुर वितरित !

देही से मानसी मानसी से
तुम रस प्रतिमा—मानस से अतिशय
आत्मा की पा ज्योति दृष्टि अकलुष
देह रूप रस में स्रुत सुख तन्मय !

चिद् प्रकाश नभ में आरोहण कर
अवरोहण करता भू पर नव मन
कवि रस प्रतिमा पा भर धरती पर
नए स्वर्ग का करता आवाहन !

उठो काम धमारों पर मेरी
पूत योनि भूमि से अभय जागो
उठो भावना के नव स्वप्नों में
मुक्त प्रीति में विचरो भय त्यागो!

स्वप्न शिंजिनी बजती प्राणों में
कटि की कांक्षा कांची रस झंकृत
नव भू रचना हित अंतर उत्सुक
अभिनव रूपायों में उन्मेषित!

मानस तीर्थों में नहा अप्सरियाँ
तिरतीं रस पावन नभ में प्रमुदित
मन स्वर्ग की शोभा धरती की
प्राण अग्नि से होती अभिषेचित!

नव श्री शोभा नव संस्कृत सुख में
भू जघनों की श्यामा नव कुसुमित
रस सर्जित मानव लिप्सा में
माया की रत्नाभा भर पगभित!

रक्त वेग का हर्ष मत्त पावक
मधु मांसा मुग्ध भुवनों में गर्वित
भिन्न देह में सीमित था जो सुख
व्याप्त विश्व आत्मा में बन उमत!

सृजन प्रेरणा व घन सुषमा
निर्मम पशु भू बने मानवोचित
शुभ्र देह हो आत्मा की प्रतिमा
इंद्रिय पथ पर विचरें ईश्वर नित!

स्वप्न धरा का सूक्ष्म रंग अंतर
मिटे हरे भू रज पर स्फुट उर्वर
अंतर्दृष्टि का छूटे धूम भ्रामक
हृदय प्रेम से ईश्वर का हो घर!

अंतर्विवेक से धनर्जन वैभव
अर्पित शुभ प्रेरक बाह्य विवर्तित
भीतर के जग की रंग धारा
जीवन सुख सौन्दर्य हो संवर्धित!

अक्षय मधु रस संपद् प्राणों में
भोगें उसको सभी नर रुचि संस्कृत
शांत निखिल हों पाप—घृणा कटुता
कुंठा स्पर्धा—हिंस्र युद्ध प्रशमित !

रस तृप्ति का सुख अर्पित मन को
करता रचना स्वप्नों से प्रेरित
रस अनंत रस का महत्व अक्षय
शाश्वत मधु भर से वह सुख उपमित !

रस सहस्र रतियों का सित बंधन
करता सुख से रोम रोम झंकृत
तन्मय हो आनंद सिन्धु में मन
स्वर्गिक विस्मृति में होता मूर्छित !

अहं वृत्ति से मुक्त—प्रीति व्यापक
प्रकृति—भाव समता से अनुप्राणित
बिना किसी अधिकार लालसा के
स्वप्न नीड़ रचती उर में इच्छित !

भू शोभा उपभोग कर सकें जन
हृदय हृदय के प्रति हो आकर्षित
काम संयमित मुक्त प्रीति प्रेरित
मानव उर संवेदन हो विकसित !

प्रिये न जो तुम होती धरती में
उठती नहीं हिलोर भाव चंचल
पंख न उड़ती फूलों के उर से ।
गाती मधु ऋतु में न मुग्ध कोयल !

गाती भी—होता न अर्थ गर्भित
गुंजित करता जग मन रिक्त न स्वर
शोभा सृष्टि विफल होती विधि की
प्रेम बिना उर होता जग पत्थर !

तुम प्राणों के सम्मुख रहती नित—
भू पर सुन्दरता होती उपकृत
जीवन का सूनापन भर जाता
मौन—मधुरिमा में होता मुखरित !

स्नेह सिक्त स्वर में बोली आत्मा
भाव वह्नि में ढली स्वर्ण प्रतिमा —
संयम स्थित शोभा में हो मूर्तित
मानव आत्मा की महिमा गरिमा!

भू जीवन प्रेमी हो तुम सुंदर
आत्मा रह सकती न प्रीति विरहित
मध्य युगों के जीवन वर्जन से
धरा स्वर्ग की सुषमा से वंचित!

शुभ्र प्रीति रस में पावित ईश्वर
बन भू हो उसका शोभा दर्पण
इंद्रिय विषयों मानस भावों में
विपरण जीवित रहता रस चित् घन!

छोड़ क्षुद्र नैतिकता के बंधन
था भौतिक तृष्णा का भू प्रांगण
हमें मनुजता करनी नव निर्मित
उठा पुरुष स्त्री देह भाव गुंठन!

अति दरिद्रता भू पथ की बाधा
अति वैभव भी उन्नति हित बंधन
ज्ञान रुग्ण आध्यात्मिकता शापित
गलित पंथ नीतिरता मृत मरण!

क्षमा पीठ अंतर्विकास दर्पण —
संस्कृति जन भू स्थितियों में सीमित
नर नारी की प्रीति चेतना जग
नव भू रचना में हो संयोजित!

उद्भासित आनंद सिन्धु मन में
राग भू जीवन पुलिन करे मज्जित
संयम शुभ से शील स्वर्ग शोभा
शुभ्र मानवी प्रतिमा हो कल्पित!

प्राणों का मर्दन मार्ग न पर
निर्मम दृश्यों को कर दे विगलित
राग प्रकर्ष भी शोभा की प्रतिमा
आत्मोन्नत कर दे जीवन स्मित!

अंतर के स्वर्णिम तारों में बज
नीरव झंकारें करती तन्मय
मरकत उल्लासों में हँस उठता
प्राणों का सुख गति से हो अतिशय!

विगत प्राण मन जीवन के भ्रम
जड़ हिम वर्णों से गल हुते सम
तन्मय सुख — तन्मय सुख में विस्मृति
यह असीम सीमा का रस परिचय!

भूमा की शिविका धर कंधा पर
नृत्य निरत नक्षत्र मुग्ध अंबर
भू विकास क्रम ढोता मानव को
विविध पीढ़ियों में नित नव पग धर!

रस पावक में जलता प्रतिपल मन
बरस रहे रति सुख के धाराधर,
अंत शोभा पथ में मग अंतर
पूर्ण प्रकृति गरिमा से आता भर!

शोभा हो जीवन प्रतीक पावक
जीवन अंतर्भावों का दर्पण
श्रद्धा प्रीति प्रतीति उसे दे बल
बिम्बित पाएँ उसमें निज तन मन!

घृणा द्वेष से घृणा द्वेष तब ही
पाएगा नर जीवन में बिम्बित
सर्जन संस्कृत जीवन का साधन
शिल्पी नर, भू स्वर्ग करे निर्मित!

हरित वधू सी प्रकृति मुग्ध नारी
सती पुरुष भरे स्वर लय नूतन
प्रीति रूप शोभा प्रकाश बरस
स्वर्ग रागिनी हो बस भू जीवन!

सुंदर, प्राण धरोहर तुम मेरी
निखर रहा तन से मन भाव द्रवित
हँसता प्राणों में नव सूर्योदय
उपचेतन मुख पर सौन्दर्य सस्मित!

स्नेह सिक्त स्वर में बोली आस्था
भाव वह्नि में ढली स्वर्ण प्रतिमा —
संयम सिद्ध साधना में हो मूर्तित
मानव आत्मा की महिमा गरिमा !

भू जीवन प्रेमी हो तुम सुंदर
आत्मा रह सकती न प्रीति विरहित
मध्य युगों के जीवन वर्जन से
धरा स्वर्ग की सुषमा न वंचित !

शुभ्र प्रीति रस में पावित ईश्वर
मन भू हो उसका शोभा दर्पण
इंद्रिय विषयों मानस भावों में
लिपटा जीवित रहता रस चिद् घन !

शोध शुद्ध नैतिकता के बंधन
धो भौतिक तृष्णा का भू प्रांगण
हमें मनुजता करनी नव निर्मित
उठा पुरुष स्त्री देह भाव गुंठन !

प्रति दरिद्रता भू पथ की बाधा
प्रति वैभव भी उन्नति हित बंधन
ज्ञान अन्ध आध्यात्मिकता शापित
शक्ति अंध भौतिकता मूर्त मरण !

कला पीठ अंतर्विकास दर्पण —
संप्रति जन भू स्थितियों में सीमित
नर नारी की प्रीति चेतना उठ
नव भू रचना में हो संयोजित !

उद्वेलित आनंद सिन्धु मन में
नव भू जीवन पुलिन करे मज्जित
संयम गुण से बाँध स्वर्ग शोभा
शुभ मानवी प्रतिमा हो कल्पित !

प्राणों का संगीत आज भू पर
निर्मम हृदयों का कर दे विगलित
रस प्रहर्ष श्री शोभा की प्रतिमा
सम्मोहन भर दे जीवन में मित !

अंतर के स्वर्णिम तारों में नव
जीवन झंकारें करतीं तन्मय
मरकत उच्छ्वासों में हँस उठता
भावों का सुख गति से हो अतिशय!

विगत प्राण मन जीवन के वसन
जड़ हिम वर्णों से गल होते लय
तन्मय सुख – तन्मय सुख में विस्मृति
वह असीम सीमा का रस परिचय!

भूमा की भित्तिका भर कंधा पर
नृत्य निरत अशांत मुग्ध अंबर,
भू विकास क्रम ढोना मानव को
विविध पीढ़ियों में नित नव पग धर!

रस पावक में जलता प्रतिपल मन
बरस रहे रति सुख के धाराधर
अंत शोभा पथ से नभ अंतर
पूर्ण प्रकृति गरिमा से जाता भर!

शोभा हो जीवन प्रतीक पावक
जीवन अंतर्भावों का दर्पण
श्रद्धा प्रीति प्रतीति उसे दे जन
बिम्बित पाएँ उसमें निज तन मन!

घृणा द्वेष दे घृणा द्वेष तम ही
पाएगा नर जीवन में बिम्बित
सर्जन संस्कृत जीवन का साधन
शिल्पी नर भू स्वर्ग करे निर्मित!

हरित वधू सी प्रकृति मुग्ध नारी
पती पुरुष भर स्वर सप भुवन
प्रीति हर्ष शोभा प्रकाश बरसे
स्वर्ग रागिनी हो जन भू जीवन!

सुंदर, प्राण धरोहर तुम मेरी
निखर रहा तन से मन भाव प्रथित
हँसता प्राणों में नव सूर्योदय
उपचेतन मुख पर सौन्दर्य भासित!

अब न अपेक्षित चुंबन परिरंभण
देख रही तुमको सित रस तन्मय
बहता अंतर का सुख अंतर में
दो हृदयों का यह स्वर्णिम परिणय ।

टकराते हो मेधा के पर्वत
लहराती जीवन की अभिलाषा
जगते सूक्ष्म हृदय में संवेदन
भरती शोणित में नूतन आशा !

अंत की सुषमा का रस प्लावन
मेरे तन मन प्राणों में बिम्बित
भले तुम्हें जो लगता प्रिय मुझमें —
वह जीवन करता न हृदय मोहित ।

नव प्रकाश प्रतिमा में सी परिणत
आस्था हुई उपस्थित तुम सम्मुख
बदल गयी परिभाषा जीवन की
बदल गए सत मूल्य — प्रीति भी सुख !

हम निज यौवन के मधु पावक से
आओ नव संसार करें निर्मित
देह प्राण मन आत्मा की निधि को
रस संस्कृत शोभा में कर गुंफित ।

आत्मत्याग दो आत्मदान जग को
उर आभा से सुरभित कर दिशि क्षण
आत्मा का मधु संचित हो जन हित
भर जाएँ जीवन अभाव के व्रण ।

तम अनंत — उससे मत टकराओ
यह संसृति आधार मिला गोपन
तुम प्रकाश गूँथो भू वेणी में
सद्भावों का दर्पण हो जीवन ।

टँगा अधर में हत मानव का मन
ऊर्ध्व ज्योति में कर उसको मज्जित
मुक्त प्रकृति के स्तर पर संस्कृति को
करो धरा जीवन में संयोजित ।

सजग हो प्रभा—बसो मंच पर हम
देखें नव नव सृष्टि नृत्य रूपक—
निखर रही सागर तम से पृथ्वी
देख रहे नभ से सुरगण अपलक !

नील रेशमी जल पट फहरा कर
जलनिधि लहरों को करता शिंजित
हरित मखमली ज्वाला में लिपटी
धमिस कुसुमा भू उठती सस्मित !

मुग्ध माधवी वह दिक् प्रांगण में
रंगमंच पर छाई नीलाभा
नाच रहे ग्रह तारक तुहिन पवन
स्वागत करती प्रथम स्वर्ण आभा !

कनक मुकुर से आता हँस नव रवि
रजत सुधा घट करता शशि अर्पित
नाच रहा स्वर लय गति में भूमा
दिशा काल भव संध्या में मूर्छित !

प्रकट हो रहे क्रमश सचराचर
यह विकास क्रम सूक्ष्म हृदय विस्मित !
जड़प मत्स्य बनता धीरे स्थलचर—
सरीसृपों से खग पशु मृग अगणित !

पंख उगा उड़ता नभ में जीवन
मेरुधरों में मनुज ऊष्म विकसित—
गाते भू भागों के नारी नर
जीवन पथ सजाते मिल हर्षित !

जो आते जितने युग पा का कर
विश्व मंच पर करते अभ मर्दन
तुरत बदलते इतिहासों के पट
चिन्तन मग्न खड़ा पीछे दर्शन !

भीम सूत्रधार नटी ! हृदय ग्राहक
गूढ़ कथानक नाटक का कल्पित
मत संस्कृति सभ्यता धर्म आहत—
बहु देशों शिविरों में भू खंडित !

महद् दिगंत घिर, भरता युग गर्जन
अट्टहास करता भूगोल भीषण
दुर्जय अस्त्रों सैन्यों से सज्जित
महानाश करता तांडव नर्तन !

अंधकार यवनिका गिरी दुर्गम
प्रलय नृत्य करता नर पशु दानव
भैरव क्रांति का दुर्वह दारुण क्षण
श्रवण बधिर छाया भैरव दिक्-रव !

ध्वस्त युगों का पथराया चेतस्
प्रस्तर युग का हुआ समापन रण
उदित पूत नव-प्रभा स्वर्णोदय
विजयी पुन विभक्त मन पर जीवन !

धन भू संस्कृति स्वर्ग ! — सृजन रत जन
धर्म जाति से मुक्त विश्व मानव
राग चेतना के सित प्रांगण में
जन्म ले रहा मनुज प्रेम अभिनव !

श्री शोभा आनंद मधुरिमा का
रचना मंडल में कर नव सर्जन
शुभ्र प्रीति परिणीत मुक्त स्त्री नर,
रस संस्कृत भोगते स्वर्ग जीवन !

नम्य चेतना अतिक्रम कर जग को
भू का कंचुक सी धर करतल पर,
चिद् स्वर्णिम स्रोतों का रस वैभव
बरसाती रज पर शाश्वत अक्षर !

स्वर्ण ज्योति में लोक मग्न प्लावित —
मानव भावी उठा रही गुंठन —
नव जीवन आभा से उन्मेषित
जागी देव भाव मुग्ध जनगण !

छाई थी मधु ज्योत्स्ना अंबर में
धरती लगती स्वप्नों से कल्पित
वह प्रकाश गया यमुना से मिल
प्राणों को करते मधु रस सिंचित !

कूक रही मधु कोयल तरु नभ में
झरते मुकुल पुलक भर मृदु तन में
पार्श्व बिम्ब भाषा लेखा शशि का
गंध पवन पँखवाती बस मन में !

भाव मुग्ध उर काम बोध विस्मृत
तिरते पुष्करिणी में नारी नर
कुसुमित अंगों की शोभा सौरभ
रस ग्रहण से भर देती अंतर !

चपल पात्र मृदु सलिल लताओं से
लहरों पर शत छवियों में बिम्बित
भिन्न रूप में परिणत कर सर को
थी सुषमा से करत रूप मोहित !

काम वृत्ति अधिकृत करने पर भी
प्राण भावना हो तन से निःसृत
दिव्य सुरभि से कर तन मन पुलकित
यौवन का करती आनत हर्षित !

गहरा प्राणों में संगीत अमर
उड़ता आकांक्षा भरत स्वर्णिम
सूक्ष्म भाव श्रम से चपल पावक
अंगों म जमता मज्जा रक्तिम !

आत्म संतुलित मिलते युवति युवक
सहज भाव से गंध समीरण वत्
लहर यथा लहरों में लय होती
देह मुक्त अंतर होते तद्गत !

भाव समाधि विरत कर छात्रों को
लोक कर्म प्रति कर मन को जागृत
केंद्र, धरा रचना मंगल के प्रति
संस्कृत जीवन को करता प्रेरित !

नील व्योम दर्पण सरसी का उर
मज्जित कुसुम तैरते तरल जल में
सुंदरपुर के कुँवर कला प्रेमी —
मधू भाव डूबी सी रस तल में !

शोभा पावक की मधु ज्वाला सी
जल से निकली नभि लपटें आतीं
मुग्ध रूप यौवन की चमचम सी
आँख मिचौली प्राणों को भाती!

स्वर्ण हंस से सत्य पंख मन के
कभी तैरते मिथुन निकट आते
घुमा सुघर ग्रीवाएँ लीलावश
देख दूसरे को फिर बिलमाते!

अर्ध विवृत तन शोभा जल पट से
चम्पक पुष्पों सी सजती पुलकित
मधु पराग पावक से विरचित सी —
नवा प्रभा से भी सरसी परिवृत!

मुग्ध करभ सा लगता तरुण प्रमित
कमल लता सी कुसुम कला कल्पित
शाश्वत रस शतदल सी पुष्करिणी
प्रकृति पुरुष हों लीला सुख मण्डित!

त्वच से लिपटे गीले मसृण वसन
प्रिय अवयव सौष्ठव करते अङ्कित
सुगठित अंगों में था दृढ़ पौरुष
तनु देही में कोमलता मूर्छित!

जल से ही उतरा स्थल पर जीवन
जल की चल उर इच्छा से विह्वल
रस समाधि में वे निमग्न दोनों
पा जल का स्वप्न स्पर्श प्राण कोमल!

खोल रहे थे झिलमिल कर तारे
निश्चेतन जल तल रहस्य गोपन
कर्दम शय्या में जग भू शोभा
खोल रही थी स्वप्निल कुमुद नयन!

पुष्कर के स्फटिक सोपानों पर
दंपति बैठे थे अब पुलकित मन
तृण तरु जल पर तन मन प्राणों पर
ज्योत्स्ना का था छाया सम्मोहन!

स्वप्नों के झुटपुट सी शशि आभा
सालस मुख में झरती उर मज्जित
अपराजिता लता सी सित श्यामल
अंग अंग को कर रस तम से मंडित !
आर्द्र वसन गिरि वर्षा में भीगी
ऊँच नीच शोभाओं की ढोली
शिखर कलश से आते उभरे स्तन
कृश कटि पेशल जघन पृथुल ओली ! —
भारहीन शशि लेखा सी तिरती
कुसुम जलाशय में नपती शोभित
काम पुरुष के स्वर्णिम दर्पण में
रति की शोभा हो शाश्वत बिम्बित !
तुम न सके थे कनक काम बंधन
देह वृत्तियों का द्रष्टा था मन
उसे अंक भर शोभा मुग्ध चकित
सहता रस आनंद शक्ति दंशन !
प्राणों की हो सर्प शक्ति जाग्रत
चढ़ती भावों के सित चक्रों पर
सूक्ष्म रूप रस बोध मधुरिमा सुख
अंतर में फूलों से पड़ते झर !
लाज शुभ्र उसके मुख सरसिज पर
अंकित कर सत रस अतृप्त चुंबन
ज्योत्स्ना को भासित कर मुग्ध चकित
रूप समाधित कहता प्रणय वचन —

ओ विस्मय अंगा की प्रिय प्रतिमे
यह वदन सौरभ का चंपक तन
यौवन के मधु पावक में निखरा
शुभ प्रीति का रस अतृप्त कांचन !
ओ प्राणों के सुख की उन्मदते
आर पार तुम दर्पण सी उज्ज्वल
अपने को कर तुम्हें प्रीति अर्पित
बन जाता मन पंक मुक्त निर्मल !

जगती हरित पुलिन पर आकांक्षा
सुन स्वर्णिम शृंगों का मधु गुंजन
स्वप्नों के सोपानों पर चढ़ गिर
प्राण चपल करती आरोहण!

भार मुक्त मन हलका — न मैं तुमसे
रख सकता हूँ अब कुछ भी गोपन
अतिक्रम करता स्वर्ग मर्त्य का सुख
पूर्ण समर्पण का यह पावन क्षण!

तारा चढ़ा पड़ा तन पर मांसल
शशिमुखि उर सरसी नभ सा स्पंदित
घने केश लहरें तम से कोमल
शोभा तन मन करती आच्छादित!

अतल अचेतन का पाने कैसे
अभिलाषा हो उठता हिल्लोलित
कांपे मन की पीर दामिनी सी
इच्छा प्राणों का करती मंथित!

बांध भुजालक लोल दर्प स्मित फन
नाग गुहा में जग करता नर्तन
सांसो से सुलगा उर में ज्वाला
मूर्छित करता मर्म अंध दंशन!

तुम रस पुष्करिणी हो शिव शीतल
मन शोभा में करता अवगाहन —
फेन बूंद विष की अनंत जल में
प्रीति अमृत बनती — जीवन पावन!

सम दृष्टि हो चित शोभा में लय
व्यक्ति मोह बन विश्व भाव विस्तृत
राग कामना उठ कृमि कर्दम से
प्रीति चेतना में होती विकसित!

फिर भी व्याकुल मेरा उर तुमसे —
प्रेम सर्वभक्षी पावक निश्चित
पुण्य पाप ही नहीं व्यक्ति रुचि भी
मुझे तुम्हारे प्रति करती प्रेरित!

शून्य भावकी शितिजा में उड़ता
सर्व - प्रेम उर पथ थाम विस्तृत
उपचेतन की वास्तवता को छू
व्यक्ति प्रेम होता सार्थक उपकृत।

अब प्रिये तुमको आलिंगन कर —
अग जग को बाँहों में भर अतर
रति तन्मय अतिक्रम करता जग को
छू असीम निस्तल महर्प के स्तर।

यह किरण पीकर स्मित अधरों की
सुधा तृप्त होता रस आकुल मन
पर्वत मांसल उर घाटी में खो
पाता अपने को कृतार्थ यौवन।

ज्योति तमस गुम्फित तुम प्रिय ज्योत्स्ने
मेरे मोहित भाषा का भाती
हरित नील तलहटियों में बजती
मदिर घाटियों की मधु ध्वनि भाती।

रक्त नील धन ताम्र धूप छाया
जाने कैसी मन म मँडराती
सुनता आशा ओठों की टसमस
रस निर्झरिणी भाषा में गाती।

प्राणों की संधा तृष्णा सागर
खींच रहे उर के निश्चेतन तल
धूम तमो रस भँवर चेतना में
रूप मांसलता को करता चंचल।

ममा कुसुम को निज विक्रम उर से
झूला यह पुष्कर में रत दंशित
जस क्रीड़ा हो यौन समाधि मगन —
फेनोच्छ्वसित पुलिन जल आंदोलित।

स्फीत ज्वार में गिर ज्यों फूल युगल
ऊब डूब करते गति लय ताड़ित
प्राण सिन्धु में तृणवत् दो देहें
तिरतीं तन्मय मुग्ध आत्म विस्मृत।

भव्य स्तंभ सी थी बलिष्ठ जाँघें
स्निग्ध काम ज्वाला से परिवेष्टित
उमड़ प्रचेतन स प्रमत्त लहरें
पुष्ट भुजाएँ सी लगती मर्दित !

तड़ित् पात होता रस का दुर्धर
अग्नि शूल सा धँसता उर भीतर,
शत सहस्र अहि दंशों से विह्वल
प्राण खोजते शीतल मरकत सर !

बाहु पाश स छूटा देह लतिका
बोली वसंत कुसुम सज्जा लोहित
प्रणय लोभ के और विजय साधन
धरा सृजन रति में हो वह कुसुमित !

संयम बल जो आत्म ग्लानि मथित
हुआ व्यथित ना हृदय विरति पीड़ित
मंद पड़ गई मानस शशि ज्योत्स्ना
तम समुद्र में हुई दृष्टि मज्जित !

नर नारी की हृदय मुक्ति द्योतक
शुभ्र प्रीति चेतना भाव सुरभित
सित उड़ान भरती जो अंबर मे
छिन्न पंख वह हुई पंक मूर्छित !

हृदय कमल कुम्हलाया उस तम में
मोह पिंड बन गया प्रकाश अमित
उदित हो रहा नव चैतन्य भुवन
हुआ अस्तमित – गर्त भुवन कवलित !

यौन कर्म प्रति वह पशु धर्म जनित
मत भू संस्कारों से था पीड़ित
उठ नहीं पा सका जिसे भू ग
संस्कृत स्तर पर सित प्रहर्ष प्रेरित

जब विहगों सा मधु कलरव भ
आए वहाँ युवक युवती उस प
तरल हँसी की रजत हिलोरों
[illegible] क्रीड़ा उपवन

पुष्पित कक्ष में पहन वस्त्र नूतन
मिलती कुसुम युत सखा सखी वन में —
केन्द्र प्रभा थी हृदों में स्त्री नर
विचरण करते संस्कृति प्रांगण में !

निभृत मिलन का भी पाते अवसर
युवति युवक भीतर से संरक्षित
भावों आवेगों का कर विनिमय
राग संतुलन हो जिससे स्थापित !

भाव प्रवण दुर्बल चरित्र के प्रति
जागृत रहते स्नेही सहचर मित
प्रीति मनोहर विधियों से उसको
नव संस्कारों में करते दीक्षित !

व्यक्त न करती मर्म भाव सीमा
गत जग भू संस्कारों से पीड़ित
प्रणय भीत उस भाव गुण्ठिता का
हृदय रूप प्रति था अपने कुंठित !

सहज स्नेह दे शंकर ने उसको
कुंठा मुक्त क्रिया — पंथ संस्कृत
गुप्त कर्म अब था न प्रेम वर्जित
मूक पिकी उर हुआ शीघ्र मुखरित !

गूढ़ समस्याओं पर कवि का मत
लेते सहृदय छात्र तर्क प्रेरित
आदर्शों को कर जीवन मूर्तित
हृदय निकष में कसते यथान्वित !

व्यक्ति प्रेम रवि अनुभव हो विकसित
मुझे नहीं इससे विरोध किंचित्
निखिल अतीत मनुज की सब संस्कृति
व्यक्ति प्रीति ही की परिणति निश्चित !
वंशी कहता — सर्व प्रीति का सुख
कला स्वर्ग का लक्ष्य — मानवोचित
शुभ्र प्रीति का मधु भाव - संसक्त
नर नारी उर करे सहज निर्मित !

राग भावना का पट हो विस्तृत
प्राण प्रफुल्लित हो भू जीवन पथ
प्रीति भाव से मिटे द्वेष कल्मष
पंक मुक्त निखरे शोभा का रथ !

प्रीति मुक्ति की शुभ्र पीठ पर ही
व्यक्ति प्रकृति भी हो सकती विकसित
समधिक जीवन निखरे शिखरों पर
ऊर्ध्व गमन हो सुगम व्यक्ति के हित !

मधित कुसुम के कमल केन्द्र संतति
भू शोभा रचना मगन में रत
उपचेतन सलिला से शुभ्र पवित
बनता धीरे रस संस्कृत संयत !

चिनगारी या भूत अंगार जैसे
नव ज्वाला से हो उठता वेष्टित
नीरव स्पर्श या अवचेतन का तम
रस प्रकाश ही में होता जीवित !

पर्व राग रति भाव मूल्य पीड़ित
भू जीवन का था उपचेतन मन
बंध रहा था कवि नव संस्कृति हित
व्यक्ति प्रीति मद दम्भ मोह बंधन !

मग्न चेतना ने उर क्षितिजों में
ज्योति रस भुवन किए जहाँ विकसित
कवि मुक्त निश्चेतन गर्तों में
हुई वहाँ रज तृष्णा आंदोलित !

प्राणों का जीवन सद् स्वप्नों में
करता अपने को नित अभिव्यंजित
नयन नाभि स्तन अधर वदन मुख श्री
रूप प्रतीकों में बहु रूप चित्रित !

पद कर भँवर, मराल रक्त पल्लव
मीन कमल शशि हो अनिमेष उन्नत
मनोमृगों को करते मुग्ध सहज

ऊर्ध्व चेतना के अंतर पट खुल
प्राणों की रुचि को करते विकसित
निखर भाव शोभा के ज्योति क्षितिज
रस प्रहर्ष से करते उर पुलकित !

शोभा प्रेम सुषम प्ररूप ही में
काम पूर्ण होता विकसित उपकृत
अधोमुखी वह, मानव मूल्यों से
रखना पड़ता पशु सुख को शासित !

कलापीठ में क्षणिक मुग्ध होकर
बनी संतुलित हुआ काम का बल
थी शोभा रस के आनंद भुवन
खुले रहस्यों के फैला सित रस !

कुसुम धूम से खिले अंग कोमल
गाथा प्राण शिराओं में शोणित
पारिजात वदन की सी सौरभ
तन से आ मन को करती मोहित !

सूक्ष्म भाव शोभाएँ सहज निखर
आनन को करतीं आभा मंडित
नयनों की नीलिमा स्वप्न स्मित सी
विस्मय सरसी में जगती मज्जित !

सित संयम ही से कृतार्थ होता
प्राणों के उन्नत सुख का जीवन
रस समग्र पूर्णता प्राप्त कर ही
खुलता आत्मा का सौन्दर्य भुवन !

जीवन शोभा से मानस सुषमा
मानस सुषमा से चिद् रस प्लावन
उभय प्रकाशों से प्रकाश अक्षय
पावन करते क्ष्मा स्वयं प्रांगण !

वह मिलन के सुख का अतिक्रम कर
भाव मिलन के रस प्ररूप में नव
युवति युवक के आशा के तन में
हँसता नव जीवन का अरुणोदय !

भाव देह की आभा से प्रेरित
प्राणों के परिणय में बँध यौवन
सित रस सागर में तिरता तन्मय
ऊर्ध्व चेतनात्मा में कर मज्जन ।

मन के नभ में भावों के मधु घन
भावों के नभ में शोभा शशि मुख
मुख शोभा में सित सुरधनु किरणें
प्रतिच्छवित करती शाश्वत रस सुख ।

भ्रमित रंग आलोकों में विगलित
लहरा उठते उर पावक सागर
सृजन प्रेरणा भर सित प्राणों में
आमंत्रित करते प्रकाश प्रखर ।

मन कहता यौवन के प्रांगण में
धर आभा पीठ गढ़े जीवन
स्वर्ग प्रीति को मर्त्य प्रीति रस में
परिणत कर उपकृत हो युग दर्शन ।

राम भावना स्थिति से युवकों की
कवि ने हरि को भुला किया अवगत
प्राण शक्ति नूतन प्रकाश प्रेरित
भू रचना कर्मों में हो परिणत ।

नव वसंत उत्सव की अवधि बढ़ा
भू श्रम पर्व बना उसको कुसुमित
जन ग्रामों की शोभा रचना हित
किया युवक युवती को उत्साहित ।

प्राण दान देना था मृत शव को—
बहिरंतर की स्थितियों से मर्दित—
भीतर थी जड़ परंपरा बाधक
बाहर था श्रम जीवन असंगठित ।

युवति युवक भू श्रम में घुल मिल कर
हरते मन के शंका भय संशय
संस्कृत स्तर पर कर अतीत जीवन
उच्च वृत्तियों का देते परिचय ।

मृत वर्णों में बँधे गत संस्कृति के
उच्च मध्य स्तर पर भी जो विघटित
काम पंक में सना धरा जीवन
ऊर्ध्व श्रेणियों के प्रति था शंकित !

ग्राम युवतियों की सँवार प्रिय छवि
शिशुओं के तन मन कर • श्री भूषित
शोभा का सित स्वप्न शुभ्र भू पर
उठा स्वप्न से करते वे रोपित !

बहिर्मूल्य बन जग भू पर शोभा
जीवन मंगल करे प्रथम वर्धित
सुंदर स्तर पर हो जीवन वाहित
जन श्रम से भू स्वर्ग करें अर्जित !

अंतर्मूल्य बने फिर सित शोभा
राम भावना हो व्यापक विकसित
गीति छंद में जिएँ मुक्त स्त्री नर
हृदय सुरभि से हो जग भू सुरभित !

जन-मन में भर नव युग संयोजन
कला ज्ञान ऋत चित् से अनुप्राणित
भू जीवन की शोभा प्रतिमा में
शुभ्र सत्य शिव को करते स्थापित !

घृणा द्वेष के कंटक चुन उर से
मनुज हृदय का कर शतदल विकसित
मध्य युगों के मूढ़ मनस भ्रम को
नव समाज में करते यथोचित !

अधोमुखी बन उलट गया था उर
पर हित निर्मम जीवन प्रति कुंठित
सहृदयता सद्भाव बना उसका
ऊर्ध्व प्राण भरत करुणा विस्तृत !

गाँवों में सक्रिय था धन नव मत
तर्क वितर्कों में रहते जन रत
कभी जूझ टकराते आपस में
प्रगतिशील प्रतिगामी दल के मत !

इस प्रकार नव मानव का यौवन
अमर वीर्य बन उगता धरती पर
श्री शोभा आनंद शस्य में फल
ज्योति प्रीति मंगल मधु संचय कर।

सुजन हर्ष से रोमांचित यौवन
लोक कर्म प्रेरित होता सार्थक
स्वर्ग प्रीति में गूँथा हृदय संयम
श्री स्वप्नों से रहते दृग अपलक।

कहते वे धिक मध्ययुगी मन को
जिसने भू का दी विरक्ति वर्जन
दिया पारलौकिक का आकर्षण
कर्म प्रेरणा से वंचित कर जन!

बाँध कर्म फल भ्रम में जीवन को
पूर्व जन्म की रच निर्मम शृंखल
अजगर बना नियति विष का निष्क्रिय
पाप पुण्य भय दिखा किया निर्बल!

धिक्, जग जीवन को मिथ्या बतला
रिक्त मुक्ति हित भेजा गृह का वन
घोर दरिद्र क्षुब्ध बना भू को
झूठी आस्था दी झूठे साधन!

पक्षाघात ग्रसित था भू जन को
भर आते करुणा जल से लोचन
रुधिर उबलता हृदय शिराओं में
प्रेम सृष्टि का देख नरक आंगन!

प्रीति रक्त से सींच धरा मन को
उपजाते जीवन प्ररोह नूतन
गूँथ स्वर्ग स्वप्ना से भू वेणी
जग मृतक को देते संजीवन!

धरा स्वर्ग ही में प्रभु का पूजन
सिखलाते रचना श्रम कर अर्पण
जीवन शोभा का नैवेद्य चढ़ा
भाव दीप्त रुचि से कर नीराजन!

अल्पसंख्य जन भाषा के अनुचर
रच कुचक्र करते विरुद्ध जन मत
नव प्रकाश का लहराता सागर
ह्रास तमस जब बनता अहि पर्वत!
युग समयम था सम्मुख भीषण
असुर प्रतीत प्रबल लघु शिशु अभिनव
भू कर्दम के अतल गर्त तम को
एक रश्मि दीपित कर — संभव!

माता से अस्वस्थ स्वयं उनका
लौट रहा था घर उन्मन शंकर
क्षमा शिविर के निकट गुल्म तम में
उसे सुन पड़ा भूखा क्षीण मृदु स्वर!
ठिठक चकित होकर देखा उसने
धवल पीत लत्ता का लघु गुच्छ
साँस ले रहा था कँप झाड़ी में
करुणा कोमल कर अरण्य रोदन!
सर्व दृष्टि रवि जब पश्चिम नभ में
फेर रहा था क्रोध रक्त आनन
तम अंचल से झँकती धरणी मुख —
नव जीवन के जन्म मरण का क्षण!
झिल्ली सी हुलसी जब झनझन
जाने क्या कहती विधि से गोपन
प्राण प्रबोधन करता था प्रेरित
शिशु था जीवन का स्फुलिंग चेतन!
उसे अंक में शंकर ने देखा
स्वप्न मुकुल सा था नव शिशु सुंदर
क्षमा शिविर के शिशु गृह को उसने
सौंप दिया उसको ले जा सत्वर!
सुनकर शिशु का नियति कथा कातर
रोई संस्कृति मंदिर में मर्मर
मानव करुणा विजयी हुई बनी
भव संशय कटु कुत्सा कल्मष पर!

हरि की सहमति के विरुद्ध कवि ने
किया प्रमित हो अभिनव का स्वागत
वस्तु दृष्टि से था हरि आतंकित
कवि हित था शिशु भू का अभ्यागत!

यही अनाथाश्रम यह—कहता हरि,
कला पीठ पावन संस्कृति प्रांगण
परंपरा का हृदय कुचल—करते
तुम पर्वत बाधा का आवाहन!

वैसे ही गांधी में प्रतिपक्षी
रहे गुप्त अवसर पकड़ नित
बढ़ता जाता विपर्यास धीरे
दृष्टि तुम्हारी उन्हें नहीं स्वीकृत!

तुम स्वतंत्र चेता हो निःसंशय
पर वास्तवता से न अधिक परिचित
भावों में स्थित रोप स्वर्ग टहनी
उसे स्वप्न श्रम से करते सिंचित!

मोह नियति पिंजर प्रिय मानव को
उसे मुक्ति से स्वीकृत जड़ बंधन
कर्दम से अवगत वह ज्ञात उसे
कुसुम न समझ ही आकाश सुमन!

मृग मरीचिका का भी बोध उसे
सीमा रेखा की उसमें अंकित—
इधर नरक है उधर स्वर्ग—मध्यम
पथ उसके मन को चिर अंगीकृत!

मुझे दुःख मैं भी न पूर्ण सहमत
पाता अपने का इस जीवन से
देह मोह सकता न पंगु जीवन
मनुज न रह सकता बचपन मन से!

निश्चय अब यौवन की परवशता
गुल्म कोष ने बना मनुज बालक
केन्द्र नहीं दायित्व मुक्त इससे
वह भविष्य जीवन का संचालक!

विस्मय हत सा बैठ गया कवि
दुःसह बोझ न सह पाया पतर
टूटा हो उस पर अतीत पर्वत
तम में घुस सी गई किरण क्षण भर !
देख स्तब्ध कवि का निश्छल शिशु मुख
स्वर्ग हो रहा था जिसमें बिम्बित
मनस्ताप्त हरि झुठला निज मन को
हुआ पुन युग कवि के प्रति अर्पित !
आर पार कवि देख सका हरि का
सहसा पा फिर ख्याति केन्द्र भास्वर —
तृण सा फेंका मृतक भार मन म
काम चक्र हो घूमा उर भीतर !
नैतिकता का पाश छिन्न कर हरि
थाह न पाया था प्रकाश सागर
शाश्वत का पा स्पर्श प्रीति स्वर्णिम
उठ न सका था वह मन म ऊपर !
केन्द्र चेतना अमृत सरोवर क
तट पर बैठा करता संचालित
जीवन मन की लहरा को बाहर, —
दृष्टि न थी अंतर म अनुप्राणित !

उत्तर सहसा द न सका वंशी
था अतीत से आवृत मन अंतर
मिट मिट श्रेणी में बढ़ लोकोत्तर
मूर्तित होना था मन को भू पर !
ईश सांप्रत सीमा बन सकती
भावी भू जीवन विकास दपण
ह्रसित अतीत शिखा हर्षा निमम
विजयी होगा मूर्ति सूक्ष्म नूतन !
मधु मधुपतामा म ही गुम्फित
शुभ्र पूर्णता का पट निःसंशय
पूर्ण अपूर्ण उभय म ही अतिशय
रस स्वर्णिम चैतन्य प्रीति - तन्मय !

एक दृष्टि थी वर्षों के भीतर
मानव भावी स्वप्न भूमि अंकित —
रूढ़ि रीति में पथराई जन की
दृष्टि दूसरी थी जीवन कुंठित!

जग जीवन मन में प्रयोग अभिनव
करता वह स्वर्णिम प्रकाश प्रेरित
शुभ्र भूमित को मनुज प्रीति वश से
भू जीवन पट से कर प्रभासित!

यौवन? यौवन ही के पावन से
धरा स्वर्ग हो सकता नव निर्मित
पंगु न जीवन! (निश्चय मृत वत मन!)
उड़ सकता वह चूम नील अविजित!

जीवन सत्य नहीं आकाश कुसुम
मृग तृष्णा चित् स्रोत नहीं निश्चित
सत युग की वांछित वास्तवता को
पूर्ण चेतना में होना विकसित!

सच्ची वास्तवता भविष्य गुंठित
युग वास्तवता मात्र ह्रास विघटन
स्वभू स्वर्ग रहती निज रस वर्धित
उर स्वप्नों से ही संभव चिंतन!

जड़वत् स्तंभित निष्क्रिय रहना ही
नहीं मध्य पथ — पंथ प्रगति सूचक
स्वर्ग विकास धरा का ह्रास नरक
जीवन दोषी छिद्र दृष्टि मूषक!

शिथिल विश्व ही आज अनाथाश्रय
सुलभ मनुज को यहाँ न सुख साधन —
अकथनीय जन भू विकास की स्थिति
मानव भक्षी अभी मनुज का मन!

क्षमा पीठ क्या? — कहा दीप्त कवि ने
नूतन मानव का युग संवर्धन
मध्य चेतना में कर आरोहण
जन मन को करना भू पर विचरण!

ज्ञान प्रेम आनंद शक्ति शोभा
सत्य जन्म पथ मानव के निश्चय
राष्ट्र नायकों का दायित्व प्रथम
रखें लोक जन हित जीवन-सुखमय !
किन्तु उनको पद गौरव के बल पर
दैन्य पंजरों पर करते शासन
हृदय हीन जन धन के अपव्ययी
सज्जा मन मद मानव का पामम !

माघो के शिष्यों ने ईर्ष्या वश
कसा, पीठ भू को करने लांछित
ज्ञान महार्घ के सम्मुख शिशु को
निज कलंक करना चाहा छादित !
शिविर सार्वभौमिक विकास के हित
प्रीति मुक्ति को करता प्रोत्साहित —
शोषण कृत्यों की कटु परंपरा
विगत युगों की शेष रही कुत्सित !
कला केन्द्र में भी दुर्लभ क्षण में
होता यदि अभिभूत नव्य यौवन
स्वीकृत करता कवि अनिष्ट फल को —
राग क्षेत्र का दुष्कर परिमार्जन !
उच्च ध्येय था युग कवि के सम्मुख —
असफलता स मंगता मित साधन —
राग चेतना हो भू की संस्कृत
धरा स्वर्ग हो प्रीति प्रथित पावन !
फिर मनुजोचित भी शिशु संरक्षण
परंपरा का प्रश्न न था आवृत —
हरि का नैतिक मन्यु दंश खाकर
युग कवि का मन हुआ नहीं विचलित !
मन्त्र चेतना का रस सित सागर
जड़ अतीत के तट करता प्लावित
बुद्बुद से गिरते चरित उसमें
प्रथम मनुजता — व्यक्ति गौण निश्चित !

कहता कवि मन भू विकास क्रम में
यही सत्य हो रहा सृजन छंदित —
जमा शिशिर में सार तत्व संवृत
स्वप्न भूमि से उसे करे प्रकटित!

उस बोध का जड़ यथार्थ कैसे
सत्य प्राण में होगा यथोचित
दीप पसारे बैठी वास्तवता
सत्य करे उसको प्रकाश अर्पित!

देख नवागत का मुख आर्द्र हृदय
कवि के मन में हुआ स्फुरण गोपन —
दिग् विराट् सचराचर में व्यापक
हुआ जनम पद्धति का उद्घाटन!

पावक ज्योति मरंदों से विरचित
मातृ प्रकृति का भग था रज पावन
स्वर्णिम सित कक्षों में थे पुंजित
जीव योनियों के असंख्य चित् कण!

सोच रहा था कवि पवित्र नव शिशु
भ्रमित योनियों के क्रम में छन कर
पंच तत्व तन्मात्रा से निर्मित
सूक्ष्म स्थूल का मूर्त रूप सुंदर!

बुद्धि प्राण मन अहं हृदय चित् से
भाव प्रवण रस मय हुआ कल्पित
अमर दिव्य आत्मा रच पंजर में
कैसे मुक्त बँधी सब सीमा हित!

शाश्वत निमिषों में जागा अपलक
रूप अरूप हुए मिल महिमान्वित
स्वर्ण ज्योति चित् भर ने शून्य तमस
जीवन अरुणोदय में किया द्रवित!

कौन नाम दे तुम्हें पुकारूँ जग
किन रूपों में देखें जन लोचन?
सब अनर्थ ही स्वयं सार्थ बनकर
कर्म मुखर करता जन भू प्रांगण!

अवाङ्मनसगोचर बन पृथु गोचर
गर्भों में भरता अक्षय आशय
धिक उस मन को तुमको पा उर में
जो तुम पर जग पर करता संशय!
शिशु का मुख अवलोक सोचता कवि
कौन भला इससे जग में पावन?
जाति वर्ग कुल गोत्र मनुज की कृति
भगवद् मोक्ष सनातन नर लक्षण!
किस विशिष्ट गुण से हो शिशु अर्पित
मायिक स्वर्ग दया से अभिषेकित
पैतृक संस्कारों पर हो विजयी
इसे धरा पथ करना नव निर्मित!
प्रकृति पुरुष इसके प्रिय जननि जनक—
पूर्ण धरा जीवन जो हो विकसित
जो विमुख हो तन मन भव प्रांगण
मानवता न हों प्रभु रज-मूर्छित!
मेधा प्रवचन से न प्राप्त ईश्वर
धर्म सत्य विज्ञान नीति वचन
ध्यान धारण में न तत्व बैठता
उस मूर्त करता है मन जीवन!
अमृत सिन्धु हा अणु शिशु भीतर,
मृदुल मुकुल में हो वसंत शाश्वत
हो स्वर्गिक संगीत मूक स्वर में—
शिशु रहस्य जगती का—कवि अभिमत!

यथा करती नव शिशु का पालन
उस प्रीति का आता सहज स्मरण—
मातृ द्वार की स्त्रियाँ पूर्ण ग्रह का
धीरे शिशु का करती अभिनन्दन!
मनुज नाम वधी में दिया उसे
बढ़ता वह पा जीवन स्थिति संसृत
पुत्रहीन स्त्री जब रीते उर का
मुक्त प्रेम उसको करती अर्पित!

सोरी पाती भद्रा फिर मा बन
जीवन प्रांगण के प्रति भद्रा नत
बद्ध दृष्टि – जग पाप क्षेत्र भंगुर,
सत्य दृष्टि – भव भवसार, शिव शाश्वत !

गाती शाती मुग्ध स्नेह तन्मय
झुला पालने मे शिशु को सादर,
दिव्य हिंडोला पावन शिशु ईश्वर,
काल झुलाता थपकी दे निःस्वर ! –

गाओ नव सादी गाओ
मुग्धा का हृदय रिझाओं
रुपहली नीलिमाओं से
नभ की अप्सरियो आओ !

रत्नच्छाया पर झुककर
भी शोभा में लिपटाओ
स्वर्णिम किरणो सी असर्ते
शशि मुख से विहँस हटाओ !

सखि धरा गुहाओं में नव
जीवन स्वर्णोदय लाओ
रस सिक्त नव पिय मोतों मे
मर्मों का मन महकाओ !

वीणा तारों म सोई
स्वप्निल स्मृति उसे जगाओ
शाश्वत की तन्मय लय में
नव शिशु का हृदय डुबाओ !

नव शोभा के क्षितिजों में
लालन का मुकुट उठाओ
स्वप्नों के वन की सौरभ
मामा पुट में बरसाओ !

जीवन विकास क्रम को नव
आनंद छंद दे आओ
नाचो नव स्वर संगति में
विधि की वाणी सनमाओ !

सोया चिद् पावक का कण
शिशु अंतर में मुसकाया
खेलें हँस आँख मिचौनी
सीमा असीम मुसकाओ !

तुम मानव की स्वर्णिमी
नव जीवन अमृत पिलाओ
शिशु उर म भाव रस वैभव
बरसा भव मोह मिटाओ !
जीवन की सित गुंजन में
करुणे नव कली लगाओ
यह मानव पारसम पावन
चेतने इस अपनाओ !

मरण पीय जीवन के शिशु को
भू कर्दम से उठा पोंछ कर
स्वर्ग दया — नव भरा वसना
भू मा सी गोदी लेती भर !
भुला प्रीति अपने में उसको
चिद् रस स झरना सपोषण
भू विकास के द्वन्द्व रण में वह
विजयी हो जाग्रत नव चेतन !

अन्तर्विरोध

तिमिर विनम्र प्रणाम तुम्हें कवि का
तुम अवगुंठित ज्योति रूप शाश्वत
आदि सृष्टि आधार निशा रस मुग्ध
प्रकृति योनि रति अचित् कूप प्रसव !

दृष्टि अविद्या न दो युग कवि को
देख निशा के पार सके अंतर,
विद्या का सित तीर्थ बने भू मन
खुले ज्योति अमरत्व लोक भीतर !

देख तुम्हारी भगवच्छवि प्रिय तम
जन्म मरण भय मिटे बुद्धि संशय
जीवन बोध बने तद्गत उर में
जड़ संस्कार धरा मन के हों क्षय !

गुहा तिमिर से ज्योति ज्योति से तम
निखिल विश्व जिसका लीला प्रांगण
ज्योति तमस से परे सृजन सुख रत
प्रेम तत्व अंतः प्रभ मय पावन !

कटें बंध तम मूढ़ लोक मन के
ज्योति अंध दृग पाएँ दृष्टि नवल
विग्रह का कर नव रस मूल्यांकन
प्रीति स्वर्ग हो भेद भ्रम मूतन !

गिरा युगांत तमिस्र विश्व मुख पर
अंतर में होता नव अरुणोदय
मन क्षितिज पर उदित शुभ्र रस रवि
प्राण गुहा तम नव प्रकाश तन्मय !

किरण द्युति से भर सतरँग छाया
गिरे धरा नभ स्वप्न हृदय अंकित
आस्था की झंकार भरो मन में
जागें वे जो नव युग प्रति निद्रित !

छाया मावस का तमस सघन
ज्योति पर्व का आया पावन क्षण
नव दीपोत्सव मना रहे भू जन
भूत निशा हो उठी स्वर्ण चेतन !

गत युगों की आभा का दर्पण
अंधकार का करुणा घन आँगन
पूर्ण सत्य का मुख न देख पाए
शिखा दृष्टि के भीरु भीरु लोचन !

स्वर्णिम लपटों में ला सुलग उठा
स्वप्न शिखा बन भू तम का अयस
ज्योति विद्ध निश्चेतन प्राण भुवन
जाग उठे अँगड़ा सोए क्षिति पल !

विहँस उठे भू नभस् प्राण मृण्मय
अन्तर्दृष्टि मिली जग को अभिनव
जीवन आनन चित् प्ररोह प्रहसित
उगा रही जग भू ज्योतिर्वैभव !

बुद्धि ओट छिप रश्मि चेतना की
जन जीवन पथ करती थी ज्योतित
स्वर्ण शिखा अब उतरी भू मन में
रज के रोम कनक लौ में कुसुमित !

खुले अविद्या दैन्य मोह बंधन
कल्मष का मुख दिव करुणा उत्सव
स्नेह वर्ति चेतना प्राण मिल कर
मना रहे नव भू जीवन मंगल !

मृद् दीपों का जगमग व्योम सँजो
जग भू मन का क्षितिज शिखा विस्तृत
गृह आँगन पथ ग्राम नगर तोरण
पावन ज्वाल छवि दीप शिखा मंडित !

प्रकट प्रभा इंद्रिय संघात मुख पर
मन वाणी से परे ऊर्ध्व अक्षर
जग जीवन मय स्वर्ग ज्योति मंदिर
माया के पग चिह्न बिछे भू पर।
धरा दीप ही ईश्वर का प्रतिनिधि
सूर्यों का आलोक लिए अक्षय
पूर्ण हुआ चिन्मय मृण्मय सी बन
तपस्तेज पी महद्-स्नेह तन्मय।

काल नील मधुकर सा नमता नभ
तम वासुकि हो दिक् कुंडल मारे
फेन स्फीत शत विष फन फैलाए—
स्फोटा मणियों से जलते तारे।

ख्याति पीठ मय जन भू का जीवन
व्योम देखता विस्मय से स्तंभित
लिखी भाल पर भी जो ज्योतिर्लिपि
भू पर सत्य हुई, जीवन मूर्तित।
चंपक श्यामाभा के धरणी ने
पहने मणिमय उत्सव आभूषण
नभ ने जो स्वर्णिम किरणें बोई
फूटे उनसे अंकुर चिर पावन।
धधक सुप्त अवचेतन का पावक
जीवन शोभा लपटों में मुकुलित
मन प्राणों के भुवनों का विभव
स्वर्ग सृजन संगति में यथोचित।

ज्योति तमस की अद्भुत छाया में
देख रहा था कवि विस्मित लोचन—
जन्म ले रहा जन भू प्रांगण में
जन्म जन्म—भव संचित का प्राक्तन।
स्वर्ग केन्द्र जीवन विकास में भी
ममता मद प्रतिरोध जहाँ शोषण
रजोभवन के विमुख अचेतन स्तर
उद्वेलित करते मन का प्रतिक्षण।

गत भू के संस्कारों में पोषित
प्राणों का जीवन विद्रोही बन
स्थापित करता निज स्वतंत्र सत्ता
उमड़ा करता आवेशों का घन !

प्रगति रुक गई थी रस बरस की
कहीं सूक्ष्म नैतिकता का बंधन
दृष्टि क्षितिज को कुंठित कर देता —
गत मूल्यों के प्रति है आकर्षण !

रस शोभा आनंद प्रीति मग्न म
मुक्त न उड़ पाता यौवन का मन
जहाँ प्रतीक्षा करते अपलक दृग
नव्य चेतना के आलोक चुम्बन !

स्नेह डोर म बँधे मौन हरि थी
मोह द्वीप से स्थित रस सागर मे
केन्द्र चेतना को सीमित रखते
मातृ स्नेह की स्वर्णिम गागर में !

उनके भाव रजत आदर्शों से
अनुशासित था निखिल अन्त जीवन
असंतोष था कहीं गूढ़ भीतर —
अभी बहिर्गत हो सित समागम !

निभृत सहज अन्तर्मन कक्षों में
रह पड़ी थी अस्फुट भाव संपद्
अभिव्यक्ति के हित को भी आतुर
अवचेतन का चोर सघन आच्छन्न !

कहा एक दिन बंशी ने मों से —
भी तुमने हरि ने मिल कर निश्चित
रमा केन्द्र को जन्म दिया भू पर
निज जीवन मन श्रम तप कर अर्पित !

ध्येय तुम्हीं का संस्कृति आगम का
स्वर्ग स्वप्न तुमने भू चरणों पर
मूर्त किया — शाब्दिक कल्पना स
हा मनना स्वयं मुक्त नहीं अंतर !

फिर कृतज्ञता ज्ञापन कौन करे ?
मुझसे अधिक तुम्हारा यह प्रिय धन
किन्तु, देखता नम्र चेतना प्रति
अभी नहीं खुल सका गिरी का मन !

भ्रातृ स्नेह की सीमि पार कर ही
तुम्हें मिलेगा अंतरिक्ष भास्वर
जहाँ छेड़ते तन्मय वंशी ध्वनि
निराधार रस पुष्प खड़े निःस्वर !

भ्रातृ प्रेम प्रति धन्यापित जीवन
अपने में सित सुस्कृति निधि निश्चय
पर भू हो समवत् चित् रस सागर,
नव्य प्रेम के लिए प्रेम पावन !

भ्रातृ प्रेम से महत् चैत्य जीवन
मनुज प्रीति का वह व्यापक प्रांगण
मिटे मोह सात्विक नैतिकता का
अभिव्यक्त हो अंतश्चित् यौवन !

तुम हरि से रह दूर अभावों में
न रचना मंगल का ले दृढ़ व्रत
उत्सृत करो कुरूप धरा का मुख
शंकर के सम नाक कर्म में रत !

सुंदर प्रीति पल्लवित भी मौना में
नव संस्कृति पौधा करते रोपण
तुम निज दृढ़ श्रद्धा संस्कृत रुचि से
बोओ स्वर्ण प्ररोह अमित चित् कण !

मुक्त दृष्टि देखो जीवन का मुख
पहचानो वह प्रेम – मोह पुलकित
कूप चेतना भास्वर में – गाहा
नए अकूल रस जिसमें पम मज्जित !

हरि न छिन भी होगा यह हितकर
पाप मात्र जीवन का निस्सम मन
जहाँ न प्रीति हृदय मूल्यों के तन
मध्य अमित आनंद – प्रेम वर्षण !

ग्रहण नैतिकता पावक जन भू हित
धन सात्विकता ही बस जीवन धन —
थी वे माँगा कवि के अंतर में
स्वच्छ प्रीति रस के भर दे सावन।
मृजन चेतना भर था कवि बंधी
कम भक्ति का था हरि मात महत्
भाव प्रेरणा थी हरि के हित जो
धन भू मगन निष्ठा तप व्रत रत।
बोली थी मैं कवि की भाषा का
करती रही सदा मन से पालन —
जन भू जीवन के प्रति श्रद्धार्पित
मेरे उर के साधिन का प्रतिक्षण!
कवि के मित चैतन्य स्वर्ग के प्रति
थी का अन्तरतम था आकर्षण —
सत्यार्पण कर्तव्य प्रेम हरि का
किन्तु चाहता उसका सात्विक मन।

भारत जनपद जीवन का दारुण
रूढ़ि रीतियों का कर्दम सागर,
उस उर्वरक बना — कब संस्कृति
जन भू मन का करती रूपांतर!
हरि था दृढ़ संकल्प शक्ति पवत
आत्म त्याग के हित अनन्य तत्पर
नैतिक संयम था दृढ़ रजत कवच
सदाचार का शक्ति स्रोत भीतर!
संगी भी न अनैतिक था किंचित्
अतिनैतिक था उसका रस दुर्दम
हरि जीवन कामना में सब स्थित
उठने देता भू से नहीं चरण!
स्वीकृत करता हृदय नहीं हरि का
प्रीति चेतना का रस संजीवन
विषम समस्याएँ भू जन सम्मुख —
मुक्त प्रीति होगी बाधा भीषण।

जहाँ धरा जीवन, मानव मन में
मचा निरन्तर दारुण संघर्षण
वहाँ अचेतन वृत्ति जगा कर कवि
नरक तिमिर को देता आमंत्रण!

तुम राम संस्कृति के पथ से ही
समझ स्त्री नर का जीवन मंगल
हो सतीत्व की स्फटिक मूर्ति नारी
गृह खूँटे से बँधा स्नेह प्रबल!

प्रीति इकाई हो कुटुंब — स्त्री नर
ग्रंथि बद्ध ही मुक्त नहीं संशय
काम बुद्धि के पुलिन मध्य धारा
कर्दम में सन जाएगी निश्चय!

समझ न पाता कुछ भी हरि का मन
कवि किस धरती पर करता विचरण
मुक्त कल्पना पंखों में उड़ वह
स्वप्नों के चुनता आकाश सुमन!

जहाँ प्रेम की नहीं घृणा की जय
सत्य नहीं मिथ्या का अनुशासन
संस्कृति पर पशु बर्बरता विजयी
भू न ज्योति मंदिर, निशि तम प्रांगण!

छिड़ता युद्धों में विवाद प्राय
कहता हरि, तुम क्या उलटी धारा
बहा सकोगे जग में? ज्ञात तुम्हें
प्रेम काम मधु सायक का मारा!

तुम केवल मानवता पर मोहित —
दानव जन से रक्षा के साधन
संग्रहणीय न क्या जन मंगल हित?
दुर्दम मनुज प्रबल पशु निश्चेतन!

विरत खिन्न होता जब हरि कवि से
प्रीति मुक्ति के प्रति मन में शंकित
मंथर मैना पग सहज कवि का
जन्मजात था वह पथ संस्कृत!

सित पंख रख क्षिति के प्रति जाग्रत्
उसका ममता-भरा पक्ष में घन
रँग रहे मधु मानव ऊर्मियों से
काम द्वेष तृष्णा आछन्न में मन!

संभव उनका हिम न महत् जीवन
था शोभा के स्वप्न स्वर्ग में रत
नव मानवता का करना होगा
शुभ्र प्रीति का नव युग में स्वागत!

मानव बन सकता न पूर्ण मानव
जब तक हो स्व शुद्ध न भू प्रांगण
नाम त्याग तप-विकसित प्रेम बिना
रिक्त मनुर्भव रूप विमुक्ति साधन!

शंकर,-दश चुका था जो जीवन-
कहता-यह प्रभा का पापलपन
मिथ्र प्रकाश को कहते थे बन्धु गण
ज्योति मान तम का कारण प्रथम!

देख रहा था वह दुर्धर्ष समर
मानव के अन्तमन प्रांगण में
जड़ा काम या पशु बल सत्ता से-
प्रीति आत्म विजयी निर्भय मन में!

नहीं तम का उत्तर सदा कवि
वह यथार्थ के जग में था परिचित
मानव तम को पीछे छोड़-स्वयं
नव प्रकाश रस अन्तस में था स्थित!

मन भू जीवन ही के पट में हरि
नव प्रकाश का करता मूल्यांकन
साहस था कवि स्व समता में
कर पाता हरि क्षिति का सही ग्रहण!

स्वप्न शिल्प का 'कहना नरक तिमिर
दृष्टि दोष यह भू मन का निश्चय
काम प्रकटन सब वृत्ति जग में
प्रेम मानवन ज्योति-सही समय!

यदि चाहता धरा मन में बोना
रस प्रकाश की नव सौम्य किरण
रश्मि स्पर्श से जग उठते मन में
अंधकार के अंकुर बन चेतन !

अंधकार ही की उर्वर भू पर
बीज ज्योति के हो सकते विकसित
जीवन का गोपन रहस्य इसमें —
ज्योति तिमिर हो सत संयोजित !

विविध भूमियाँ भू विकास पथ में
जिन पर मानव मन करता रोहण
भावी गत की पूरक बन आती
नष्ट न करता भूत सिद्धि नूतन !

रामकृष्ण संस्कृतियाँ रहें अटल
शैव शाक्त संपद् भी निज स्थल पर
सृष्टि प्रक्रिया का क्रम आग्रह
नव विकास का प्रतिनिधि हो युग भर !

स्वप्न नहीं यह गति प्रिय सत्य चरण
नव यथार्थ की क्षिति भू पर स्थापित
सौंप रहा निज सर्व यथार्थ स्वयं —
यह न काल्पनिक स्वर्ग मन सर्जित !

उड़ता मानव वायुयान नभ में
भू पर रहते उसके लक्ष्य चरण
भू से भी ऊपर बन भू की स्थिति
मन को सौंप निखरता मन का मन !

ऊर्ध्व चेतना भावी समदिग् गति
मुझे नहीं इसमें किंचित् संशय
प्रेम सत्य संचरण मनुज मन का
गैंगड़ाहट भर काम — स्पर्श निर्मित भय !

कुछ तार्किक वैज्ञानिक कुटिल जन
मिथ्या नैतिक मानों से पीड़ित
रस प्रकाश को प्राण तमस बतला
उस करेंगे द्वेष दंभ लांछित !

जीवन का मानसिक मूल्यांकन कर
नैतिक सत्य करेंगे वे घोषित
स्वयं व्यक्तिगत जीवन को अपने
गुह्य काम तम कक्ष बना कुत्सित !

क्षुब्ध चित्त बोला हरि एक दिवस
प्रेम तुम्हारी वस्तु तुम्हें अर्पण
तुम्हीं सँभालो कक्षा शिविर का अब
मुझसे हो न सकेगा संचालन !

आज्ञा दो घर द्वार बसाऊँ मैं
फिर से हाथों में ले हँसिया हल
कहीं सिरी के हित भी घर लाऊँ
मुझे दीखता इसमें ही मंगल !

आँसू भर दृग म बोला बमी
हरि तुम कैसे लगते मर्माहत !
ऐसा क्या हो गया रुष्ट होकर
केन्द्र छोड़ने को जो तुम उद्यत !

और कौन घर द्वार चाहिए अब
तुम्हें ? केन्द्र क्या नहीं मनुज का घर ?
सिरी प्रेम के चरणों पर अर्पित
उसे नहीं चाहिए दूसरा वर !

मधु जनक हो कक्षा पीठ के तुम
हम सब शिशु, आशा करते पालन
उतर सका युग स्वप्न न भू अभी
केन्द्र बन सका नहीं स्वर्ग प्रांगण !

कहा व्यथित हरि ने — देवों को ही
स्वर्ग सुगम हो मुझे न वह स्वीकृत
परंपराओं का निर्वासित कर
भू पर होगा स्वर्ग नहीं निर्मित !

उच्छृ ममता अनय असंगति ही
नरक द्वार के अधोमुखी सोपान
विकसित मर्यादाओं पर निर्भर
स्वर्ग पूर्ण स्वर संगति संयोजन !

प्रीति मुक्ति का जाने कब भू मन
समझ सकेगा कवि कल्पित आशय
जनम मुक्ति का वर पा अब तुमसे
मथने का जन मन में मूल्य प्रलय !

प्रकृति जात शिशु का आश्रय देकर
तुम विरुद्ध कर तुझे कुछ जन मत
अब सुंदर आस्था के कुल हमि से
स्वर्ग कल्पना नरक कुछ परिणत !

प्रजनन का अधिकार उन्हें देकर
तुमने वासना किया लोक पावन
भर न सकेगा सती धरा उर व्रण
कला केन्द्र के हित भी यह बाधक !

वमन करेगी धरा लोक कल्मष
कुल बालक उपजेंगे नित संकर,
वर्ण वयन गत कुल संस्कारों का
भू जीवन होगा अधन्य खंडहर !

प्रजनन शास्त्र सुवश नीति के भी
नियमों का होगा निष्करुण हनन
पाट न पाएगा भावी मानव
मर्त सभ्यता संस्कृति का मीपथ्य !

बोला कवि हरि क्या तुम इस कारण
छोड़ रहे हो कला पीठ प्रांगण ?
केन्द्र मध्य भू संस्कृति का रस घन
जन धरा पर लेगा नव जीवन !

जो तुम कहते वह न ध्येय मेरा
जन उसको कहते ऐसा विदित —
मुझे दृष्ट जो — वह अतिशय उत्तम
जिसे मनुज कर सका अभी अर्जित !

सर्व प्रीति स्वीकृति से जीवन के
मन के होंगे मूल्य ऊर्ध्व विकसित
बदल प्रयोजन जाएगा जग का
भेद भाव होंगे भू के मज्जित !

सामाजिकता होगी दिग् विस्तृत
भाव मुक्ति स जन मन अनुप्राणित
नव प्रहर्ष से यौवन उर स्पंदित
शोभा होगी भू पर सम्मानित ।

मनुज प्रकृति होगी रस परिमार्जित
सूक्ष्म भावनाओं का शुभ्र उदय
युग्म चयन रस साम्य बोध प्रेरित
संभव होगा हृदयों का परिणय !

तुम कहते हो तो सुंदर आस्था
दोनों पाणिग्रहण कर लें विधिवत्
संभव मेरे चिन्तन में त्रुटि हो
किन्तु सत्य जनमत से कहीं महत् !

मुझे ज्ञात शिशु शुभ्र प्रणय संतति
प्रेम हुआ जन भू पर अभ्यागत
मां बनने की इच्छुक थी आत्मा —
हुआ साथ कर ही कुछ भी सहमत !

जाति गोत्र मत वैवाहिक प्रजनन
विगत सांस्कृतिक मूल्य अभी स्वीकृत
काम जनन मेरे मत में जारज
प्रीति प्रसव ही लोक मूल्य संस्कृत !

सामाजिक स्वीकृति विवाह बंधन —
भू विकास स्थिति क्रम में आवश्यक
किन्तु न वह रस युग्म कामना का
शुभ्र प्रीति परिणति का परिचायक !

भोग लालसा की अनुमति भर वह
युग्म कक्ष में बद्ध भावना गति —
अंध काम आवेगों से प्रेरित
कृमियों सी रेंगती मनुज संतति !

प्राण शक्ति दुर्जय — ग्रंथि बंधन
भाव मुक्ति हित बने नहीं बंधन
सर्व प्रीति के सित पंखों में उड़
मनुज प्रकृति कर सके ऊर्ध्व रोहण !

प्रीति शुद्धि ही सार परिग्रह का
क्षेत्र बनाता भू पर उसके हित
परिणय बाह्य विधान मनुज जीवन
प्रीति स्पर्श से ही होता उपकृत !

रूढ़ि रीति कर्दम से बाहर कढ़
प्रेम पद्म हो सके पूर्ण विकसित
निज शोभा की दिव्य पूर्णता में
जन भू को कृतकृत्य कर सके नित !

नैतिक स्वत्व सीमाओं में बँधकर
सामंती स्थितियों से अनुप्राणित
युग प्रीति रति कक्ष कूप कवलित
जन मन सकी सित रस प्रसूर्य विकसित !

प्रीति मुक्ति की चित् रस शोभा से
बहिरंतर समर्पण हो प्रशमित
भौतिक आध्यात्मिक जीवन मिलकर
स्वर्गिक शोभा में हों समाहित !

सर्व प्रीति अर्जित कर ही जग में
सम्भव उभय आध्यात्मिक जीवन
भाषा भाव विचार कला संस्कृति
बन सकते स्वर्गिक शोभा दर्पण !

नर नारी की शुभ्र प्रीति ही में
भगवत् गुण हो सकते अभिव्यंजित
प्रीति नींव पर ही भी शोभा का
सौध सांस्कृतिक हो सकता निर्मित !

उच्च प्रीति के ही स्वर्णिम गुण में
भू मानवता को करना गुम्फित
आध्यात्मिक सामाजिक सयोजन
भौतिक भू जीवन में कर स्थापित !

कम छोड़ने में यदि न सयम
तो मैं पहिने छाड़ँ – यह संगम
मैं अनिवारी कवि – तुम कर जनक
कमा विविध संरक्षक – जन सम्मत !

कवि श्रद्धा प्रति हरि था नत मस्तक
श्रमी का विच्छेद न था संभव
बिना इन्द्रिया के जी ले मानव
श्वास बिना कब जी सकते पवमव!
युग कवि की स्थित आस्था प्रति अर्पित
कर्मठ हरि फिर हुआ कर्म न रत
समात्मक्रांति के प्रति मन में शंकित
क्रमिक प्रगति से ही था वह सहमत!
नव्य चेतना पट पर आधारित
मन संगठन मे था संगी रत
जड पर चित् की जय न लक्ष्य था अब
दोनों का संयोजन था अभिमत।
कवि चैतन्य न था आकाश कुसुम
वह भावी जन भू जीवन दर्पन —
जिसे मूर्त होना जब जीवन में
मानवीय बन सके धरा प्रांगण।

ज्ञात नहीं था उस केन्द्र के प्रति
बढ़ता जाता था विरोध जन मे
नार पुरुष में प्रीति मुक्ति परिणति
मर्म धूम सी घुमती जन मन में।
वैभव ह्रास के कारण भू उर में
असंतोष के घिरे पंथ थे घन
कटु अतृप्ति भीतर अशांति बाहर —
गत जीवन से था युग मन का रण!
विश्व शक्तियों में विरोध बढ़ता
भू विकास हित था अति संकट क्षण
बढ़ता जाता सिर पर ध्वंस मर्द
महानाश का उठा भयंकर फन!
अस्त्र शस्त्र दंष्ट्रों से सज्जित भू
यहि दानव भी मुँह बाए कुत्सित
शक्ति स्फीत मद मत्त व्यवसाय धन
मुँह में घुसने को था लालायित!

रक्त तृषा विस्तार स्पृहा पीड़ित
सर्प छत्र से उग्र राष्ट्र घम कर
शांति भंग करते भू देशों की
छद्म आक्रमण कर प्रतिवेशी पर !

मध्य युगी भारत का जन मानस
रूढ़ि रीतियों से विपन्न जर्जर,
क्षुद्र सम्प्रदायों वर्गों मे बँट
निकल रहा था अब विमुक्त बाहर !

जब स्वतंत्र हुआ भारत भू पर
सोच रहा था कवि मन में चिन्तित
दैन्य ग्रस्त जन ? — नहीं — मध्य युग की
मनोवृत्तियाँ मुक्त हुईं कुत्सित !

धिक वह देश जहाँ नारी शोभा
नहीं पुरुष को करती उन्मेषित
मानव प्राणों को नव यौवन की
उच्च प्रेरणा से कर चिर दीपित !

जहाँ मुक्त आदान प्रदान नहीं
स्त्री पुरुषों के हृदयों का पावन
भू जीवन रचना शोभा के हित
अर्पित जहाँ न युक्त कर्म तन मन !

धिक वह सदाचरण जो स्त्री नर को
सदा परस्पर रखता भय शंकित
दोनों नीति विवश करती मन को
भाव मनुर्वर जीवन आपत हित !

मनुज प्रीति का नर नारी उर म
होने देती जो न सेतु निर्मित
मधुर प्रतीति सहज सहृदयता स
सरा हृदय को रखती चिर वंचित !

मध्य युगी भावर्दबाव को धिक
सामाजिकता क प्रति जो उपरत
जड़ यथार्थ का पश्चिम के मत धिक
जो प्रेत मनुज पीड़ित सतत !

सामाजिकता के प्रभाव में क्यों
वैयक्तिक मनोविकास निष्क्रम
मन शिखरों की उपलब्धि बिना
बहिर्भ्रांत जीवन मृग तृष्णा भ्रम !

थोथे आदर्शों में रत युग मन
बदल गई आध्यात्मिक परिभाषा —
अब न धर्म परलोक मुक्ति अर्जन
वह उन्नत भू जीवन अभिलाषा !

ध्वस्त श्याम रण वर्जन से जग मे
राजनयिक हो शांति भले स्थापित
एक ऊर्ध्व संवर्धन भू मन म
जन्म ले रहा अब दिगंत विस्तृत !

भौतिक रण से क्रूर कहीं यह रण
मानव अंतर को करता मंथित
आरोहण करना गत भू मन को
जीवन तम को होना नव संस्कृत !

ऊर्ध्व स्पर्श प्रति विमुख धरा उर को
संभव था करना न स्वर्ग दीपित
आत्मिक मधु रण सत्य — सोचती थी
विश्व चेतना जन भू मंगल हित !

तुच्छ स्वार्थ घेरे थे भू जन को
वैमनस्य दंभित करता अंतर,
बहती रुग्ण विकृतियाँ शोणित में
अनाचार था किए हृदय में घर !

आर्थिक राजनयिक स्पर्धा प्रेरित
क्यों भौतिक विज्ञान ध्वंस क्षय रत
हुआ अविद्या मंत्र तंत्र कवलित
स्वार्थ सिद्धि हित आध्यात्मिक भारत !

युग युग के छाए तामस घन मे
जीर्ण विकृत हो गया धरा का मन
घृणा त्रास कटु द्वेष हृदय शोणित
निर्मम ध्येय बन गया अहंता मन !

छाई थी जिस भ्रांति लोक मन में
भय संशय का फैला दारुण तम
कौन पाप करता न बुभुक्षित नर
क्षीण निष्करुण होते — यह विधि क्रम !
सत्य मृषा का बोध न था भीतर
भटक रहे थे अंधकार में जन
आत्म प्रदर्शन विज्ञापन ही को
सत्य निकष मानता मूढ़ युग मन !

भाषा के अनुयायी जन मत का
करते गभी के विरुद्ध अविरत
यह दुर्भाग्य रहा भारत भू का
द्वेष दंश से यहाँ मनुज आहत ।
शेष नाम के सिर पर इस भू ने
ठोका था ईर्ष्या का ग्रास गहन
व्यक्ति दर्प जग महत् लोक हित का
करता रहा यहाँ निष्फल खंडन !
जाति ख्याति का छद्म मुखौटा तन
मनुष्यत्व का करता मूल्यांकन
बौद्धिक मूल्यों के कुश कंटक था
सभ्य चेतना का प्रतिस्पर्धी बन ।
प्रकृति प्रथाओं के कारण जन मन
उद्वेलित था प्रतिपक्षी प्रेरित —
संस्कृति प्रांगण के बाहर यद्यपि
सदाचार का स्तर था सर्व विदित ।
पर युगांध मन का आक्रोश प्रखर
स्वर्ण पूत युग कवि प्रति था निश्चित
निष्क्रिय मनोगुहा का सूनापन
अमित शक्ति से रहता अभिप्रेरित ।

जाति कूप में रहते जब भाषा
तन से जर्जर उर अहि से दंशित
अचित् शक्ति का कर प्रयोग कवि पर
कुटिल अविद्या तंत्र मार्ग अर्जित ! —

शोषण कर युग कवि के चेतस् का
रस प्रकाश से हो नव उन्मेषित
श्रेष्ठ सर्जना कर युग मानस शशि
हुआ बनै फिर राहु कवल ग्रसित ।

एक तीर से कर दोनों पशु वध
मेघनाद की सी नव गर्जन भर
हुए व्याप गुरु हत — अप्रत्याशित
लौटा जब उनका छोड़ा शर सर ।

विचलित हो उठता रह रह अंतर
तमोदंश करता मन को मंथित
राखे अंतर में ज्वालामुख का
जगत के बाहर पर्वत से स्थित ।

चुभती आती ज्योति किरण मन में
उर दुस्वप्ना का अजर पजर
मह दर्प बनकर क्रुद्ध तामस घन
घिरता आता छाया सा मुख पर ।

निसृत करते गुरु प्रारब्ध भाषण
जिससे रखते मन में समर्पण
बैठ मित्र के निकट कभी क्षण भर
पचत दुःख न पिसता युग कवि मन ।

नहीं सूझता कुछ उपाय उसका
ज्ञात न था उपचार व्याधि प्रतिविदित
गुरु क्रूर वचनों से मानो क्षत
युग कवि मन ही मन रहता शंकित ।

हृदय भार से नीर उमट आती
घूमा करता मौका में वह मुख
तेजोज्ज्वल जो रहा हास्य सपप
प्रतिबिम्बित अब उसमें निर्मम दुःख ।

गुरु उदार थे पर उपकार निरत
दान त्याग तप की प्रतिमा जीवित
तेजस्वी द्रष्टा शिल्पी मर्मज्ञ
दर्प दीप्त प्रतिमा के रवि निश्चित ।

दुर्बल के बल, दुखियों के रक्षक
स्वाभिमान के उन्नत सूर्य शिखर
जन संघर्षण के अजेय नायक
युग पथ निर्माता प्रबुद्ध तत्पर !

सह सकते अन्याय न पर शोषण
घृणा क्रोध अपमान दंभ लांछन
बुद्धि जीवियों के निर्भय प्रतिनिधि
कविता कानन के गजेन्द्र गर्जन !

हास्य व्यंग्य प्रिय मुक्त प्रकृति दुर्जय
क्रांत दृष्टि थे भावी युग गायक
मंत्र तंत्र विधि दीक्षित साधक वर,
थे स्वतंत्र चेता कवि निर्णायक !

विद्या वैभव गुण बल दर्शन में
युग निःसंशय थे धुरीण पंडित
विगत चेतना का था उर प्रतिनिधि
जो अक्षम थी भावी मंगल हित !

पूत चंड व्यक्तित्व रहा उनका
प्रति उदार संकीर्ण हृदय निर्दय
स्नेही द्वेषी नम्र उग्र उद्धत
त्यागी प्रतिस्पर्धी कामी सहृदय !

सामाजिक दुष्कृतियों से आहत
अत्याचारों से कर निर्मम रण
आत्म विजय का केतन फहराने
किया उन्होंने निज जीवन अर्पण !

शांत वारि बहते गह्वर भीतर
संयमी था अंतर्मुख चित् सागर
मधुर प्रकृति मुग्ध भीरु सभ्य संस्कृत
श्रेयाकांक्षी सतत विश्वतत्पर !

उषा वन का कला कंठ मधु पिक
बरसाता उर का स्वर्णिम पावक
शील मौन ईश्वर के प्रति अर्पित

आत्मलीन रहता वह मत स्मित
सृजन प्रेरणा स्पर्शों हित कातर
मैत्री से वंचित मन विमन विरत
रहस क्षणियों में रमता अंतर !
उसे न लगता इसमें कवि पौरुष
प्रतिभा बने उदग्र मह पवत
जल सी ढलने की पा गति क्षमता
महत् पात्रता में हो रस परिणत !
सब के साथी गुरु कवि प्रतिस्पर्धी
द्वेष गुप्तानल जलता उर भीतर —
हुए अघोर अविद्या पथ में रत
शाप बना महत्त्वाकांक्षा का वर !
हँसा उलट कर उन्हें अचित् तम से
अधोमुखी वह्नि — ज्योति सुधा भी हर
चूर्ण चूर्ण हो गया दर्प दृढ़ गिरि
गिरा वज्र सा टूट वहीं उन पर !
कुसुम वज्र — एक ही सत्य के गुण
भू मंगल हित हुआ सुगम विजयी
अंत सुरभित भरे धरा पथ वह, —
विस्मय प्रकृति — शोभा आनंदमयी !

वाग्विलास थे अब गुरु के भी गुरु
प्रोषित शांति आश्रम के संचालक
मित्र नव युवकों का करते दीक्षित
सिद्ध शिष्य गुरु परंपरा पालक !
द्वेषी द्रोही युग विद्रोही बन
उनके बल का बल करते वर्धन
क्षुद्र यह न सर्प दर्प फणधर
गुरु ही थे उनकी गति अवलंबन !
अथक गर्व महत्त्वाकांक्षा कुंठित
गगन पुष्प मद स्वप्ना के खँडहर
निष्फल अतृप्त विषय रस में पीड़ित
पावक छलक बन स मन उबर !

भू भाषा द्वेषी रहते पंडित
बहु विद्या कर्दम के छिछले सर,
पर संस्कृति मन के परभृत मधु कृमि
द्वेष दंश से जीवन मन जर्जर !

घेर उन्हें बहु विद्या भ्रांत शिष्यगण
कला तन्त्र मत का करते लांछित
वाग्विलास उनका सिद्धांतों की
घूँट पिला नित करता अनुप्राणित !

नव पीढ़ी का असंतोष पावक
धधकाता नव भासुर रुचि का घृत
उच्छृंखलता की समिधा सुलगा
रच नई ज्वाला होती जीवित !

घृणा द्वेष का अंध धूम छा कर
मन क्षितिज को करता आच्छादित
संस्कृति कला पलायन बन उड़ती —
खीस काढ़ हँसता यथार्थ कुत्सित !

दुहराओ बहुमुख से दुहराओ
झूठ सत्य बन जाएगा निश्चित
करो उपेक्षा सब तटस्थ रहकर
सत्य स्वयं मर जाएगा अकथित !

विश्व युद्ध की यह महार्घ शिक्षा
राष्ट्र मनु हँस करते विष् ज्ञापित
उगते अंकुर उनकी छाया में
प्रगति न कर होते कुंठा रोधित !

अंतर्राष्ट्रिय प्रतिभा पंखों पर
उड़ते पंत अगम कुछ कहा मगड़
निज भू से उठ अधर बीच लटक
शिष्य गगन बनते गुरु रहते गृह !

कोरी अनुकृति होती उनकी कृति
भू जीवन से असंबद्ध वर्जित
भाव कला शिल्प थोपे ऊपर से
विश्व मूल्य गौरव से भी वंचित !

रस से निकल उभरते नित नव रस
दलदल सी चुभ भू बाहर भीतर —
महत् न कुछ — गड़ जाएँ पाँव कहीं —
काव्य कुभावसरवत् अमूर्त दुस्तर !
नयी कला की आदि चित्र लिपि सी
सूक्ष्म अभावन को करती व्यंजित
दृष्टि शून्य शिल्पी के भ्रांत चरण
समय बालुका पर हो चिह्नांकित !
विविध कला कृतियाँ एकत्रित कर
बोझा ढरता कवि भावी मानस
मध्य चलता मुख पर गत मन का
अभी पड़ा था भारी अवगुंठन !
दलगत मूल्यांकन काव्यालोचन
दिन निशि निशि दिन बन जाता तत्क्षण
कभी के भूषण लगते दूषण
गुण के दूषण भाव दीप्त भूषण !
अति प्रचार के इस दिक् व्यापन में
हुए बोध के पग युग के डगमग
मानव से अति मानव बन भाषा
धरती अब जनमुनि के भूधर डग !

सूक्ष्म सुषम सौन्दर्य भाव रस से
बोध शिराएँ थीं जन की वंचित
राग द्वेष स्पर्धा दहन से ही
हीन भाव कल्पित मन था परिचित !
दृष्टि चाहिए थी युग को विकसित
दृष्टि साधना से होती निर्मम
प्रीति पथ भाषा प्रति मूँद नयन
वृत्ति बनती कर्दम हो केवल !
केन्द्रीकरण मनन का आवश्यक
मूल्य बोध हो सके सूक्ष्म विकसित
नव भाषा आनंद प्रीति रस में
भू भाषा का जीवन हो मज्जित !

अशुभ और शुभ में छिड़ने का फिर
नव युग रण — घिरते अंबर में घन
सैन्य अशुभ की होती घुस अगणित,
शिव के सेवक होते थोड़े जन!

सत्य अल्प विजयी होगा भू पर
मृषा सत्य असि से होगा, खंडित
बहुमुख तम होगा प्रकाश में लय
शिव ही से भू रह सकती जीवित!

शिक्षा ह्रास के कारण अब छाया
वृथा द्वेष भय संशय जीवन में —
धूमावृत चिद् क्षितिज लोक मन का
दुर्गतियाँ पनपती विघटन में!

माओ की उन्मादक मदिरा पी
गुरु से पा साहस कवि स सित रस
आत्मविश्वास ने उतर अखाड़े म
सैद्धांतिक लाठी से लूटा यश!

पटु शिष्य गुरु का न रहा अनुगम
केन्द्र विरुद्ध किया उसने जन मत
शिक्षा भ्रांत कर भीरु बौद्धिकों को
निज बल बल म किया उन्हें परिणत!

शासित शाण पर चढ़ कर माओ के
वह करता उन्मुक्त अग्नि वर्षण
प्रवचन म पासियाँ नहीं बैठतीं
उन्हें छोड़ — करता कवि का तर्पण!

युग मग आवेशों क आवृत् में
भरते थे दादुर असंख्य टर टर,
घन कड़कते तड़ित् भृकुटि चढ़ती
फनि चूहा साँपों की होती सर!

मति रंजित हा केन्द्र चरित प्रतिदिन
मध्य वीथियों में हुआ चर्चित
नव आकांक्षा की आहुति पाकर
चयन अग्नि हो उठती उत्तेजित!

काम कूप कवि राम रूप धर कर
पावन भू मर्यादित कर वंदित
जन्म वासना का पता जग में
कर्मि बना संयम कर जीवन निमित्त!

उसके ही दुष्कृत्यों के फल से
युग का मन हो रहा क्लेश कुंठित
कुंठित वे मन ही मन पावक से
विश्व व्यथा से रुग्ण आत्म विस्मृत!

मध्य युगों में ऐसे पीछे मत
देख बुद्ध जन गार्हणीय मोहत
धर्म ग्लानि से रही धरा पीड़ित
काम पंक का तंत्र बना पावन!

जिन मठी में यह सब पागलपन
काम राम के पद पर हो स्थापित
प्राण ग्रंथि में ग्रस्त दमित कवि मन —
गहन मनोविज्ञान सत्य सुविदित!

कुछ उपाय करना होगा निश्चय
कवि का दिग्भ्रम मिटे उठे उर तम
मेघ ग्राह से छूटे जनपद सब
टूटे महा सनातन जीवन भ्रम!

स्त्री न मात्र की रमा हो जग में
नव यौवन का हो न रक्त शोषण —
धार्मिक समता स्थापित हो भू पर
नव भित्ति पर जन संस्कृति पावन!

युग काम के शाश्वत मूल्यों पर
जन सामाजिकता होगी निर्मित
दौड़ेगा नव भाव रुधिर उर में
जन भौतिकता होगी भू विकसित!

यांत्रिकता की मूसर चापों से
होगा मानव गौरव दिग् व्यापित
भौतिक भू स्थितियाँ ही का दर्पण
अंतर्मनोजगत् — विज्ञान विदित!

एक ओर शाखा थी उस दल में
अधिक आधुनिकताओं से परिचित —
मार ठहाका हँसते थे सुनकर
सामूहिकता के प्रति आकर्षित!

अति मानव थे सब लघु मानव का
करने आए थे सुख संवर्धन —
एक सत्य अस्मिता द्वितीय निधन
क्षण भर का सुख ही भंगुर भव धन!

भोगवाद रस के प्यासे चातक
केवल ध्येय के प्रति तन्मय मन में —
मोहन अधर में थे आश्वासित
सब कुछ संभव जीवन यौवन में!

कभी शिखर पर युवक गर्व हँसता —
उच्च भावना अधर में वह स्थित
ज्योति प्रीति आनंद मधुरिमा के
थी शोभा स्वप्नों पर आधारित!

घृणा उपेक्षा स्वर मे वे कहते
कवि जन भू वास्तवता से वंचित
पुंस्त्वहीन संस्कृति से भू जीवन
हो सकता चरितार्थ नहीं किंचित्!

ऊर्ध्व पलायन शिवघाती संस्कृति
जब कि लोक मन क्षुधा काम पीड़ित
बाह्य पलायन इससे श्रेयस्कर
भौतिक जग ही अंतर मे बिम्बित!

युग कुंठाएँ थी सब के भीतर
मन में युग के प्रति न स्नेह आदर
कहा एक स्वर में सब ने मिलकर
वंदी से भोगा जाए उत्तर!

अस्तोन्मुख रवि से विवर्ण गुरु को
मुखिया बना चला दल सांझ समय
चला केन्द्र की ओर — भीड़ निर्मम
मन ही मन कर कुछ भीषण निर्णय!

मद्रुम बीथि में कसरत करते खग
डसतीं लंबी छायाएँ भू पर,
रश्मि किरीटी वन उपवन माता
ओढ़ झुटपुटे की झीनी चादर।

बैठ पोखरों के तट पर बगुले
ध्यान मूर्ति लगते तापस वर से
ग्राम डगर पर उड़ती गोपद रज
मणि मुख रेख झलकती अधर में।

सुरम्य भवन के पास पहुँच सब ने
रथा–मुक्ति युवक करत वन्दन –
सन्ध्या के उस शांत मौन क्षण में
पंक्ति हो सामने खड़ा निस्पन्द।

ऋतु कुसुमों के कानन प्रांगण में
कुम्हला सा था रहा मास का मुख
उमड़ रहा था विश्व प्रकृति उर में
गहरा करुणा व्यंजक निस्वर दुख।

एक गुप्त निश्चेतन परिवर्तन
विश्व चेतना में सब हुआ घटित –
पशु रस भय की छाया गहराकर
इन्द्र आक्रमित हुआ तिमिर कुपित।

कहाँ गया संगी? – मर्मम भर गुरु
उस क्षण सकपका उठे कुछ क्षण
प्रीति द्रवित मन संयम खोता सा
उसके मुख पर था मृदु मार्दव।

भू जीवन प्रेमी था कवि – जीवन
प्रभु शोभा जिसका स्वरूप शाश्वत
रस ग्रहण गोपित निज प्रीति हृदय
नव बसंत निज जिसका अभ्यागत।

ब्रह्म ज्ञान कर्मम – मणि मुक्ता सम
अंत शोभा करते संचयन
प्राण श्वास जड़ जगत मुख कर धर
सहज स्फुरण जिसका चिर सञ्चित मन।

कवि — सकुचाया था हेमंत दिवस —
खड़ा रहा सम्मुख हतप्रभ आनन
घूम तुरत फिर गया कक्ष भीतर
सूँघ सहज आगत संकट कारण ।

साथा उसमें सोच कर्म के हित
मुझको जगती में रहना जीवित
जीवन भ्रामक ये विद्वेषी जन
इन्हें न करने का भ्रम में किंचित् ।

कहाँ भागते हो ! — कह युग का दल
भीतर घुसने लगा क्रोध दंशित
बाँध तोड़ जैसे प्लावन का जल
सौम्य पुलिन को करता जल मज्जित ।

पार्श्व द्वार से बढ़ द्रुत छाया ने
भित्ति खड़ी कर दी सम्मुख दुर्गम —
छूटो द्वार से चिल्लाए दुर्मद —
दूर करेंगे हम कवि का दिग् भ्रम !

कहाँ छिपा जन वंचक कवि बिल में —
निकले बढ़ दो बात करे जन से
दुराचार की बात न रुक सकती
बाँध बना कुछ तिनका का मन से !

जन रक्षक कवि ? बोला दृढ़ होकर
वह न मिल सकेगा अशिष्ट जन से —
छूटो द्वार से — घुसो न यों भीतर,
हृदय न जीता जाता पशु बल से !

खड़े देखते क्या हो ? — कड़क उठा
वाग्विलास युत — धक्का मुक्की कर
घुसने लगा निरंकुश जन भीतर —
रोका युवकों ने तन कर सत्वर !

जन समूह मालंदों की मदिरा
शाश्वत शोभा का सम्मोहन —
प्रमृत मेघ या प्राची जीवन का
क्षमा बना मिल भू संस्कृति प्रांगण !

उसके हित मरने को थे तत्पर
छात्र अभीप्सा से अदम्य प्रेरित —
मृत्यु अमर जीवन बन थी उठती
केन्द्र हीन जग भू भी जीवन मृत !
हाथापाई होते देख व्यथित
कक्ष छोड़ बंसी निकला बाहर
उसे देखते ही तुरंत पिशुन
टूट पड़े सब मिल सरोष उस पर !
उन्हें धकेल सहज बसिष्ठ हरि ने
घेर लिया कवि को बाँहों में भर
छिपी छुरी का प्रथम घात सहसा
पड़ा पीठ पर उसके ! — धिक् कायर
कह कर जब तक झपट मे हरि की
रक्षा करती बाँहें दौड़ तुरत
बिजली सी छुरियाँ उठ काँप झप झप
उतर कर चुभीं थीं युग मर्माहत !

यह क्या करते हो ? — गरजे भागो
हत्यारो छोड़ो उनको भागो —
देख रक्त लथपथ हरि को — बोले
हाय क्या किया तुमने दुर्भागो !
शिव संस्कृति संस्पर्शों में पोषित
मनुज न था भू ईर्ष्या से परिचित —
निकली चीख पुकार भेद उर को
हुआ मनुज पशुता पर वह लज्जित !
पाप घात कर लौट पड़ा दल बस
हुए अनेकों युवति युवक विक्षत
पंथ धरा ईर्ष्यानल की आहुति
हुआ प्रेम फिर, जीवन संगम रत !
मूर्छा से जग बोला आहत हरि —
तुमसे सखे बिछुड़ने का है दुख
प्रेम तुम्हारे सम्मुख मरने में
जीने से भी अधिक हृदय को सुख !

धूम छूट गया कवि प्रभ अंतर का
खुलता युग सम्मुख प्रकाश अंबर
तुम्हीं सत्य कवि — धरा चेतना का
करना होगा मनोविज्ञ रूपांतर !

रक्षा करें तुम्हारी प्रभु ! — जो अब
विनत मांगता तुमसे हो तन्मय —
ज्योति ज्योति रस घुलता मैं मन मय
प्रभु रवि के रवि रस के रस अक्षय !

मूंद लिए हरि ने दृग संगी भी
तन मन से हत हुआ पुन मूर्छित
मूर्त शून्य से लौटे गुरु घर को
हरि की तद्गत वाणी से विस्मित !

भैया के अकस्मात मरण से छाया
गहन मूक दुख तम जी के भीतर
सखा शून्य गिरी अक्षम्य कातर
तड़ित् हता लतिका सी वह भू पर !

धीरे सहृदय क्रूर काल कर ने
पिघलाया निर्मम दुख का प्रस्तर, —
भूला भरता उसको मारा पर
भर न सका अंतर का क्षत दुस्तर !

झर पड़ती दृग से भैया की स्मृति
छाई थी जो उर में बन दुख घन
माता पिता उस ममता मय से
करते सुख के प्रभु पुण्य वर्षण !

देख शान्त शुचि स्मित हरि का आनन
किया मृत्यु को कवि ने विनत नमन —
निधन न हो यह — नव जीवन के हित
दिग् विस्तृत हो खुला स्वर्ग तोरण !

पुष्पों से परिवृत था हरि का शव
देह चेतना से आत्मा जीवित —
मर्मी को ले गए धाम नत शिर
अमर मृत्यु गाती गरिमा मंडित !

हुआ चिता अर्पित जब हरि का शव
अस्मा अस्त पड़ा था कवि आहत
चित्त झुलसती तप्त चिता लपटें
व्यथा दग्ध थे प्राण–स्नेह स्मृति रत !

घूम रहा था आँखों में प्रिय मुख
मन को मथते स्मृतियों के क्षण
जीवित होता अक्षर क्षण पट में
श्याम तपस्या निष्ठा का जीवन ।

युग प्रबुद्ध जीवन शिल्पी था हरि
भाषा की रस आत्मा से परिचित
रसा प्राण सौन्दर्य तत्व द्रष्टा
आस्था उन्मेषित श्रद्धा अर्पित ।

शब्द शून्य ज्यों अर्थ बिना वपु असु,
बिना प्राण वस* के अंतश्चेतन
अनुभव करता अपने को बाकी
शोणित शिरा रहित हो हृत्स्पंदन ।

देख रेख करती कवि की अब श्री
मित्र दुख भूल – उसे दे आश्वासन
कार्य भार हरि का ले कंधों पर
बसा केन्द्र प्रति हो प्रहरी अर्पण ।

बसा शिविर ही था हरि का स्मारक
कीर्ति स्तंभ कवि ने न किया निर्मित
स्नेह कृति सा बन वह जन भू हित
स्वयं बन गया था स्मृति निधि जीवित !

हरि के शव उपरांत संघ भीतर
असंतोष की सुलगी कटु ज्वाला
छाई थी उपवन में तृष्णा
उसमें बस मन में डेरा डाला !

काम द्वेष से क्वथित युवति युवक
कवि विवेक प्रति हुए स्वयं शंकित
मर्म प्रीति का स्वप्न गया चुककर
प्राण वारि हो उठन पांगेलिन !

जगी राग सम्मोहन पर पा जय
सजग हुआ बहु वर्षों का संयम
खुले चेतना के रस शुभ क्षितिज
मिटा कामना के मन का चिर भ्रम !

बरसाते हो गंध सुमन सुरमय
जगा मनोभावों का नित वैभव
राग द्वेष का धूम छँटा धीरे
काम प्रेम बन प्रकट हुआ अभिनव !

खोल हृदय का कुंठित वातायन
शोभा ने बिखराया स्वर्गिक सुख
चित आत्मा की ज्योति स्पर्श पाकर
बहा शिराओं में शाश्वत का सुख !

नम्र रुधिर से धुले सुधा जल सम
मन का शून्य भरा नव आशा से —
प्राणों में संचरित हुआ जीवन
सृजन चेतना की रस श्वासा से !

खिलता ज्यों हिम दग्ध सरोरुह वन
कला केन्द्र फिर हुआ स्वप्न गुंजित
जागा हो नैराश्य निशा से मन
नव श्रद्धा विश्वास हुए जागृत !

निर्मम भू वास्तवता का था गर
कवि कल्पना हुई निज में केन्द्रित
देखा उसने मन की छाया में
राग द्वेष भू जीवन में मूर्तित !

युग सत्ता से मुक्त हुआ अंतस्
रूढ़ि रीति का जीवन मृत पंजर, —
मृत आदर्शों का समाधिस्थल जग
वह बौद्धिक सिद्धांतों से जर्जर !

दास घिनौने स्वार्थों में रत जन
धर्म काम लिप्सा से मन कुंठित
विकृत अहंता के मानस पीड़ित
परंपरा के प्रेतों से सेवित !

रुद्ध हृदय भर मलिन भावना रस
शुभ्र प्रीति—पशु प्रकृति काम कल्मष
भय शंकित मन दैन्य ग्रसित जीवन
अधम कर्म करने को मनुज विवश !

तृष्णा छुरी सी थी असह्य मन को—
युग यथार्थ के हुए उसे दर्शन
सिमट गया था चित् प्रकाश भीतर
तमोग्रस्त था बाहर जन प्रांगण !

यौन मत्त भारी बर्बर पशु नर,
उच्च वृत्तियों के प्रति डर शंकित
ध्वस्त शीश उन्नत श्रद्धा आस्था
प्रीति काम अंजुलि पुट में सीमित !

संकट क्षण अनिवार्य विश्व के हित
उमड़ रहे थे अंधकार के घन
बढ़ता अभिनव प्रति विरोध दुर्धर
गत भू जीवन का होगा विघटन !

अपरिहार्य था भू मन का विप्लव—
अंध नियति—कवि को था पूर्व विदित
छंटने पर विद्रोह धूम का घन
नव प्रकाश का पथ होगा विस्तृत !

ज्ञात आत्म का ज्यों प्रकाश उज्वल
मूढ़ अंध विश्वासों का पड़ तम,
पूर्ण प्रबुद्ध न हो जब तक अंतर
शंकित करते तम के फन निर्मम !

असमर्पित जीवन शंकालु हृदय
विहृत दृष्टि—मन जीवन दुख कारण
बहिर्भ्रांत जीवन धारणा हत बस
अहं मूल बन आहत करती मन !

व्यक्ति अहं—अंतिम अब उसका क्षण—
विगत मनुज—अवसित उसका जीवन—
युद्ध भूमि अब मन क्षेत्र निश्चय
अंतस्तल न बहिर्जगत का रण !

शेष अभी था — वह मन के कारण
कवि प्रज्ञा का था न तनिक सक्षम
विकसित भू जीवन यापन साधन —
बोले मन को लेता युग निर्णय !

मानव मानव सब समान भू पर
घोर त्याग करते भू के दीपित
मानव भगवान् पावक का चित्कण
निर्मम सेवा — पथ भू हो संस्कृत !

भेद नहीं कुछ मानव मानव में
एक मांस तन एक हृदय स्पंदन
एक प्रकृति गुण एक ऊष्ण शोणित
मनुजों में निज समुद एक चिद् घन !

उसे ज्ञात था जन न पूर्ण मानव
वे नाटी गुण स्थिति से कुंठित नर,
अभी पूर्ण मानव विकास पथ पर
कवि भी उसका प्रगत पथ सहचर !

मित्र बनाता रहता कवि अरि को
शत्रु न पन भू मन सीमा निश्चित
फिर फिर भू तम श्वास उठाता फन
सत् को करता असत् त्रास पीड़ित !

कवि के कोमल उर में चुभ जाता
दुर्व्यवहार घृणा विद्वेष जनित —
उसकी ममता भरी चेतना की
सुदृढ़ ग्रन्थि होती भीतर निर्मित !

राग द्वेष था युग मन में संचित
उस शनैः होने लेना था क्षय
भय संशय का धूम चीर जिससे
जन्म ले सके नव युग अरुणोदय !

करुणामृत से था कवि विष-हर धन
भू मंगल प्रति हुआ पुन अर्पित —
नया जागने ज्योति लक्ष्य नूतन
नव धरा मन हो विकस संस्कृत !

पुन मुक्त ! रस प्रीति चेतना से
वह भावी भू मानवता में हित
नव सांस्कृतिक हृदय करता निर्मित
केन्द्र शिराओं में भर नव शोणित !

इंद्रिय पुट में भर भगवत् पावक
वह भू जीवन में करता वितरित
विरति निषेधों से विमुक्त कर मन
सँजो धरा पर स्वर्ग लोक विस्तृत !

ठोस मानसिक मूल्यों के बंधन
ईश्वर केन्द्रिक जीवन कर विरचित
बना प्रकृति प्रांगण का प्रभु मंदिर
स्व पर भेदों को करता वंचित !

सब कर्मों से कर अर्पित पूजन
ब्रह्म जगत् का द्वैत मिटा कल्पित
सामूहिक व्यक्तित्व धरा जन का
भगवत् सत्ता में करता विकसित !

राग चेतना की सित नींव उठा
मानव संस्कृति का प्रासाद महत्
रचता वह सित स्वर्ग शिखर चूमी
भगवत् सुख म सुख में कर परिणत !

आध्यात्मिकता भौतिकता दोनों
एकांगी निर्जीव पलायन भर,
नव्य चेतना में कर संयोजित
दोनों का करना था रूपांतर !

ऊर्ध्व व्यक्ति साधना मार्ग दुर्गम —
सर्व लोक हित समदिग् जीवन पथ
निर्मित करता प्रीति मुक्ति का कवि
राग मुक्त हो जिजीविषा संभव !

भू हित रस साधना निरत कवि को
होती था निर्मम मानव व्यथा
स्वर्गिक भावों चिर् छवियों में
डसती उर में उसकी मूक कथा !

उस विचित था जनपद प्रांगण में
प्राण छिप रहा जो युग संघर्षण
वह समस्त जगती के अंबर में
छाएगा — भू मन का बस्मय बन ।

जाग रहा था कवि चैतन्य किरण
जीवन तम को कर दे जो ज्योतित
तप पूत जन भू मन का तामस
शोभा मगल म हो दिव्य मुकुलित ।

बसी उर म स्थित हरि का बध कर
आत्म ग्लानि से मुक्त अंतर कवलित
दिन दिन होते रह क्षीण विघटित —
वह असाध्य उर व्रण न भरा किंचित् ।
विक्षिप्तों से बरतें रह रह
अंधकार से सह मन के प्रतिक्षण
उसे चरम स्थिति मान मनस्वी की
पूजा करते करुणा हत प्रिय जन ।
मति इच्छाया के प्रतीक मानो
अभिमानी मन युग मन में अंकित
वैयक्तिक जीवन आकांक्षा की
भग्न मूर्ति करती जन हृदय द्रवित ।

सत्य मृषा की अंध भक्ति तम घर
रचती नित नव कथा मथित सागर
गूढ़ रहस्याभासों में लिपटे
चमके गुरु — नर मेरु शिखर भू पर ।
सत्य मृषा स घिर रहस्य बनता
सरल सत्य से मिथ्या का पूजन
सत्य सूक्ष्म संगतियों म विरचित
श्रम तप से संभव उसका दर्शन ।
निमम रहा था गुरु का सूनापन
हृदय शून्य की भाँति म था आहत
प्राण शक्ति रम मुरझाता जाता
बोध मलिन होना स्वभाव उठन ।

निश्चेतन तम में खाया हो मुँह
बना चित्त छायाभासों का घर,
जीवन मन के अंधकार से मुक्त
हुए शनै गुरु भात प्रांत अमर !

मन ही मन करता प्रणाम कवि
अकथ व्यथा के पर्वत उस नर का
बाह्य सामर को टाला मन को
मति प्रतिभा के शाप भ्रष्ट कर को !

मन ही मन करता युग मौन नमन
उस करुणांत कथा के नायक को
घोर विरोधों के सम्मिश्रण को
सत्य भ्रष्ट मति मति विधि नायक को !

व्यक्ति मूल सांस्कृतिक संघरण की
जीर्ण अहंता के साथ निश्चय
वैयक्तिक पौरुष गुण गरिमा में
भक्ता आस्था थी उनको अतिशय !

कुसुमाकर हा बना कृष्ण पतझर
सरित वेग कसरत जम हिम प्रस्तर,
सुखी चेतना शिखा अचित् तम में
राज भवन बन गया भग्न खंडहर !

और एक दिन तोड़ यह बंधन
मुक्त हुए सुर पी युग विष दुष्कर
छूट अविद्या मोह पाश से मम
उऋण हुआ—प्रभु कार्य समापन कर !

चंदन का रथ पुष्प तल्प गुरु हित
दाह कर्म को स्वजन हुए उद्यत
अस्त हो चुका था रवि चिरता तम
ममता बन मन को दुःख का पवन !

घृणा द्वेष भय स्पर्धा संशय का
भस्मसात् करती चिताग्नि प्रतिक्षण
वह न व्यक्ति शव था युग जन के हित
मृत्यु अमर मन युग शव था पावन !

गिरा सिन्धु तल में ही इदु विखर
मचला ज्वार तिमिर का युग मन में—
राग द्वेष की सोई कटु आँधी
छाई फिर से जग जन कानन में!

प्रबल समस्या के आवेगों से
हुई अग्नि मुख जन मन भू कंपित
ज्वार प्रवर्तन सम में उठ दुर्धर
करने लगा हृदय नभ आच्छादित!

अन्धकार की गहरी छाया फिर
धारण करती अब जन भू का मन
सोचा कवि ने—स्वयं समय पर ही
भावी छँटेगा विगत प्रभुता घन!

बाँट गए वे अचिर् अकित जन में
निर्मित कर युग सबल विपक्षी दल
कम विराम की कठिन कसौटी में
नव्य बढ़ता निखरे स्वर्णोज्ज्वल!

प्रभु बैठे अब अन्य अमत् कम में
वे विभक्त कर देते मन अंतर,
सत्-असत् का हो बोध लोक मन को
संघर्षण से बढ़े सत्य निखर!

विस्मय भरी हो हास मह अम का
मन पुष करे मनुज का रूपांतर
एक सत्य के उभय पक्ष—कवि बुध
ज्योति तमस—तत्वतः नहीं अंतर!

मत्य मूर्त विरोहित भी हास भिला
मधुपुण मव ताराभा से अंकित
युगस्थिति के अनिवार्य रूप मानो
अस्तंगत रवि से वे स्मृति में स्थित!

परशुराम का विगत अस्मिता रवि
निज विनाश प्रति था न सबोध कदाचित्
तपस्या पौरुष रिक्तता मिटवे
निखर रक्तिम युग कर अरुण सित!

खोया कवि को शोक मूढ़ जग म
किया चन्द्र रस जीवन को साधित
दिया भाव गुरु दुःख दग्ध मन को
चन्द्र ध्वस्त कवि परिभव था बाधित!
अवचेतन का गुह्य बोध कहता —
गुरु का मन्थन उस सब कुछ का क्षय
जिसे सत्य समझे थे मन म जग —
रूप महत्ता स्पर्धा दर्प विजय!
घोर भ्रान्ति फैली गुरु शिष्या म
सत्य मृषा प्रति हुआ हृदय शंकित
ह्रास युगों पश्चिम का दर्शन भी
कर न सका उर मंथन को प्रशमित!
कहता मन शोधन संवेदा म
आत्म रूप पर्याप्त नहीं निश्चित
विगत अस्मिता का आमूल बदल
नव युग आकृति म होना विकसित!

गुरु क सह मिथुन स बसी क
कुसुम मन म घात समा गोपन
उर अवाक् अनिमेष रहे लोचन
बाष्प भर उमड़ करुणा के घन!
सदा व्यक्ति का करता कवि आदर
सामाजिक स्थितियों की जो संगति
छिर, ईश्वर क कार्य यत्न थे गुरु
मध्य चेतना का घन स्पन्द गति!
वे बहु मकपक गुह्या शिष्या का
छोड़ गए सह दुःख से संतापित
नव चिर जीवन का विरोध करन
जिसस हो यह जन भू पर स्थापित!
स्वप्न का था गुह्य ध्येय इसमें —
सहज बोध स प्रेरित नव रस विन
बहु रुचि वैचित्र्यों में पुंजित हो
नव मानव भूमा में हो विनिर्मित!

शेष सदृश बन पाद पीठ नव की
शत सहस्र मस्तक हो अब नत फन
भव्य चेतना भूत वैभव मंडित
नए विष्णु को करता युग धारण!

गुह्य अभी केवल वो युग प्रतिनिधि
युग कवि का जय गीत न यह संभव
विश्व धरम की दिग् जय की गाथा
जन भू मंगल हित जिसका उद्भव!

प्रस्तर युग की आदि महत्ता का
धरा वृत्त होने को अब अवसित
सूक्ष्म चेतना का नव चंद्रोदय
विश्व मनस् को करता ज्वार मथित!

निगल रही थी शिखा दिवस का अब
भू मानस में हो नव सूर्योदय
रस प्रकाश युग में रूपांतर कर
क्षय हो युग तम पाकर प्रथम विजय!

स्वाभाविक था विघटित अस्मिता का
विद्रोही जनता — स्पर्धा पीड़ित
असत् अविद्या जन का आश्रय ले
निज सत्ता को करता फिर स्थापित!

प्रभु निज को अतिक्रम करते रहते
नव्य रूप में नव गुण में विकसित
निखिल भूत सांप्रत सुर संपद् को
निज भावी गरिमा में कर मज्जित!

स्वर्ण भूत यह मानव संस्कृति का
देव दनुज में अब न सत्य बाधित
रस प्रकाश से स्पृष्ट रूप रावण
भव्य सत्य में होते लय विकसित!

मृषा धारणा थी यह जन मन में
कवि युग में है वैमनस्य गोपन
स्वच्छ अर्वाचित था — अधीर बिम्बित
मनस चेतना का अंतर दर्पण!

जन मन का था समाधान करता
नींव डाल नव की स्वीकृति के हित
रस प्रकाश से भरने को भू क्षण
धरा स्वप्न को कर चित समोचित !

सुंदरपुर के बृहत् चतुष्पथ पर
कवि ने गुरु की प्रतिमा की स्थापित —
पूर्णाकृति स्मित कांस्य मूर्ति सम्मुख
कवि ने नत श्रद्धांजलि की अर्पित !

दूर्वादल के मृत मध्य उन्नत
गुरु की गौरव शिल्प मूर्ति थी स्थित
कुसुम क्यारियों में मधु वीणा से
गाते मधुकर भाव गीत गुंजित !

शोभा श्री स्वप्न ग्रथित स्वर में
गुरु को हम करते नत नम्र नमन
युग मन की संपत् श्रद्धा पूजन
गुरु चरणों पर करते नत अर्पण !

इस मत-संघर्ष निरत युग का
कीर्ति मुकुट गुरु को देता शोभित
मन काय के सब गुण सत्य निश्चय
नर व्यक्तित्व उन्हें करता मोहित !

ज्योति स्तंभ वह विगत अस्मिता के
करते रहे दिशा पथ निर्देशित
संकट घड़ियों में ध्रुव पार लगा
भव सागर में जग जीवन बोहित !

प्रिय था उनको कीर्ति मान वैभव
समुन्नत महत्तर राजोचित सौष्ठव
धाम त्याग पौरुष भर आत्म विजय —
अर्पित उनको निखिल व्यक्ति गौरव !

सिंह नाद कर जन मन कानन में
विचरण करते थे नर हरि निर्भय
विजय पराजय से चिर महत् सतत —
विजय पराजय में गूँजे जय जय !

नूतन प्राक्तन के संघर्षण में
रहे सदा साथो जन प्रिय नायक —
पूर्ण हुए सब कर्म नियुक्त सकल
रिक्त हैं तूणीर काम सायक ।

प्राक्तन नूतन में रे अति दुस्तर
भेद — राग वर्जन भय से पीड़ित
एक — दूसरा जन भू जीवन प्रिय
राग उन्नयन में रत रम संस्कृत ।

एक मुक्तिकामी जग से उपरत
अपर ऊर्ध्वमुख भू जीवन अनुगत
उभय विभव को ला समदिक् भू पर
जीवन शोभा में करता परिणत ।

ध्यान लीन चित् ज्योति स्पर्श पाकर
पुष्ट पद्म — स्थित आत्मा में तन्मय
अपर आहुता उतरें जन भू पर
शाश्वत सुख — मृण्मय सब हो चिन्मय ।

मोक्ष विरति में रत संस्कृत रति में
अंतर्मुख्यों का यह नव युग रथ
एक अमित पंजर भर ईश्वर का
इतर भाव साधन समवत् मानस !

भूम छोर यथा युग कवि के मन का
बनी के ही थे विलोम माधव
ध्यान लगा जिससे वह अपने को
माप सके थे प्राक्तन नव मानव ।

हुआ मर्यादित युग मन में स्थित
भू जीवन को देने गति नूतन
नव्य ज्योति द्वित हो गत तमस निरूप —
किया मुक्त कवि मन ने प्रणाम नमन ।

नव युग के अतनम बिन्दु में सब
प्राण स्पंदित अस्मिता — नहीं संशय
अर्पित ईश्वर का रति हृति व्रत सब
नर नारायण धरा प्रीति तन्मय !

लोक महत्ता के सम्मुख नत सिर
हुआ पुन कवि मन स्थिति में तद्गत —
सृष्टि कला को आह — नव्य युग हित
धरा पीठ विरचित करने म रत!
घोर विरोध अभी था कवि के प्रति
मार्क्स मान्यता प्रति जन मन नूतन
बिखर रहे थे विगत समष्टि पथ
गहरा होता भ मन का तम घन!

ज्ञान शक्ति है — किन्तु नहीं यदि
वह ईश्वर चरणों पर अर्पित
असुर दर्प बन वह विध्वंसक
बन जाता जग भू जीवन हित!
निखिल शक्तियों में जननी की
प्रेम शक्ति ही निश्चय अविजित
नव्य लोक जीवन रचना रत
मंगलमयी सृजन रस संस्कृत!
चिर विकास गति क्रम म अविरत
मानव जीवन सत्य चिरंतन
पौरुष यश क मान पुरातन —
नव आदर्श — समर्पित जीवन!

उत्क्रांति

प्रथम बार जन भू के प्रांगण में
प्रेम जगत लेता — जीवन ईश्वर!
पुष्प वृष्टि करते कृतार्थ सुरगण
प्रकृति पुरुष मिल देते आशीर्वर!

ब्राह्म मुहूर्त खुले कवि उर लोचन —
खुला स्वर्ग का ज्योति चक्र तोरण
जन भावी की देख दिव्य संपद्
चकित नियति — हर्षित दिशि अपलक क्षण!

बरस रही युग स्वप्नों की शोभा
अंतर्नभ से कर उर विस्मित
नव प्रकाश के रस सिक्त स्पर्शों से
भाव मुग्ध प्राणों को कर पुलकित!

स्वर्ण हरित अरुण पावक अंबर से
उतर रहीं स्मित प्रभाएँ भास्वर
शुभ्र प्रेरणा किरणों की रिमझिम
रस तन्मय करती युग कवि अंतर!

अमृत रोग हर जीवन श्वासों ने
मृत्यु शून्य भर दिया — मर्मभिद् क्षत
तिरोभाव में प्रिय हरि के पद पद
मुक्ति चक्र ममता स्तमित अद्भुत!

धाम शिखर पर करता कवि रोहण
बढ़ता स्वर्णिम सोपानों पर मन
खुलते पट पर पट भावी युग में
सूक्ष्म दृष्टि रत रहता उर प्रतिक्षण!

भ्रांति भ्रांतियों को करती प्रतिक्रम
बहिरंतर का होता रूपांतर,
आत्मा के रस पावक में तप कर
निखर पूर्णतम ढलता स्वर्णिम भर !

प्रकृति मनुज संस्कृति का शुचि परिणय
भू जीवन को करता भी सुखमय
दिव्य प्रहर्ष से पुलकित इंद्रिय सुख
जीवन आत्मा का देते परिचय !

मानव के संग पशु पक्षी जग भी
लगता नव चेतन सुषमा मंडित
नैसर्गिक अवबोधों का जीवन
सूक्ष्म चेतना शोणित से स्पंदित !

मूक वनस्पतियों का सुप्त भुवन
गुह्य अभीप्सा से लगता प्रेरित
रंग गंध मधु पत्र पुष्प फल में
ऊर्ध्व प्राण आकांक्षा हो प्रहसित !

भाव योनि की स्वर लय मैत्री सी
षड्ऋतुएँ स्थित संगति में भासतीं
सौरभ सुरधनु ज्योत्स्ना मिहिका की
धूपछाँह सुषमाएँ बरसातीं !

भाव रूप धर धात्री स्मित ऋतुएँ
मानस आभाओं में सी भूषित
रूप रंग रस गंध स्वप्न सुख के
सम्मोहन में कर भू को मंडित !

पिक ध्वनि करती स्वर्ण मंजरित जग
रिमझिम भर बिछती हरीतिमा वन
ज्योत्स्ना बनती स्वप्नों का यौवन —
शीत ताप विजयी बन भू मांसल !

बदल रहा था यह निसर्ग का मुख
रूपांतर होता उपचेतन में
सूक्ष्म स्पर्श पा सित रस पावक का
स्वप्न जन्म लेता भू जीवन में !

ज्यों ज्यों ऊपर उठता कवि अंतर
आत्मसात् करता वह जग जीवन
समदिक बनता ऊर्ध्व उभय समदिक
नीत अवतरण करता नव चेतन।

भाव पूर्णता का भू जीवन की
जन्म ले रहा था प्रबोध नूतन
दिव्य चेतना आभा में दीपित
परम भाव का हो प्रद्युप सित क्षण।

ज्ञान चक्षु से अतिशय स्नेहोज्ज्वल
खुला हृदय का सहज दृष्टि लोचन
काम योनि के अंधकार में जो
भू जीवन पथ करता निर्देशन।

आत्मा का वैभव इंद्रिय कुसुमित
रस कृतार्थ होता समग्र योजित
चिति कर में जड़ आभा उर में तम
परम हर्ष में जगते अति जीवित।

भाव बिम्ब शोभानुभूति करती
उर की सूक्ष्म शिराओं का संकुल
छूट वासना छाया ग्रह से मन
नवल कलाओं में होता विकसित।

हीरक सरसी में पावन रस की
आभा का सुख करता अवगाहन
सन्मय को उर्वरक बना जगता
भाव प्ररोहों में यथार्थ नूतन।

आत्मा की मित शरद नीलिमा में
अकलुष सुषमा का उगता शशि मुख
भरता जो नव स्वर ध्वनि भू पर
जड़ को कर जीवन विकास उन्मुख।

मापित रवि उर में स्थित अब कवि मन
नित प्रकाश रस निर्झर बरसाता
थी शोभा आनंद प्रीति भर में
जग भू प्राणों का जीवन नहाता।

चन्द्र मुकुर में अंतर्मानस के
शोभा के वे सूक्ष्म भुवन बिम्बित
सृजन प्रेरणा के सित हाथों से
नव मानव भावी होगी निर्मित ।
सप्त वर्ण स्वर्णाभा में लिपटी
उतर चेतनाएँ आतीं भू पर
स्वप्नों की कँप रत्नच्छायाएँ
नित नव भावों में हँसतीं निःस्वर ।
लोक ऐक्य की नीड़ पीठिका पर
भावी भू मानव ईश्वर था स्थित
सूक्ष्म स्वप्न किरणों की आभा दे
स्वर्गिक मुख पर — नव जीवन श्री स्मित ।
मौन सुनहली आभाएँ भर भर
मानस मुकुलों में पराग भरतीं
गंध वर्ण के बाष्प पुष्प बनकर
शोभा की आकृति धर मन हरतीं ।
रजत नील अंतर्ध्वनियों का मन
प्रेम द्रुम नव मधु पिक बन गाता
भावों के भुवनों का मधु चखने
स्वर्ण पंख मर्मर मुख मँडराता ।

देखा कवि ने — मरकत सर तट पर
इंद्र धनुष नीहारों में वेष्टित
करतीं दिवाभिसार अप्सराएँ
शोभा की सुषमाभा में मंडित ।
उनकी चितवन से विद्रुम वन में
रक्त नील सित खिल उठते पुष्कर
भृकुटि भंग बनती तरंग चंचल
स्मिति आभा सीपी में झरती भर ।
सुघर उर्वशी थी रमा रंभा
स्वर्ग कला से ही तन थी निर्मित
कामलता के मांसल था या वपु,
स्वप्नों के विस्मय में उर कल्पित ।

स्वर्ग भू न गूँजे हों पंख चपल
मलयम हँसी हँस मन ही मन विस्मित
हाव भाव की पुष्प वृष्टि करती
शोभी वे कवि छवि से आकर्षित ! —

किन भावों का मधु पराग उड़ता
स्वर्णिम शोभा में कर उर मज्जित
ओ भू जीवन के नव रस मानस
तुम्हें देख रति मदन काम लज्जित !

कौन अमृत स्रोतों से तुम आता
कैसी रस धारा यह भू मादन
कैसी सित सौरभ छूती उर को
पूर्ण काम हो उठता जग जीवन !

कृमि तम से आत्मा के सत् तक
हो उठता चरितार्थ विश्व स्रष्टा
रस कृतार्थ रति पूत प्रकृति रच मग
था नव भू मानव जीवन द्रष्टा !

शिखर पंक तम से अब रति मन्मथ
शोभा रस पावक में परिवर्तित
जगा फूल शय्या पर भू यौवन
सृजन चेतना सुख से अभिप्रेरित !

फैली भू की कीर्ति अमरपुर में
सार्थक स्वर्ग शिखर पर इन्द्रासन
सुरपति अब भू जन का प्राण सखा
प्रेम ज्योति करती जन मन पोषण !

स्वर्ग हृदय रोपित कर पृथ्वी पर
ज्योति केन्द्र कर वक्रिमा में स्थापित
किया स्वर्ग तुमने जीवन सक्रिय
मर्त्य वपु उर कर रस ध्वनि नादित !

अप्सरियों को भी गौरव दो कवि
केन्द्र अवस्थाएँ हों वे शोभन
थी शोभा सुषमा के तुम पूजक
हम उनकी प्रतिनिधि नवांकित मोहन !

शोभा कवि भी शोभा छायाभो
कवि वर सब का करता अभिवादन
भू विकास रचना श्रम में गूँथ कर
सफल तुम बन सको पात्र पावन !
स्वर्ग लोक की तुम मानस प्रतिमा
तुममें गढ़ने होंगे भू अवयव
भरा स्वर्ग का स्वप्न सत्य से भी
गहन वास्तविक निष्ठुर — कवि अनुभव !
रूपसि जीवन सर्जन श्रम शुभम
नव आयाम संयोपमा निश्चय
रचना पावक ही म तप शोभा
जन भू हित हो सकती मंगलमय !
चकित भीत तुम देख परस्पर मुख
बोली वे — अप्सरियाँ जन भू श्रम ?
हम स्वप्नों की प्रतिमाएँ, प्रिय कवि
लौह स्वप्न तुम — शोभा प्रति निर्मम !
कहा नम्र हो कवि ने सुर मोहिनि
श्री सुषमा का उपजाती तुम भ्रम
शोभा की केंचुल तुम शोभा का
जन भू रच श्रम मे पवित्र उद्गम !
सुन्दरता की शोभा ही इसम
अर्पित हो वह शिव के चरणों पर
मुरझाने के बदले नव गरिमा
पाती उसमें या शिवत्व का वर !
भू विलास प्रिय रिक्त भावनामय
हुईं अप्सराएँ क्षण में ओझल
गूँजी धीरे स्वप्निल नूपुर ध्वनि —
वह प्राणों की काया का था छल !

हरि ही जैसे पद थी क वन में
कला पीठ का करता सचालन
मधुर करों क मन्मथ मलो से
स्वत फूल सा हँस खिलता जीवन !

प्रेम मिलन में संस्कृत नारी नर
योनि मुक्त स्त्री उपरत भू यौवन
अंतर्मुख्या के अनुशीलन में
कर्म निरत रहता रचना प्रिय मन !

भू शोभा की फूल लता ललना
गंधप्रिय चित रस मधुकर नर मन
शोभा के संग मन भू सर्जन म
जीवन सुख का होता संवर्धन !

युग्म न रहते सन्निधि से परिचित
सार्थक करते गात सुमन मंगल
भू की शोभा पीठ हृदय तद्गत
बहता अंत प्रीति स्रोत निश्छल !

स्वभाविस्थ था कर्म लीन अंतर
भू सक्रिय थी मन की तन्मय स्थिति
भव विकास प्रति क्रम म चिति परिणति
परम बोध में भी न आत्म विस्मृति !

अब न पुर म था शाश्वत जीवित
ब्रह्म मूल था चित पट नव संस्कृति
भेद बुद्धि के पुलिन डुबा बहता
बाहर भीतर प्रेम–म भी भव इति !

भव सत् चित् आनंद पूर्ण रस घन
भू जीवन शोभा में थे मूर्तित
शाश्वत और अनंत सृजन रत क्षण
ब्रह्म सिन्धु रस अंजलि में सीमित !

स्वर्ग न ऊपर, ईश न सृष्टि पृथक
अस्ति चेतना सागर था विस्तृत
ब्रह्म पर्वताकार बढ़ा बढ़ बन
प्रेम एक बहु स पर भव रस स्थित !

एक अनेक न था रम परमेश्वर,
ईश्वर प्रथम पुन वह एक अनुभ
अतिक्रम करता नित निज को निज स
रस अमृत वह जीवन मूर्त अनुपम !

भौतिक सुख से तृप्त कला प्रिय मन
भाव विभव गरिमा से था दीपित
जीवन सौष्ठव, सुघर स्वच्छ भू सुख
सरस हृदय था सुमन स्वप्न प्रेरित !

स्वत खुल गया हो भव मन का मन
नयन श्रवण के नयन श्रवण निमिषित
भूमा की स्वर संगति मे जीवन
व्यक्ति प्रकृति सुरभित होता विकसित !

प्राप्त काम सुख स्वयं पूर्ण आत्मा
निखिल लोक मंगल से अनुप्राणित
रस समग्र आदर्श उन्हे करता
सर्वेन्द्रिय स्वप्नों से उन्मेषित !

नभ से झरता नव प्रकाश के नभ
मन श्रेणियों पर गढ़ता सित मन
शोभाएँ हम सुषमाएँ बनती
सत्य महत्तर शिव शिवतर प्रतिक्षण !

स्वर्ग सपना लाट धरा रज पर
जीवन सर्जन में होती कुसुमित
स्वप्न शिखरों में रस वैभव की
ज्योति रुचिर पाता प्रहर्ष महत्व !

नव प्रकाश के शुभ पकड़ कर में
विकसित होता स्वत ऊर्ध्व जीवन
महत् स्पर्श सुख गहता प्राणों मे
स्पंदन का गान बना भुवन !

इन्द्र धनुष किरणों मे परिवेष्टित
शोभा पाता ज्यों घनाभ हिमवत्
प्रलय ऐश्वर्यों की अंतर में
भासित होती चिर् सत्ता शाश्वत !

इस प्रकार जन भू संस्कृति प्रांगण
श्रेय प्रेय निधि कर थी संयोजित
जीवन मन आत्मा के भुवनों के
नए क्षितिज नित करता उद्घाटित !

नगर और जनपद भू क्षेत्रों में
चेतस् प्राणों का होता विनिमय
भू जीवन से हो चिति का परिणय
जन युग के कवि का था युग निर्णय !
ऊर्ध्व चेतना समदिक विचरण कर
नव भव मानवता में हो परिणत —
धरा प्रेम था ध्येय केन्द्र जन का
व्यक्ति मुक्ति भी सर्व मुक्ति व्रत रत !

सह न सकी हरि का बिछोह क्या भी ?
कला पीठ का था विकसित जीवन
मौन चुका था उसके मानस तट
नव चेतन से मन नव रस चेतन !
पकड़ न पाया नव विकास गति क्रम
मत युग मूल्यों का नैतिक अंतर,
था अनिवार्य धरा जन संयम हित
नैतिकता का स्वर्णिम रूपांतर !
चिद् रस से कर प्राणों का संस्कृत
नव ऊर्जा से भरना था जन मन —
इंद्रिय मधु वैभव संयम वंचित
बना दरिद्र भरत भू का जीवन !
पानी सी चुभती अब भी कवि के
मनश्चक्षुओं में रस सूक्ष्म प्रखर,
बँध वृद्ध नैतिक रजत शृंखला में
हो न सका चिद् हरित स्वर्ण भास्वर !
शुभ्र त्याग की प्रतिमा थी प्रिय भी
आत्म समर्पण हित नित उर तत्पर
सृजन प्रेरणा न सेवा व्रत पथ
था स्वभाव सचमुच — प्रकृति दुस्तर !
रम सित चिति की सहज भविष्यात्मक
पीछे रह जाता अतीत प्रतिक्षण
मत विकास शृंगों का नृत्यपरा
लाँघ स्वर्ग करती नूतन गर्जन !

पूर्ण चेतना के शिविका वाहक
केन्द्र पात्र सब थे मत पथ रथ
पिछड़ छूट जाते पथ निर्देशक
अभिनव बनते अग्रदूत अविरत !

सिरी फूल सी कुम्हला मन ही मन
श्वास अनिल मे मिला हुई तद्गत
उर सौरभ से भर जुन म प्रांगण
शरद चंद्रिका में नि:स्वर परिणत !

देखा कवि ने मृत्यु रूप सुघर
वह अनंत जीवन का था दर्पण
रहस द्वार में कर प्रवेश जिसके
पुनरुज्जीवित होता भू जीवन !

क्षमा शिविर सतति ने आश्रु नयन
शुभ्र प्रसूना मे आवृत कर तन
अंतर पावक को पा सब शीतल
किया देह को अग्नि चिता अर्पण ।

हरि जी थे मणि स्तंभ भक्त कवि का
स्वर्ग सेतु था जिन पर अवलंबित
रजत अनिल स्मित भाव स्वप्न निधि सब
ममता हा न सकेगी रख मूर्तित !

युग विकास प्रति आग्रह था — युग कवि
व्यस्त कर्म हो सूक्ष्म बोध सक्रिय
भाव क्षेत्र में अंत कर्म निरत —
कर्मों का चिद् उत्स उन्हें था प्रिय !

सूक्ष्म बोध ही न था शुभ्र चिद् रम
भव संजीवन भक्ति भाव प्रसम
साथ अनेकों युग नव युवति युवक
अनुभव करते अभिनव भावोदय !

युवक था अंत सम्पूर्ण जीवन
स्वर्णिम युवक — करता भावार्पित
सर्व प्रगति की गति लय में बँधकर
मंत्र चेतना होगी सर्वग्रिन !

परम पूर्ण थी स्वर्ण चेतना वह
श्री हरि के उर की राधा तन्मय
ज्योति प्रीति सुषमा प्रहर्ष रस निधि
पीत श्याम मरकत प्रकाश में लय !

शीर्षोपरि भागवत ज्योति आमृत्
अधोभूत रति काम स्पर्श शकुल
श्री शोभा रस पावन प्रतिमा सी
वह थी शासित सूक्ष्म स्वर्ग में स्थित !

मृण्मय दर्प बनता स्थित सम्मोहन
वह समय से रहती नित अतिशय
स्वयं प्रीति — शिव शक्ति सूक्ष्म अवयव
सत् चित् का मानव छवि परिणय !

शुभ्र अपर्णा तप की पावनता
हिम शालि से कर उसका आवृत
शिव समाधि सुख को करती सार्थक
परम चेतना में तद्गत उपकृत !

देखा कवि ने अंतर्दर्शन में —
शाश्वत सुख स्पंदित अनंत जीवन
कूल हीन सागर सा भावोसित
अविगत महिमा में प्रशांत प्रतिक्षण !

श्री शोभा के गौर शिखर पर्वत
पूर्ण प्रेम की तन्मयता रस सित
चित् प्रहर्ष की सिन्धु महत् विस्मृति
शुभ्र शांति में स्वर्ण प्रसार अमित ! —

हरित पुलिन पर खड़ा एक लघु तृण
था असीम सुख से भर भर कंपित
निस्वन चित् जल का भावोद्वेलन
मन प्ररोह उर में होता स्पंदित !

सार्वभौम स्वर संगति का कवि का
हुआ गत अनुभव — सब अपरात्पर
दीप्त ठौर पथ में हुए वर्जित
अमृत श्याम रस से पोषित भीतर !

जीवन की आत्मा कवि के सम्मुख
प्रकट हुई निज जीवन में अक्षय
सूक्ष्म पूर्णता में भव अभिव्यंजित
आत्म पूर्णता में गोपन अव्यय ।

बुद्धि नीति दर्शन से वह अतिशय
मानस पुलिनों को करती अतिक्रम
जड़ चेतन रस अपूर्व संयोजित —
निखिल ज्ञान जिज्ञासा की संगम ।

पूर्ण समर्पण कर उसको तन मन
भू रचना का सुख होता साधक
धर्म सकल अर्पित मन हो निष्पथ
उच्च प्रेरणा का प्रखर वाहक ।

मैं या तुम करते न सत्य धारण
सत्य बहिर् से जग समग्र अधिकृत
नाम न पुरुषातम गुण नाम रहित
नाम रूप जिसके अंकुर अगणित ।

भावों की पावन उच्च श्रेणी
काम कला से होती उद्घाटित
क्षर प्रतीत जीवन की छाया भर
भावी लिये अमृत घट भी जन हित ।

तन्मय क्षण में दीर्घ बुद्धि का पथ
पार सहज करता मन पद स्थित
सह प्रतीका बिम्बों शिल्पा म
मम सत्य का होना उद्भासित ।

गहरे हमक रमा के पवन
होते अतर्दृश्यों में परिणत
अंकित होती आँखों के सम्मुख
अघटित भावी घटनाएँ तद्वत् ।

चिरंतन का ज्योति छत्र निर्झर
झरता पद शिखरों पर दीपित
प्राणों के मित मरकत पावक सा
इंद्रिय जीवन सुख में कर मुकुलित ।

मनु का सुत मन आत्मा का मनसिज
नव शोभा क्षितिजों में अब विकसित
चिन्मय रस सरसी के सरसिज सा
ज्योति मरंदों से ममता मंडित।

आत्मा उर मन देह प्राण इंद्रिय
स्वर्ण चेतना सम्य म संयोजित
बनते पूर्ण मनुज में श्री संस्कृत
जीवन का रूपांतर कर कुसुमित।

स्फटिक पीठ पर स्थित भौतिकता भी
नव आध्यात्मिकता भी अब शोभित
इंद्रिय भी स्वर्गिक प्रहर्ष वाहक
आत्मा भू रस मांसल तन उपकृत।

पार्थिव रज से पूर्ण स्वर्ग शतदल
नव मरंद सौरभ मधु था निर्मित
चित् रस से भावी संस्कृति मानस
नव शोभा आनंद ज्वार प्लावित।

निष्क्रिय वर्जन तप से था दुष्कर
जीवन रस उद्वेलन पर संयम
शोभा सागर में तिरता मन नर
पावक सुख ज्वाला को कर प्रतिक्रम।

देखा कवि ने निबिड़ नील सागर
झंझा आवेगों से आलोड़ित
फेनोर्मिल फन मत्त पर्वत टकरा
ज्वलित हरित जल का करते मंथित।

आलोड़ित उपचेतन निश्चेतन
संप्रति युग स्थिति को करते विस्मित —
मर्मरिक पूर्ति न पा भू संकट की
अपवादी जीवन दर्शन कुण्ठित।

से निर्झर मेरु हिमवत्
ु जम से ज्वार
।।न संसृति मे
चित् ॒ ।

स्वप्न पंख मैनाक भवस अस से
उमा इंद्र स्पृ से जीवन निर्भय
धरा स्वर्ग को थी समुद्यत करने
दिव्य विभव का हो भव संचय।

शिव था शशि गंगा अहि गण परिवृत
था अंतर्मर्त्य द्युति भास्वर
पथ ऊर्ध्व स्वर नव जीवन सक्रिय —
दूर न था नव नव युग कल्पांतर।

देखा कवि ने समाधिस्थ शंकर
शिवतर मन जगत उर में शिव स्वर
उतर रहा स्वर्गिक ऐश्वर्य अतुल
स्वर्णिम मूल्यों में कुसुमित होकर।

निराधार स्थित शिव चिति अंबर में
सृष्टि स्वप्न से मन शिखर भूषित
तड़ित् तड़पती चिद् घन रस वपु में
उर में चिन्मणि शिखा उमा शोभित।

काम भुजग लिपटा मदंष्ट्र तन से
अमृत स्रोत शशि भाल गगन में स्थित
भूजन चेतना विस्फूर्ती धरता
मस्तक मन-मन का कर स्वर्ण हरित।

शिवमी गोहा में नव नभ का
मंत्र मृदंग बजाते गण प्रमुदित
शमित तत्व पावन निकेतन के
वहाँ काम करते प्रमद प्रमथित।

नव यौवन मधुमा मिलो कवि का —
युवति युवक जन शाश्वत नंदन में
धरा सुषम स्वप्नों में उन्मथित
विचरण करते प्रीति पवित मन में।

वह था मामा स्वप्न — मजरित तन
सित मानस सौरभ करते वपन
स्वर्णिम भावों का मरंद भरता —
मुकुलित मर्मों का हो नव मधुवन।

मनु का सुत मन आत्मा का ममसित
नव शोभा क्षितिजों में अब विकसित
चिन्मय रस सरसी के सरसिज सा
ज्योति मरन्दों से सपता मंडित !

आत्मा उर मन देह प्राण इंद्रिय
स्वप्न चेतना सब म समोचित
इससे पूर्व मनुज में भी संस्कृत
जीवन का रूपांतर कर कुसुमित !

स्फटिक पीठ पर स्थित भौतिकता की
नव आध्यात्मिकता थी अब शोभित
इंद्रिय भी स्वर्णिम प्रहर्ष वाहक
आत्मा भू रस मांसल बन उपकृत !

पार्थिव रज से पूर्व स्वर्ग शतदल
नव मरंद सौरभ मधु था निर्मित
चित् रस से भावी संस्कृति मानस
नव शोभा आनंद ज्वार प्लावित !

निष्क्रिय वर्जन तप से था दुष्कर
जीवन रस उद्वेलन पर संयम
भूमा सागर में तिरता नव नर
पावक मुख ज्वाला का कर अतिक्रम !

देखा कवि ने निविड़ नील सागर
सहसा आवेगों से आलोड़ित
फेनोर्मिल फन शत पर्वत टकरा
ज्वलित हरित जल का करते मंथित !

आलोड़ित उपचेतन निश्चेतन
मर्यादित युग स्थिति का करते विचलित —
समधिक पूर्ण न था भू संकट भी
सत्तावादी जीवन दलन कुंठित !

अतलस्थल से शिखर मेरु हिमवत्
प्राण सिन्धु जल से उठ ऊपर
भावी मानव संस्कृति गंगा से
मेरु सानु था चित् स्वर्णिम मधुर !

स्वप्न पथ मैनाक प्रवल पम से
उमा श्रंग स्पृ से योवन निर्मम
धरा स्वर्ग को थी समुद्य करने
दिव्य विभव का हो अंत संयम ।

शिव सा शक्ति गंगा महि मग परिभूत
था अंतश्चैतन्य भूति भास्वर
अब ऊर्ध्व स्तर भव जीवन सम्मिय –
दूर न था अब नव युग रूपांतर ।

देखा कवि ने समाविस्थ शंकर
शिवतर बन अमथ उर में निःस्वर
उतर रहा स्वर्गिक ऐश्वर्य अतुल
स्वर्णिम मूल्यों में कुसुमित होकर ।

निराधार स्थित निज चिति प्रवर में
सृष्टि स्वप्न से मन शिखर भूषित
तड़ित् तड़कती चिद् घन रस वपु में
उर में चिन्मणि शिखा उमा शोभित ।

काम भुजग लिपटा महंद्र तम से
अमृत स्रोत शशि भाल गगन में स्थित
भुजग पतगा विरूपदी भरती
मस्तक से – प को कर स्वर्ग हरित ।

निवसी दोहों में भव मधो का
मग्न मृदंग बजाते गण प्रमुदित
शिव तत्व पावन निश्चेतन क
यहाँ वास करते प्रमथ प्रशमित ।

नव जीवन सहसा मिली कवि को –
युवति युवक नव भारत नंदन म
धरा भुवन स्वप्ना से उन्मेषित
विचरण करते प्रीति प्रथित मन में ।

यह था शोभा स्वर्ग – मंजरित तन
सित मानस सौरभ करत मपण
स्वर्णिम भावों का मरंद भरता –
मुकुलित अंगा था हो नव यौवन ।

नूतन मूल्यों के जीवन वैभव से
भरा स्वर्ग का निर्मित था प्रांगण
असत् न शोक प्रगति में था बाधक
स्वर संगति में ग्रथित द्वन्द्वगत रण!

शिव से शिवतर पथ में बढ़ते नर
नव प्रहर्ष उर करते रोमांचित
शोभा प्रति सुषमा बन मन हरती
सत्य महत्तर क्षितिजों में विकसित!

जड़ चेतन का होता रूपान्तर
वैज्ञानिक करते भू पथ निर्मित
नव चैतन्य मनुज मन गढ़ नूतन
अंतर्जग को करता रस दीपित!

क्षुधा काम संघर्षण पर पा जय
सात्विक जीवन करते नर यापन
यंत्र संस्कृति आत्मिक परिणति हित
हृदय साधना रत रहता प्रतिक्षण!

मानव का मानव प्रतिपक्षी बन
वहाँ न रहना पड़ता अब जीवित
महत् चेतना की सित संपद सी
मानवता थी जीवन संयोजित!

प्रक्षेपास्त्र गरजते दैत्यों से
हँसती नव मानव आत्मा अक्षय
पूर्ण ज्ञान से भव्य चेतना का
मर्म स्पर्श कर होते जा द्रुत भय!

अणु भय छू चिन्मय ऊष्माओं को
वाष्प धूम सा उड़ हो जाता क्षय
सूक्ष्म विद्युत् विस्फोट मनुज मन के
हिंस भेद हरता—तम भय संशय!

गत भू जीवन मन का कर मज्जन
भव्य चेतना का अंतर प्लावन
ध्वस्त वह्नि में नव नव ज्योति भुवन
गढ़ता जग हित नव जीवन नव मन!

अंधा कवि मैं काल चक्र पीछे
घूम रहा — गत जन भू का जीवन
घूम रहा चिति के सित चल पट पर —
विविध वस्तु — घटना हों काल चरण !

विश्व विकास निर्मित क्रम सोपान
तम तंद्रा से जग जड़ जीवन मन
सप्त चेतना सोपानों पर चढ़
रत्न रश्मि रचते चिज्ज्योति भुवन !

विविध सभ्यताओं के युग भू पर
बनते मिटते — काल भृकुटि बल पर
क्षुद्र जाति भू खंड राज्य बनते
होते पूर्ण विभक्त युक्त बन कर !

कुटिल असंगतियों में भी संगति
क्रूर सृजन संहारों में पद्धति
भव विकास पथ में अंतर्गुंफित
बाह्य अपगति में भी थी सूक्ष्म प्रगति !

सत्य विजित होता असत्य विजयी
तम प्रकाश पर पाता आसुर जय —
सत्य महत्तर ज्योति पूर्णतम बन
करे विश्व जीवन को मंगलमय !

समदिक् जीवन का सम्यक् वितरण
अंतश्चिति कर ही में रत सर्जन
बहिरंतर का कर सित संयोजित
स्वर्ग पूर्ण बनता था भू जीवन !

राम चेतना की कर थी संस्कृत
संभव था मानव का विश्व मिलन
वस्तु उपकरण मात्र नहीं स्त्री नर
दिव्य भक्ति के अंत प्रेम चिन्मय !

पूर्ण शिखर में होता भव विकसित
ह्रास विकास प्रगति के चक्र चरण
पूर्ण पूर्ण को सौंप पूर्ण बनता
नव्य युगों में गूँथ लोक जीवन !

विश्व भ्रमण के अवसर पर कवि ने
किया कौशिकों को था आमंत्रित
कला पीठ का कर आतिथ्य ग्रहण
नम्र दृष्टि था लगते थे उपकृत !

वैज्ञानिक सब सुविधा से निर्मित
देख तरुण पश्चिम जग का जीवन
हृष्ट रहा कवि को भारत में भी
वैसा ही श्री सौष्ठव संयोजन !

भौतिक वैभव की वरिष्ठता से
पर अंतर्द्रष्टा कवि था अवगत
बहिरंतर संस्कृत मानवता का
युग प्रबुद्ध अंतर करता स्वागत !

सतत सोचता वह भू पर कैसे
शुभ्र प्रेम से जन्म – धरा ईश्वर
कौन प्रेरणा स्रोत मनुज मन को
करे अग्रसर हृदय ज्योति पथ पर !

स्वर्ग मूल में बोध मनुजता का
अंत स्थितियों के प्रति कर जाग्रत्
मानव स्वर्ग धरा पर रचने हित
करे धरा जीवन का जग उन्नत !

अतः शांति प्रतिष्ठित हो जग में
भू जीवन प्रति हो नित श्रद्धार्पण
स्वर्ग राज्य प्रति हो सचेत मानव
बाहर हो अंतर का चिद् दर्पण !

भौतिक आध्यात्मिक युग विषमता पर
होता विबुधों में विचार विनिमय
राजनीतिक आर्थिक युग संकट का
मिलता छात्रों को अनिष्ट परिचय !

प्रवासी वैज्ञानिक उन्नति से
असंतुष्ट थे युग प्रबुद्ध बुधजन
स्नेह प्राण मन के भीतर का भर
रस क्षुधार्त था हृदय गम्य पावन !

धर्म नीति संस्कृतियाँ भी निष्क्रिय
महा ह्रास विघटन की छाया तम
विश्व ध्वस्त-सा गत भू मन सीमा
मानव चिति को करनी अब अतिक्रम !

भू जीवन मन के विकास क्रम की
पृष्ठभूमि से थे बहुत परिचित —
इधर विगत संस्कृतियों धर्मों को
होना था नव जीवन समोचित —

उधर महत् विज्ञान शक्ति को नव
आध्यात्मिक युग करना था स्थापित
निष्क्रिय था अध्यात्म पका युग से
दृष्टि हीन भौतिकता आत्म विचित !

एकाकी मृतवत् दोनों संपृक्त
प्रकृति पुरुष को होना था यौगिक —
ज्ञान शक्ति के स्वर्णिम परिणय से
जग भू जीवन हो कृतार्थ निश्चित !

ऊर्ध्व श्वास भर मुक्त पूर्व का मन
हिमगिरि सा खोया असंग ऊपर
बाँह पसारे पश्चिम का जीवन
सिन्धु विकल चिपका भू से निर्भर !

आध्यात्मिक दारिद्र्य व्याप्त जग में
शक्ति लालसा हित पागल नर मन —
अत युग को सदय मानता कवि
वैज्ञानिक युग का कर अनुशीलन !

पश्चिम जग की दृष्टि न ऊर्ध्व गहन
बहिर्जगत विश्लेषण में सीमित —
वास्तवता में शून्य पूर्व की मति
अन्तर्भुवनों के नभ में कल्पित !

धर्म तंत्र अरु राजनीति सत्ता
जीवन आत्मा का करता शासित
अपर लोक रत मन चिन्तन रहता
इंद्रिय जीवन का कर निर्वासित !

निष्क्रिय नियति निषेध ग्रस्त भारत
मायक भृंगवत् आवर्तों में रत
शक्ति मत्त स्वार्थांध भोगवादी
पश्चिम जड़ वास्तवता का अनुगत !

आध्यात्मिक आधार भूमि विरहित
पश्चिम में विज्ञान ध्वंस वाहन —
मन के मूल्यों में विघटित मानव
अंतर्राष्ट्रिय जग स्पर्धा प्रांगण !

शुभ्र प्रीति उपचेतन भावा मे
हो विकीर्ण — पशु स्तर पर दुराचरित
जैव वृत्ति रत कुंठित मानव मन
क्षण भंगुर अस्तित्ववाद प्रेरित !

बहिः संगठन शून्य वृद्ध भारत
रूढ़ि रीतियों का शापित पंजर
अति वैयक्तिक छाया भावों से
पीड़ित — जीवन वर्जन से जर्जर !

जाति पाति धर्मों में पथराई
क्षुद्र मनुजता को मिटना निश्चित
रीति नीतियों में कुंठित भू को
नव मानवता में होना विकसित !

भव्य सभ्यता का उन्नत जीवन
मानव आत्मा का हो जो दर्पण —
रस प्रहर्ष की शुभ्र गहनता ही
मानव अन्तर का आभा प्रांगण !

आध्यात्मिक संयोजन में बँधकर
जन भू जीवन होगा सुन्दरतर
आत्मिक समता सार्थक एकता का
सत्य महत्तर है अंतर्निर्भर !

आध्यात्मिकता मूल सत्य जग का
उसके प्रति होगा मन को जाग्रत्
तदनुकूल कर सृजन कर्म भू जन
भूल कर दम्भ के युग में शासन !

सहमत समझे सभी समन्वय से
किया मुक्त मन से युग ने स्वीकृत —
पूर्व और पश्चिम आत्मिक भौतिक
एकांगी मूल्यांकन से पीड़ित।

ध्वंस मग्न विज्ञान शक्ति को अब
देने नव अध्यात्म ज्योति जीवन
सात्विक पीठ बना भू जीवन को
करे पंगु अध्यात्म लोक विचरण।

कला केन्द्र का जीवन सचालन
गए रूप से कर फिर सयोजित
समागतों ने संस्कृति छात्रों को
किया प्रशासन विधि म नव दीक्षित।

देख रोष को एक विमुग्ध अतिथि
बोला — क्या लगता स्वार्थ जीवन?
स्वर्ग सुलभ रत जीवन के सुख से
क्या परिपूर्ण न एक देह का क्षण?
अंग जानते अग तृप्ति का सुख
आत्मा मन चरितार्थ मांस तन में
तन्मय हृदय में समाधि स्थिति सुख
मर विकास रस काष्ठा जीवन में।
आज प्रीति मुझको लगती निर्मम
दर्शन की कल्पना पुरुष विरहित
धार्मर्वा सौन्दर्यों की परिणति
उत्स अर्पई लाख पावक में नित।
सूक्ष्म नहीं समझ मन के स्तर पर
स्वप्नों का स्मृति तल्प हृदय नवम
कोमल ग्रन्थि कलात्मक यह संस्कृति
धरती को चाहिए रीढ़ का बल।
प्रेम रक्त पावक न प्रभात किरण
देह यज्ञ म ही रहता जीवित
अंग साधना ही उसका इंधन
बिना प्राण घृत आहुति के वह मृत।

सुख सुविधा वंचित भू जीवन ने
नियम वर्जनों में बाँधा निज तन
भौतिक वैभव के युग में स्त्री नर
दमित द्वन्द्व मूल्यों प्रति सब चेतन !

कला स्वर्ग के सित रस में पोषित
हँसी राग-गुन नव नैतिक दर्शन
बोली चित् सुख तर्कवाद से पर,
रस मूल्यों का—जीवन ही स्पंदन !

बाहर से भीतर अमूल्य संपद्
हृदय चेतना का शाश्वत यौवन
ह्रास देह सुख का होता प्रतिक्षण
मानसिक सुख का अक्षय संवर्धन !

पाद पीठ भर देह चेतना की
तन मन से अतिशय जिसका यौवन
प्रेम कलित ही अमर देह का सुख
कुसुमित क्षण कुम्हला झरता रज बन !

राग ग्रंथि गुँथती न काम कर से
नहीं वासना मुक्ति दमन शोषण
भाव उन्नयन ही सामूहिक पथ
पशु का ऊर्ध्व विकास नहीं पथ बंध !

प्रेम मुक्ति ही हृदय स्वर्ग कवि का—
स्थापित करना युग नर को भू पर
बिना प्रीति के स्रोत ज्ञान संपद्
दिव्य उपस्थिति हीन—रिक्त डंबर !

शुभ्र प्रीति अमरत्व सार अक्षय
जीवन स्तर पर जीवन का रोहण
स्वर्ग अवतरण यह भव कर्दम पर
जग भू का कर सकती संयमन !

मुझे ज्ञात चेतना किरण हूँ मैं
रूप सरोवर में तिरती सस्मित
शुभ्र मिस स्वर्णिम भाव हिमांग से
बरसाती छाया प्रकाश रज मिल !

सरल चूमकर तुम मुझको सँगड़ी
कर न सकोगे — मैं रथ में आपद्
दीप्त मनःस्थिति तन के सुख का भी
प्रीति सत्य पर करती स्मित स्वागत !

चित् सौन्दर्य प्रतीति प्रीति वंचित
इन्द्रिय कर्दम रत यह भू जीवन
क्षमा पीठ न रह तुम मेरे सँग
स्वर्ग वह्नि का करो प्राण अर्पण !

बहिर्दृष्टि न — क्षण अभ्यागत तुम —
समझ न पाओगे रस आरोहण
पीठ चन्द्र चेतस् न देखोगे
स्वर्ग अवतरण यह नूतन जीवन !

मर्मस्पृश् नव ऊषा न देखा
स्वप्न पतिभि ने — भू संस्कृति प्रांगण
सद्य स्मित निज अंत आभा में
खिला ऊर्ध्वमुख हो स्मित सरसिज वन !

भाव लता सी रोम स्वप्न मुकुलित
स्मित उरोज आनत सुधा के घट
बाँहें प्रीति प्ररोहों सी पुलकित
उर शोभा न मज्जित तन के तट !

यौवन शोभा में लिपटी आत्मा
लगती शशि सी मांसल घन रंजित
भावों के सुरधनु रंग पावक में
हो अक्षय चैतन्य रश्मि वितरित !

उन्नत जीवन में प्रवण के हित
दीक्षा हो निश्चय स्वर्णिम तोरण —
सोच रहा था आत प्रतिभि मन में
भू मन को करना रस आरोहण !

क्या अभ्यागत ने — सौम्य उषा
रवि शशि — स्वर्ग धरा का सम्मोहन
मात्र प्रेम — शोभा सहर्ष सफल
शुभ्र शांति — शाश्वत अनंत जीवन !

कला पीठ निर्मित कर युग कवि ने
ज्योति नींव डाली युगांत भू पर
जन्म ले सके नव मानवता का
देश जाति धर्मों से जो ऊपर!

वह युगों के मूल्यों का तम हर
नव प्रकाश कर सके केन्द्र वितरण
गत युग के भावनों के सब को
मात्र — श्वास चैतन्य क्षितिज नूतन!

रौद्र भूत इतिहास — प्रेत प्रावण —
रचे भव्य संस्कृति पथ नव जीवन
मूर्त करे जग में नव भूत संपद्
बिखरे भू पर नव भविष्य दर्शन!

प्रति युग में आता नव चेतन कवि
छंद ग्रथित कर जाता भू मानस —
की शोभा में लिपटा जन जीवन
नव भाषा में संस्कृत कर चिद् रस!

आत्म लुप्त भौतिक आत्मिक जीवन
जब भू मन से करने उन्मूलित
ज्योति क्रांति की शिखा जगाता वह
सक्रिय रचना मनस से प्रेरित!

नव्य कला पथ का साधक वह जो
सृजन वह्नि को आहुति दे जीवन
यज्ञ कृपवत् तप प्रिय भू जन हित
श्री शोभा वैभव लाता नूतन!

ज्योति खड्ग विद्रोही द्वेष विरत —
निर्मम विश्व जब आसुर शक्ति विजित
भौतिक आत्मिक का अतिक्रम कर वह
देता संस्कृत शक्ति सत्य जय हित!

आसुर जग में हर भले गुण सब
मनुष्यत्व का जब अजय अविजित
मनु संसार हो हर विनीत बर्बर,
मनुष्यत्व निर्भय अजेय निश्चित!

असहयोग कर बहि शक्ति सब से
हों संयुक्त मनुज जो युग चेतन
शक्ति पंथ पाएँ सद् सृष्टि नवल
उदित लोक मन में हो चित् पूषण —
अंतर्बल ही रे जन भू जीवन
बाह्य शक्ति का नियत जगत में क्षय
यथार्थ बोध से कहता युग चारण
मनुज सत्य विजयी होगा निश्चय !

जहाँ सभ्यता संस्कृति पंजों में
ध्वंस चिह्न सेये जाते भीषण
मूल्य मनुज का तुच्छ कीट तृणवत्
यांत्रिक दानव हित जो पशु भोजन —
निःसहाय मृतवत् रह जिस जग में
नष्ट विकृत विघटित होता जीवन
वहाँ किस लिए मानव बलि पशु बन
रहे ? — जगे सोया पौरुष चित् क्षण !

प्रकृति विजित वह, बने आत्म विजयी
सृष्टि कोष उपलब्ध हो पा नव नर
रुका विकास प्रतीक्षा में जड़ चित् —
ईश्वर का नर में हो रूपांतर !

क्रांति कालिका खड़ी विगत शव पर
मानव युग का करती आवाहन
विष्णु रूप फिर नव युग लक्ष्मी संग
मनुष्यत्व का करे भरण पोषण !

मानवता अब निखिल विश्व वाचक
मानवता पर्याय धरा का नव
राष्ट्रों वर्गों धर्मों का निश्चय
सार सत्य मंगल प्रिय नव मानव !

समरिक भर अंतरीन्द्रिय चिन्तन
ऊर्ध्व - मूल्य देगा उसको निश्चित
अंतर्जीवन निर्मित कर ही जन
विश्व शांति कर सकते मिल स्थापित !

आवाहन करता कवि युग मन का
नव प्रबोध देता वह भू जन को,
हो अंत संगठित मनुज जीवन —
शाश्वत प्रेम की नव भू यौवन को!

विश्व विकृति से हो न पराजित नर,
नव क्रांति का फहरे युग केतन
मनुज दिव्य वह सत्य ज्योति वाहक
भस्म कर भू भव चित् पावक कण!

सुलगे बाड़व बन अकूल भू मन
धधक दावा बन युग कंटक वन
पावक पग धर बढ़े क्रांति दुर्जय
आलोकित हो मनुज सत्य आनन!

सत्यों में हो मनुज सत्य विजयी
अमी अणिमा में हो अंतर्बल
संकल्पा न बन भू रचना व्रत
नव संकट में मनुज ऐक्य संबल!

पूर्ण मनुज बन — उससे भी अतिशय
मनुज सत्य चित् कण रहता निश्चय
प्रतिपग पर परिपूर्ण चेतना क्रम
परम पूर्णता में होता तन्मय!

इंद्रिय तन मन बुद्धि विवेक सहित
हो चरितार्थ मनुज का नव जीवन
ऊर्ध्व प्रीति सोपान खुले उर में
प्रभु से स्थित संयुक्त रहे जन मन!

एक आलोक क्षितिज पर कवि भू हित
बरसाता स्वर्णिम मधु रस निर्झर
ऊपर शाश्वत चिदैश्वर्य अंबर
नीचे भू जन मंगल प्रेम अमर!

रस प्रहर्ष — मधु प्रीति स्पर्श तन्मय
रोम रोम में जग रूप सत्य भुवन —
उड़ता धूमवत् भवि अंतर खिंच कर
दुर्निवार शाश्वत का आकर्षण!

वही हर्ष या यौवन पावक मन
प्राणों के सुख में होता कुसुमित
नव भावों के स्वर्गिक स्पर्शों स
कवि अंतर को रखता रोमांचित !
स्रष्टा मे ही बिरची उसके हित
सूक्ष्म स्वर्ण चित् तार बँधी रस सित
तन्मय उर तंत्री — स्वर्गिक पावक
बरसाती जो अंत स्वर अमृत !
उतना ही देता कवि युग भू को
ग्रहण कर सके जितना जग अंतर,
अमृत वह्नि रस सूक्ष्म ज्योति की झर
पीता रहता वह अवाक निःस्वर !
पीत विरति सित रति के पुलिना मे
बहता असम चित् जीवन सागर
तिरता कवि रस में सर्जन प्रेरित
आत्मिक सुख से भर इन्द्रिय गागर !

उड़ती सूक्ष्म मरंद गंध निःस्वर
कभी स्वर्ग में अंत सुख पुलकित
अंतस्तन्मय होता ज्यों सित मन
जीवन शोभा होती रस संस्कृत !
चित् शृंगी स शुभ्र शांति झर झर
भू जीवन पथ करती आलोकित
रस संस्कृत कर मन शिराओं को
प्राणों को स्वर्गिक शोणित मज्जित !
सृजन स्वप्न शोभा सुख में रत मन —
भाव कम निज पर प्रति हो विस्मृत
नव प्रकाश स्वर संपति में खप कर
नवोत्साह स भर जाता अविदित !
हृदय गुहा में पैठ सूक्ष्म रति मुग्ध
सित शोभा आनंदों में विकसित
गुह्य बोध प्रेरणा कल्पना बन
रचना मंगल में होता विरचित !

अधिकृत कर रस तत्व प्राण पावक
रवत भाव अंबर में कर संचित,
ज्योति स्फूर्ति से उर महदुद् स्पंदित
लोक कर्म रत रहता मंत स्थित!

प्रेम अवतरित हो सुर सरिता सा
केन्द्र हृदय को करता अवगाहित
सफल भगीरथ यत्न युवक जन का
भू जीवन को करता प्राण हरित!

कला पीठ की रस सस्कृत गाथा
भाव योग से आत्मसात् कर जन
होते नव चैतन्य रश्मि दीपित
स्वत छूटते छद्म सत्य बंधन!

नर नारी की हृदय मुक्ति शकित
स्वर्ण प्रीति मे होती चित परिणत
स्वप्न भाव का बन यथार्थ फल का
जीतेगा भू रण — कर तमस निहत!

विष्णुपदी यह प्रीति — जिसे हर ने
किया शीश पर धारण नत मस्तक
धर्म धर्म सगर हो आवश्यक —
राग चेतना ही संस्कृति पावक!

निश्चय ही यह शुभ्र प्रतीति सुधा
भू जीवन को देगी नव जीवन
मानवीय पूर्णता धरा में ला
धो देगी तम मन का पशु प्रांगण!

नैतिक भित्तियों को कर चिद् व्यापक
सौम्य भावना के स्वजिम अंबर
धरा नरक को स्वर्ग बना देगी —
जो संस्कृति का लक्ष्य — दिव्य भास्वर!

प्रीति काम से सबल शक्ति रस बन
यौवन आत्मा को करती धारण
स्वर्गिक सौरभ से सम्मोहित » उर
निखिल वृत्ति करता उसका अर्पण!

हृदय हृदय को करता मनजाने
मुक्त मनुज आता मन से बाहर,
स्वर्ण प्रभाओं में प्रसार की
सहज भाव मय होते नारी नर !

मृत स्फुलिंग से जन भू हित स्त्री नर
झुलसी उर में शोभा की नूतन
चित प्रतीति की सन्निधि में घुल मिल
शांत हुआ मन सक्रिय नव चेतन !

मानवता की सार सुरभि नारी
श्री शोभा गरिमा की प्रतिमा बन
महत संस्कृत होते — पावन संयम
भू जीवन का नैतिक अवलंबन !

मुक्त हृदय में स्त्री नर के जगता
भावों की सुषमा का स्वर्णोदय
मौन सहजता में प्रतीति सुख की
नव होता उर मिटता भय संशय !

शुभ्र रूप की स्वर्गिक शाश्वतता
स्वर्णिम ज्वाला से छूती तन मन
सीमा में निःसीम स्पर्श करता
प्रीति मुकुर बनता अनुगत चित क्षण !

पावनता ज्योत्स्नाभिसार करती
सूक्ष्म अभिरामा धरती शोभा तन
जगता रस कवि को सुर भाषाएँ
स्वप्न चरण करती भू पर विचरण !

रजत मरंदों का स्वर्णिम तन धर
गंध सौरभ से शोभा वेष्टित —
स्वर्ण गुंजरण सुन पड़ता कवि को
जब वे भावों में होती मूर्छित !

स्त्री नर का था प्रेम स्वप्न पावक
शुभ्र कल्पना से छिपता अंतर
पावन त्याग का सूक्ष्म कण सुख का
निर्मम प्रेरणाओं का स्रोत अमर !

जीवन आत्मा में प्रवेश कर वह
भाव सुरभि सा बसा मुग्ध मन में,
सूक्ष्म मधुरता में लिपटा भू को
अननुभूत रस भरता जीवन में।

नव कोरक खिलने की बेला का
गूढ़ हर्ष छाया हो मधुवन में
मौन अनिर्वचनीय प्रतीक्षा सी
मिलती आकुल पंख समीरण में।

शरद चंद्रिका सा जड़ चेतन को
निर्निमेष सुषमाओं से छूकर
अमृत सिन्धु के अवगाहन सा वह
स्वप्न पूत करता उर का तम हर।

दिव्य शक्ति नव मानव के उर को
बना रही थी निज स्वर्णिम आश्रय
भावों के पावक से भर भू मन
धर संयम आधार क्षमा निर्भय।

भू जीवन का पंचामृत् प्रतिष्ठित
सत्य मधुरिमा शोभा निःसंशय
शेष गौण उपकरण – मात्र विधा
जीव प्रयोजन भर कथन निश्चय।

युवति युवक को देख मधुर भूषित
कहता सुख पुलकित युग कवि का मन
शोभा में साकार, सत्य ईश्वर –
सृजन शक्ति जिसका आनंद महन्।

शुभ्र ज्योति चैतन्य रूप उसका
प्रेम हृदय करता जग को धारण
मौन अवतरण करते जिस पर प्रभु
वह अंतःस्थित शांति पीठ पावन।

शोभा प्रति यदि सजग नहीं भू मन
जीवित रहने योग्य न भू जीवन
अमृतवत् स्पर्श न जो उर में जाग्रत,
हृदय नहीं वह बधिर अंध पाहन।

धिक् वह नर जो प्रभु की महिमा को
पितृपद दे कर सका न पूर्णार्पण
धिक वह, जो ईश्वर की शोभा को
पत्नी सा दे सका न परिरंभण!

धिक जीवन प्रभु की बहुमुखता का
बना न जो रह सका मुग्ध सहचर
धिक वह हृदय प्रणय रस तन्मय हो
देख न सका जगत ही न ईश्वर!

अंत शोभा प्रति प्रबुद्ध हो मन
रस संस्कृत जन धाम करे निर्मित
शोभा के मधु स्वर्णिम पावक से
मनुष्यत्व की प्रतिमा हो कल्पित!

संस्कृति तंत्र अपेक्षित जन के हित
नव निर्माण करे जो भू मन का
ऊर्ध्व निखारे अंतर्मानस को
शुचि संस्कार करे जन जीवन का!

जो महत्व दे शुभ को मंगल का
हो न महत्ता मद स शासित
मनुष्यत्व के अंतर्बल से जो—
भू तंत्रों को धरे सदनुशासित!

जन मन का हो अवरैक्य सिद्ध जन
मनुष्यत्व सम्राट् लोक प्रतिनिधि
धार्मिक गौरव हो जीवन प्रेरक
क्षमा शील नियमन हो सहृदय विधि!

स्वर्ण नम्र तप की पावनता से
व्यापक रस चिति मानस कर विरचित
इंद्रिय मन आत्मा की संपद् स
धरा स्वर्ग जीवन कर नव सजित—

जो भू मानव के अंतस में
करे ज्योति साम्राज्य शुभ स्थापित
क्षण भंगुर जीवन संघर्षण को
शाश्वत के पट में कर समोजित!

हो चारित्र्य न प्रसित श्वेत संयम
निखिल प्रकृति रस निधि से हो पोषित
स्वस्थ मानुषी मूल्यों का दर्पण —
कुछ भी हो न विकृत गर्हित प्राकृत !
धर्म न्याय के पथ को कर विस्तृत
स्वयम् सत्य चैतन्य लोक सा स्थित
मिल प्रखर आकर्षण से पा जय
घृणित पाप को करे पुण्य संस्कृत !
भेद नहीं कुछ मानव मानव में
एक मात्र रज एक हृदय स्पंदन
विविध प्रकृति गुण एक उष्ण शोणित
मनुजों में नित मनुज एक चिद् घन !
ऐसी संत शासन सत्ता का
स्वप्न सफलता युग कवि भावान्वित
स्वयं आत्म शासित हों जिसमें जन
रचना शोभा मंगल प्रति अर्पित !
मानव न अब भक्ति जड़ वस्तुओं की
आत्मा प्रेम — स्वयम् रस में गोपन
मनुज जाति सत्ता का विश्व हृदय
गुणों से संकल्प महत् प्रतिक्षण !
विश्व नित विघटन में होता विकसित
भी सुंदरता बनती सुंदरतम
सत्य महत्तर बन कृतार्थ होता
निखिल सृष्टि में स्वर्गिम संगति क्रम !

परम प्रेम ने लिया हृदय में जब
हुआ ज्योति तम मज्जित कवि अंतर,
दिया दीप्त प्रतिभा पावक भर
निज कर में वह प्रकट हुआ भास्वर !
छिन्न युगों के कर नैतिक बंधन —
आ प्रकाश के वे गत धर्म चरण —
हुआ विलोड़ित चेतन अवचेतन
दमित कामना न फैला मन फण !

घोल गुंजलक चितकबरी काया
लगी लोटने दे शत विष दंशन
क्रिमाकार सा सभी रूप धरने
मानसिक प्राणिक कायिक विधि वर्जन !

राग द्वेष के फँसा भूमिज फन
फिरते उर में काम कलुष के वन
काले कुत्ते सा पीछा करता
क्रोध धुँआ मन के वन में प्रतिक्षण !

मृत गर्तों से प्रेतों से उठकर
भ्रम नीति इतिहासों के पंजर
लगे नृत्य करने उर प्रांगण में —
जग निश्चेतन से गत भू संगर !

विकृत मुंड हत कितनी ही आकृति
आतीं जातीं — मन को कर कंपित
नरक कूप नीचे था स्वर्ग शिखर
ऊपर — कवि उर निर्भय आत्मस्थित !

युद्ध मार का आया तुरत स्मरण
हुआ सचेत अमरात्म कवि का मन
नव्य भूमिका प्रस्तुत करती चिति —
था गत दीप शिखा का अंतिम क्षण !

क्षुब्ध त्रस्त उपवन के तम में
स्वर्ण किरण हँस देती आश्वासन
विधि निषेध गत युग के अतिक्रम कर
विस्तृत होता भू मानस प्रांगण !

तमस प्रतिफलित होता था बाहर
विगत अहं बनता उद्धत निर्मम
गरज परीक्षा लेता परम प्रखर,
राम शांत थे — यह विकास विधि क्रम !

आरोहण अवरोहण कर कवि मन
सांप्रत भूत भविष्यत् प्रति आगत
देख रहा था कल्प वृत्त नूतन
नित्य अनागत का कर शुभ स्वागत !

गत भू जीवन पद्धति कारा में
रूढ़ि रीति पट में बंदी प्रतिक्षण
मनुज चेतना पाश मुक्त होने
आतुर थी — गढ़ने नव भू जीवन!

ऊर्ध्व भूमि से हो अब केन्द्र च्युत
विस्तृत मंचित होता कवि अंतर
यह विभक्त उर हो अनुभव करता
युग भू संघर्षण अपने भीतर!

भू मानव के बहिर्भूत मन में
गहराता जाता समष्टिक संकट
बँटा विकट शिविरों में था भू जन
बढ़ता जाता वैमनस्य उत्कट!

मिटते राजनयिक विभेद बाहर
आर्थिक स्पर्धा भी भीतर जागृत
आस्तिक नास्तिक देशों के उर थे
नैतिक भौतिक कुंठा से पीड़ित!

लौह मुष्टि से अधिक क्रूर निकली
स्वर्ण मुष्टि — संपद् मद से निर्मम
मग्न चेतना पावक में विगलित
होती जो अब — मिटा वैर भय भ्रम!

ऊर्ध्व दृष्टि से हीन अर्ध पशु नर
दिखा भ्रान्त था बहिर्विमुख उन्मद
आर्थिक स्वार्थों के संरक्षण हित
बढ़ा शक्ति दानव था अंगद पद!

विश्लेषण प्रिय वैज्ञानिक युग मन
रजत बालुका मरु सा चिद् विस्तृत
चिद् धारा से रहित बुद्धि निर्मम
मृग मरीचिका जीवन पर मोहित —

भीषण संग्रामों से था मंथित
उठते गिरते राष्ट्र — धूम्र पर्वत
मिटते हँस जब धारा के माध्यम
गति क्रम दिग् भ्रम में होता परिणत!

हृदय हीन हत बुद्धि-प्राण युग नर
शिक्षित भर था नहीं मनुज संस्कृत
अंतर्जग में घिरा अंध तम मन—
बहिर्जगत जड़ रोमों म परिचित !

जीवन सुख उपकरणों के आश्रित
बाह्य विभव आंतरिक दैन्य पीड़ित
भौतिक जय आत्मिक अभिभव मर्दित
बहिर्सभ्य अंतर्बर्बर कुंठित !

विकसित युग परिस्थितियों का जग
अंतर में स्थित आदि अब वनचर
वैज्ञानिक सुख सुविधा वितरण में
नर का अरि था भीतर बर्बर नर !

बाह्य बोध से पागल युग का मन
विपुल बहुमुखी ज्ञान न संयोजित
बहिर्विद्या में उड़ता नर भीतर
अस्त सूर्य सब निधि सुमान निश्चित !

मंत्र तंत्र केवल जड़ आडंबर,
भीतर से होता जीवन शासित
प्रकृति काम जो दुह, अब युग सागर
विष घट भर पी सका न दुग्धामृत !

तड़ित रश्मि अणु शक्ति न भू दर्पक
भौतिक युग सभ्यता रम्य थी हत
अट्टहास करता जब पशु दानव
नयनों से कर प्रथम ज्वाल निर्गत !

महाकाय पुंजित वट पादप सा
देखा कवि ने बहिर्व्याप्त भू मन—
मद ममता जब ताड़ित उन्मूलित
गिरा गर्त में हृदय जा तत्क्षण !
ऊर्ध्व मूल हो अध शाख युग तरु
अंतर्मानस का प्रतीक बन कर
कहता हो ज्यों—खींच ऊर्ध्व चित् रस
संभव भू जीवन का रूपांतर !

मूल मंत्र भू तम में रख सीमित
प्राण हरित धर जीवन कुसुमित मन
सार्थक हो सकता न विश्व जीवन—
स्वर्ग नीड़ यदि नहीं हृदय चेतन !

परंपरा के जर्जर ग्रामों से
था आक्रांत तरुण भारत का मन
निश्चय ही सबसे पहले भू के
जन मन को करना था युग चेतन !

सारा भारत ही कवि को पावन
महा ग्राम सा लगा रूढ़ि जर्जर,
मृत जीवन मूल्यांकन से पीड़ित
निखिल विश्व ग्रामों का वह परिकर !

राजनयिक आर्थिक नैतिक आत्मिक—
सभी स्तरों पर कर प्रबुद्ध युग रण
गत बर्बर की कृपण अहंता से
शाप मुक्त करना था भू प्रांगण !

वर्ग सभ्यता हो या जन संस्कृति
विश्व युद्ध हो धार्मिक कट्टरपन
सर्व ग्राम्य मूल्यों से परिभाषित
विगत युगों का भू मानव जीवन !

युग की वैज्ञानिक संपद् का भी
रोके मन वह मुक्त हस्त वितरण
ममता मदिरा पी मधु गत भर पशु
भू विनाश के करता आयोजन !

मन अतीत गौरव स्मृति से पीड़ित
जीवन रव गत लीक गर्त स्तंभित—
बाह्य परिस्थितियों के जड़ जग को
मग्न चेतना से करना मंडित !

इंद्रिय जीवन से वंचित करना
आध्यात्मिकता का अनिष्ट शोषण
ईश्वर के जग के जीवन के प्रति
महा पाप यह—पीड़ित गत भू मन !

मध्य युगी बहु साधु संत मत भी
सिखलाते मन को जीवन वर्जन
गुह्य शक्तियों के पूँजीपति से
सरल लोक मन का करते शोषण।
भौतिक वैभव के प्रभुओं से ही
ये आत्मिक निधि के कुबेर निश्चय
भू संयम के ईश्वर से दोनों
दो छोरों पर — दूर — नहीं संशय।
योग नहीं वह, मात्र योग गुह्य
ब्रह्म बोध का श्वेत अस्थि पंजर
करुणामय का हाथ पकड़ कर जो
भू जगत प्रति विरत — मोक्ष तत्पर।।
विद्या और अविद्या तंत्रों से
भारत का साधक मन चिर परिचित
आत्म नाश का एक मुख्य कारण
रहा अविद्या तंत्र यहाँ निश्चित।
नव युग की स्थितियों में साधन
अंत क्षितिजों से प्रकाश अभिनव
बहिरंतर समोचित वैभव की
रस संस्कृत परिणति हो नव मानव।
विद्या क्षेत्र रे, काम-क्रोध हल फल
शुभ्र ज्ञान विज्ञान वृषभ बलधर,
साम्य उर्वरक शस्य शांति संयम
ऐक्य बीज चैतन्य स्वर्ण हलधर।

देख विगत युग के मृत प्रेतों को
जग भू मानस में सक्रिय जीवित —
निर्झर सा उतरा अंतर्दर्शन
कवि उर को कर नव आभा दीपित।
महत्पता समदिक स्रष्टा का पग
देखा कवि ने — विस्मय हत अंतर
गांधी की आत्मा — नव युग विकसित
मृत समाधि से उठ आती बाहर।

भूमिकंप में फट समाधि स्थल ज्यों
उगल रहा हो ज्वलित स्वर्ण पावक
रश्मि रेख आभा में दिव मूर्तित
फूटी आत्मा अंबर का मस्तक !

जड़ उर में जागा हो नव चेतन
ज्योति प्रेत छाया वह दिव् भास्वर
उतरी फिर जन जीवन प्रांगण में
सो न शांति से सकी चैत्य भीतर !

हृदय चीर पृथ्वी का युग सीता
अग्नि परीक्षा देने फिर नूतन
धरती हो धरती पर पावक पग
चित् शोणित की ज्वाला सी पावन !

उस प्रकाश प्रतिमा वपु पर खादी
आत्म शुद्धि की शिव प्रतीक बन कर
कर्म वचन मन की पवित्रता से
जगती नैतिक गरिमा में सुन्दर !

देख सेवकों को बनते शासक
भ्रष्टाचार नैतिक पथ का कर्दम
दूषित भोजन दूषित जीवन मन
हरने आई वह युग मन का भ्रम !

मनु प्रज्वलित सत्य निष्ठ अंतर
सह न सका निर्मम का उत्पीड़न
जन वत्स हित वे असंख्य कातर
स्वस्थ विनय पद मत मंडित भीमन् !

तिक्त संप्रदायों में जन खंडित
स्थापित स्वार्थों से जन-भू कवलित
शक्ति राष्ट्र सैनिक बल अर्जन रत
ध्वस्त शस्त्र होते पर्वत पुंजित !

भू जन भय संशय से आतंकित
बौद्धिक आस्था हीन आत्म शोषक
जन भेड़ों के विवश लोक नायक
छद्म ध्वंस प्रिय रिक्त क्रांति पोषक !

बंदी कर विज्ञान शक्ति युग नर
महा प्रलय का करता आवाहन
घोर अशुभ भय छिपा कहीं भीतर
बढ़ता जाता था भू संघर्षण !

प्रगति सतत करता विज्ञान महत्
एक दशक में कर शतियाँ अतिक्रम
कुछ ही दशकों में सहस्र वत्सर
लाँघेगा रचना कौशल विक्रम ! —

क्षोभ प्रकृति उर भेद अपि जड़ की
बाह्य परिस्थिति कर जग की विकसित
आत्मा हीन मनुज पा क्षमता वर
उन्मद भस्मासुर सा अब पशु मूढ़ !

मनुज एकता ही नव युग आत्मा
महत् धरा जीवन में हो स्थापित
जाति धर्म वर्णों से ऊपर भू मन
लाँघ राष्ट्र सीमा — हो दिग् विस्तृत !

शक्ति सपत्न विपुल कर संचय
अविश्वास से रुद्ध द्वार मठर
राष्ट्रिय आर्थिक स्पर्धा से जर्जर
विश्व विजय हित उन्मद सब शमिनर !

पूँजी जनवादी देशों के मन
अब विभक्त भय शंका से पीड़ित —
लोक ऐक्य भावी जन भू ईश्वर
अंतर्मानव का होना विकसित !

भौतिक सुख वैभव का भी वितरण
निकट भविष्यत् में नियमित निश्चित
व्यक्ति - मुक्ति सामूहिक मुक्ति उभय
पूरक सतत परस्पर अवलंबित !

विश्व शक्तियों के संघर्षण से
भू जीवन हो अंतर्मुख विकसित
मध्य चेतना के मसृण पट में
रस समग्र होगा नित संयोजित !

ओर छोर होंगे भू के कुसुमित
नव मानव भावों से चिर कंपित
प्रकृति शक्ति पर विजयी मानव की
ऊर्ध्व चेतना से होगा दीपित !

नव क्षिति मसि से गत बर्बर पशु का
अब तक जीता न होगा उच्छ्वसित —
दुर्लभ जन संगम — प्रतीति वंचित
भू उर का होगा न मूल अपहृत !

उपनिवेश अब भी जग में जीवित
वर्ण भेद से सभ्य देश पीड़ित
विश्व चेतना सहयोगी मानव
उच्च दाय के प्रति न अभी जागृत !

सूक्ष्म दृष्टि से देखा नरवर ने
राजनयिक ध भी अति आवश्यक
सामाजिक युग क्रांति अहिंसा रत
नव सर्वोदय की हो निर्णायक !

जाति पाँति के टूटें जड़ बंधन
भस्मसात् हो रूढ़ि रीति कर्दम
पूर्वग्रहों से हो विमुक्त जन मन
युग भू पर हो नव मानव संगम !

अन्न वस्त्र गृह द्वार मिले जन को
शिक्षा संस्कृति से दीपित हो मन
सुंदर हो भू, सुंदरतम स्त्री नर
मानव गरिमा महत् कर भू जन !

पृष्ठभूमि जब तक न मोड़ मन की
बहुमेधी युग प्रगति नहीं संभव
भू प्रांगण में धो प्रवीण कदम
नव युग वाहक जन जनता मानव !

राजनयिक आर्थिक स्पर्धाएँ भी
सामाजिक चेतस् में ढलीं नव
विस्तृत हो जो भू जीवन मानस
भेद भाव भय राग द्वेष हों लय !

हिंस युद्ध हों अंत शांति स्थापित
अस्त्र शस्त्र हों कौतुक गृह संपद्
मधु नृप नव जीवन रचना वाहन
भू मानव परिवार — स्वर्ग परिषद् !

निज अतीत अतिक्रम कर नत मानव
मिले विश्व सागर सगम म स्थित
मानवता ही नव सामाजिकता —
करे मनुज अंतर दिगत शोभित !

रचित व्योम मे स्वप्न स्वर्ण अनुपम
भू पर हो अवतरित कर्म संचित
सृजन स्वप्न हो शोभा म परिणत —
जन रचना क्षमता असीम निश्चित !

जीवन परिभाषा हो परिवर्तित
जाति भेद हों लोक प्रीति मुक्त
नव राष्ट्र हों विश्व संघ समुदय
विश्व देह के अंग देश विकसित !

हो वैज्ञानिक स्वप्न मूर्त भू पर
राम राज्य आदर्श नमन रोपित
धरा स्वर्ग की सित अंत संपद्
कर्म कुसुम जीवन में हो कुसुमित !

मनुज एक — यदि एक दूसरे का
अहित न यह चाह, पथ बाधक बन.
पथ अनत सद्गति अनंत संगम
ईश्वर केन्द्रिक हो जो जन भू मन !

छायात्मा फिरती निर्भय भू पर
कंपित कर पापों म छिद्र प्रांगण
श्रोत्र पेय सुन सुधा वृष्टि वाणी
निज विवरों स निकल पड़े भू जन !

स्वागत किया अहिंसा का भू ने
वह सक्रिय आत्मिक - पौरुष पावन
पशु क्षमता हिंसा मय का दमन
किया पराजित मधु बल मे भीषण !

अणु उद्जन विध्वंस भले ढाएँ
संभव उनसे नहीं स्वर्ग सर्जन
अहिंसास्त्र मृत को जीवित करता
भिन्न असत्, सत् का कर संवर्धन !

देखा कवि ने ज्योति शिखा लेकर
केन्द्र अमर जग को दे उद्बोधन
अग्नि प्ररोहों से बढ़ते आगे
लोक क्रांति का करते संचालन !
जीवन रस मांसलता से परिचित
मुक्त प्रीति से अंतर उन्मेषित
बढ़त व चित् पावक के पथ पर
भू जीवन मन को करते संस्कृत !
घुमड़ रहे थे प्रलय मेघ भीतर
प्राणों में था रुद्ध क्षुब्ध पावक
सदाचार पट में अधम लिपटा
भू जीवन वैषम्य हृदय दाहक ! —
सहज बुद्धि की ममता को संयत
उसके थे विपरीत नीति बंधन
भू दारिद्र्य अशिक्षा के तम को
अर्पित मृत जन का विपन्न जीवन !
रेंगा करता पाप पंक में भर
धनिकों छिप था धन श्रम का वंचन
ध्वंसशाला में फुंकती भू संपद्
भौतिक युग का था भौतिक वैभव !
हँसते जन भू पर फूलों के वन
हँसता रवि शशि तारकों का नभ
मानव संतति रहती भिक्षा ग्रसित
मध्य मरण में जीवन मृत निष्प्रभ !
रुक न सका निश्चेतन उर मर्मर
सुन मानव आत्मा का आवाहन
फूं—फुंकार उठा सहस्र फन तम
दिव्य स्पर्श पा जीवन उन्मादन !

कर पद दृग इंद्रिय विहीन वामन
जड़ निद्रा से जग युग बन चेतन
भृकुटि भगमय कोटि शीश कर पद
नृत्य कर उठा भर युगांत विभु स्वन !

नवोन्मेष से प्रेरित घन पर्वत
बढ़ता आँधी सा दुर्धर पग धर
युग युग के अभिशाप काँप उठते
सड़ी रीतियों के गढ़ हिल थर थर !

भूमिसात् गत युग आदर्श शिखर
मूर्छित जड़ नैतिकता के खँडहर
भूमि कंप दौड़ता धरा मन में
मंथित युग भू जीवन का सागर !

आँख फाड़ इतिहास देखता अब
मुँह बा संस्कृति धर्म–कल्प मृतम
साँस रोक कर देवी देव निमिषम
चकित देवत–युग तांडव नतन !

धन दारा सी फैल सत्य चिनगी
उगल रही थी लपटों पर लपटें
जलता बर्बर जनचर का पुर गृह
फन फैलाती सर्पिल धूम लटें !

रुद्ध गति रुकती आततायियों की
शक्ति दर्प होता पीड़ित पद नत
शोषक पीड़क पशुता में लज्जित
अनाचार का होता हृदय विरत !

ध्वस्त स्वार्थ भर पत्तों से उड़ते
पक्षपात हत पर पीड़न आपण
भूमि धुंध में वैमनस्य मिलता
दैन्य दुःख के छँटते दारुण घन !

अंतरिक्ष घुमता मन का विस्तृत
सद्य फूटता भू उर से यौवन
शोभा महिमा में दिगंत कुसुमित
हँसता नव श्री समता का जीवन !

धरा प्रीति भरती उर मर्तों को
मनुज ऐक्य पथ बाधाएँ ढहतीं
प्लावन बढ़ने पर पावस नद सी
जीवन धारा सहज रूप बहती!

एक बार जो जन भू का प्रांगण
स्वर्ग रुधिर से हो सिंत अवगाहित
सद्भावों के चंदन से चर्चित
धरा चेतना हो समता प्लावित!

सर्व स्वार्थ के कर्दम को धोकर
राजनीति का पशु मृत हो संस्कृत
आध्यात्मिक जन क्रांति धरा पथ को
कंटक शून्य बना करदे विस्तृत!

फैली फुरफुर में युग वार्ता
जन मत शाखाओं में भर गर्जन
नव चेतन के अग्नि शिखा वाहक
प्रतिस्पर्धी थे बाधाओं के जन!

दैन्य मुषित चाहते क्षुब्ध भू जन
वह था सामूहिक विद्रोह महत्
स्वार्थ दमन कुत्कृति अनीति शोषित
जनता का लोकाभिमान आहत!

वे विरोध करते निर्भीक हृदय
उस सबका—जिसमें जीवन दुर्वह
सुप्त जगा आत्मा को भर जागृत
द्वार द्वार पर देते सत्याग्रह!

मतमत पर कटु तर्कवाद करते
खोद गड़े मृत मतों के पंजर—
नींव काढ़ हैं मत जो मिल मुख थे
हटा जीर्ण विधियों का आडंबर!

मरने मिटने का साहस तत्पर
पूर्ण अहिंसक रहते पर्वतवत्
यम भंग से कायिक चोटों से
नहीं दुस्तर था मूक मन का व्रत!

अगुण न हो जब तक भू उन्मूलित
खुले न दलितों प्रति कुलीन अधर,
मिले न सम अवसर मानव शिशु को
मिटे न भू दारिद्र्य शोक दुस्तर ! —

सुख साधन का हो न उचित वितरण
कुसुमित हो न कुरूप धरा प्रांगण
दूर न हो उर निशा अविद्या तम
सुषम न हो शिक्षा संस्कृति तोरण —

मानव आत्मा के विकास पथ पर
जब तक गत युग का भू मन बाधक
धन वैभव पद मद से अपमानित
कोविद सर्जक भू मंगल साधक —

शासनवाद न उन्मद रावण सा
जब तक हो जनमत से पद मर्दित
घन प्ररोह से सत्य ज्योति के उठ
भू मंगल प्रहरी न बनें जाग्रत —

जन भू वाणी में तुतला जब तक
भारत का चैतन्य न हो मुखरित
वैज्ञानिक संपद् ले पश्चिम से
धार्मिक विभव धरा में कर वितरित —

शांत न होगी यह अंतर्ज्वाला
प्राप्त न जब तक वास वस्त्र भोजन
कहते वे — विश्राम मृत्यु उनको
जो भू गौरव वाहक मंगल पथ ! —

भारत आत्मा के ही स्पर्शों से
जन भू मानस होगा संयोजित
मध्य युगी भावनात्मिता जिसमें
नव युग रण में चिद् रस बोध विजित !

सुंदरपुर यद्यपि हरि यत्नों से
कृषि नगरों में था आदर्श नगर
निर्मित साफ जीवन अभिभावक जन
भू पुत्रों के प्रतिनिधि वे दुर्धर !

विषम संक्रमण का प्रकाम छम भ्रम
मद प्रहर्ष भरता करता गर्जन
छद्म वेश धर प्रतिपक्षी दल ने
अवसर पा लूटा संस्कृति प्रांगण!

आत्मविश्वास से होकर प्रोत्साहित
साधा जन ने निज कुंठा साधक —
स्वर्णवाद से माया के हृतप्रभ
वही महत्प्रिय जन का मद मादक!

द्वेष सिन्धु में कल्मष कर्दम में
सत्य ज्योति को तिरना होता नित
ज्योतिवाह का पिला घृणा विष जब
उसके चरणों पर होता अर्पित!

मर्माहत कर बंदी को जब जग
मूर्छित को मृत मान तुष्ट मन में
मौटे अंधड़ से क्षत-विक्षत कर
कसा पीठ का द्वेष बंध क्षण में!

जब पशुओं के रौंदे उपवन सा
स्वर्ग बन ममता विनष्ट बीहड़
बहु संभ्रम के कपट रूप कायर
युवति युवक जब प्राप्त सत्य दृढ़ व्रत!

ग्राम जनों को प्रतिहिंसा पथ से
रोका कवि ने मूर्छा से जग कर,
छात्रों को धीरज प्रबोध जब दे
शांत किया हत तन मन के व्रण भर!

पुनः सृजन संकल्प शक्ति से फिर
कला सुतों ने गढ़ा नया जीवन
घृणा द्वेष की प्रतिक्रिया से बच
अंतर्मन न कर निज संरक्षण!

सृजन प्रेरणा से परिणीत सतत
शिव का पा आनंद स्पर्श नूतन
जगा स्वर्ग शोभा में केन्द्र पुनः —
लोक ध्वंस गति का हुँमना सर्जन!

काम कीट छिप कुसुमित अंगों को
कुत्सित करता यंत्र मात्र तन मन —
प्रभूत चेतना यौवन का वैभव
धरा स्वर्ग रचना प्रति था अर्पण !
बंधी को था ज्ञात — विपद् भय ही
सतत पाटते नव प्रयास का पथ
वही विजय तोरण बनते स्वर्णिम
नहीं विपद् भय से प्रयत्न हों अक्षम !
आत्मविनाश को क्षमा किया कवि ने
माओ की सम्मोहन असि से मृत
भरा हृदय का था न प्रतिघात —
गुरु हिम उसका अभि पशु संरक्षित ।

युग आत्मा देखी तद्गत कवि ने —
अब अणु भीम पुरुष सम्मुख उद्धत
देख करुण भू कृमि सी मानव स्थिति
क्षमता घृणा दया दुख से आहत !
भू के कंपित पथराए मन में
भय से मरता विश्व संतुलन वह
सृष्टि कोश का प्रलय दैत्य दुर्जय —
शक्ति राष्ट्र थे युगल बाहु दुर्वह !
कल्पांतर का था वह दिग्बोधक
युग संध्या की महा ह्रास का तम
पहन सभ्यता का मुख आदिम पशु
उपजाता मानव होने का भ्रम !
जीवन मरण पड़े थे सब सम्मुख
आलोड़ित भू का निगूढ़ अंतर,
उमड़ रहा था प्रस्तर युग का तम
उबल रहा था निश्चेतन गह्वर !
बहिर्मुखी नर का दुर्दांत नाटक
देख रहा था करुणा नत अंबर
ऊर्ध्व दृष्टि से हीन अंध मानव
आत्म विजित उन्मद् विनाश तत्पर !

प्रमित हो रही थी आत्मा धीरे
टलता जाता दारुण भव संकट
टकराते संहार वारि उन्मद
जग धकेलता ध्रुव भू जीवन तट !

तमस सिन्धु में डूब रही भू को
उठ असंख्य कर एक साथ ऊपर
थामा रहे थे — मरकत भू गोलक
छिगुनी में था लिए नाक गिरिधर !

चित्कण कहीं महत् भव सागर से
तम पर्वत से महत् ज्योति का कण
हृदय ग्रंथि सँग खुले बाह्य बंधन
कर्दम से निखरा मज्जित युग नर !

सौमनस्य जागा भू देशों में
स्वागत पाते सम्मैत्री मंडल
बढ़ता संस्कृति कला भाव विनिमय
मनुज निकट आते उपकृत भूतल !

विश्व संघ स्थित स्थापित जन भू पर
राष्ट्र युक्त लेते भू हित निर्णय
विश्व सभाएँ होतीं आयोजित
लोक शांति हो जग में मंगलमय !

विश्व स्वास्थ्य भू खाद्य अन्न स्थिति पर
सब राष्ट्र करते पर्यालोचन
धनी देश वितरण करते सम्पद् —
अन्न पथ्य बहु धन बोझ बन घन !

शक्ति राष्ट्र मिल शस्त्र त्याग के हित
विविध योजना रचते अंकित मन
अस्त्र शस्त्र सैनिक संगठनों से
पर संरक्षण निज बल कर वर्धन !

दानव अस्त्रों के प्रक्षेपण हित
देशों में बनते अड्डे कुत्सित
सुन्दरपुर की पार्श्व भूमि में भी
बृहद् वायु आस्थान हुआ निर्मित !

युग प्रबुद्ध संपन्न राष्ट्र जन के
अल्पोन्नत देशों को कर विकसित
विषम परिस्थितियों में जन युग की—
शक्ति संतुलन करते नव स्थापित!
जन प्रबोध अणु भय पाटों में दब
यथा शक्ति कर व्यस्त स्वार्थ अपचित
कूट प्रयत्ना से भू अधिनायक
विश्व सभ्यता को रखते जीवित!
व्यक्ति मुक्ति संग लोक शक्ति का रण
भावी भू जीवन हित प्रथम प्रश्न
जीवित नर को बनना फिर 'मानव
जो महत् भौतिक आत्मिक संपद्!
महत् समूहीकरण मनुज का कर
भू मन को होना नव सयोजित
केन्द्रीभूत धरा जीवन को फिर
बहु विशिष्टताओं में अवकेन्द्रित!
देखा कवि ने आदिम बर्बर पशु
अर्ध सभ्य मानव उर में जीवित—
ऊर्ध्व चेतना स्पर्शों से नर को
बनना बहिरंतर नवाश्रित संस्कृत!
आज उपस्थित वह चिर् वांछित क्षण
युग संकट से पा विद्युद्योतन
अपनाने ही करता पथ म मन
आध्यात्मिक शिखरों पर अधिरोहण!
जब तक भू चैतन्य नहीं विकसित
विविध ऋद्धि वैभव भासुर संपद्
बहिर्यत्न से शांति लोक असम
क्षणिक प्रतिपि भर—स्थायी विश्व विपद्!

इधर वैर जड़ता म राष्ट्रों में
उधर लोक चेतना संगठित बन
नव आध्यात्मिकता के प्रति आश्वत्
कष्टपूर्ण करती नव आरोहण!

जाति धर्म विवरों से मनुज निकल
नव समत्व में बँधते मुक्त हृदय
सदय समन्वित उभय सहृदय जन
नव आशा आस्था करते संचय !

राग द्वेष विरहित पर दुख कातर
मनुष्यत्व के प्रति होते चेतन
शुद्ध काय ही शुद्ध बुद्धि स्थित मन
कर्म शुद्ध रखते जन भू जीवन !

आत्म कूप रति से निवृत्त होकर
सामाजिकता का करते आदर
छोड़ मध्य युग की जीवन पद्धति
भू मानव हित नया सँवार पर !

हँसते उनपर जो सम्पद् मद को
अर्पित करते निज अमूल्य जीवन —
स्वच्छ वास मित अन्न वसन साधन
प्रिय उनको अब विकसित संस्कृत मन !

भौतिक वैभव स्पर्द्धा प्रति उपरत
निर्मित करते अंतर्जीवन पथ
मनोविभव के सम्मुख बाह्य विभव
लगता जड़ पंगुल सा विधी स्वत्व !

खुलते क्षितिज क्षितिज पर शोभा के
भाव भुवन भरते मन में विस्मय
ज्ञान नम्र बनता उर, विस्तृत मति
मिटता भगवद् सत्ता प्रति संशय !

मार्दवता आती कठोर मन में
मानव पशु होता प्रसाद-संस्कृत
मिटती भेद जनित स्पर्धा कुंठा
अंतर्जीवन गरिमा से मंडित !

गूँथ धरा रज में प्रकाश चित्कण
नव जीवन प्रतिमा करते कल्पित
भूमि बिना चिद् बीज न देता फल
बिना बीज भू जीवन रज जड़ मृत !

भूजन कर्म प्रिय प्रियतर या कृषि फल
जन भू जीवन ममता प्रति अर्पित
व्यक्ति विश्व में भी अभिन्न प्रगति
कर्म-योग ही कर्म भोग या सिद्ध !

इंद्रिय तुष्टि न था समग्र जीवन
मत परिणति का भर मित साधन
इंद्रिय बोध न पूर्ण सत्य अनुभव
तद्गत उर बनता प्रकाश दर्पण !

स्पर्श अमरता का पा जीवन की
सजन प्रेरणा हो उठती जागृत
अमरता में स्पर्श क्षमा बिम्बित
अविनश्वरता हो उठती जीवित !

मनुज प्रेम के बिना धरा जीवन
था श्मशानवत् विरति धूम आवृत
मानवता ही अमर सत्य प्रतिनिधि
नश्वर व्यक्ति-निधन से यदि वंचित !

महा ध्वंस के भय स भिन्न भू जन
कर्म निरत रहते निज पर निर्भर
रेख रेख कर परिश्रम पुर जन की
संरक्षण के खोज नए साधन !

लोक संगठन कर व जन भू के
योग क्षेम हित रहते सक्रिय नित
सहजीवन सहयोग युक्त श्रम के
सदुपयोग स कर जीवन उपकृत !

भू-श्रम वह्नि समृद्धि ऐक्य उर-निधि
मानवीय गुण का करते आदर
जन ही अब भू जीवन संचालक
सकट हुए शासन निष्क्रिय जर्जर !

राजनयिक धार्मिक भू जीवन की
भूषित क्षुद्रताओं से हो अवगत
संस्कृति के स्वप्नों आदर्शों का
भू मंगल हित करता नर स्वागत !

युग प्रबुद्ध जन जीवन गति परिचित
मनुज एकता के प्रति आकर्षित
विरत घृणा हिंसा स्पर्धा रण से
एक विश्व हो — मन करता स्वीकृत !

कलह विषाद अलस प्रमाद में जो
व्यर्थ नष्ट होता धन श्रम क्षम
भू रचना में कर उसको योजित
अर्जित करते नव जीवन संयम !

श्रम — शतगुण जीवन वास्तवता में
होता अब प्रतिदिन विकसित वर्धित
मनुज मनुज संतति हित निज श्रम फल
संचित करता — प्रभु को कर अर्पित !

प्रीति मुक्ति संभव जन — मानव मन
शुभ भाव जीवन करता स्वीकृत
काम द्वेष कुत्सा कर्दम से उठ
जन जीवन गरिमा प्रति वे जागृत !

श्री शोभा सर्जन रत रहता उर
उच्च सत्य जिज्ञासा से प्रेरित
प्रीति रश्मि में ग्रथित हृष्ट स्त्री नर
मित रस चिति सुख में रहते मज्जित !

रति असभ्य पशु वृत्ति न अब रहकर
सामाजिक — संस्कृति शोभा मंडित
रचना संयम हित अर्पित मन को
रस महर्घ रचता अंत संस्कृत !

मनोदृष्टि से देखा युग कवि ने
शुभ बोध से जीवन परिभाषित
वही शक्ति जो रचना मंगल रत
मनु विनाश के हित भी रण सज्जित !

रण प्रकाश जन — स्वर्ग भावना से
करती वह नव युग अंतर दीपित
ध्वंस भीति जन बहु अतीत का जड़
भिन्नीभूत बाधा करती ग्रन्थि !

सदियों के घबराए हुए मन से
शासित नव मानव विकास गति क्रम
गत युग की लँगड़ाहट को ढोना
भू मन हित दु:साध्य — बोझ निर्मम !

झाड़ जीर्ण केंचुली चेतना नित
बढ़ती — भू मन पर असह्य पग धर
मृत्यु बिना संभव न पुनर्जीवन
क्रम भाव अमरत्व इच्छु, अनुचर !

नव जीवन शोभा पंखों पर उड़
ऊर्ध्व चेतना पावक सिढ़ियों पर,
बरसाती ऋत स्वर्गों का वैभव
विकसित कर युग मानव का अंतर !

सौरभ मेघ उमड़ते भू उर से
इन्द्रधनुष शोभा पड़ती झर झर,
दीपित करते अधिमन शिखरों को
किरणों के संगीत मुखर निर्झर !

नव प्रकाश से मंथित तम सागर,
नव जीवन जलनिधि नव उद्वेलित
देखा कवि ने — भू का क्षुब्ध उदर
ज्वालामुखी उगलता रुद्ध दमित !

प्रक्षेपास्त्र गरज उड़ते नभ में
महाकार दैत्यों से दिग् भीषण
ध्वस्त भ्रंश प्रस्तर युग का भू मन
नष्ट भ्रष्ट उपचेतन निश्चेतन !

निखिल प्रतीकात्मक था कल्प समर
दुर्धर था विस्फोट धरा मन का
देखा कवि ने नरक दृश्य दारुण
विश्व ह्रास के प्रकरण विघटन का !

महाशून्य था दृष्टि अंध गह्वर —
निहित चिर आलोक जागता तम
स्तंभित बाह्य प्रगति — भौतिक युग गति
भीतर दुर्गम अंधकार — दिग् भ्रम !

मार्मिक स्पर्धा कुंठा से मूर्छित
खुला पंक में डूबा था भू मन
अणु विनाश के दाव—दाह विमर्दित
कृमियों से आच्छन्न विश्व जीवन !
धूम विषम की विकृत गंध दुःसह
गलित अस्थि मज्जा पंजर, खँडहर,
भस्मसात् सभ्यता सुषमती विशि
मृत करालता शुष्क काल सागर !
कहाँ गया मन ? सोच रहा था नभ
वारि हीन मयंक सा—मर्त पतन
तृण तरु सब कृमि खग पशु से नर तक
हुआ सृष्टि सोपान भस्म निष्फल !
प्रकृति ? विकृति भर शेष ! स्खलित विधिक्रम
कार्य न करते सृष्टि नियम निर्मम
विघटित होता कारण कार्य जगत्
महाकाश उर में भय अपलक पल !

विश्व चेतना ने सोचा क्षण भर—
सत् पर विजयी हो युग विकृति—असत्
अपने को क्षय करे ? —उभयग हित
या ईश्वर प्रतिनिधि मानव जगत ?
सहसा भास हुआ प्रबुद्ध कवि को—
नरक दृश्य का होता रूपांतर—
विस्तृत होता जन मन अंतर्पथ
चिद् प्रकाश से जाता हृद् घट भर !
अंत क्षयित मानव का मानस
निज गौरव के प्रति होता जाग्रत्
वह जग भू ईश्वर—गत पशु नर को
नव मानवता में होता परिणत !
धर्म स्वार्थ मतभेद विगत युग के
सभ्य चेतना उर में होते लय
महानाश मुख में नव जीवन पुन
धरा स्वर्ग सर्जन में भर तन्मय !

देख घुमड़ते प्रक्षेपास्त्रों को
मानव की प्रज्ञा स्वरूप धर कर
प्रकट हुई कवि नयनों के सम्मुख
चित् किरणों से भर मानस अंबर!

उड़ते दैत्यों का कर दर्प दलन
खींच उन्हें निज उर में कर तन्मय
विश्व शक्तियों को प्रबोध दे नव
हृत मनुज का उसने भय संशय!

आँख फाड़ कर देख रहा था जग
भौंह खोल कर शक्ति राष्ट्र सज्जित —
उन्मद दैत्यों के पद से मर्दित
मनुज हृदय में जगी ज्योति जीवित!

बहिर्विकास न प्रगति-मात्र दर्शन
अंत शक्ति अपेक्षित भू जन को
जीत सके जो बाह्य आसुरी तम
स्वर संगति दे मानव जीवन को!

नव नव आविष्कारों द्वारा स
पाता जड़ विज्ञान प्रकृति पर जय
गिरि समतल मरुस्थल को कर उर्वर
हरित नील घन मंडित कर पथ मग!

अब निसीम की निर्जन अंधियाली
रासायनिक दिवस में भी परिणत
यांत्रिक मन यांत्रिक तन ये अद्भुत
रश्मि मात्र से विश्व काम कर रत!

पहुँचता शशि के स्मित प्रांगण में
मनुज विजय का ख्याति यान चेतन
तैर रहा था अंतरिक्ष उर भर
व्यथ भीत भू का विषण्ण था मन!

कुछ ऐसा कर सका न था युग नर
मानव उर मानव प्रति हो निर्भय
नव आस्था सद्भाव उदित हों जन
मिटे धरा मन का तम भय संशय!

देखेंगे प्रत्यक्ष दृष्टि पीड़ित
भावी के अंचल में अवगुंठित
भौतिक भय संशय को अतिक्रम कर
धरा स्वर्ग हो रहा शनै विकसित !

जैसे भी सदसद् का सम वितरण
वैभव संतुलन रखता नित स्थापित
तम पर ज्योति असत् पर सत् की जय
स्वर्णिम भव मति क्रम में अंतर्हित !

भव विकास का सहयोगी मानव
स्वर्ग राज्य के स्रष्टा जन निश्चित —
दिव्य हृदय पावक से रच नव भू
मानव ईश्वर को करती अर्पित !

मत न क्यों तब ज्योति स्तंभ भारत
शुभ्र निदर्शन बने धरा जन हित ?
जन मन अंतर्पथ आलोकित कर
भव विकास को गति दे चिर इच्छित !

ज्योति चरण वह, वज्र पाणि बनकर
ध्वंस यज्ञ ही में देगा आहुति
जीर्ण काट भव हित — वह यदि न बने
शांति पीठ — होगी कर्तव्य च्युति !

उन्मेषित होकर कहता अंतर,
निश्चय ही यह महत् परीक्षा क्षण
आस्था अभय करे नित बस भारत
मनसमय नर ईश्वर को अर्पण !

मानव आत्मा का प्रतिनिधि बन वह
जन को प्रभु प्रति आस्था दे अक्षय
भू जीवन प्रति श्रद्धा दे जीवित
जड़ पर चित् की घोषित करे विजय !

अस्त्र शस्त्र से आत्मा को परिचित
अग्नि पवन जल से बढ़ना अक्षत —
नहीं सत्य की प्राप्ति मात्र संभव
केवल ईश्वर दर्शन या तद्गत !

अमृत तत्व को मर्त्य मूर्त कर ही
दे सकते उसको भू पर जीवन
अंत शोणित बन से सिंचित कर —
रिक्त नहीं तो आध्यात्मिक दर्शन !

महत् शक्ति संकल्प बीज भू पर
ज्योति कल्प भारत अमेय निश्चित
कितने हिमगिरियों से विघ्न अमा
नव मानवता को होना निर्मित !

पूर्ण समर्पित करना भारत को
निज तन मन धन जीवन का संचय
विश्वात्मा का दिव्य स्पर्श पाकर
भू पथ हो दीपित मृण्मय चिन्मय ! —

देखा कवि ने कांप रहा अंबर
सद् विवेक संग काल सत्य के स्वर, —
पथ प्रशस्त करते जो विघ्नों में
विचर सके आत्मा ज्ञानी भू पर !

जीवन का आत्मा प्रेम सुविदित
व्यवहारोचित सदा नहीं यह पथ
सांप्रत भू जीवन विकास स्थिति में
हमें बढ़ाना मानव जीवन रथ !

आशा कवि भासुर सूक्ष्म मन का
आत्म समर्पण करना आत्म विजय
बोध शक्ति को दिव्य शक्ति बनना —
यह विकास क्रम पथ में निर्भय !

जड़ चित् पृथक नहीं संपृक्त सतत
सत्य न जड़ पर हो चेतन की जय
बहिरंतर समाहित जड़ चेतन
धरा स्वर्ग में परिणत हों सुखमय !

ज्योति परम ध्येय जय शांति बन कर
शक्ति धाम रच सत्य ज्योति प्राणित
संभव प्रगति जटिल जीवन पथ में
जय सदा पथ ज्योति बने तमजित् !

ज्योति द्वार

सत्य शक्ति से दया शक्ति उससे
प्रेम शक्ति पाती सतत विजय
अचित् शक्ति चित् शक्ति बनेगी जब
धरा स्वर्ग का होगा रस परिणय !

आत्मा के चित् पावक की संतति
भावी नर—बोला अर्चक शंकर,
जो मुझसे हो संस्कृत मानव के—
मन स्वीकार नहीं करता कविवर !

सत्य धाम शाश्वत अनंत मय मति
शिव आदर्श यथार्थ प्रगति के पग
सम्मोहन का स्वर्ग यहीं जन हित—
बोला कवि—जन भू विकास का मग !

मनोन्नयन में उभर दीप्त कवि के
जन भावी का स्वर्ण शिखर उठ कर
नित्य अनंत शोभा प्रकाश रस से
स्वप्न मुग्ध करता प्रहृष्ट अंतर !

उधर धरा मन की थी दारुण स्थिति
गहरे होते जाते संकट घन
विगत सांस्कृतिक मूल्यों में सीमित
विविध धर्म देशों का था जीवन !

मृत आदर्शों के पूजक थे जन—
स्वर्ण पुरोहित केवल कुछ ही मन
छूते स्वर्ग के चित् प्रकाश के प्रति
दिव्य स्पर्श था कर सकता धारण !

मानवीय संवेदन से अंतर
स्पंदित हो उठता—जन दुख विगलित
जग कूजित निज कुसुम क्रोड़ में भू
लिए मनुज सुत को थी अभिशापित !

कला पीठ के रम मानस की कवि
बना शुभ्र जीवन विकास दर्पण
धाम हृदय की ग्रंथि—चाहता नित
ऊर्ध्व चेतना करे बहिर्विचरण !

निर्मम पशु दानव पर जय पाने
प्रीति बद्ध रचता युग कवि कोमल
आत्मा के रस स्वर्णिम पावक का
जिसमें चिर अक्षय अजेय सित बल।

भव्य चेतना की स्वर्गिक पावक
जिसमें तप हो स्वर्ण द्रवित जन मन
जाति धर्म वर्गों का भू मल धो
क्षमता मानवता में बन पावन।

नव वसंत सी ही जीवन आत्मा
ज्योति प्रीति आनंद सार अमृतमय
रूपांतर कर मानव का नखशिख
मुकुलित होती शोभा में अक्षय।

शुभ्र चेतना के रस स्पर्शों से
कल्मष अगम में हुआ परिष्कृत
स्थूल वासना सूक्ष्म प्रीति रस बन
सार्थक करती भुवन हर्ष अभिमत।

प्रेम शक्ति को अर्पित कर जन मन
नव जीवन रचता सुख में था रत
धन भू मन स्वर्गिक लय में संयुत –
पूर गए थे भू उर के सब क्षत।

भय त्याग सर्जन में रत तन्मय
मार हीन भू श्रम काम विस्मृत
नव क्षितिजों की शोभा में खिल मन
जीवन में करता उसको मूर्तित।

शुभ्र स्पर्श पा आत्मा का अंतर
भव जन मंगल प्रति होता प्रेरित
बीज मुष्टि में भर उर सा प्रियता
लघु चिर अणु उर में ब्रह्मांड निहित।

भू संघर्षण कुंठित क्षण भर को
रहा करुण रस सर्वोपरि कम्पित
प्रेम-स्वर्ग सुख भूत बना आगम –
जहाँ रमा है मन था आराधित।

भू जीवन इतिहास पृष्ठ लिखना
देश काल विधि का प्रत्यावर्तन
जन्म यहाँ लेती थी नव संस्कृति
जो मानव अंतर्विकास दर्पण !

अब विराट् स्वर्णिम मरकत प्रतिमा
कला पीठ प्रांगण में थी स्थापित
जो सत् चित् आनंद तत्व संपद्
धरा प्रीति से करती संयोजित !

पुष्पराग का दीप्त छत्र सिर पर
शुभ्र स्वर्ण किरणों से था शोभित
जीवन सत्य समग्र रूप धर कर
भगवत् विग्रह में था रस मूर्तित !

ऊर्ध्व चेतना अंबर का वैभव
वह भू जीवन प्रति करती प्रेरित
नव मानव के पथ में भी शोभा
सुषम हर्ष रस मगन कर वितरित !

इसकी गहरी नीली फालसई
शैल श्रेणियों के ऊपर ज्यों स्थित
दिखता शुभ्र हिमाद्रि व्योम पट पर
चिद् विराट् भूमा गरिमा संभृत —

मानस क्षितिजों को तज बुद्धि कल्पित
सोपानों के पार दिखा भास्वर
शाश्वत ऋत चैतन्य शृंग कवि को
आत्म समाधित अवचनीय अक्षर !

सिर पर स्वर्णिम रश्मि छत्र दीपित
गुरुगुणों के व्योमों से मंडित
शिव महर्ष पुलकित अनंत अक्षय —
प्राण वायुएँ चँवर डुलातीं नित !

अक्षर अनुभव से पाया कवि ने
चिर निर्मल नूतन मनुज जीवन
नव प्रकाश के स्वर्ण मरंदों से
निर्मित करना था भू मन नूतन !

मध्य चेतना में तन्मय उर को
लगता बहिरंतर प्रकाश पावन
भगवद् जीवन ही इंद्रिय जीवन
स्वप्न चेतना भिन्न धरा प्रांगण !

वैश्व क्रांति यह मानस की क्षमता
होने को निःशेष पूर्ण अवसित
मध्य चेतना में आरोहण कर
नव जीवन करता जग को निर्मित !
सित सहस्र दल सा विकास स्वर्णिम
नव भू चेतस् होता जब विकसित
शुभ्र विरचि भुवनवत् भूय मनस्
जिसको करता रस प्रकाश मज्जित !
मन के भेदों में विभक्त वे जन
स्वार्थ ऐक्य से आत्मा के वंचित
राष्ट्रों देशों के लघु वृत्तों में
मनुष्यत्व का बंदी भय शंकित !
नयी दृष्टि से जीवन सुविधा हित
हो सकता जन भू का नव वितरण
सत्व मोह भू मन का था बाधक
मनुजोचित था सहज न संयोजन !
आत्मा के मूल्यों पर हँसता मन
ढोंग विश्व एक्य के आयोजन
नर जब तक होगा न सत्य प्रतिनिधि
नव युग का संभव न ग्राह मोचन !
वस्तु, वस्तु जग पर मन न्योछावर
भाव जगत में भय संशय विभ्रम
जड़ बनता जाता चैतन्य रहित
भाव वस्तु संतुलन हीन मानव !
भू जीवन का केन्द्र मनुज ईश्वर
अभी नहीं बन सका—ऐक्य मूर्तित
भू राष्ट्रों के स्वार्थ—दूषित बने—
फिर धरा उर को विघटन खंडित !

जीवन के प्रति सहज न आकर्षण
युगग्रस्त विपण्ण धरा प्रांगण
हो भौतिक ऐश्वर्य प्रचुर जग में—
संशय भीति अनास्था पीड़ित मन !

सृजन प्रेरणा शून्य आज दर्शन
रूढ़ि स्तूप गत धर्म कूप दिग् भ्रम
मानव को चाहिए विश्व संस्कृति
वसुधा बने कुटुम्ब मिटे भव तम !

गौरव विभव प्रदर्शन के शुभ दिन
बीत चुके कहता द्रष्टा कवि मन
मनुज चेतना के विकास का अब
करता सूक्ष्म निरीक्षण अनुशीलन !

व्यक्ति महत्ता केवल विस्मित भ्रम
महिमा ईश्वर का गुण निःसंशय
सहज नम्रता ही मानव भूषण
जो समानता की पोषक निश्चय !

सत्त्व उन्नयन हित जन के प्रतिक्षण
कृच्छ्र यत्न करता प्रभ भक्तार्पित
दान त्याग नेतृत्व—अहं द्योतक
नम्र कर्म रत रहना नर को हित !

ईश्वर साक्षात्कार मनुज मन को
मनुज ऐक्य ही से जग में संभव
आत्मा का प्रतिनिधि हो भू मानव
अन्तर्जीवन का हो स्थित वैभव !

पूर्ण हृदय में आस्था हो—जग के
द्वन्द्वों को जा कर ऐक्य योजित
अब विश्वास पथ में नित मानव को
अंध गुरु न करे कर्म प्रेरित !

काम ग्रंथि का अतिशय उत्सर्जन
युग की केवल भ्रमित विवर्तन स्थिति
शोभा सृजन धरा जीवन प्रति रति
यही काम का रजत मूल्य अब इति !

मदन दहन के पूर्व धृष्ट स्मर ज्यों
शंकर का करता समाधि विचलित
मधु मादन सौरभ कल कूजन से
शिशिर क्षण का कर नव वसंत कुसुमित !

राग उन्नयन की मधु वेला में
जीर्ण मूल्य करते मन को पीड़ित
शुभ्र प्रीति भू शोभा रचना मे
उसको अब होना समग्र विकसित !

साम्य नहीं विभाजन मात्र साधन
बोध साम्य का जन हित आवश्यक
मानव आत्मा के जीवन के हित
निर्मित यह जग – प्रकृति नहीं बाधक !

भव का आध्यात्मिक विधान निश्चित
आध्यात्मिक एकता अमिट जन बल
उन्मद भौतिक जग को कर शासित
हो भास्वर जगत् जीवन मंगल !

चिद् प्रकाश का कण मानव आत्मा
रस प्रहर्ष श्री शोभा में पोषित
ऊर्ध्व प्रगति के बिना धरा जीवन
दारुण समदिग् दैन्यों से शोषित !

श्री समृद्ध साधन भौतिक जीवन
समदिक् संकट का कर्दम प्रांगण
आत्मज्ञान के हित पुमोघ मानव
उद्धत – अंतर्दृष्टि शून्य बर्बर !

जग जीवन स कर वियुक्त प्रभु को
पूज रहा जन स छाया को नर
कवि को भ्रमा – स्वर्ग बैठा भू पर
साँस ले रहा हो विराट् ईश्वर !

सहसा ज्यों खुल गए दृष्टि बंधन
देखा कवि ने तृण तरु खग मृग में
व्याप्त – चराचर में समस्त शाश्वत
बसता निज जन भू विकास मग में !

सोच उठा कवि मन—भव गति भ्रम ही
प्रभु की जीवन गाथा—रामायण
सृष्टि व्यथा या कथा छोड़ बन मन
कहाँ खोजता प्रभु के पद पावन!
पुरुषोत्तम का लीला क्षेत्र जगत
बहिर्मुख बहुमुख मन ही रावण
भगवदैक्य स्थापित कर भू मन में
पुन अवतरण करते प्रभु नूतन!

देखा कवि ने भू उर से उमड़े
नग्न क्षुधातुर दैन्य ग्रस्त जन गण
जाति पाँति बहु धर्मों में खंडित
पिपीलिकाओं से असंख्य चित् कण!
जीर्ण सभ्यता के खँडहर से उठ
छायाकृति जर्जर मन भू जीवन
नव मानवता के चित् सागर में
नव शोभा में करता अवगाहन!
गुंजित पुंजित रूप वृत्ति कुंठित—
भव्य संगठित हो गत जग भू मन
नव स्वभाव गुण रुचियों में कुसुमित
निर्मित करता नव संस्कृति प्रांगण!
ऊर्ध्व सूर्य का चित् प्रकाश भास्वर
हीर पद्म दल सा अनंत प्रहसित
स्वर्ण चेतना सौरभ भर—मन को
करता नव मधु शोभा रस मज्जित!
मानव भावी के चिर वैभव से
या अंतश्चैतन्य क्रमश पूरित
नव भू जीवन रचना मगन में
हो उठता जो भी शोभा मूर्तित!
देखा कवि ने निखिल धरा जन मन
संस्कृति प्रांगण में अब परिवर्तित
स्त्री उरोज सा भू मांसल शोभित
जीवन मानस—अणु वैभव विरचित!

स्वर्गिक शोभा बसती जन भू पर
उच्च भावना गरिमा से मंडित
नव मानवता की प्रतिमाओं से
कला केन्द्र के युवति युवक संस्कृत ।

चिद् शोभा में रम गया था छिप
मात्र प्रीति आलोक व्याप्त मन में
सागर में लहरों सा भू जीवन
गति स्पंदित रहता शाश्वत क्रम में ।

जिज्ञासा का भ्रमर गंध तन्मय
पैठ गुह्य भुवनों में अंतरतम
गूँज प्रीति रत सित सुमनों का मधु
संचित करता हर तन मन का श्रम ।

नए धर्म की नींव युवक रखते
स्वर्ग प्रीति में रसी भर कर गुम्फित
शुभ ऐक्य रचना श्रम संयम से
मठ शान्ति धरा पर कर स्थापित ।

फैल निखिल मुख भव मन भावों में
शोभा दर्शन हित करता प्रेरित
चिद् प्रहर्ष मन को नव भावों के
सित रस सागर में करता मज्जित ।

नव्य चेतना की स्वर्णिम किरणें
भेद निखिल नर का मरकत अंतर
जन भू जीवन हरीतिमा में गूँथ
नव प्रभात में हँसती चिर सुंदर ।

शोभाभो के सूक्ष्म क्षितिज चूमते
उच्च प्रेरणाओं से चिर भास्वर
मानवता के सागर संगम में
अभिव्यक्ति पाता जीवन ईश्वर !

वैज्ञानिक श्रम से विकसित चिद् से
क्षुधा काम संघर्षण पर पा जय
राष्ट्र वर्ग से निकल निखिल मानव
मनुष्यता का देता नव परिचय !

मंगल तत्व प्रतिष्ठित पृथ्वी पर,
ऊर्ध्व सूक्ष्म चैतन्य दीप्त भू मन
रोग शोक दारिद्र्य दुःख भय से
शनै मुक्त होता जीवन प्रांगण!

मुक्त प्रेम अवतरित द्वारों को
नव प्रकाश भुवनों में खोल अमर
मर्त्य सूक्ष्म देता भू जीवन को
प्राकृत नर को कर रस संस्कृत नर!

रश्मियों से रवि की सित किरणों से
झरता था स्वर्णिम प्रकाश निर्झर,
प्रीति चेतना बहु-समग्र जीवन
चिद् पावक शोभा से जाता भर!

राष्ट्रीय स्पर्धा में रत अधिनायक
मानव जीवन गरिमा प्रति जागृत
नव मानव के सम्मुख नत मस्तक
निज दारुण दुष्कर्मों प्रति लज्जित!

सैनिक राज्य न करता अब शासन
मनु रचना संयम में था योजित
राष्ट्र रूप से निखर विश्व सत्ता
नव भू मानवता में थी मूर्तित!

धिक उस जग को कुत्सित शक्ति का मद
जहाँ मनुज को रखता हो शासित
मधुर सभ्यता-शांति न्याय पथ से
जगत धर्म हों जहाँ न संचालित!

व्यक्ति शक्ति की मधुर सीमाएँ
हुईं एक दिन कवि मन में भासित
धरा स्वर्ग का रच संस्कृत जीवन
स्वत ही रहा था पावक विकसित!

युवति युवक जग का अंतर्जीवन
सूक्ष्म चेतना वैभव से पोषित
अतिक्रम करता अब कवि चेतना का
निज स्वर्णिम शोभा में दिङ्मुकुलित!

सुलभ न कवि को भी संस्कृत स्थितियाँ
जब वह था अविकच किशोर कुड्मल
नव आध्यात्मिक युग को यह गौरव
बन प्रसून बन सका पक्व रस फल !

दिया चेतना ने निगूढ़ इंगित
केन्द्र न हो व्यक्तित्व छत्र निर्भर
अंत सत्यों के विधान पथ पर
दृढ़ व्रत रह वह बढ़े उत्तरोत्तर !

दिग् जाग्रत् धरती ही को धीरे
संस्कृति प्रांगण बनना भी सुंदर,
केन्द्र स्वस्थ उपक्रम भर—निखिल जगत्
मनुज हृदय का स्वर्ग बने सुखकर !

युग भू जीवन स्थितियों से प्रेरित
ज्योति पीठ वह भू पर अब स्थापित
राजनयिक जीवन रण का कर्दम
संस्कृति शोणित करता अवगाहित !

विविध कला पीठों से जन भू के
भाव विभव का मिलता चित परिचय
मानवता को अभिप्रेरित करने
स्वर्गिक पावक का होता विनिमय !

विश्वात्मा को नमन किया कवि ने
अर्पित पूजन पावन छंद संस्कृत
नव पीढ़ी बन ज्योति शिखा वाहक
धरा स्वर्ग रचना प्रति हो अर्पित !

एक साँझ हँसता नभ में नव शशि
मैं री आई युग कवि से मिलने
परदेशी युवती शोभा सरसिज
जगी—दूरस्थित रवि कर से खिलने !
आस्था प्रीति—सभी आधारों में
स्वर्ग पीठ प्रति थी वह सित अर्पित
सरल हृदय था मनुज-प्रीति-मधुवन
जन भू मंगल स्वप्न रेणु सुरभित !

स्वर्गिक बाँहों में बाँधा कवि को
उसने दे अंत सुख आलिंगन
डूब गया खोया प्रहर्ष रस की
शुभ्र गहनताओं में कवि का मन!

कवि न स्पर्श करता छलनाओं को
रस पाती थी यद्यपि वे संस्कृत
उपचेतन था अभी न ज्योति द्रवित
देह बोध था निस्तल में संचित!

एक बार नव मुग्धा ने उसको
किया फूल बाँहों में था वेष्टित
स्वीकृत किया न कवि ने भाव प्रथम
देह नहीं थी शुभ्र प्रीति अर्पित!

मेरी जो था 'महाभाव में आ
लोटा कवि उसके स्थित चरणों पर
गड़ा शीश उन पावक कमलों पर
मातृ प्रीति से दिया शुभ्र उर भर!

आत्म मुक्त तन्मय मेरी तत्क्षण
भू गुरुत्व से उठ हो अंत स्थित
(भाव बाष्प पड़ते दृग से झर झर!)
हुई स्वर्ग चेतना ज्योति मज्जित!

भावात्मा दे विनत आत्मजा को—
स्वर्ग स्वप्न से भार मुक्त प्रखर—
उसे छोड़ तद्गत स्थिति में चुपके
हुआ कक्ष से कवि द्रुत गति बाहर!

और उसी क्षण छोड़ कक्ष प्रांगण
अंतर्धान हुआ वह चिर् वन में
बढ़ता रहा पथिक शाश्वत पथ का
काम्य समापन कर नव जीवन में!

अमित चेतना पथ अंतर्विस्तृत
व्याप्ति द्वार पर व्याप्ति द्वार भीतर,
भ्रमण करता वह आरोहण में
मर्त्यपिंडों हित रच पाथेय अमर!

परम प्रेम सत्ता में हो तन्मय
कर सत् चित् आनंद लोक अतिक्रम
रस पावक पी हुआ बोध कवि को
विश्व प्रेम ही शिव प्रेम उद्गम !

कलुष धूलि धूमों के आसन पर
बैठा था सित प्रेम सृजन पुलकित
रस प्रहर्ष बाँहों में भर जग को
पाप ताप सब कर प्रतीति प्रशमित !

हृदय परात्पर हर्ष स्पर्श कंपित
भक्ति प्रणत कवि चित् रस में तन्मय
भू रचना हित भर जीवन अर्पित —
आत्मा का ईश्वर से स्वत परिणय !

यह वैयक्तिक परिणति थी उसकी
स्रष्टा के प्रति रस स्वार्थ था मन —
अमृत चेतना विश्व चेतना का
क्षमा पीठ था स्वप्न-स्वर्ग दर्पण !

मे'री हो प्रकृतिस्थ साधती थी
अपने ही मत सुख म तन्मय' —
(पंछी की अनुपस्थिति म भी वह
पंछी ही की आत्मा मे थी लय !)

स्वर्ण हरित यह कैसा पायतपन
अनुभव करता मन दीपित अंतर,
अमृत प्रीति से छू तुमने उर को
ज्योति मरंद दिए सित उसमें भर !

व्यक्ति नहीं तुम प्रेम चेतना भर,
रम रही तुमको बाहर भीतर
हीर द्वार मेरे अंत:पुर के
खोल दिए तुमने शोभा भास्वर !

मैं जिन भावों को थी लाई
तुमने जिन पावन-कर से छू कर
बहा दिया जाने उनको कैसे —
प्रेम न यह — तद्गत अथाह सागर !

पागलपन यह अंत शुभ्र अकथ —
केवल तुम हो कनक तुम सुंदर,
भाव रहे सित अंत सगति में
मेरे तन मन प्राण — स्निग्ध होकर !

भावमूर्ति देखी उसने कवि की
शुभ्र शांति प्रतिमा था उसका तन
शोणित में था दिव्य रूप संकुल
प्रीति — हृदय में रस स्पंदित प्रतिक्षण !

दीप्त कनक स्वप्न जीवन चिर अर्पित
दृष्टि अलौकिक सुंदरता में सम
सुनती श्रुति सगीत भाव नीरव
शब्द मर्म का स्वर्णिम रस परिणम !

स्वर्ण नील सी छहरी चूर्ण अलक
मनुष्यत्व का — मुख भावी दर्पण
सुरबाला से तुम सुंदर कोमल
मानस ज्योति सरोवर स्फुट चतन !

छूने में संगीत सूंघने में
तुम प्रहर्ष सौरभ मरंद विरचित
आलिंगन में शुभ्र प्रेम तन्मय
भरा स्पर्श सुख में अंतर संकुल !

उषा लालिमा में हरीतिमा भी
चंद्र कला नीलिमा दृष्टि अंबर,
सित निर्बंध सुरभि समीर देखी —
मै तन्मय तुम पर न्योछावर !

तोड़ रजत घट न्यारे मानस का
बहा शुभ्र पीयूष ज्योति निर्झर
जिन नव क्षितिजों में नव भुवनों में
खोल दिया तुमने मग अंतर !

मैं अब इस दिव्य प्रेम का सुख
आत्मसात् कर पाएगा अक्षय
रस प्रवाह यह प्रीति मुक्ति प्लावन
पागलपन दिव पागलपन निरुपम !

तुम क्या हो कवि जान गई अब मैं
मर्त्य वेणु में स्वर्ग प्रीति की लय
नव जीवन संगीत विश्व उर में
भरने आए—जन भू मंगलमय!
बोध स्पर्श की तन्मयता से बस
शांत हुआ धीरे मैत्री का मन
देखा उसने—वहाँ न था युग कवि—
उसे खोजने मूँद लिए लोचन!
उच्च गहनतम चित् सोता न रहा
वह भव भी हो चुकी अग्नि पावन
तन्मय था हो चुका परात्पर में
शाश्वत रस दीपित सित जीवन क्षण!

देखा प्रात छात्रों ने आकर
कक्ष रिक्त था कवि अगोचर
शेष पीत सित पुष्पों के कुछ दल—
प्राण गए द्रुत सूक्ष्म सुरभि से भर!
द्वार खोलते—चित्त गगन अब बन
पंखड़ियों के पंख मार निःस्वर
गए फूल भी उड़—चिद् अंबर में
देखा सब ने मूक दृष्टि पाकर!—
देह न था कवि—धूपछाँह वेष्टन
स्नायु शिराओं में भव रस शोषित—
प्राणों में गूँजती सृजन स्वर लय
अंतर में लिपटे सुरधनु अगणित!
चकित स्तब्ध थे छात्र!—तभी सहसा
कवि को कभी मिला इंगित गोपन—
भान भ्रष्ट अणु बम से सुंदरपुर
ध्वस्त हो गया—भर विदीर्ण गर्जन!
ज्ञात नहीं फिर कैसा मन्त्र का क्या
अंत हुआ—संक्रांति काल दुर्वह
ज्योति द्वार मानव उर में शाश्वत—
भगवत् पीठ बना पथ—चिद् विग्रह!

प्रेम स्वर्ग विभ
स्वप्न पंख मृदु पलकों पर स्थित,
अधिक पूर्ण बनने
फिर फिर होता अंतर्हित !

अमर चेतना अचिर रूप
शाश्वत रस परिणय
सृजन ह्रास प्रलय
पथ चिन्हों पर पाता जय !

उषर स्वप्न

(गीति)

सहज बोध ! जीवन छविकाम
उत्तर स्वप्न म सत्य समाम !
रस संस्कृत जन भू स्वर्धाम
मुक्त प्रकृति मन प्रीति प्रणाम !

मन प्रकृति मुक्त निष्काम प्रेम
शोभा भू पर बसती निर्भय
मन सहज बोध से उन्मेषित
स्थित प्रकृति पुरुष का रस परिणय !
भू स्वर्ग स्वर्ग भू में परिणत
जन हृदय बुद्धि कृत संयोजित
आत्महत् सभ्यता ध्वस्त – विरत
सांस्कृतिक पीठ हित संरक्षित !

धार्मिक पशु रण क्या हुआ दैव !
अब बदल गया भू मानस पट !
उच्छ्वसित चेतना सागर स
फिर निकल रहा नव जीवन तट !
संभव हो सका न यूप ध्वम
माध्यस्थ बनी चेतना सबस
स्पर्धा हिंसा भय कर्दम स
जग नव प्रबोध का खिला कमल !

गत ह्रास नाश विघटन का तम
जाने कब लीन हुआ कट छँट,
नव युग स्वर्णोदय मुसकाता
जग मुखरित फिर जन अक्षय वट !
बीते दशकों पर दशक बने
जन नव जीवन करते निर्मित
पचरंगा भू मन हुआ पूर्ण
उर सृजन प्रेरणा प्रति अर्पित !

मानव उर सत्य हुआ विजयी
नव लोक एकता कर स्थापित
निखरी देखा राष्ट्रों से भू
नव विश्व चेतना अनुप्राणित !
चित् स्वर्णिम मित स्वर तार सँजो
प्राणों की वंशी में नूतन
रस तन्मय कवि उर झंकृत कर
वाणी गाती उत्तर जीवन !

अब कला केन्द्र मधुमय स्मृति भर,
उस दारुण क्षण से बच कुछ जन
आए प्रशांत हिम प्रांतर में—
कवि शैशव स्वप्नों का प्रांगण !
गत भू जीवन मन की पावन
अनुभूति हृदय में संचित कर
हिमगिरि अंचल में मैत्री ने
जन लोक बसाया लोकोत्तर !

यह कला केन्द्र मृदु पाश न था
वह था चैतन्य अमृत सागर,—
उस संस्कृत भावधारा का पा
फिर मूर्त हो उठा सत्य अमर !
मैत्री कल्याणी मंजुलता
लौट प्रिय पथ उसका आश्रम
व मायायतन जन संज्ञा
[illegible]

अब निकट प्रकृति के थी संस्कृति
जीवन अपने में पूर्ण स्वयम्
अवस्थिति स संयुक्त हृदय
आलोकित भू पथ का दिग् भ्रम !
शृंगों की शाखी छाया में
दूनों की घाटी में सुंदर
वह अधिष्ठान था शांति पीठ
जीवन सक्रिय अंतर उर्वर !

अब आठ सुधा घट शरद् बिता
संस्कृति मरंद मधु में पोषित
समता फल सा रस पक्व मधुर—
मन में किशोर, तन से पुलकित !
नभ में खोए पर्वत उत्सुक
तन्मय उर में भरते विस्मय
अनिमिष स्तब्ध नयनों को नित
शशि की छवि शुभ्र स्वर्णोदय !

वैदिक ऋषिवत् ही देव कल्प
लगते उसको जल अग्नि पवन
क्षण पुट में शाश्वत सीमा में
मिलते असीम छवि के दर्शन !
पावन थी भू पावन जीवन
चिर पावन मानव का तन मन
सर्वत्र ब्रह्म जग में व्यापक
यह सचराचरमय जड़ चेतन !

अब सहज स्फुरित जगता अबोध
भावोन्मेषित कर उसका मन
गाने झरने उन्मन तृण तरु
गाथाएँ कहता मूक गगन !
उद्भासित हो उठते सहसा
अंतर में गहन रहस्य मौन
जाने किन स्वर लिपि में अंकित
कर देता उर में मग्न मौन !

गिरि शिखरों की हँसमुख कोंपल
भरतीं मन में बहुरँग मर्मर,
तन्मय निसर्ग से जाने क्या
संभाषण करता वह निःस्वर!
घन कुंतल फैलाए वन में
बैठी तरु छाया हरती मन —
गृह हीन प्रकृति हो माँग रही
मानव से जीवन संरक्षण!

सुरधनु जल कबरी में बाँधे
शत फेन मणि झरते निर्झर
गिरि धेनु दुग्ध धाराओं से
भाव मोती के उत्स मुखर!
जीवन तरंगिनी वह अजस्र
क्या कुछ गोपन गाती कल कल
वह कान लगा तट अधरों पर
सुनता भू भाषा रस विह्वल!

रेशमी नीलिमा के मुख में
तिरते कितने ही रँग प्रतिपल
पाटली बैंगनी फ़ालसई
पीताभ हरे — गहरे कोमल!
जाने जगत के आँगन में
मन कब चुपके से कर विचरण
खेलता मिचौनी शाश्वत से —
धरती पर कदम रखता तन!

पृथ्वी वह्नि — क्या जल पावक
चपल समीर निरभ्र अंबर?
तन्मय हो — मैं ही निखिल विश्व
उत्कण्ठित हृदय देता उत्तर!
भूमा की परिक्रमा कर मन
फिर होता धीरे मंद स्थित
भू मानस क्षण में अतिक्रम कर
शाश्वत का मुख करता बिम्बित!

सामने खड़ा था दिव्य विराट्
भू स्वर्ग सेतु सा हिम पर्वत
महिमान्वित करता अंबर को
भू का गौरव मस्तक उन्नत !
देखा गिरि उसने प्रथम बार
मानस सिंधु सा हिल्लोलित
जड़ जीवन मन की सीमि लाँघ
चैतन्य लोक हो स्मित शोभित !

निश्चल समता वह शुभ्र पक्ष
सौन्दर्य हृद [illegible] उद्दीपमान
निज स्मित गति के प्रतिमान स
स्वर्गिक दिगंत पथ रथ महान् !
देखी सी लगती शिखर पंक्ति
रवि रश्मि किरीटों से मंडित
ज्योत्स्ना में लगता हिम प्रांतर
स्वप्नों के ज्वारों में स्तंभित !

दीखा हिमाद्रि दृग विस्मय सा
भू स्वर्ग पीठ हो दिव्य भास्वर
चर्पई गेरुवी आभाएँ
लेटी शोभा नत ढालों पर !
कँप फाग मर्म मोहारों के
कहराते रश्मि ज्वलित कंचन
चंद्रिका श्याम से उतर मौन
धरती शृंगों पर स्वप्न चरण !

शिखरों के वक्षों में डूबा
परियों के सपनों पर मोहित
गिरिमाला की पृथु घाटी पर
लेटा रहता नभ मुग्ध विस्मृत !
करती सात्विक रस भोग प्रकृति
मधुकर उड़ मधु रस कर संचय
ममताने स्वर्ण मरंदों से
भरते कलियों के गर्भाशय !

ऊषा शृंगों पर देख रूप,
शोभा सलज्ज रँग रँग जाती
तृण तरु खग मृग हिमजल वन में
स्वर्गिक सम्मोहन बरसाती !
संध्या में लगते समाधिस्थ
गिरि सानु मौन गरिमा मण्डित
नैसर्गिक श्री सुषमा का मुख
हँसता निशि में तारा गुंठित !

गहरे कोणों दृढ़ शिखरों की
वह दृश्य पटी लगती सुन्दर,
मखमल ज्वाला सी थी फैली
नीचे मरकत दोभी दुस्तर !
कृषा की प्रिय घाटी रहती
प्रगमित रंगों में रोमांचित
रंगों ही में जीवन शोभा
लगता होती समधिक मुखरित !

उड़ता पराग पक्षी समीर
भीनी वन सौरभ से भर मन
पर्वत प्रभाति को देता स्वर
विहगों का भाव मुखर कूजन !
हिम वाष्पों की भलकें छहरा
रवि आतप मृदु मांसल स्पर्शी
मद प्रमत्त यौवन उन्मुख
भाता किशोर सा प्रिय दर्शी !

पुर जीवन के प्रति उदासीन
अपने ही भीतर अंतःस्थित
व्यक्तित्व अगुन का बना प्रौढ़—
निर्भय व्यक्ति प्रकृति परिचित !
कंपित हरीतिमा शिखरों से
वन देवदार भरते मर्मर,
सर्वांग प्रकृति में हुए मूक
मनमन करता उमड़ा अंतर !

छू नव नारी का तन उसने
आलिंगन में बाँधा तन्मय
भर भाव मंच से गया हृदय
पा रस सिक्त प्राणों का परिचय !
कैसी विमुक्ति स्त्री की शोभा
शोभा विमुग्ध उसका अंतर —
वह शांति शील शुचि सहृदयता
स्वर्गिक प्रहर्ष की स्वर्णिम भर !

वह था जीवन का नव छात्र
नव सतत सीखने को उद्यत
गुरु ज्ञान भार से मुक्त हृदय
नव वीथियों के प्रति जाग्रत !
चिर नारी शोभा का सागर
यौवन का रोमांचित प्रांगण
निरुपम निसर्ग सुषमा प्रति पल
उसके उर का था आकर्षण !

भू श्रम विराम के लिए बना
श्रुति विषद स्वप्न निशि का प्रिय क्रम
जल पवन अग्नि की पावनता
भरती उसके मन में संभ्रम !
वह देख निसर्ग कला कौशल
रहता आश्चर्य चकित अंतर
पा विश्व प्रकृति को दयामयी
जाता कृतज्ञता से उर भर !

झूम उठे देखत मुग्ध नयन
सचराचर का वह था सहचर
गाते शाखा पर कुहुक विहग
जगदात्मा थी उसके भीतर !
तकते रुक रुक चलते मृग शिशु
नाचते उरग सम्मुख नत फन
वन से छट निकली मँडराती
अलि कानों में भरते गुंजन !

गाता स्वर उर में मधुर गीत —
सुंदर बन जीवन का उपवन
खर शूलों से घिर खिले फूल
जन भू विकास पथ में प्रतिक्षण !
शोभा प्रेमी मधुकर उड़ फिर
संचय करते जीवन मधु कण
सुंदर कलि कुसुम सुभग मधु वन —
सुन्दर न अभी मानव जीवन !

भावों में होता अनुभावित
मन को छू कोयल का गायन —
पिक प्रेम दूत शोभा ज्वाला
सुलगाता भू मन में नूतन !
सुन कुहू कुहू पावन पुकार
जग उठता कलि कोंपल में मन
आनंद व्यथित शोभा प्रेमी
रहता तन मन करने अर्पण !

यौवन प्रभात में मुग्धा पर
पलक उसके अपलक लोचन
वंशी ने उसको दे प्रबोध
लौटाया उसका खोया मन !
साधा उसने — तन का परिणय
मानस वीणा के हित बंधन
हृदयों का परिणय हो जग में
उन्नत न अभी जन भू जीवन !

शोभा पहिले फिर रूप सृष्टि
तन की छवि में रहना सीमित
यह यौवन आत्मा की हत्या —
यह हुआ काम मति पर लज्जित !
था रूप देह का मोह स्पर्श
पाया उसने शोभा का मग
यह भावा द्रष्टा था निश्चय
शोभा प्रेमी हित भू असि मम !

वैभव स्वप्न का युग बति कर
श्रद्धा अर्पित कर मानव मन
प्रस्फुटित हुआ उमड़ उर में
धीरे भावी जीवन दर्शन।
हत काम वन्दिनी शोभा के
खोले भू मन स्वर्णिम गृहपथ
चिर प्रेम पीठ बन सके धरा
सुख मनोराम का हो उद्गम!

धिक संस्कृति जिसमें युवति युवक
कर सकते मुक्त न प्रेमार्पण
धिक जग जिसमें न वयस्क प्रथक
जन मग्न श्रम में रत प्रतिक्षण।
जिसमें प्रकृत मन दर्पण में
बनते न ईश्वर का आनन
शिशुओं के हित जो भू प्रसन्न
उन्मुक्त न धिक क्रीड़ा प्रांगण!

सौन्दर्य प्रेम आनन्द जहाँ
करते स्वच्छन्द नहीं विचरण
कुरूपता ऊर्ध्व न भ्रांति कटु
निर्भीक जहाँ न मनुज का मन!
शिक्षित विस्मय जिज्ञासु जहाँ
किशोर न कम्पाता कम्पन
अपलक यौवन के नयनों में
स्वप्नों का नहीं सघन विभव।

उस भू का करना रूपांतर
निर्मित कर नित अंतर्जीवन
मर्मस्पृक् नव प्रकाश अतिक्रम कर
चलते मानव का ऊर्ध्व चरण!
चतुर विकास की बागडोर
नर का अपने कर में सकर
संचालित करना जीवन रथ
विचर भू पथ पर स्व

अति दर्शी था क्या युग चारण
सोचता मनुज मन में शंकित –
आनंद प्रीति सौन्दर्य स्रोत
होते जीवन निधि में प्रवासित !
सित प्रीति काम से नहीं पृथक
मन भू जीवन ही का दर्पण
सम्भव न सबगत मनोन्नयन
रस मुग्ध न यदि जीवन प्रांगण !

समय कवि का था यही लक्ष्य
जीवन से विलग नहीं ईश्वर
इंद्रिय हों आत्मा की गवाक्ष
हो धरा स्वर्ग ही प्रभु का घर !
रस रुचि संस्कृत हो काम वह्नि
उन्मुक्त प्रीति रत नारी नर
तृष्णाओं के कृमि कर्दम से
चैतन्य पद्म निखरे ऊपर !

सांस्कृतिक उन्नयन हित भू के
उसने निज प्राण किए अर्पित
जग दिव्य भावना में जीवन
सौन्दर्य हुआ उर में विकसित !
मन मग्न चेतना में रहता –
नव भू जीवन जिसका दर्पण
पतमन भावी जीवन पथ
जग सागर चिद् रस का मधु कण !

जीवन प्रेमी था निश्चय कवि
जीवन ही में ईश्वर तद्गत
जीवन भंगुरता के पथ पर
अमरत्व बिछा चलता शाश्वत !
जड़ का निज पावन पीठ बना
भू मन के ठोस पुँजे साधन
श्री मानस जीवन दिक् पर गा
हैं धरे राम प्रति गुप्त चरण !

मन घई मत मति में सीमित
कर सका समग्र न परिसीमन
जग ईश्वर, प्रकृति पुरुष इह पर —
मूल्यों का भ्रांत हुआ वितरण।
पथ संकट भव बाधा विरत
नर, राग द्वेष भय से पीड़ित —
कुल जाति वर्ग गत स्वार्थों में
हा गया धरा जीवन खण्डित।

कुण्ठित मन जग के प्रति विरक्त
मठ शिखरों पर कर विचरण
खो गया ऊर्ध्व में भटक मौन
स्थित चिद् महर्ष में कर मज्जन।
बहिरंतर ऊर्ध्व मध्य इह पर,
हो सके न जग में संयोजित
जीवन ईश्वर को भूल — भूल
नर विच्छाया के प्रति अर्पित!

ईश्वर के विस्मृत नहीं साधु
बहु ऋद्धि सिद्धियों के अनुभव
वे ज्ञान मुक्ति वैराग्य पथिक
यमि याम साधक तप बन रत।
निश्चय वे ही प्रभु के प्रेमी
जो जीवन में उसका आनन
स्वत — उस संयम मूर्तित
करते रचना जन भू शासन!

आध्यात्मिक सत्यों के बल पर
संभव न धरा का रूपांतर
जब तक न बहिर्जग की आहुति
करते मानव संयम हित मर!
नव मूल्यों में रच मानव जग
पद मनःस्फूर्ति का कर विस्तृत
ईश्वर का भू जीवन पट में
करना जग को बनना पदित!

रस मुग्ध न हो जब तक भू मन
थी शोभा मांसल भू जीवन
अंत: गरिमा प्रति जाग्रत् जन —
प्रभु योग्य न तब तक भव प्रांगण !
सित प्रीति प्रथित नर नारी उर
जब तक न करे प्रभु मुख बिम्बित
तब तक मनुजोचित नहीं धरा
निज मनुष्यत्व से नर वंचित !

समरस स्थिति में ही भटक ऊर्ध्व
संभव न बहिर्मुख विश्व प्रगति
बहु रस वैचित्र्यों के भीतर
मानव जीवन की सत् परिणति !
सम विषम न बहु बहु एक न बहु,
सापेक्ष मात्र भर ये निश्चित
सम विषम एक बहु से प्रतीत
सम विषम एक बहु में मूर्तित !

संलाप प्रकृति करती उससे
सांकेतिक वाणी में नि:स्वर
वन मर्मर में पा निखिल स्पर्श
मन उठती हुलसी भर भर !
गिरि कोयल कहती — कुहू कुहू
तब नभ से धरती पर आकर —
पशु पक्षी से क्या मनुज सभ्य
यह सीख नगर वन पथ सुंदर ?

रच धर्म नीति संस्कृति दर्शन
क्या सुखी हुआ मानव जीवन ?
बहु जाति वर्ण वर्गों में बँट
संघर्ष क्षेत्र बन भू प्रांगण !
क्या नव वसंत रस स्पर्शों से
रोमांचित होता उसका मन ?
भू शोभा का मंजरित प्यार
भरता तन प्राणों में स्पंदन ?

क्या मुक्त गंध आनंद स्पर्श
सुख पाता प्राणों का यौवन?
मिटता अंतर का मृगातप
जब मुकुलित होता पतझर वन?
कट विश्व प्रकृति से भिन्न में रत
वह महत् प्रेरणा सुख वंचित
मैं मुखर सही पर सत्य यही
मानव न अभी पशु से विकसित!

मैं विस्मृत चातक विरह विहग
चिर प्रीति स्वाति रस का प्यासा
जीवन मृग के वर्जन निर्मम
जिनके न हृदय में अभिलाषा!
पी कहाँ? पी कहाँ? — वह वन में
उपजाता शाश्वत जिज्ञासा
वह घट घट वासी — कहती ध्वनि
व्यंजना मूक कविता भाषा!

यदि निर्मम प्रेम हृदय — जग में
वह सचराचर उर की ममता
चिर विरह, — मिलन का स्वप्न निरूप
पर, मृत्यु — घृणा की निर्ममता!
कटु राग द्वेष न कहीं महत्
रस प्रीति व्यथा क्षण का जीवन
सुख वैभव के मद न वरेण्य
अपलक तुम प्रेम-प्रतीक्षा क्षण!

भाषा में भर भीनी गुन गुन
वन में गाकर कहते मधुकर —
सामाजिकता का गर्व तुम्हें
गुण में पाँती से निपुण न नर!
हम भी रचते मधु स्वप्न छत्र
तुम उसे कहो पर, मधुप भ्रमर
वह नर समाज न भी सुघटित
जिसमें रहते मिल नारी नर!

गुन मधुर फूल रव भ्रमर गूँज
मधु चक्र संजोते मक्षि सुघर,
वे जीवन शिल्पी भू श्रम रत
सुंदरता के स्नेही सहचर!
भू सरस छोड़ मधु संचय कर,
गुन का करते जग में आदर,
वन फूल उपेक्षित शोभा का
मुख चूम-भ्राम करते उर्वर!

मुख गंध अतुल को पिला मधुर
बोले अपलक दृग सरस फूल—
हम शोभा पावक के स्फुलिंग
छाए वन उपवन में अकूल!
उर सौरभ से भर भू आँगन
हम सित अर्पण के क्षण पावन
देखती हमारे दर्पण में
जीवन सुंदरता निज आनन!

भू शोभा के संदेशवाह,
शाश्वत प्रहर्ष के मुकुलित क्षण,
गाता सौन्दर्य चिरात्मा में
बहुरंग श्वास मन भू जीवन!
हो फूल सुभग जग जीवन मुख
की सुषमा के प्रति उर चेतन
शोभा विहीन भू जीवन मन
ज्यों दृष्टि शून्य तम कूप नयन!

इस उच्छल वारि में चटुल मीन
कहती तट पर रुक कर क्षण भर,
किस बौद्धिक मरु में भटक रहा
धिक छल मृगजल के पीछे नर!
देखा क्या सुषमा न कुछ जग में
ज्यों मीना न हिल जल प्रवास ?
मानव जीवन की श्याम प्रीति—
यों चर सकती जन भू संगम!

यह भाव मुक्ति — जो बौद्धिक को
दुर्लभ — रह शोभा प्रीति लीन
जग में रह सकता मनुज सहज
ज्यों निस्तल जल में मुक्त मीन !
चिद् रस निर्मल जीवन सागर
जग सा अकूल स्थित मनुज प्रेम
तट डूबा करे जन मन प्लावित —
इसमें ही मंगल योग क्षेम !

जल के कोमल वक्षःस्थल में
छिप गई मीन फिर रस प्यासी
जल से ही भूतल पर आए
स्थल जीवन को दे शुभ आशी !
शोभा कानन मृग — शावकों से
सहसा बन सखा मनुज का तन
पशुओं को डरा अहेरी नर
क्या जीत सका भू जीवन रण ?

क्रीड़ा प्रिय मन जीवन विमुक्ति
जग में छलाँग भरती निर्भय
फिर भी सुन सहसा पक्षी रव
मैं रहता चित्र लिखित तन्मय !
यह प्रेम सृष्टि सचराचर संग
रहना जो सीख न पाया नर
तब वृथा मान — धन हृदय हीन
वह कैसे देखेगा ईश्वर ?

मन गहना — सी शैशव प्रांगण
मुझमें ही खेले कूदे जन
सब एक सूत्र में बँधा हुआ
तृण तरु कृमि खग पशु नर जीवन !
मन छोड़ — न सका मृग बर्बरता
नर छोड़ सका चिर रण तत्पर
नख पुच्छ शृंग वंचित पशु वह
कहता इतिहास — न पशु स नर !

कानन जीवन ही में उसने
छूए थे अंत ज्योति शिखर,
बृहदारण्यक उसकी तप रत
भगवत् जिज्ञासा से भास्वर!
जिस अंतरिक्ष में कूद फाँद
नभ बाला मृग अब बहु गर्वित
उससे विराट् वे अंतरिक्ष
जो देखे उसने ध्यानस्थित!

फिर आमंत्रित करता नर को
भी मरकत छाया प्रांगण में
वह बहिर्जगत में खोया अब
उसका प्रकाश उसके मन में! —
सुनता था अद्भुत प्रकृति के स्वर
वह भी विकास कामी विस्मित —
मानव को ले नव ज्योति शिखा
जीवन पथ करना था ज्योतित!

ओढ़ा हिम शिखर—किरण किरीट
मस्तक का भू चरणों पर धर,
मैं ऊर्ध्व दृष्टि से देख रहा
था भंगुर वही अमर अक्षर!
निर्गुण असंग अत स्थिति स
मैं देता जन को आश्वासन —
मुझको अपने ए भी चिर प्रिय
जन धरणी का मरकत प्रांगण!

आनंद रूप मैं हूँ अपूर्व
मैं स्वतः एक स बहु बन कर
ऐंद्रिय मांसल भू जीवन में
रस मूर्त—सत्य शिव में सुंदर!
आत्मा केवल मेरा दर्पण —
जीवन मेरा शाश्वत आनन
मैं आत्म बोध हित मुड़ क्षण भर
करता उसमें अपने दर्शन!

आत्म स्थित भी—जन भू ही का
मैं शिखर—नहीं इसमें संशय
था मात्र शून्य—दिक् काल न विधि
मैं तुम न असत् न जगत् आश्रय !
से प्रेम वेणु छेड़ी मैंने
रस तन्मय विश्व सृजन की लय
मैं प्रकृति पुरुष बन महत् बुद्धि—
मन अ– चेतनमय लीलामय !

बहु सोपानों में विचर उतर
साकार हुआ मैं जीवन में
पर्याय उभय हम—यह निश्चय
देखोगे तुम तद्गत क्षण में !
यों कह फिर मौन हुआ गूँजी
अम्बर में गई प्रतिध्वनि भर
गूँजा अनन्त—यह सत्य !—उदित
रवि से नभ द्युति झलक लिए भास्वर !

शोभा आनन्दित अतुल—अनन्य !
पर मुझे तुम्हारे शुभ्र शिखर
आकर्षित करते उच्च प्राण—
तन्मय रहता मेरा अन्तर !
अनुभव करता मुझको उर में
उस महामन का स्वप्न महत्
जिसके प्रतीक तुम आत्म मग्न
जिसका क्रीड़ा स्थल निखिल जगत !

होकर अनन्त में लीन मुझे
शाश्वत सुख के करने दर्शन
स्वर्णिम उन्मेषों के प्रभात
देखने घाटियों पर नूतन !
चाहता—हृदय में खोलें मित
उपाएँ निज रस वातायन
देखूँ निज तेजोमय स्वरूप
मैं वही पुरुष जो रस प्रथम !

इस भाँति एक दिन निर्भय उर
वह शिखरों पर करने रोहण
चुपके से निकल गया घर से —
निज तन मन जीवन कर अर्पण !
निश्चय वह भी जीवन ही था
चित् शिखर जिसे कहते ईश्वर
चढ़ता ही गया अतुल अविरत
उस ज्ञान प्रखर सित अमित पथ पर !

वह रजत नील नीहारों में
हो गया घने धूम स ओझल —
तब जाना उसने वह केवल
आत्मा का चिन्मय अस्ति अचल !
लय होने से पहले सहसा
देखा उसने आँखें भर कर —
सब जग म निखिल चराचर मे
जीवन विकास पथ में ईश्वर !

पर लौट न सका जगत में फिर
वह आत्म ज्योति का दग्ध शलभ
अनिवार्य ज्ञान हित लोक कर्म
कहता था नत मुख निर्मम नभ !
प्रिय सुहृदों ने की व्यर्थ खोज
मिल सका न फिर उसका परिचय
नित नाम रूप पाते विकास —
यह जगत् बढ़ता पथ अभय !

चिर पावन था वह हिम प्रांतर
सम्मुख उन्मीलित गौर शिखर —
एकाग्र दृष्टि गिरि की भरती
चित् शुभ्र प्रेरणा से अंतर !
विधि ने विरचा था निभृत पट्ट
मर्मर श्रम पर करते चिंतन —
लोक पादाग्नि जग समुद्र
शुभ भू जीवन का संपादन !

अणु संगर से संरक्षण पा
बहु युग प्रबुद्ध देशों के जन
हिम संयम में एकत्रित हो
करते निज मन सिन्धु मंथन!
गत जाति वर्ण संकुलता खोल
राष्ट्रों की सीमा कर प्रतिक्रम
मानवता के सागर तट पर
समवेत डुबाते निज तम भ्रम!

अब नव इतिहास न गढ़ पाते
जन भू के अक्षम जन नायक
उर पलने में नव संस्कृति को
युग शिल्पी देते जन्म पृथक!
मानव आत्मा को पृथ्वी पर
अवतरित कराते वे अविरत
जो ध्यान धारणा के मन में
अटकी थी — जीवन से उपरत!

युग खंडहर के उपकरणों को
नव चिति पट में कर संयोजित
नव मानव संस्कृति का व्यापक
प्रासाद उठाते दिक शोभित!
गत घृणा द्वेष की खाई भर
कर धरा प्रीति का शिलान्यास
संयुक्त कर्म रत अपनाते
वे नव युग जीवन क्रम विकास!

इतिहास भूमि से उठा चरण
सांस्कृतिक पीठ पर कर रोहण
जड़ स्थितियों से ऊपर उठने
नव मूल्यों से रच भू प्रांगण!
मुट्ठी भर आदर्शों की से
बढ़ सकता अब न धरा जीवन
भीतर से बदल मनुज मन को
गढ़ना बाहर से जग नूतन!

एकांगी मत भौतिकता – का
वे देख चुके थे कटु अंत
पतझार जहाँ सिसकी भरते
कल हँसता जहाँ विभव वसंत !
समदिक् मानिकता में बँधकर
बन सकता मनुज न चक्र दंत
यह सूत्रात्मा पंथी – उसको
चाहिए ऊर्ध्वमुख चिद् दिगंत !

संस्कृति की निकट प्रकृति के नव
सात्विक समग्र मानव जीवन
नव स्वप्न चेतना में परिणत
बहु जाति पीढ़ियों का मिश्रण !
नर नारी गण उन्मुक्त प्राण
शुभ रचना श्रम में रहते रत
भू शांति पीठ नव मानवता
जन जीवन मंगल हित युग व्रत !

मित अल्प बाह्य जीवन साधन
जड़ यंत्र सर्व सुख के वाहन
अंतर्मूल्यों के सर्जन में
तत्पर रहता नव भू यौवन !
आत्मा के मुख का दर्पण हो
यंत्र समृद्ध मानव जीवन
भू मानवीय हो जन संस्कृत –
संयुक्त यत्न करता भू मन !

यंत्र संयम हो बहिर्मुखित
आभा नव जीवन उन्मेषण
हों भाव कर्म में रस चिन्तन
भौतिकता हो शोभा सबक !
सुंदर हो जन धरती का मुख
भू रहे न दैन्य व्यथा मूर्छित
वह चिर तरुणी – नव जीवन की
शोभा से सतत रहे भूषित !

जीवन की मरकत मतिका में
नव स्वर्ग शुभ्र कलिका विकसित —
मानस का मनोदय अंबर
रस दिव्य चेतना से दीपित !
जीवन का क्षेत्र भरा निश्चय
नित सृजन हर्ष से रोमांचित —
नृप मोचन भाव विचार मूल्य
जीवन मा हो रस सपोषित !

गिरि अधित्यका में पर्ण कुटी
निर्मित कर रहते साधक वर
अंतर्मुख सित चिन्तन में रत
अधिमन शिखरों पर रोहण कर !
चिन्मूल्यों के अनुशीलन हित
विज्ञान भूमि में रहता मन
बहु ऋद्धि सिद्धि भी उन्हें प्राप्त
दृग मूँद सुलभ प्रभु के दर्शन !

संयुक्ता मुसकाती उन पर
जो जग से कट रहते ऊपर,
अंत प्रकाश के दग्ध सघन
भटका करते मन के भीतर ! —
जगदात्मा से रह पृथक सतत
चिन्मुक्ति कूप रस में मज्जित
आत्मा के असि पथ व्रती पाँथ
जीवन उपरत जन भू हित मृत !

प्रभु मुख न प्रतिफलित कर पाया
उनका विरक्त मानस दर्पण
वे सहज रूप से जीवन का
कर पाते पूर्ण न सत्य ग्रहण !
भव भीत बाह्य मनुष्यता में
अवलोक न पाते तत्व अमर,
उर सर्प रज्जु भ्रम में उलझा
बिसरा जग जीवन में ईश्वर !

जीवन विकास गति प्रति चेतन
अध्यात्म तत्व के अभिलाषी
अंतर्मन के वैज्ञानिक वे
कुछ संत दृष्टि अध्यात्मवादी!
सामूहिक जीवन निर्मित कर
व्यक्तित्व हो रहा था कुसुमित
पा रस प्रकाश का सूक्ष्म स्पर्श
जन भू मंगल होता विकसित!

चिद् शुभ्र शांति हिम शिखरों की
गिरि अधित्यका में थी स्थापित
प्रेरणा ग्रथित था रजत हरित
परिवेश — ऊर्ध्व गरिमा भासित!
क्या जीवन? कौन जगत् स्रष्टा?
उठते अंतर में प्रश्नोत्तर —
खोजती स्वत ही निभृत शांति
चिन्मय को निज भीतर बाहर!

जगती मानस में जिज्ञासा
क्या सृष्टि जीव आत्मा ईश्वर?
क्या पाप पुण्य क्यों सुख दुख भय?
क्या अन्न प्राण मन क्षर अक्षर?
श्रद्धा आस्था पथ से कैसे
भू जीवन में भर संयोजन
सत प्रकाश के भुवनों में
मनुपन मन कर सकता विचरण?

यम नियमों का निर्वह कर स्थिर
कर चित्त वृत्तियों का निरोध
चढ़ ऊर्ध्व प्राण सोपानों पर
मिलता आत्मा का शुभ्र बोध!
उर रहता ईश्वर से वंचित
जीवन — निषेध वर्जन पीड़ित
जग नरक कुंड रहता जीवित
मन निष्क्रिय विरति तम में कुंठित!

तन मन प्राणों के भुवनों को
कर महत् स्पर्श से आलोकित
मिलता न चेतना रश्मि मूल
जिससे जन जीवन पट गुम्फित !
हो निखिल हृदय मन का कल्मष
भरता न ज्योति निर्झर पावन
खिलता न शुभ्र शाश्वत का मुख
उन्नीत करे जो भू प्रांगण !
खुलता न परम शोभा गवाक्ष
छँटता न महत्ता का तम घन
आनंद प्रीति के अमृत स्रोत
भू पर न उतरते नभ से छन !
विद्युत्पति सम्यक् शक्ति शिखर
करती न जगत् का रूपांतर
भू जीवन विमुख विरागी हित
चिन्मय अव्यक्त रहता ईश्वर !

सच्चिदानंद सा शुभ्र शृंग
भावोन्मेषित निज रचता मन
सर्वत्र दिखाई देता प्रभु
प्रतिक्षण रहस्य खुलते गोपन !
जड़ से चेतन तक एक सत्य
पग पग में व्याप्त — स्वयं रस घन
इंद्रिय से ईश्वर तक अखंड
संचरण प्रेम का सत् पावन !
भव रोग शोक भय कर्दम में
वह अमृत सिद्ध रस निःसंशय
जीवन विकास पथ में अविरत
भू नरक स्वयं उपशम निश्चय !
धीरे धीरे पीढ़ी पीढ़ी
होगा अमूर्त मानव विकसित
जीवन विकास क्रम सहयोगी
भू ईश्वर प्रतिनिधि बन अविजित !

साधन का घर उस पार नहीं
भू जीवन ही उसका प्रांगण,
मन मानस में बहिर्जगत पट भी
ईश्वर के मुख का हो दर्पण!
भागवत कर्म ही मनुज धर्म
हो धरा स्वर्ग मंगल सर्जन
संयुक्त हृदय हो ऊर्ध्व दृष्टि
भू जीवन प्रभु रज को अर्पण!

अधिमानस के देवों का युग
अब बीत चुका — भू नर ईश्वर
तब थे विभक्त — अब भू जीवन
भगवत् विकास संचरण अमर!
जग ही में संभव प्रभु दर्शन
अब ब्रह्म सत्य — यह निःसंशय
ईश्वर प्रतिनिधि शाश्वत मानव
रज रूप मर्त्य नर से अतिशय!

वह पराशक्ति — अब ईश्वर की
जननी — दोनों को कर विकसित
दृढ़ प्रीति पाश में बांध रही
चित जीवन में कर संयोजित!
अंतर्वासी को भू वासी
अपना निज रज को कर उपकृत
भू को अपने हृद् शतदल में
रच स्वर्ग सँजोता उसके हित!

विरत जब वर्षा के नव घन
भिन्न जाति पातियों के स्त्री नर
रचते पावस ऋतु का उत्सव
गिरि तलहटियों का मुखरित कर!
नर आदिम वस्त्रों में भूषित
मृदु वन पशु चर्मों में वेष्टित
पंखों में शीश किरीट मँढा
मगन विद्युत् घन में हर्षित!

स्त्री बन फूलों की बनी रच
सज रुचि विविध गहनों स तन
नीली पीली चुनरी लटका
पुरुषों के संग करतीं नर्तन।
वे हँसमुख प्रथम फुहारों सी
छा जाती गिरि बन प्रांतर में—
पावसोल्लास को वाणी दे
अपने कलकंठों के स्वर में।

नव संस्कृति के स्पर्शों से अब
हो मानवीय बन भू जीवन
बन भू कुटुंब का सभ्य मग
बनता जाता—नव युग चेतन।
उनकी प्रसन्न तन्मयता का
स्वागत करता संस्कृति प्रांगण
उन्मुक्त हर्ष की थापों स
कँपता निश्चेतन बन का मन।

पक्षी हर्षित भरते कूजन
शश मृग रुक करते खड़े श्रवण
महुएवाँ उठ बन छायाएँ
प्रावृट् का करतीं अभिवादन।
पी कहाँ पुकारता—दव स्निग्धा
नयनों में घन अंजन रेखा
गिरि पठार, सर सरिताओं स
झाँकती चपल विद्युल्लेखा।

मालती संग में सोंक पीठ
बन भू जीवन के प्रति अर्पित
जन पीते नृत्य का पर्व मना
भू झोर छार करते संस्कृत।
रचते शृंगार युवतियों का
नव युवक प्रसूनों स सुंदर,
कबरी में रक्तिम जपा गूँथ
कलगी कान में खोंस नुपुर।

पुलकित कदंब के गेंदा से
वक्षों का कर केसर रंजित
कटि में धर बकुल मुकुल कांची
भुजबंध मालती के रच सित !
कदली पत्र के करतल से
वे ऊरु रूप करते आवृत
कंटकित कुटज के कुसुमों की
सित पायल से पद कर भूषित !

अब फूल मास के से अकलुष
मुग्धाओं के वे कोमल तन
रस और प्रीति मंदिर प्रांगण —
शोभा शिल्पी करते पूजन !
देता भावों का शुभ्र अर्घ्य
मन पद स्वर्ग सुषमा पावन
उन्मेषित करता जन अंतर
भू जीवन ही बन प्रभु दर्पण !

हिम शिखरों पर रोहण करता
साहसिक कर्म प्रिय नव यौवन
भू स्था शोभा में विशिष्ट
गांवों के दे निःशब्द भुवन !
सित गिरिश्वर्य श्रेणी मंडित
हो ऊर्ध्व प्राण भासित अभिमन —
नत इंद्रधनुष केतन फहरा
हरता नगराज भवन सावन !

हिम शीतल स्फटिक शिलाओं पर
सूरज पावक बन गिर प्रकाश
नव रंगों की रच चकाचौंध
भरता दिगंत में शुभ्र हास !
ऊषा संध्या स्मित शृंगों को
करतीं मणि स्वर्ण किरण भूषित
टूटती प्रेरणा निर्झर सी
शाला पर सहसा स्वर्णिम तड़ित् !

निर्झर झरते हों पुष्प वृष्टि
झरते हों रत्नों के झरने
किरणें नव वर्णों का वैभव
बरसातीं शिखरों को वरने!
कँप नील हरित मोहित रंग के
लहराते रेशम घास के घर,
भ्रमरों की मुख शोभा से स्मित
भ्रमते किशोर अपलक पुष्कर!

अप्सरियों की मृदु बाँहों से
भाते मृणाल फैला करतल
वक्षों से राज मराल गौर
मुँह ढँपे पत्रों में कोमल!
रंभा मेना सी शोभाएँ
तिरतीं हिम सरसी में बिम्बित
लगता फेनोच्छल नव उभार
पृथु यामिनि भार सा भावोसित!

कितने ही रंग के धूपछाँह
चलते निःस्वर गिरि शिखरों पर,
पर विहग मुखर अद्भुत चापें
सुन पड़तीं उर में विस्मय भर!
नीचे हँसमुख श्यामल प्रसार
फैलाए फूलों का आँचल —
बहु वर्णों भरा ऊर्मियों से
हरता मन स्वर्ग खंड भूतल!

नव एक महत् चेतना शक्ति
सक्रिय थी वहाँ सृजन उर्वर,
अतिक्रम कर जो गत भू मन को
रचती जग जीवन लोकोत्तर!
आनंद ज्योति सौन्दर्य शांति
वह सीप ऊर्ध्व नभ से भास्वर
निर्मित करती नव भू जनम्
शिव प्रीति प्रथित उर घर सभी भर!

उठ देह भाव से जन ऊपर
अनुभव करता चिन् मुक्ति महत्
नर नारी उर सान्निध्य सूक्ष्म
रस प्रभा में होता परिणत!
स्वर्गिक प्रतीति से दीपित मन
हरता भू पथ भय संशय भ्रम
श्री शोभा सर्जन में कुसुमित
होता शुचि प्राणों का संयम!

भू जीवन की शोभा देती
नव यौवन को शिव आमंत्रण
अब निन्द्य अनैतिक कर्म न था
प्रति सहज परस्पर आकर्षण!
स्वर्णिम संगति थी जीवन में
रस मूल्य न ह्रास तमस कुंठित
मिट व्यक्ति प्रीति तन यष्टि मोह
अब सर्व प्रीति शोभा विकसित!

भू प्राण हृदय मन में केन्द्रित
जन काम प्रीति रस में परिणत
अब लोक शक्ति होती कृतार्थ
नव कला सृजन स्वप्नों में रत!
रचन रूप मोह शोभा पूजन
शिव युग्म प्रणय बन भावार्पण
इंद्रिय सुख बन चंद्र प्रहर्ष
खोलता क्षितिज मन में नूतन!

कैलासाधिराज का हिम पर्वत
मरकत भू आसन पर शोभित
करती परिक्रमा शोभा नत
षड् ऋतुएँ नव यौवन मुकुलित!
मधु भाती आभा स्पर्शों से
खिल पड़ती जब पर्वत घाटी
पुष्पों के ग्राम विमंत रंग
अप्सरियों सी उड़ती घाटी!

पल्लव पावक प्रगुम्फि मुख से
हँस उठते दिशि मुख रोमांचित
नीली पीली पाटल श्री से
गिरि कानन लगते दिव् दीपित !
स्वर्णिम मरंद घन गर्भों के
आतप प्रसार भाते विस्तृत
उड़ता विहगों का माला नभ
नभ पत्रों से दिशि कर चित्रित !

इठलाता भीम मसृण समीर
बहु वन्य सुरभियों में पुष्पित
शिशु मुकुलों की सुख गंध चूम
तरिल तलहटियाँ कर मुखरित !
रंगों के छींटों के विगत
कँप कँप भरते मोहित मर्मर
यौवनोन्मेष से उद्दीपित
हरता निसर्ग सुख घन अंतर !

हँसता निदाघ रवि अंबर में
माखम के कंचुक सा उज्ज्वल
हिम वाष्पों का मृदु पट बुनती
सुरधनु वितरित किरण शीतल !
छाया की बाँहों में आतप
अलसाया सा रहता कोमल
गिरि चोटों से बन नव हिम बन
नव झरनों से बहते प्रतिपल !

मधु में पेंगड़ा ग्रीष्मागम में
खिलते नव कलियों के आनन
हँसते गहरे प्रिय रंगों की
चपचित छायाओं के दर्पण !
विस्तृत लगता नभ मुखरित दिशि
निर्मल प्रसन्न पवन अंतर,
हिम संयम में लगता निष्पाप
मधुऋतु का ही स्नेही सहचर !

ऋतुओं की ऋतु वर्षा आती
श्यामल गजेन्द्र घन पर शोभित
पर्वत ऋतुओं की सम्राज्ञी
विद्युत् मणि लड़ियों से भूषित !
मस्तक पर सुरधनु मोर मुकुट
नभ छत्र बिन्दु मुक्ता मंडित
सित वाष्प चँवर शोभा सीमित
दिग्, गर्जन से आगम घोषित !

दुहरे तिहरे रँग इंद्रचाप
वदनवात से छा कुसुमित
सुर बालाओं की विद्युत् प्रभ
पद चापों से रहत कंपित !
मोती हारों सी बौछारें
गिरि बाला को करती हर्षित
हँस पड़तीं मखमल तृणकुटियाँ
मरकत आभा सी विरचित !

ऊँचे उड़ने वाले पुष्पक
वारिद भरते उन्मद गर्जन
शत तड़िल्लताओं से वेष्टित
विरते नभ में गिरि से घन तन !
हिम शृंगों से लिपटे रहते
घन चित्रग्रीव पारावत सम
सीपी के पर्वों से समका
सुरधनुओं के रँग विद मोहन !

नव रिमझिम पंखड़ियाँ फैला
गाना देते पुष्कर जलधर
घन तुहिन कणों का किरणों में
मणि हार गूँथते भू पर झर !
नीली पीली सित हरी लाल
तन्वी उपमा सुभ्रु चंचल
अंबर की ज्योति निराभा सी
मनभा विरोध-हर्षा आगम !

चितकबरे साँपों से लेटे
कुटिल वन घाटी में बसते,
क्षण में झिरियों में फन फैला
गिरि निर्झर से टकरा हँसते !
तीतर पंखी धूमिल बादल
बिखरे रहते नभ में निःस्वर
संध्या सिन्दूरी धूली से
रँगती जिनके सित निर्मम पर !

मेघों की छायाएँ चुपके
चलतीं तृण शाद्वल पर क्षण क्षण
वन हरित चिनगियों से बुझते
पावस के तम में पट बीजन !
उड़ श्वेत बकों की श्यामा पंक्ति
रात्री का करती अभिनन्दन
सित प्रीति पुलकित गा स्वाति विहग
मधु उर उद्वेल करते क्रंदन !

शशिमुखी शरद ! — तकते अपलक
बिस सरसी उर के पद्म नयन
स्मित प्रीति तरी सी चन्द्र कला
तिरती नीलम नभ में मोहन !
पर्वत प्रदेश की प्रिय रचना
सौन्दर्य सिन्धु सी हिल्लोलित
आनंद स्पर्श से अंगों को
करती अवाक छवि सम्मोहित !

तारा का अंचल दे मग पर
छहरा हिम धौत तिमिर कुंतल
वह स्वप्नों की गोरी श्यामा
निर्ममता सी ममती निर्मम !
भूतल का कल्मष पंक चीर
नूतन प्रकाश लावन उत्पल
कलि कुसुमों के कोमल स्तव से
पर्वत पंजर सजते मांसल !

भीनी गंधों से भरी दिशा
कुसुमित औषधियां के कानन
कासों की शय्या पर जगती
ऋतु करतल पर धर चंद्रानन!
वह राजहंसिनी सी भू पर
चलती चलती पायस निःस्वर,
बिछती गिरि वन में पृथु मग में
स्मित शेफाली कलियाँ झर झर!

हेमंत शिशिर — पर्वत प्रदेश
कुहरों से हो जाता परिवृत,
पल भर मे होती दृग ओझल
सब दृश्य पटी माया कल्पित!
हिम — धूम फेन माखन कोमल
झरता रोमिल रुई सा हिम
चाँदी के फाहों सा उज्ज्वल —
हँस उठती रोमांचित रिमझिम!

पौराणिक पक्षी सा प्रांतर
उड़ता शिखरों में पंख खोल
गत राग मराली की शोभा
दिक् शुभ्र छटा में मुक्त लोल!
हिम परियों की सित चरण चाप
होती अदृश्य अमृत संकृत,
फिरते हिम पक्षी रंग पंख
फूलों-से उड़ कलरव मुखरित!

पतझर के वन पंजर से छन
सन् सन् चलती खर हिम समीर,
पत्तों को रँग कंपित कर अंग
हो शीत वह्नि की तप्त तीर!
जम जाती सरिताओं की गति
पथराते स्फटिक शिला के सर
कोमल जग बन जाता कठोर
कंपन भी कँप उठती थर थर!

किरणों से विरहित रवि का मुख
लगता दिन के शशि सा दुर्बल
बिखरे न रश्मि सुख रहित पथ
छाया रहता घन रज मंडल !
इस भाँति सानुमत् प्रांगण में
पल पल घटते नव परिवर्तन
वह हो निसर्ग शृंगार कक्ष
ऋतुएँ सज धज करतीं नर्तन !

अब राजनीति को पीछे कर
सम्मुख चलता संस्कृति का रथ
भवदीपित मानव अंतर
की शोभा मुकुलित दिग् भू पथ !
सत्पुरुषों से नेताओं के
पद मद से अब न धरा आहत
सुख शील सभ्य अत संस्कृत
मानवता रचना संयम रत !

भव संकट का दिग् गहन धूम
घन बाधा विघ्नों का पर्वत
अब था विलीन हो रहा सर्व
नव युग प्रबोध से क्षत विक्षत !
पा नयी दृष्टि अब युग मानव
जीवन का करता मूल्यांकन
देशों राष्ट्रों स्त्री पुरुषों के
खुल गए भाव गत वे बंधन !

अब मूल्य शुभ्र भिति में परिणत
परिश्रम विश्व का परिवर्तित
जीवन पदार्थ रस सिक्त पावन
भू आध्यात्मिक संयम भूषित !
शुभ शांति लोक मन में स्थापित
पशु ग्रस्त सिन्धु जल में मज्जित
मनु पूर्वग्रह से मुक्त धरा
स्थिति में सहृदयन भी ग्रहमिन !

उत्तर स्वप्न

नर अंतरिक्ष युग से परिचित
फहराते ग्रह ग्रह में केतन
रण बंदी जड़ विज्ञान मुक्त
नव जन भू रचना प्रति चेतन!
अब मानवीय गत यांत्रिक जग
विद्युत् अणु बल घन युग वाहन
वैज्ञानिक स्वर्ग प्रतिष्ठित हो
ग्रह नक्षत्रों तक भू प्रांगण!

क्रम विकास स्पर्धा दर्पों में
सब हुई शेष — जीवन समृद्ध
जड़ बहिर्विभव से अंतर का
चिद् वैभव जन प्रिय — स्वत सिद्ध!
नव भाव वस्तु बल संयोजित
अंत प्रबुद्ध मानव अंतर
अंतर्मुख आध्यात्मिक जीवन
में जगा आत्म नव जन भू पर!

चैतन्य रश्मि में कर प्रवेश
उपचेतन रजनी की दीपित
युग कुंठा संशय चिद् भ्रम को
श्रद्धा का स्पर्श मिला जीवित!
अपरूप अमृत कलाओं में
देखा सौन्दर्य क्षितिज नूतन
नव छिन्न विकृतियों के कपाट
नव खुला नाक अगम तोरण!

मिल विगत विरोधी शक्ति शिविर
नव जग भू रचना में तत्पर,
सहयोग स्वर्ण सोपान बना
जन चंद्र लोक में रहे उतर!
पौराणिक पशुमुख सा ही अब
गत युग मनुज स्मृति मलिन शेष
वैज्ञानिक आत्मिक किरणों में
मानव मन बहिरंतर प्रवेश!

अणु-ध्वंस प्रौढ़ युग मानव मन
भौतिक जीवन प्रति भ्रांति मुक्त—
अंतर्मूल्यों प्रति आकर्षित
वह आस्था प्रीति प्रतीति युक्त!
नव अंतर्मन अरुणोदय का
जन भू मानस करता स्वागत
नव जीवन के गृह आँगन का
ईश्वर शाश्वत नव अभ्यागत!

बहु भू देशों का सैनिक बल
भारत का करता संरक्षण
आभा रस भू-मानव ज्योति
सौन्दर्य शांति की सित प्रांगण!
आवश्यक यद्यपि सैन्य शक्ति
अब नहीं—किन्तु भू उपचेतन
अब तक हो रूपांतरित नहीं
रक्षा प्रतीक बहु बम साधन!

अणु रण से हुआ न पूर्ण ध्वंस
सभ्यता शेष अब भी निश्चित
गत मिथ्या मूल्य हुए विनष्ट,
नव वास्तवता प्रति मन जागृत!
बौद्धिक विवेक के सँग जीवन
अब सहज बोध से प्रकाशित
जग मूल्य चित् स्फुरण बतलाता
भीतर आलोक भुवन विस्तृत!

अणु किरणों से होता विकीर्ण
भू भाग उर्वर-विध्वंस स्तूप
जगती माँ प्रकृति विरूप प्रसव
विघटित मन बनता अंध कूप!
उठ संस्कृति पीठ इधर भू पर
पैगामी नव जीवन प्रकाश
चिद् ऊषाएँ नव क्षितिज व्याप्त
बहिरंतर करती युग विकास!

उपचेतन गह्वर में निःस्वर
धर सूक्ष्म शक्तियाँ ज्योति चरण
निज करुणा स्पर्शों से भरतीं
अणु दंश क्षुब्ध भू मन के व्रण!
भय संशय घृणा निराशा का
युग अंतरिक्ष में घिरता तम—
नव आस्था की हीरक किरणें
बुनतीं नव आशा पट हर भ्रम!

रस भाव चेतना भू सम्मिश्र
चिर नव इतिहासों के प्रांगण
सांस्कृतिक स्वर्ग भू वैभव का
जन भू पर करती आवाहन!
वह मुक्त सृजन आनंदमयी
उर स्वर्ण प्रीति में कर गुम्फित
अंतः श्री शोभा पावक से
नव भू जीवन करती निर्मित!

यह मातृ प्रकृति योजना अटल
शिशु मुकुलित भरें धरा प्रांगण
संस्कार करें मन का किशोर
अवनत रस शिष्ट रहे यौवन!
जीवन अनुभव रस पक्व प्रौढ़
मिल करें धरा पथ निर्देशन
भगवत् रस तन्मय शरद् वृद्ध
मिल श्रद्धा बीज करें रोपण!

नव राम नाम शाश्वत धन
स्मृति भर—चिद् वितरित उत्पादन
शिक्षा संस्कृति सुरभित अंतर,
जन मन शिल्प—शोभा सर्जन!
भौतिक आध्यात्मिक ऋद्धि सिद्धि
भव नव भू मानव के कर गत
निःसीम चेतना मंदिर पथ
न्योछावर पग पग पर शाश्वत!

सित राम भावना स्रोत मुक्त
भंत श्री शोभा में कुसुमित
भावों में वह भावव सुमन
उर का रखता तन्मय विस्मृत !
वह रस मनत यौवना ज्योति
सित रजत कांति सागर में स्थित —
भावी भू रचना मंगल की
भव द्वति म — मनुज ऐश्वर्य कम्पित !

भव भव ऊर्ध्व चिन्मूल्यों का
हो रहा पूण रस रूपांतर,
बहिरंतर युगपत् प्रतिबिम्बित
मूर्तित भू जीवन में ईश्वर।
भव उतर ऊर्ध्व वैभव भ पर
निर्मित करता नव जीवन मन
जग में विकास पथ पर ईश्वर,
भव धर्म हीन गत मूल्यांकन।

अज्ञान तिमिर स मुक्त दृष्टि
सुंदर सुंदरतर बन भू पर
सत्य सत्य महत्तर सत्य वरण
विकसित होता शिव बन शिवतर !
चेतना प्रवित हो मेव बुद्धि
जीवन का मुख कर भालोकित
दैवती — जग में निहित स्वग
मन प्राणा को करता विकसित !

जन भू जीवन प्रति अर्पण ही
अंतिम म प्रेम की रस परिणति
खोजता दीप्त मानव अंतर
जग में भगवत् चरणों प्रति रति !
ईश्वर ही वह संपूर्ण सत्य
जिसके प्रति नत भू जीवन मति
शरणागति ही रस प्रीति साव —
स्वीकृत करती तद्गत जन मति ?

भौतिक भू जीवन भव कृतार्थ
गृह प्रभ वस्त्र स्मित दिग् मुकुलित
तन हृष्ट पुष्ट संयम पोषित
मनश्चेतन नव रस आलोकित !
नव रुद्ध वासना प्रीति सौम्य
प्राणों की शोभा में प्रहसित
नव मूल्यों से निर्मित मानस—
समदिग् ऊर्ध्वग मति समोचित !

अविचलित मति जाग्रत् मन उर,
गत भक्ति ज्ञान पथ हो विस्तृत
भगवत् शोभा आनंद ज्योति
सत् प्रीति शांति रस में विकसित !
आध्यात्मिक अंतर्जीवन नव
रस शिखा चेतना में दीपित
भागवत एकता का वैभव
भव जन भू जीवन में वितरित !

अब कर्मयोग बन भू रचना
मित लोक प्रीति बन भक्ति मुखर
जन जीवन मंगल प्रति अर्पित—
साकार सृष्टि गति में ईश्वर !
शोभा पावन बन रस प्रकाश
भाषा का मुग्ध कल्पना ज्योतित
स्वर्णिम प्रतीति में परिणत हो
भू प्रीति हृदय धरती गुम्फित !

निर्मम विकार उल्लास उमड़
भर देता नर नारी अंतर
ममता का हो सागर सहज
दिग् व्याप्त—अचेतन बाधा तर !
प्राकृतिक जगत् में मूढ़ साम्य
अनुभव करते मन में भू जन
कृत्रिम भेदों में दर्प मुक्त
विस्मित लगता जीवन प्रांगण !

भू प्रकृति हो गई थी नीरव
परिवेश स्वच्छ आहार शुद्ध
उन्नत विचार सौन्दर्य बोध
भव कर्म न संस्कृति के विरुद्ध !
रस सौम्य मन्द सौन्दर्य शुभ्र
पाता वार्धक्य न असमय पर,
विश्राम ज्ञान के परिणय में
परिणत मनुज का बहिरन्तर ।

जीवन संगीत मिलन मिल मम
करता भव स्वर लय गति वर्धित
नव जन्म हुए से रेखांकित
होता पनत यौवन विकसित ।
भव भव विछोह दुखप्रद न तनिक
रस तप्त पक्व फल भर भू पर
चिद् बीज प्ररोहित होंगे फिर
अर्पित होता प्रभु चरणा पर ।

सांस्कृतिक चन्द्र बहु मन भू पर
ले रहे जन्म थे नित नूतन —
आध्यात्मिक मूल्यों में धीरे
शासित होता भौतिक जीवन !
अब बहिर्मुखी यांत्रिकता के
जड़ पदाघात में मर्दित मन
अंतर्जीवन प्रति जाग्रत् था
सित अंत संपद् प्रति चेतन !

संयुक्त कर्म रत रह कर जन
मिलकर करते भगवद् चिन्तन
भव कर्मों में मार्मिक करते
भू कर्मों में प्रभु का पूजन !
भव मध्य चेतना वपु में था
अवतरित हो रहा भव ईश्वर,
जन मन जीवन
कर्मों धर्मों

सात्विक जीवन मित वेश वसन
शोभा ही तन की प्रिय भूषण
रस संस्कृत मन अंतर्जग की
श्री सुषमा के प्रति नति चेतन !
चिद् भाव विभव से श्री समृद्ध
जन कला अमद् करते सर्जन
उर मुग्ध प्रकृति मुख शोभा पर,
शिशु विस्मय से अपलक लोचन !

निज सृजन कला से प्रकृति पुत्र
करते भू शोभा भग गर्भित
नव लता गुल्म कलि कुसुम जंतु
निज जीव बोध से कर निर्मित !
शाश्वत अमर यौवना प्रकृति
अक्षय पौरुषमय प्रिय सुत नर
बँध स्वर्ग प्रीति में रस तन्मय
भग जग का करते रूपांतर !

पुष्पों के स्तबकों से स्त्री नर
बहु संस्थानों में संयोजित
भू श्रेय प्रेम से अनुप्राणित
संस्कृति पावक करते वितरित !
छोटे मोटे सब लोक केन्द्र
वे एक ध्येय से अभिप्रेरित —
मन बहिर्जगत तम में भटका
अंत प्रकाश में हो अन्वित !

मानव विकास का मुख्य ध्येय
हो रहा पूर्ण धीरे निश्चय
प्राणों का जीवन रंग संस्कृत
विचरण करता भू पर निर्भय !
मित प्रीति पंक में मानवीय
ममता भू जीवन का पावन
नर नारी के अंतर्मुख से
उठ गया निमिष का सा गुंठन !

चरितार्थ राग चतना स्व
बन ज्योति प्रीति शोभा वाहन
आनंद निछावर भव भू पर
घर सृजन स्वप्न के शुभ्र चरम !
सित भाव मुक्ति से मनुज प्रीति
भागवत प्रीति में हो विकसित
नर ईश्वर का व्यवधान मिटा
शाश्वत प्रतीति में बसती नित !

मव ¯मन मुक्त कामना ग्रंथि
थी सहज संयमित शीस नमित
गत जाति वर्ण कुल अतिक्रम कर
जन थे सुघर शिक्षित संस्कृत !
मानव कुटुंब के अवयव सब
थे शुभ्र प्रेम की थे संतति
परिवार नियोजन स्वत सिद्ध
संयम पावन थी जीवन गति !

पूँजीवादी जनवादी सम
य स्वर्ग पीठ में संयोजित
श्रित आध्यात्मिकता की प्रेमी
नव भू मानवता हुई उदित ।
गृह माह गर्व दांपत्य स्वर्ग
मव बन भू जीवन में विस्तृत
स्वर्णिम प्रतीति में स्त्री नर का
रस शुभ्र प्रीति करती पुष्पित !

भामूम बदल अध्यात्मवाद
जम भू पर जमी हुआ निश्चित
भौतिकता प्रकृति पा¯ पीठ —
मव वर्ग सभ्यता जीवन मृत !
गण धार्मिक नैतिक वर्ण मूल्य
रस रूपांतरित हुए विकसित
द्द राजनैतिक मार्मिक स्पर्श
गह रचना क्रम में दिव्य कुसुमित ।

नव जीवन स्वर संगति में बँध
जन मंच महत्ता ज्योति प्रथित
लघु सुख दुखों से मुक्त हृदय
जन भू शोभा रस में मज्जित!
पा सर्व प्रीति आनंद स्पर्श
गत निर्मम कुंठाएँ विगलित
ईश्वर ही जग भव यही व्यक्ति
जीवन मम अंग संयोजित!

पशु रण विघटित भू भागों में
अवचेतन आवेगों से हत
जगा न कर्दम में सन वन
हो उठे काम मद प्रति उपरत!
नर निष्पौरुष नारी निःश्री
कुंठा विषाद भय से पीड़ित
जीवन श्री शोभा प्रति विरक्त
सोचते – व्यर्थ रहना जीवित!

काया प्रिय कुत्सित कृमियों स
वे पात प्रिय को तुच्छ घृणित
पशु सुख यथार्थ के तम में जग
आत्मा उनको करती वंचित!
दमनीय वस्तु समझी नारी
शोभा माया मंडल वंचित
आत्मा माया के खँडहर नर
पुरुषार्थ हीन निष्क्रिय मर्षित!

नव संस्कृति के सित स्पर्शों से
धीर वे हो जाग्रत् चेतन
लौटें प्रकाश प्रांगण में फिर
प्रेरणा स्पर्श पाकर नूतन!
मन प्रीति मुक्त अब काम मुक्त
नव भू रचना मंगल में रत
अंध माया से उन्मथित
उभय वास्तवता से अवगत!

... म काम उत्स
वह प्रीति सुधा रस संजीवन
जा हृदय शिराओं में बह सित
जीवन मन का करती पावन!
तन की लिप्सा न शोभा मन
करता चिद् नभ में आरोहण
आत्मा की ज्योति उतर भू पर
होती कृतार्थ — बन नव जीवन!

जिस भाव भवित नव युवति युवक
मानव भावी के अभिभावक
रस अजस्र भर वितरित करते
भावों का सित शोभा पावक!
जीवन प्रेमी भू अनुरागी
मानव तन का करते आदर,
आत्मा को करते रस कृतार्थ
चिद् शोभा से इंद्रिय घट भर!

अधर की असत्व थी सुषमा
अपो न रमती छवि मूर्तित
सुषमा के तन उर शोभा से
युग्मों के मन करते मोहित!
भावों ही के सद् वैभव से
ज्यों नव यौवन तन हो विरचित
जन काम विरत रस प्रीति निरत
रहते पवित्र भी अंत स्थित!

जग फूल मग्न शोभा वहीं
निरते पुष्करिणी में स्त्री नर
ज्यों पद्म पत्रवत् जल में रह
रहते जग कर्दम न ऊपर!
जग में न देह, देह में न मन
मन में न डूबती चिति संस्कृत
न देह बोध न भार मुक्त
नव आत्म बोध न थे दीपित!

ऊपर स्वप्न

जीवन वसंत के कुंजों में
मंजरित वाटियों के भीतर
भेंटें होते नव तरुणि तरुण
श्री शोभा बाँहों में बँधकर।
रस सुख विस्मृत रहते तन मन
प्राणों की सौरभ पी मादन
वह यौन गंध से मुक्त प्रीति
अंत प्रतीत सुख थी पावन।

स्वर्गिक विराम से भाव स्वस्थ —
वे होते भव कर्मों में रत
भू शोभा मंगल प्रति जाग्रत् —
जीवन यापन था प्रभु हित व्रत।
तन फूल मांस के से सुंदर
ऊष्मता भोगता मन की मन
वह नाम रूप नर नारी में
क्रीड़ा करता शाश्वत जीवन।

स्त्री पुरुष देखते अपलक या
ईश्वर का मुख तकता ईश्वर,
तन मन की श्री शोभा गरिमा
भगवत् वैभव की थी मित वर।
रस मूल्य हो गए थे विकसित
रति प्रकृति स्वतः अंत संस्कृत
संयम न काम हित बंधन—वह
श्री शोभा सुख प्रति था अर्पित।

भव पशु पावक न था जीवन
वह प्रीति संचरण था पावन
मानव उर प्राणों को विस्मत
रस शुद्ध भाव पोषक भाजन।
विद्वेष घृणा से मुक्त हृदय
स्वर्गिक प्रकाश का था दर्पण
भू संयम स्रष्टा संघ व्यक्ति
करता सामूहिक संरक्षण।

फूलों के आस्तरणों में अब
शोभित संयम पोषित यौवन —
उपकृत होता प्राणिक पावक
लावण्य वारि में कर मज्जन!
रस संस्कृत युवती शिष्ट युवक
सित संयम शोभा कर्म काम
संयम प्रजनन रत स्वस्थ युग्म
भू जीवन का रति स्वर्ग धाम!

चिद् ज्योति गर्भ में धारण कर
सुघर लसती स्त्री चम्पक तन
दीपों से नव दीपों में जल
शिशु जीवन की खोलती नयन!
भावी जग लेता पुण्य जन्म
चलता शाश्वत जीवन अतिक्रम
भी नव बन हँसता जरा जीर्ण —
जीवन ही सत्य — मरण युग भ्रम!

फूलों से हँसमुख बच्चों में
सुंदर से हो शिव सुंदरतर
जन भू विकास होता उपकृत
चिद् प्रीति नीड़ रच शिशु अंतर!
सहधर्मी बन नर ईश्वर का
मधु तड़ित् शक्ति से गढ़ नव जग
जीवन मुक्ति कर दिव वैभव
प्रभु ओर अजय बढ़ता प्रतिपग!

सत् प्रेम समन्वित नारी नर
अब तप्त काम सुख प्रति उपरत
बँध प्रकृति भजन स्वर संगति में
सित संतति का करते स्वागत!
यों आत्म नियोजित जन कुटुम्ब
ममता न भार बन भू के प्रति
शिक्षित प्रसन्न शोभा-पोषित
संस्कृत होगी भावी संतति!

नव नव गुण होते सहज प्रकट
अव्यक्त प्रकृति को कर विकसित,
फिर रुद्ध–ऊर्ध्व मन से झरती
ऋत चिद् संपद् बन उर शोभित!
अंतश्चेतन सित शिखरों में
उर ध्यान मौन करता विचरण
आत्मा के स्पर्शों से ज्योतित–
मन शोभ–पूर्ण खिलता जीवन!

अब प्रीति नहीं प्राणों की रति,
अनुरक्ति न विरह मिलन बंधन
शुचि स्फटिक पीठ पर श्रद्धा की
वह धर मुक्त ऋत शुभ्र चरण!
रस पुरुष पदी सित चिद् गंगा
करने आई जन भू पावन
नर नारी उर कर स्वर्ग प्रथित
उज्ज्वल कर कल्मष का आनन!

अब भू मंगल ही जन भू व्रत
जीवन रचना ही तप साधन
अर्पित मन का श्रम पूर्ण याग
भव शोभा मुख में प्रभु दर्शन!
सत् प्रेमार्पण ही पाणि ग्रहण
मानव कुल ही शिशु कुल पावन
संस्कृत अंतर ही जन संपद्
भू आँगन भव का वर आगम!

निष्काम प्रेम की श्री सुषमा
रूपी अंगों में बस हरती मन
विस्मय अवाक् रहता अंतर
झेंप झेंप जाते मुख से लोचन!
षड् राग द्वेष से मार मुक्त
मानव उर अब प्रभु का दर्पण
रचना मंगल रत भूतल पर
चिर स्वर्ग शांति धरती विचरण!

हो राग भावना से विकसित
अब बदल दिया भू जीवन पट
रस शुभ्र चेतना ज्वारों से
शोभा प्लावित जन मानस तट !
विस्तृत अब सामाजिक प्रांगण
आनंद प्रेम बसते भू पर
आस्था प्रतीति रत एक प्राण
भू प्रीति ग्रथित स्त्री नर सुंदर !

पशु काम शक्ति को पीछे कर
सित प्रेम आ गया आ सम्मुख
दीपित लगता संस्कृत भू पथ,
श्री शोभा स्मित जीवन का मुख !
प्रिय काम सखा यौवन वसंत
नव रस सुषमा में हो मुकुलित
आनंद गंध से प्राणों को
करते प्रतीति मति सम मुखरित !

रस पूत प्रीति में बँध स्त्री नर
तन बोध रहित मन में थे स्थित
भू आछन्न कल्मष से ऊपर
प्राणों का सरसिज था शोभित !
अब काम ग्लानि से मुक्त हृदय
श्री शोभा का करता आदर,
लौटी थी निर्वासित सीता
राम भू मन का कर रूपांतर !

सौन्दर्य प्रेम बाँहों में बँध
तन्मय — कृतार्थ होता जीवन
रस सित चुंबन परिरंभण में
प्राणों का पावक हवि पावन !
अत संस्कृत संयम करता
भू महज्जीवन का संरक्षण
वही प्रबुद्ध हो स्त्री नर में
तन मन का करता संचालन !

प्रतिवाद न थी अब प्रीति मुक्ति
गत युग में जिसे किया लांछित —
क्रोधांध जनों ने कला शिविर
विध्वस्त किया ईर्ष्या प्रेरित!
पशु युद्धोत्तर — गत वर्ग मूल्य
नव भू संस्कृति में हो विकसित
गत रूढ़ि वर्जनों से विमुक्त
सद् जीवन सौष्ठव में कुसुमित!

मन देह मोह रज से उपरत
अंतर्जग के प्रति जागृत,
अब राग मुक्ति रस संस्कृति बन
नव भू मानवता में परिणत!
जन जीवन के संस्कारों से
हो मुक्त पुरुष स्त्री का अंतर
चित् रस प्रकाश के क्षितिजों में
विचरण करता जीवन भास्वर!

त्याग मोह, काम तृष्णा विरहित
नव मानव का शुभ संस्कृत मन
अंतर्जीवन रचना में रत —
मार्मिक प्रहर्ष ममता सर्जन!
श्री सौम्य शांत अब मानवता
शोभा पथ पर करती विचरण
सित स्वर्ण पीठ जीवन चेतस्,
संस्कृत दिव वापी में मग्न मन!

तप काम बन युग था कामन
सांस्कृतिक मूल्य अब बहु निश्चित
उपचेतन कर्दम से विमुक्त
आध्यात्मिक शोभा में विकसित!
सात्विक महत् — अब भावों के
मधु गुंजन का करता सर्जन
इंद्रिय मन आत्मा का वैभव
नव भू जीवन प्रति कर अर्पण!

स्त्री पुरुष विरत निज तन के प्रति
शोभा रचना प्रति भव अर्पित
अंत क्षितिजों की थी सुषमा
गरिमा मन को करती विस्मित !
भौतिक वैभव विला संस्कृति
हों भले लोक जीवन हित वर—
चित् प्रीति स्पर्श ही जीवन का
मन का कर सकता रूपांतर !

बर्बर जन युग सामंती भय
होगा न धरा से उच्छेदित
जो भाव मुक्त होगा न जगत्
सत् प्रीति प्रथित नर नारी चित !
रह पर नर ईश्वर धर्म काम
तब तक जन भू मन में वंचित
रस शुद्ध न जब तक राग भूमि
उर काम द्वेष से नहीं रहित !

अब स्वर्ग चेतना का प्रतिनिधि
मानव भू पर करता विचरण
अध्यात्म धरा रज में मिल कर
बनता चरणों को छू पावन !
ईश्वर से पृथक नहीं अब जग
होता अमूर्त मूर्तित प्रतिक्षण
भगवत् सुख में रहता जन मन
भगवत् जीवन करता सर्जन !

मन को न ऊर्ध्व सोपानों पर
करना पड़ता निर्मम रोहण
अब समदिक् जीवन पथ पर ही
शाश्वत शोभा करती विचरण !
वैयक्तिक सामूहिक गतियाँ
स्वार्थों से विषम न अब पीड़ित
आध्यात्मिक भौतिक ऊर्ध्व अध
जन भू जीवन में संयोजित !

मन से ऊपर—परमात्मा का
प्रतिनिधि अब विकसित भू मानव
वह सूर्य किरण मणि पात्रों से
पीता स्वर्णिम चित् रस आसव !
शशि अमृत पाणि वीणा उसकी
सागर मरकत विगलित अंतर,
गिरि उसके चिन्तन मौन शिखर,
नीलिमा दृष्टि नीरव भास्वर !

पग पग पर ईश्वर का अनुभव
जग मन में भरता स्मित विस्मय
गिरि वन खग मृग कलि कुसुम न थे—
सत् ब्रह्म सकल जग लीलामय !
मिलता असीम का गूढ़ स्पर्श
सीमा से—उर को कर तन्मय
क्षर वस्तु रूप रेखाओं से
झाँकता सत्य अक्षय अतिशय !

कपिला गौ ही सी प्राणों के
खूँटे से भक्ति बँधी घर घर
चित् दुग्ध धार से शुभ्र शुभ
पोषित करती मानव अंतर !
अब ज्ञान न था जीवन निष्क्रिय
अब शुष्क न थे कर्मों के क्रम
जग जीवन की स्वर लय में बँध
था व्यक्ति मर्त्य सुख रत प्रतिपल !

आत्मा के स्तर पर प्रभु दुर्गम
दुष्कर हों—इसलिए भी निश्चय
जीवन दर्पण में ईश्वर मुख
देखना सुगम—जग विधि आशय !
जन भू मन में उमड़ा शाश्वत
मूल्यों का वैभव हो संचय
भगवत् शोभा आनंद ज्योति
उतरें भू पर—प्रभु जगतामय !

जीवन के वपु में ही प्रभु के
मांसल समग्र दर्शन संभव
आत्मा ईश्वर का चिद् स्फुलिंग
केवल — युग कवि का था अनुभव !
अब व्यक्ति मुक्ति गत ऋद्धि सिद्धि
करती न हृदय को आकर्षित —
ईश्वर को जग जीवन क्रम में
सर्वांग रूप करना विकसित !

रस प्रेम तत्व ही सत्य स्वत
उसके सम्मोहन से जीवन
हो उठता शोभा मूर्त सहज —
वह निखिल सृष्टि का सित कारण !
क्यों जग क्यों जन्म मरण सुख दुख
ये व्यर्थ प्रश्न — रस सृजन स्वयम्
कर देती प्रीति निरुत्तर मन —
वह सत्य सिद्धि पथ गति उपक्रम !

इस प्राण हरित जीवन तरु को
मरकत जन भू पर कर स्थापित
उसमें ही भगवत् प्रेम नीड़
श्रद्धा तृण से करना निर्मित !
हो सार्व भौम भगवत् वैभव
जन भू जीवन मन में मूर्तित
वैयक्तिक मुक्ति न प्रकृति ध्येय —
वह सृष्टि उन्नयन से वंचित !

अब आध्यात्मिकता में न भक्ति
केवल यम जप तप व्रत पूजन
वह ईश्वर तन्मय रह, भू पर
विकसित जन जीवन की साधन !
अब ज्ञान न निष्क्रिय आत्म बोध
या शास्त्रों का अध्ययन मनन
वह जग में प्रभु प्रभु में जग क
शाश्वत पदांक करना दर्शन !

युग ध्येय कर्म फल त्याग न अब
श्रम भू मंगल प्रति था अर्पित
बंधन न कर्म थे लोक मुक्ति
वाहक थे, शुभ फल से उपकृत !
अब भक्ति ज्ञान का स्वर्ण निकष
था लोक प्रेम में सद् परिणति
नर ईश्वर के प्रति प्रीति प्रथित
भू स्वर्ग सृजन ही शरणागति !

अब उच्च बोध स्तर से द्रष्टा
जन भू मन को करते प्रेरित
जीवन कुंठाओं से पीड़ित
भू मन की सीमा कर विस्तृत !
आनंद ज्योति सौन्दर्य शांति
बरसा नव चिद् ऐश्वर्य अमर
समदिक संचरण के निर्मम
गूँजे जन प्रभु करुणा से भर !

ऊषा के स्वर्ण मुकुट पर था
हीरक सा शुक्र बड़ा भास्वर —
संयुक्ता ने देखा हिमगिरि
सामने खड़ा प्रज्वलित शिखर !
स्वर्णिम मधु सी नव रवि रेखा
थी छिपी मौन उदयाचल पर
क्षण में भर गये दिशाओं में
नव शुचि रश्मियों के शत शर !

विक्षुब्ध भाव सागर से अब
निथरा हो शांत गंभीर सुघर
प्राणों में उदित हुआ हिमवत्
नव शोभा गरिमा में निःस्वर !
उनको उन्मेष हुआ सहसा
अणु ध्वंस गर्त तम के समीप
भू स्वर्ग उठ रहा हो विराट्
सौन्दर्य स्वप्न सा निर्निमेष !

संयुक्ता के सित स्वागत में
गिरि पथ के खग भरते कूजन
वन प्रान्तर पंथ व्यजन झलता
तरु व्योम पुष्प करते वर्षण !
कोकिल उसके स्वर में गाती
सित दृष्टि क्षितिज बनती विकसित
पद चिह्न फूल बन खिल उठते
धरती होती नव तृण हर्षित !

फूलों के दीपों में वन की
बहुरंगी ज्वालाएँ दीपित
उसके सित प्राणों को करती
पावक रस स्पर्शों से पुलकित !
सौन्दर्य प्रेरणा सी सशक्त
विद्युत् होती उर में अंकित
स्वर्गिक प्रहर्ष की सूचक बन
भावी भू मानवता के हित !

शोभा का स्फटिक मंदिर था
प्रखर चुनी वह गिरि प्रांतर,
मरकत के करतल में दीपित
हो हीरक पावन शिखर सुंदर !
उन्मुक्त नील हँसमुख प्रसार,
मर्मरित क्षितिज निर्झर मुखरित —
सोचती निर्निमिष संयुक्ता
शशि रेख देख नभ में शोभित —

यह जीवन की आत्मा परमा
शोभा — न मुझे संशय किंचित्
होती इतनी सुंदर न सृष्टि
विस्मय रस सूनी से चित्रित !
कितने सुंदर फूलों के मुख
यह कला प्रतीक रहस्य व्यंजित
चेतना सिन्धु में चंद्र ज्वार
हिल्लोलित स्वर्गिक शोभा नित !

सित प्रीति – स्वर्ग आनन्द मूर्ति
कर मम विकास गति सचालित
शोभा प्रकाश के स्वर्ण क्षितिज
करती घन मम में उद्घाटित !
सम्पूर्ण विश्व जीवन प्रवास
मार्पणा गीत सा सत्य ओर
बढ़ता अनंत गति से प्रवाह
जड़ दिशा काल के छुआ छोर !

देखा तब ईश्वर का आनन
उसने – जो बसता जन भू पर
अपने मत स्पर्शों से विराट्
शाश्वत असीम अक्षय भास्वर !
तन मन जड़ चित् के पार क्षोभ
वह रस समग्र सत् सर्वाश्रय
इंद्रिय से आत्मा तक प्रहसित
आनंद मुक्त – उनसे अतिशय !

भगवत् शोभा में हो मूर्तित
अब जन भू पर मानव जीवन
उपचेतन भुवनों का विषाद
हरता स्वत अंतर्दीपित मन !
नत भू मानस की छाया में
हो रहा शुभ्र रस सूर्योदय
तृण तरु पशु पक्षी जन भी अब
अब भी प्रफुल्ल लगता निर्भय !

देखा उसने दिक् काल जगत्
कुछ भी न शेष अब था निश्चित
रम शुभ्र प्रीति चित् शिखर भाव
केवल अपने में अंत स्थित !
त्रिपुरों के छाया भुवनों का
जो करता अतिक्रम रूपांतर
गुनहने परणिमा स्पर्शों से
उनको क्षण रस में मज्जित कर !

हाँ देखा उसने एक बार
सम्मुख गरिमा मंडित आनन
नगपति हैं खड़े विराट् मौन
हो सत्य स्वप्न या भ्रांति दर्शन!
द्रुत धर राजोचित मनुज वेश
वे बैठे पा नव तृण आसन
विस्मय हत संयुक्ता बोली —
प्रिय देव, करूँ कैसे पूजन?

तुम अतिथि आपके बंधु, स्वयं
अब बने हमारे अभ्यागत
किन शब्दों में सुख करूँ व्यक्त
किन शुभ उपकरणों से स्वागत!
बोले गिरिवर शुभ उमा तुल्य
मेरे प्राणों की हो प्रिय धन
मेरा यह निभृत निसर्ग कक्ष
तुमने फिर किया नव पावन!

मैं जड़ निश्चेतन जग का नृप
करने आया जन अभिवादन
मानव स्पर्शों से मानवीय
बनने — प्रबुद्ध नव रस चेतन!
जड़ चित् द्विधि क्षण को अतिक्रम कर
नव जन्म ले रहा भू मानव
सब प्रकृति शक्तियाँ पाश मुक्त
अब मना रहीं जीवन उत्सव!

देखा संयुक्ता ने विस्मित
नगपति के सभी पार्षदगण
बहु सिंह व्याघ्र गज वृष खग पशु,
थे वहाँ उपस्थित धर नर तन!
मृदु रोमिल चर्मों में भूषित
गिरि प्रजा चाटती प्रणत चरण
निज पंखों में गति बद्ध सिमट
खग कुल गाता मंगल गायन!

सर सरित सिन्धु, कानन पर्वत
रवि शशि ग्रह गगन पवन पावक
मानवता का स्वागत करने
आए थे — विस्मय से अपलक !
भूषित प्रतीक परिधानों में
आए थे कुल सत्ता खग मृग
भू मंगल पर्व मनाने हित
बन शोभा देख सफल हों दृग !

नव चेतन बनते इंद्र धनुष
चपला पटु पद करती नर्तन
षड्ऋतु आईं थीं एक साथ
स्वर्गिक शोभा करने वर्षण !
मानव सुख से था सुखी अमित
उस निभृत प्रकृति वन प्रांगण में
भावी जीवन शोभा गरिमा
जगती संयुक्ता के मन में !

प्रिय रंगों के मांसल तन धर
देखते फूल अपलक शोभन
मधु साँसों से बरसा सौरभ —
अलि भाव पंख भरते गुंजन !
पशु पक्षी जग भर प्रीति युक्त
मानव कुटुंब का अवयव बन
मृदु तीव्र प्रिय हर्ष ध्वनि से
करता नव युग का अभिनंदन !

चढ़ नीम गाय मृग पीठों पर
फिरते किशोर वन के भीतर,
जब भीड़ मँजो वन पशुओं का
सहला सिर बाँहों में रख कर !
छुपते जब बारह सिंघा के
उगते अँकुओं से सींग सुघर
वे धूप फेन चुगा मन भर
उसकी बाधा दुख लेते हर !

वन हिरनी गर्भवती होती
वे उसे खिलाते नव तृण दल
ऊष्मा में छाया में बिठला
झरने का मधुर पिलाते जल !
वे जड़ी बूटियों के रस से
पशुओं के घावों को धोते
गिरि ढालों पर मृग शावों को
गोदी में से लेकर ढोते !

मकड़ी के जाले व्रण में भर
वे रक्त धार रोकते तुरत
नव ओषधि नव उपकरणों से
उनकी सेवा में रहते रत !
देखा संयुक्ता ने विस्मित
तृण तरु पशु पक्षी गिरि कानन
भूमा के बहुमुख मूर्त रूप
सब एक चेतना पावक कण !

विस्मय प्रवाह उसको विलोक
बोले नगपति संयत कर स्वर
गूँजी घन मंद्र प्रतिध्वनियाँ
शिखरों से उठ अंबर में भर ! —
स्नेहल प्रकृति का प्रांगण यह,
शोभा का विस्तृत वक्ष स्पन्द
ममता सचराचर जग जिसमें —
माँ का हो वत्सल छायांचल !
मेरे शिखरों का चिर वैभव
जग भू के चरणों पर अर्पित
ये शून्य स्फटिक मंदिर से स्थिर
रस स्पर्श रहित ईश्वर वंचित !
नगपति वनघाटियों में जीवित
जो प्राण हरित जीवन मुखरित —
अधिगम आत्मा के शून्य व्यर्थ
यदि वे इंद्रिय वैभव विरहित !

नयनों को शोभा अंतरिक्ष
श्रवणों को स्वर संगीत भुवन
जिह्वा को षड् रस के समुद्र
नासा को गंध भुवन मादन —
स्पर्शेन्द्रिय को जो मिले नहीं
मांसल भगवत् स्पर्श का मार्दव —
वह ब्रह्म नहीं भ्रम कूप अंध
आत्मा वह नहीं विरत जड़ शव !

मृत आत्मवाद के ही तम से
भारत का पतन हुआ निश्चय
जन जगदात्मा को भूल गए
आत्मा के भी पद में हो लय !
अणु से अणु, महत् महत् से वह
स्थित प्रेम तत्व रस निधि अक्षय
निज से निज को अतिक्रम करता
कर निखिल विरोधों का परिणय !

ज्यों बिना शब्द के अर्थ अगम
त्यों बिना अर्थ के शब्द व्यर्थ —
समझे तुमको ज्ञात सत्य
संयुक्त सिद्धि तुम हो समर्थ !
आध्यात्मिक भौतिक तत्व निखिल
जीवन निधि में होते अवसित
जीवन भगवत् नवनीत सार
मानव में सर्वाधिक विकसित !

ईश्वर उसकी क्षमता असम
जीवन ही प्रभु मुख का दर्पण
आत्मा मन उसके अंश मात्र
जड़ जगत् सृजन लीला प्रांगण !
वह क्रम विकास का पथिक अमर
छायाभा शोभा में गुम्फित
जो स्वर्ग पीठ हो जन भू पथ
वह मानवता में हो मूर्तित !

के द्वार पार
समता ममता का पाथ सजग
अंतर्भुवनों के वैभव से
कुसुमित कर जन भू जीवन मग!
प्रभु लक्ष्य न निश्चय उच्च शिखर
जीवन का स्वर्ग बने भूतल
सौन्दर्य प्रेम आनंद धाम —
रस ईश्वर हो शोभा मांसल!

प्रिय सुते गुणात्मक परिवर्तन
मानव मन में हो रस संस्कृत
सित गुण में हो संगठित शक्ति
जीवन मंत्र शोभा विकसित!
सचित आध्यात्मिक भुवनों में
भू जीवन हित शाश्वत मधस
अक्षय पावक रस सूनों से
पुष्पित हो भू मानस प्रवस!

हो निकट प्रकृति के नव संस्कृति
हो मूल शिखर सम से सिंचित
चरितार्थ इन्द्रियों का पावक
पा सित इच्छा द्युति ऋत रस घृत!
जीवन ईश्वर हो पूर्ण काम
जड़ उर में चिद् रस संमोहित
उपरत मन बने न ऊर्ध्व शून्य
हो ऊष्म प्राण मन में वितरित!

यह प्रेम सृष्टि — हो प्रेम सम
जन में प्रतीति समता स्थापित
मन पाप पुण्य फल प्रति तटस्थ
जन हो न नरक भय से तापित!
यह पूर्ण दया से भी अतिशय
मित प्रीति — परस्पर हो अर्पित
हों लाभ क्षम सुख निरत प्राण
उर सुजन शांति रस में मज्जित!

उत्तर स्वप्न

मैं शिखरों का अधिपति तुमको
क्या दीक्षा दूँ ? तुम स्वत रस स्थित
यह ब्रह्म ज्ञान मन से न सुगम
जीवन में लोक करें अर्जित !
हे मध्य युगों के अर्ध सत्य
जड़ से चेतन को कर विभक्त
जो गैरिक बाना तुम ओढ़े
जीवन प्रति मन करते विरक्त !

स्वप्न सत्य मृषाओं में खोए,
ज्ञानांध बुद्धि मरु में भटके
जग में ईश्वर को देख न पा
वे मुक्ति शून्य नभ में लटके !
जन पर अनंत ⁄ दारिद्र्य भार
सिखला विराम निष्क्रिय वर्जन
जीवन के हत्यारे जग को
दे गए आत्मघाती दर्शन !

तुम जीवन ईश्वर को पूजो
यह प्रेम अनिर्वचनीय परम
यह अक्षय रस घट घट वासी
यह सृष्टि स्वर्ग का मधु उपक्रम !
अंतर्यामी करुणार्द्र हृदय
पारस मणि — महिमा से छूकर
यह घृणा द्वेष को प्रेम बना
जन जग का करता रूपांतर !

पर्याप्त प्रेम ईश्वर, जीवन —
सबका विश्वक श्रुति स्मृति दर्शन
देखो पथ मम अभिराम उठा
यह धरा स्वर्ग शोभा प्रांगण !
आत्मा के स्तर पर बैठ शुभ्र
सच्चिदानन्द जग का आनन
इति समता उभय तन प्राण विरत
संन्यस्त कर्म गत-युग का मन !

मार्तंड स्वर्ग विस्मय विमूढ़
यह रहा समाधित–मन अद्भुत,
तद्गत हुआ मर्त्योपलब्धि
रस पूर्ण सिद्धि–भू हो तद्वत् !
घन संयम श्रम श्रुत रस बरसा
मन धरणी को करना उर्वर,
रुचि संस्कृत शोभा सदन में
दिक् मुकुलित हो दिव जीवन भर !

मैं सौंप विश्व मानस समस्त
प्राची पश्चिम का अतिक्रम कर
इतिहास धर्म संस्कृतियों के
शिखरों पर नव युग का पथ धर –
दे रहा तुम्हें जीवन दर्शन –
यह महत् कल्प परिवर्तन क्षण –
निर्माण करो नूतन भविष्य
भू जीवन हो पथवत् दर्पण !

यह सित निभग सुषमा संगम –
देखो इसमें भूमा का सुख
देखो गाते गति पथ विहग
बरसाते मुक्त पवन का सुख !
इठलाते रसमस रजत स्रोत
झरते गत मुक्ता के निर्झर
देखा हिम शृंगों की गरिमा –
स्तंभित–सहृग भासा सागर !

यह इंद्रिय प्राणों का जीवन
सुंदर से बन नित सुंदरतर
मानव में हो परिणति – शिखर
यह सचराचर का – मर्त्य अमर ! –
सहसा मनुष्य हो मन यदि –
सोमस श्रम पशु गिरि वन प्रांतर
शशि शेखर भूमा सीम ससीम
तुम सम्मुख प्रकट हुआ भास्वर !

आ गया काम संग विशद बोध
शाश्वत का था जीवन प्रांगण
बँध प्रेम पाश में सचराचर
क्रीड़ा करते मोहित तन मन।
जग नाम रूप के गौण सत्य
दिक् काल चरण धर रस शाश्वत
जड़ चित् कर में जीवन शिशु धन
भू पथ का था दिव प्रत्यागत।

अब गन्ध धरा सी शीश मधेश
समुक्ता नमती रस पवित्र
चित् प्रीत मौन अनुभूति प्रथित
हिम ताप पक्ष भू प्रीति चित्र!
सित स्वर्ग वया घट से उरोज,
दृग दिव स्वप्नों के वातायन
मुख अंत सुषमा का दर्पण —
धरती भू पर संगीत चरण!

मिलता उसका सर्वाधिक सुख
जब वह प्रभु सम्मुख होती नत
होता अस्तित्व कृतार्थ पूर्ण
उर भाव हीन रस में तद्गत!
उस मधु प्रहर्ष की आभा में
जीवन जगत् में प्रभु जीवित
पी रूप चेतनामृत — करता
गूँगे का गुड़ म हृदय मोहित!

प्रभु से पवित्र था और न कुछ
वैसा न पूर्ण कुछ मंगलमय
होती कृतार्थ शोभा उसमें
आनंद हृदय करता तन्मय!
नारी शांति मित करता पर
उससे न अधिक मोहक सुंदर,
अनिवार्य सृष्टि होती उसमें
है प्रीति मधुर रस के सागर!

प्रभु की ही अवर्यरिमा से
लगता प्रशांत निःस्वर अम्बर
गिरि ध्यान मौन करते चिन्तन
अविदित उच्चायों में खो कर!
छवि मुग्ध नृत्य करते रवि शशि
सागर रहता स्मृति आंदोलित
पा गंध डोलता धन्य समीर
लगता दिगंत विस्मय स्तंभित!

नीहार सरोवर में तिरता
ज्यों शुभ्र रजत जल में बिम्बित—
निर्वसन तैरती मधुस्मा
सित मानस शोभा में परिवृत!
मन को लगते तन वस्त्र भार
रहती तन्मय चिन्मय मज्जित
दीपित करता निर्मम का उर
मुख सूक्ष्म ज्योति रेखा मंडित!

देखा उसने मन के दृग से—
वह स्वप्न लोक का था आँगन
विद्रुम आभा छाई नभ में
माणिक प्रभ धरा पटल शोभन!
ऊषाएँ परिक्रमा करतीं
स्मित अप्सरियाँ करतीं नर्तन
उड़ अंतरिक्ष में देव वृन्द
सित पुष्प वृष्टि करते प्रति क्षण!

वे शुभ्र जन्म पा सब मानव
पाते प्रमुद नारी के स्वर
पलने में उनको विश्व प्रकृति
थी सुना रही गा गा निःस्वर!—
कितने संवत्सर बीते शुभ
मैं रही प्रतीक्षा में अपलक
जग पथ अभिशप्ता न भू की
मृदु बचपन रव रह मन तक!

तुम उदय हुए रस सूर्य दिव्य
कर धरा योनि का तम दीपित
आध्यात्मिक प्रथम प्रभात शुभ्र
भू पर लाए, — जन मन विस्मित !
दिक काल हुए गति चरम प्रणत
वेदी स्मित पलकों में जाग्रत
करतल पुट में शोभित अनंत
जीवन समग्रता में परिणत !

भू योनि गर्भ में छिपा स्वर्ग
साकार हो सका प्रथम बार
हँस मानव ईश्वर ने खोले
भू अंधकार के गुह्य द्वार !
सौन्दर्य ज्योति आनंद प्रीति
हो सके सृष्टि पट में सार्थक
तुम में धर रूप कृतार्थ हुआ
आत्मा का रूप हीन पावक !

रस प्रीति चेतना से मूर्तित
फिरते अब जग में नारी नर,
भय राग शोक दारिद्र्य हीन
जन भू तम छोर विचर भास्वर !
शोभा से गौर मराल धवल
चलती सहृदय भू पर निर्भय
मित्र संस्कृत नव मानव जीवन
ईश्वर में अंतर रस तन्मय !

मय हुआ काम मग दिशा जाग
भूमर वा वा निरवधि प्रायण
बँध प्रीति पाश में सचराचर
क्रीड़ा करते अर्पित तन मन !
महता जीवन मे मिल मुख मे
आत्मा स्वर्णिम आभा गुंठन
पन के भीतर पट के अनंत —
हँसता हिरण्य रस मित पूषण !

था प्राप्त उसे जो शुद्ध प्रेम
छू सकता उसे न दंभ काम
वह क्षम बौद्धिक सिद्धांत नहीं
सिमटाए जिसको तर्क धाम! —
वह आत्म त्याग सित आत्म दान
जिसको नत मस्तक स्वीकृत कर
बनता चिर निर्मम लौह स्वर्ण
होता श्रम जग का रूपांतर!

सांध्य प्रात स्वर्णाभा में
खेलता मिचौली संगी कवि
उठ ज्योति वर्ण मन दृग सम्मुख
अंकित करता उर में वह छवि!
तद्गत हो संयुक्ता का मन
करता संलाप स्वगत गोपन
सान्निध्य सूक्ष्म द्रष्टा कवि का
युग मन का करता संचालन!

हो उठता स्वत स्फुरित उसके
उर में स्वर्णिम भावी आनन
अमरों की चापों से झंकृत
लगता जन भू जीवन प्रांगण!
भव मंगल की सित आशा से
दीपित हो उठता निश्छल मन
अज्ञात मुक्त चिन्महत् सत्य
भव भू पथ पर करता विचरण!

रस गुहा द्वार से उतर ज्योति
चलती जन धरणी पर पग धर,
जब जीवन आभा में मुकुलित
होता युग अंतर्मुख ईश्वर!
भरत गुणों से मुक्त प्रेम
आनंद प्रीति रस के निर्झर —
दृग मूँद लिए उसने — उनमें
भावी भू जीवन आभा भर!

देखा सब ने — नभ में घनाभ
खिल इन्द्रधनुष पथ पर विरचित
रत्नच्छायाओं में चित्रित
भू स्वर्ग सेतु सी वह शोभित।
जिस पर साभार विचर रस कवि
बरसाता स्वप्नों के पट खिल
लेटा भू पर शशि लेखा सा
नव — भाव श्वेत आभा मंडित।

गूँजी सहसा प्रार्थना मौन
घन भू प्रांगण को कर पावन
आत्मा में बरसा शुभ्र शांति
नव श्रद्धा आस्था से भर मन! —
जो साँस साँस में ईश्वर का
करती तन्मय उर प्रीति स्मरण
जिस मन का प्रभु मंदिर जिसका
प्रति कर्म लोक अर्पित पूजन!

वह मन मन से प्रभु में मग्न हो
छा गई निखिल जग में गोपन
रम पूत चेतना जीवन की
बस कर जन मन में पुण्य स्पंदन! —
हे प्रेम पूर्ण जीवन ईश्वर
जन भू जिसका आभा प्रांगण
तुम प्रकृति पुरुष रस युग्म मिलन
निष्काम सहज जग के कारण!

तुम अमय चित्र — भव कर्दम में
खिलते बन ज्योति नयन पुष्कर
तुम मर्त्य अमर से परे — अकथ
तिरते नित जन्म मरण सागर!
चिर पाप पुण्य मरमन् पीड़ित
होता जब तुमसे हृदय युक्त
वह मुक्त मुक्ति बंधन से हट
बंधन में रहता नित्य मुक्त!

तुम सभ्य समस्या से ऊपर
संचित करते निज सत्य सकल
इतिहास तमस के पार सजग
सांस्कृतिक ज्योति धारण उज्ज्वल!
धन धर्म कर्म मन में ग्रन्थित
जड़ चेतन इच्छा से नंदित—
भौतिक आध्यात्मिक सिद्धि स्वर्ग
यदि प्रीति अमृत से न विरहित!

पीढ़ी पाढ़ा घर सदन बस—
तुम हुए जीवन में मूर्तित
जन भू आँगन की शोभा के
वैभव मंगल से कर मुकुलित!
भू रज पलकों में रच स्वप्न
यौवन उर में भर शान्ति
नर नारी उर की आकांक्षा
निज शान्ति मुक्ति रस से वंचित!

उत्सुक संयुक्त जनों का श्रम
भू-स्वर्ग मनुज करते निर्मित—
भाषा मानव भावों का मुख
प्रिय कर से करा संघटित!
मन के मुख्या में आशा जग
कर व्यक्ति व्यक्ति का सुर भक्त
मन संस्कारों के क्रमिया से
निज मग्न मनुज चैतन्य स्वत!

दर्शन अतीत के प्रश्नों का
क्रीड़ा प्रांगण हित मनुज बस
भाषा मानवता के प्रयाग
युग श्रम से भर बन के समरस!
नव युग प्रीति बन उदग्र सब
पावन हो इंद्रिय जीवन पथ
है मनुज प्रेम के परमेश्वर
होगा युग सम्भव में सब स्वर!

आभा रस में कर उर परिप्लव
बिचरो भू पर नर नारी गण,
खोलो मन से तन के बंधन
संभव न और जग में जीवन।
यह अग्नि सेतु असि धारा पथ
संयम मित धरो प्रबुद्ध चरण
कर पार उपायों के आँगन
खोलो भावी मंगल तोरण।

•

इस प्रकार सांस्कृतिक कल्प नव
भू जीवन में होगा विकसित
एक चेतना रस सागर में
विविध रूप उठ होते अवसित।
प्रथम बार अब जगत् ब्रह्म में
ब्रह्म जगत् में हुआ प्रतिष्ठित
मुक्त भेद मन से भू जीवन
सित चित् पट में हुआ समन्वित।

जन्म, ले चुका अब नव मानव
जड़ चित् का कर रस संयोजित
धरा स्वर्ग कल्पना न रह अब
जन जीवन म होता मूर्तित।
कवि मन क रस मित्र दर्पण में
देख भविष्य मनुज का आनन
आया भू मन के विषाद को
करें प्रेम के प्रभ को अर्पण।

●